लेखक और गांधीजी

अपने जीतेजी महात्मा गांधी ने ऐसे आदमियों को गढ़ा, जो उनकी अनेक योजनाओं से सहमत न होते हुए भी उनसे स्फूर्ति पाते और अपने-अपने क्षेत्र में बहुमूल्य सेवाएं करते रहे। घनश्यामदासजी की गणना इन्हीं लोगों में थी। वह गांधीजी का मानस ठीक समझ पाते थे। वह उन इने-गिने व्यक्तियों में से थे, जो गांधीजी के लिए एक संतान के समान थे। गांधीजी की शिक्षा उनमें अंकुरित होकर फलित हुई। संबंध घनिष्ठ होने के साथ-साथ यह प्रभाव बढ़ता गया। दोनों का यह अंतरंग संबंध बत्तीस वर्ष तक बना रहा। मुझे उनका यह पारस्परिक संबंध वर्षों तक देखने का गौरव प्राप्त है, क्योंकि गांधीजी के जितना ही अंतरंग संबंध उनका मेरे साथ भी था।

गांधीजी की अनेक शिक्षाओं में से एक शिक्षा थी कि लक्ष्मी के कृपा-पात्रों को अपने आपको धरोहर-धारी और अपनी संपत्ति को दूसरों के उपकार के निमित्त एक धरोहर की भांति समझना चाहिए। बिड़लाजी ने यह शिक्षा भलीभांति हृदयंगम की है। देश के कोने-कोने में बिखरी हुई अनेक शिक्षा-संस्थाएं, मंदिर, धर्मशालाएं और अस्पताल इसके साक्षी हैं। पिलानी इनमें शीर्ष स्थानीय है। स्वातन्त्र्य-संग्राम के संबंध में भी यही बात थी। उसमें भी बापू की मार्फत मुक्तहस्त होकर निस्संकोच भाव से उन्होंने धन-दान दिया।

मेरे जीवन में गांधीजी

सस्ता
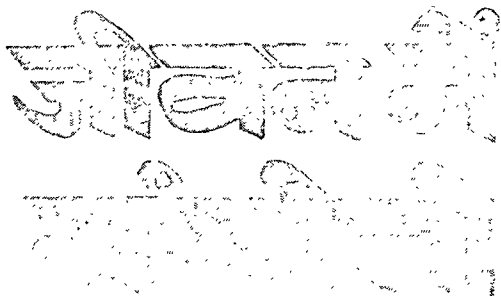
घनश्यामदास बिड़ला

गांधीजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की एक झांकी
सजीव संस्मरणों और प्रेरक पत्रों में

साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

श्री घनश्यामदास बिड़ला के नाम से हिन्दी जगत भली-भांति परिचित है। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। अनेक विषयों पर उन्होंने लिखा है। भारत के बहुत-से विशिष्ट व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में आने का उन्हें अवसर मिला है। उनमें से कुछेक के उन्होंने संस्मरण तथा रेखाचित्र अंकित किये हैं। साथ ही, ऐसे सामान्य व्यक्तियों के बारे में भी लिखा है, जिनकी विशेषताओं ने उनके मन पर अपनी छाप डाली थी।

लेखक ने निबन्ध भी लिखे हैं। उन निबन्धों में उन्होंने उन समस्याओं पर प्रकाश डाला है, जिनका संबंध प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के साथ आता है। अपने निबंधों में वह पाठकों को ऊपरी सतह पर ही घुमाकर सन्तुष्ट नहीं हुए, चिन्तन की गहराई में भी ले गये हैं।

फिर, देश-विदेश में यात्राएं भी वह खूब करते रहे हैं। उनकी अनेक यात्राओं का ऐतिहासिक मूल्य रहा है। इन प्रवासों में प्राप्त अनुभवों का लाभ उन्होंने पाठकों को दिया है।

लेखक का क्षेत्र मुख्यतः औद्योगिक तथा आर्थिक रहा है। अतः उन्होंने आर्थिक समस्याओं पर भी अधिकारपूर्वक कतिपय रचनाओं में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

वस्तुतः उनकी रचनाओं की, भले ही वे संस्मरण हों या निबंध या यात्रा-वृत्तान्त, अपनी एक विशेषता है। सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहने का प्रयत्न करते है और चूंकि उनके विचार स्पष्ट हैं, उनकी भाषा बहुत ही सरल और सुबोध है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उनके भाव गहन, भाषा प्रांजल और शैली प्रवाहमयी है।

वैसे उन्होंने अधिक नहीं लिखा, लेकिन जो भी लिखा है, वह निस्संदेह पाठकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ है। उनके लेखन की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से भी स्पष्ट लगाया जा सकता है कि उनकी कुछ कृतियों के कई-कई संस्करण हुए हैं।

उनका साहित्य बिखरा हुआ था। अत. पाठकों की सुविधा के लिए सोचा गया कि उसे दो खण्डों मे प्रकाशित कर दिया जाय। फलतः उनके सम्पूर्ण साहित्य का वर्गीकरण करके उसे दो खण्डो मे निकाला गया है।

पहले खण्ड 'मेरे जीवन में गांधीजी' में उनकी वे रचनाएं संग्रहीत की गई हैं, जो गांधीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालती है। उनसे यह भी पता चलता है कि रचनात्मक प्रवृत्तियो तथा भारत की आजादी की लडाई के प्रति लेखक की कितनी उत्कठा रही और उन्हें बल प्रदान करने के लिए उन्होंने कितना सहयोग दिया। पढते समय स्वाधीनता के इतिहास के बहुत से पृष्ठ आंखो के सामने खुल जाते हैं।

भारतीय इतिहास के ज्ञाता जानते हैं कि गांधीजी के प्रति लेखक की गहरी आत्मीयता थी। उन्हें उनको निकट से देखने और समझने का भी मौका मिला था। इसलिए उन्होने गाधीजी के बडे ही सजीव चित्र खीचे हैं। कुछ चित्र तो इतने मार्मिक हैं कि पाठक उन्हें पढकर आनंद-विभोर हो उठते हैं।

गाधीजी के प्रति इतना अनुराग होते हुए भी उन्होने उनकी हर बात को आंख मूदकर स्वीकार नही किया। जो बात उनकी समझ मे नही आई, उसके बारे में गाधीजी से खुलकर चर्चाए की और कभी-कभी पत्रों द्वारा उनका स्पष्टीकरण भी कराया।

प्रस्तुत खण्ड मे गाधीजी के महान् व्यक्तित्व और अपूर्व कृतित्व की मनोहारी झाकी हम देखते हैं। पुस्तक यह उपन्यास नही है, पर इसमे उपन्यास की रोचकता है। पुस्तक यह इतिहास नही है, पर इसमें इतिहास की दृष्टि और प्रामाणिकता है।

दूसरे खण्ड 'बिखरे विचारो की भरोटी' मे उनकी शेप रचनाएं सग्रहीत की गई हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि सभी वर्गों और क्षेत्रों के पाठक इन दोनों खण्डों को चाव से पढ़ेंगे और दूसरो को भी पढने की प्रेरणा देंगे।

—मंत्री

अनुक्रम

□

लेखक गांधीजी के साथ

बापू

हिन्दी भाषा मे लिखे हुए पत्र मुझे सीधी-सादी, नपी-तुली और सारगर्भित शैली के अनुपम नमूने मालूम हुए हैं और जब से मैं उस शैली पर मुग्ध हुआ हूं, तब से सोचता हू कि बिडलाजी कुछ लिखते क्यो नही ? मुझे बडा आनन्द होता है कि इस पुस्तक मे उसी आकर्षक शैली का परिचय मिलता है, जिसका कि उनके पत्रो मे मिलता था।

गाधीजी के सम्पर्क मे आये बिडलाजी को पच्चीस वर्ष हो गए हैं। इस पच्चीस साल के सबध के बारे मे वह लिखते हैं

"जब से मुझे गाधीजी का प्रथम दर्शन हुआ, तब से मेरा उनका अविच्छिन्न सबध जारी है। पहले कुछ साल मैं समालोचक होकर उनके पास जाता था, उनके छिद्र ढूढने की कोशिश करता था, क्योकि नौजवानों के आराध्य लोकमान्य की ख्याति को इनकी ख्याति टक्कर लगाने लग गई थी, जो मुझे रुचिकर नही मालूम होता था; पर ज्यो-ज्यो छिद्र ढूढने के लिए मैं गहरा उतरा, त्यों-त्यो मुझे निराश होना पडा और कुछ अरसे मे समालोचक की वृत्ति आदर मे परिणत हो गई और फिर आदर ने भक्ति का रूप धारण कर लिया। बात यह है कि गाधीजी का स्वभाव ही ऐसा है कि कोई विरला ही उनके ससर्ग से बिना प्रभावित हुए छूटता है।" इतना मैं जानता हू कि श्री घनश्यामदासजी बिडला तो नही छूटे। वह लिखते हैं, "गाधीजी से मेरा पच्चीस साल का ससर्ग रहा है। मैने अत्यन्त निकट से, सूक्ष्मदर्शक-यत्र की भाति, उनका अध्ययन किया है। समालोचक होकर छिद्रान्वेषण किया है। पर मैंने उन्हें कभी सोते नही पाया।" यह वचन गाधीजी के बारे मे तो सत्य है ही, पर बिडलाजी के बारे मे काफी अश मे सत्य है, क्योकि गाधीजी न सिर्फ खुद ही नही सोते हैं, बल्कि जो उनके प्रभाव मे आते है उनको भी नही सोने देते।

यह पुस्तक इस जाग्रत अध्ययन, अनुभव और समालोचन का एक सुन्दर फल है। उन्होने एक-एक छोटी-मोटी बात को लेकर गाधीजी के जीवन को देखने का प्रयत्न किया है। गाधीजी से पहले-पहल मिलने के बाद बिडलाजी ने उनको एक पत्र लिखा। जवाब मे एक पोस्टकार्ड आया, "जिसमें पैसे की किफायत तो थी ही, पर भाषा की भी काफी किफायत थी।" बात तो मामूली-सी है, परन्तु उसमे से गाधीजी के जीवन की एक कुजी उन्हें मिल जाती है। "पता नही, कितने नौजवानो पर गाधीजी ने इस तरह छाप डाली होगी, कितनो को उलझन मे डाला होगा, कितनो के लिए वह कुतूहल की सामग्री बने होगे। पर १९१५ में जिस तरह वह लोगो के लिए पहेली थे, वैसे ही आज भी हैं।" यह सही है, पर इस पुस्तक मे हम देखते हैं कि उनके जीवन की कई पहेलिया घनश्यामदासजी ने अच्छी तरह सुलझाई हैं।

गीता इतना सीधा-सादा और लोकप्रिय ग्रथ होने पर भी पहेलियों से भरा हुआ है। इसी तरह गाधीजी का जीवन भी पहेलियो से भरा पडा है। कुछ रोज पहले रामकृष्ण-मठ के एक स्वामीजी यहा आये थे। बडे सज्जन थे, गाधीजी के

प्रति बड़ा आदर रखते थे और गांधीजी की ग्रामोद्योग-प्रवृत्ति अच्छी तरह समझने के लिए और कातने-बुनने की क्रिया सीखकर अपने समाज मे उसका प्रचार करने के लिए वह यहां आये थे। एक रोज मुझसे वह पूछने लगे, "गांधीजी के जीवन की एकाग्रता देखकर मैं आश्चर्य-चकित होता हूं, और उनकी ईश्वर-श्रद्धा देखकर भी। क्या गांधीजी कभी भावावेश में आ जाते है ? क्या दिन में किसी समय वह ध्यानावस्थित होकर बैठते हैं ?" मैंने कहा, "नही।" उनके लिए यह बड़ी पहेली हो गई कि ऐसे कोई बाह्य चिह्न न होते हुए भी गांधीजी बड़े भक्त हैं और योगी हैं। गांधीजी के जीवन में ऐसी कई पहेलियां हैं। उनमे से अनेक पहेलियों को हल करने का सफल प्रयत्न इस पुस्तक मे किया गया है।

एक उदाहरण लीजिए। अहिंसा से क्या सब वस्तुओ की रक्षा हो सकती है ? यह प्रश्न अक्सर उपस्थित किया जाता है। इस प्रश्न का कैसी सुन्दर भाषा मे बिड़लाजी ने उत्तर दिया है :

"धन-सम्पत्ति-संग्रह, माल-जायदाद इत्यादि की रक्षा क्या अहिंसा से हो सकती है ? हो भी सकती है और नहीं भी। जो लोग निजी उपयोग के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, सम्भव नहीं कि वे अहिंसा-नीति के पात्र हों। अहिंसा यदि कायरता का दूसरा नाम नही, तो फिर सच्ची अहिंसा वह है जो अपने स्वार्थ के लिए संग्रह करना नही सिखाती। अहिंसक को लोभ कहां ? ऐसी हालत मे अहिंसक को अपने लिए संग्रह करने की या रक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं होती। योग-क्षेम के झगड़े मे शायद ही अहिंसा का पुजारी पड़े।

" 'निर्योगक्षेम आत्मवान्'—गीता ने यह धर्म अर्जुन-जैसे गृहस्थ व्यक्ति का बताया है। यह तो संन्यासी का धर्म है—ऐसा गीता ने नही कहा। गीता सन्यास नहीं, कर्म सिखाती है, जो गृहस्थ का धर्म है। अहिंसावादी का भी शुद्ध धर्म उसे योग-क्षेम के झगड़े से दूर रहना सिखाता है। पर संग्रह करना और उसकी रक्षा करना 'स्व' और 'पर' दोनों के लाभ के लिए हो सकता है। जो 'स्व' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे अहिंसा धर्म की पात्रता सम्पादन नही कर सकते। जो 'पर' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे गांधीजी के शब्दों मे 'ट्रस्टी' हैं। वे अनासक्त होकर योग-क्षेम का अनुसरण कर सकते हैं। वे संग्रह रखते हुए भी अहिंसावादी हैं, क्योंकि उन्हें संग्रह में कोई राग नही। धर्म के लिए जो संग्रह है, वह धर्म के लिए अनायास छोड़ा भी जा सकता है और उसकी रक्षा का प्रश्न हो तो वह तो धर्म से ही की जा सकती है, पाप से नही। इसके विपरीत जो लोग संग्रह में आसक्त हैं, वे न तो अहिंसात्मक ही हो सकते हैं, न फिर अहिंसा से धन की रक्षा का प्रश्न ही उनके संबंध मे उपयुक्त है। पर यह सम्भव है कि ऐसे लोग हों, जो पूर्णत अहिंसात्मक हों, जो सब तरह से पात्र हों, और अपनी आत्म-शक्ति द्वारा, यदि उन्हें ऐसा करना धर्म लगे तो, किसी के संग्रह की भी वे रक्षा कर सकें।

"पर यह कभी न भूलना चाहिए कि अहिंसक और हिंसक मार्ग की कोई तुलना है ही नही। दोनो के लक्ष्य ही अलग-अलग हैं। जो काम हिंसा से सफलतापूर्वक हो सकता है—चाहे वह सफलता क्षणिक ही क्यों न हो—वह अहिंसा से हो ही नहीं सकता। मसलन हम अहिंसात्मक उपायों से साम्राज्य नही फैला सकते, किसी का देश नहीं लूट सकते। इटली ने अबीसीनिया में जो अपना साम्राज्य-स्थापन किया, वह तो हिंसात्मक उपायों द्वारा ही हो सकता था।

"इसके माने यह हैं कि अहिंसा से हम धर्म की रक्षा कर सकते हैं, पाप की नही, और संग्रह यदि पाप का दूसरा नाम है तो संग्रह की भी नहीं। अहिंसा में जिन्हें रुचि है, वे पाप की रक्षा करना ही क्यों चाहेंगे? अहिंसा का यह मर्यादित क्षेत्र यदि हम हृदयंगम कर लें, तो इससे बहुत-सी शंकाओं का समाधान अपने-आप हो जायगा। बात यह है कि जिस चीज की हम रक्षा करना चाहते हैं, वह यदि धर्म है, तब तो अहिंसात्मक विधियों से विपक्षी का हम सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकते हैं और यदि वह पाप है, तो हमें स्वयं उसे त्याग देना चाहिए, और ऐसी हालत में प्रतिकार का प्रश्न ही नहीं रहता।

"यह निर्णय फिर भी हमारे लिए बाकी रह जाता है कि 'धर्म क्या है, अधर्म क्या है?' पर धर्माधर्म के निर्णय में सत्य के अनुयायी को कहां कठिनता हुई है?

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ,
हौं बौरी ढूढन गई, रही किनारे बैठ।

"असल बात तो यह है कि जब हम धर्म की नही, पाप की ही रक्षा करना चाहते हैं, और चूंकि अहिंसा से पाप की रक्षा नहीं हो सकती, तब अहिंसा के गुण-प्रभाव में हमें शंका होती है और अनेक तर्क-वितर्क उपस्थित होते हैं।"

इसी तरह जितने प्रश्न बिड़लाजी ने उठाये हैं, उन सबकी चर्चा सूक्ष्म अवलोकन और चिंतन से भरी हुई है। उनके धर्म-चिंतन और धर्मग्रंथों के अध्ययन का तो मुझे तनिक भी खयाल नहीं था। इस पुस्तक से उसका पर्याप्त परिचय मिलता है। गीता के कुछ श्लोक जो कहीं-कहीं उन्होंने उद्धृत किये हैं, उनका रहस्य खोलने मे उन्होंने कितनी मौलिकता दिखाई है!

बिड़लाजी की किफायती और चुभ जाने वाली शैली के तो हमको स्थान-स्थान पर प्रमाण मिलते हैं: "असल मे तो शुद्ध मनुष्य स्वयं ही शस्त्र है और स्वयं ही उसका चालक है।" "गंदे कपड़े की गंदगी की यदि हम रक्षा करना चाहते हैं तो पानी और साबुन का क्या काम? वहां तो कीचड़ की जरूरत है।" "आकाशवाणी अन्य चीजों की तरह पात्र ही सुन सकता है। सूर्य का प्रतिबिंब शीशे पर ही पड़ेगा, पत्थर पर नही।" "सरकार ने हमें शांति दी, रक्षा दी, परतंत्रता दी, नुमाइंदे भी वही नियुक्त क्यों न करे?" "सूरज से पूछो कि आप सर्दी में दक्षिणायन और गर्मी में उत्तरायण क्यों हो जाते हैं, तो कोई यथार्थ उत्तर मिलेगा? सर्दी-गर्मी

दक्षिणायन-उत्तरायण के कारण होती है, न कि दक्षिणायन-उत्तरायण सर्दी-गर्मी के कारण। गांधीजी की दलीलें भी वैसी ही हैं। वे निर्णय के कारण बनती हैं, न कि निर्णय उनके कारण बनता है।"

आखिरी तुलना कितनी मनोहर, कितनी मौलिक और कितनी अर्थपूर्ण है! गांधीजी के जीवन के कई कार्यों पर इस दृष्टि से कितना प्रकाश पड़ता है।

गांधीजी की आत्मकथा तो हम सब पढ़ चुके हैं, परन्तु उसके कुछ भागों पर श्री घनश्यामदासजी ने जैसा भाष्य किया है वैसा हममें से शायद ही कोई करते हों। गांधीजी को मारने के लिए दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों की भीड़ टूट पड़ती है। मुश्किल से गांधीजी उससे बचते हैं। बिड़लाजी को उस दृश्य का विचार करते ही दिल्ली के लक्ष्मीनारायण-मन्दिर के उद्घाटन के समय की भीड़ याद आ जाती है और दोनों दृश्यों का सुन्दर समन्वय करके अपनी बात का समर्थन करते हैं।

गांधीजी के उपवास, उनकी ईश्वर-श्रद्धा, उनके सत्याग्रह आदि कई प्रश्नों पर उनके जीवन के अनेक प्रसंग लेकर उसकी गहरी छानबीन करके, उन्होंने बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है।

उनकी समझ, उनकी दृष्टि, इतनी सच्ची है कि कहीं-कहीं उनका स्पष्टीकरण गांधीजी के स्पष्टीकरण की याद दिलाता है। यह पुस्तक तो लिखी गई थी कोई तीन महीने पहले, लेकिन उस समय उन्होंने अहिंसक सेनापति और अहिंसक सेना के बारे में जो-कुछ लिखा था वह मानो वैसा ही है, जैसा अभी कुछ दिन पहले गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा था :

"यह आशा नहीं की जाती कि समाज का हर मनुष्य पूर्ण अहिंसक होगा। पर जहां हिंसक फौज के बल पर शांति और साम्राज्य की नींव डाली जाती है, वहां भी यह आशा नहीं की जाती कि हर मनुष्य युद्ध-कला में निपुण होगा। करोड़ों की बस्ती वाले मुल्क की रक्षा के लिए कुछ थोड़े लाख मनुष्य काफी समझे जाते हैं। सौ में एक मनुष्य यदि सिपाही हो तो पर्याप्त माना जाता है। फिर उन सिपाहियों में से भी जो ऊपरी गणनायक होते हैं, उन्हीं की निपुणता पर सारा व्यवहार चलता है।

"आज इंग्लिस्तान में कितने निपुण गणनायक होंगे, जो फौज के संचालन में अत्यंत दक्ष माने जाते हैं? शायद दस-बीस। पर बाकी जो लाखों की फौज है, उससे तो इतनी ही आशा की जाती है कि उसमें अपने अफसरों की आज्ञा पर मरने की शक्ति हो। इसी उदाहरण के आधार पर हम एक अहिंसक फौज की भी कल्पना कर सकते हैं। अहिंसात्मक फौज के जो गणनायक हों, उनमें पूर्ण आत्म-शुद्धि हो, जो अनुयायी हों, वे श्रद्धालु हों और चाहे उनमें इतना तीक्ष्ण विवेक न हो, पर उनमें सत्य-अहिंसा के लिए मरने की शक्ति हो। इतना यदि है तो काफी है।"

सारी पुस्तक बिड़लाजी की तलस्पर्शी परीक्षण-शक्ति का सुन्दर नमूना है। केवल एक स्थान पर मुझे ऐसा लगा कि वह जितनी दूर जाना चाहिए, उतनी दूर नही गए। अहिंसा की समीक्षा करते हुए उन्होने एक अबाध सत्य प्रतिपादित किया है—अनासक्त होकर, अरागद्वेष होकर जनहित के लिए की गई हिंसा अहिंसा है। यह अबाध सत्य तो गीता मे है ही, पर उस पर से बिड़लाजी ने जो अनुमान निकाला है, उसे शायद ही गाधीजी स्वीकारेंगे। बिड़लाजी कहते हैं—"गाधीजी स्वय जीवन-मुक्त दशा में, चाहे वह दशा क्षणिक—जब निर्णय किया जा रहा हो उस घडी के लिए—ही क्यो न हो, अहिंसात्मक हिंसा भी कर सकें, जैसे कि बछडे की हिंसा, पर साधारण मनुष्य के लिए तो वह कर्म कौए के लिए हस की नकल होगी।" इस पर मैं दो बातें कहना चाहता हू। बछडे की हिंसा जीवन-मुक्त दशा मे की गई हिंसा का उदाहरण है ही नही। थोड़े दिन पहले से सेवाग्राम मे एक पागल सियार आ गया था। उसे मारने की गाधीजी ने आज्ञा दे दी थी, और वे मारने वाले कोई अनासक्त जीवन-मुक्त नही थे। वह आवश्यक और अनिवार्य हिंसा थी, जितनी कि कृषि-कार्य मे कीटादि की हिंसा आवश्यक और अनिवार्य हो जाती है। हिंसा के भी कई प्रकार हैं। बछड़े की हिंसा का दूसरा प्रकार है। घुडदौड़ मे जिस घोड़े का पैर टूट जाता है या ऐसी चोट लगती है कि जिसका इलाज ही नही है, और पशु के लिए जीना एक यत्रणा हो जाता है, उसे अग्रेज लोग मार डालते हैं। वे प्रेम से, अद्वेष से मारते हैं, पर वे मारने वाले कोई अनासक्त या जीवन-मुक्त नही होते। जिस हिंसा को गीता ने विहित कहा है, वह हिंसा अलौकिक पुरुष ही कर सकता है—राम, कृष्ण कर सकते हैं, परन्तु राम और कृष्ण, गाधी-जी के अभिप्राय मे, वहा ईश्वरवाचक है। गाधीजी अपने को जीवन-मुक्त नही मानते और न वह और किसीको भी सपूर्ण जीवन-मुक्त मानने के लिए तैयार हैं। सपूर्ण जीवन-मुक्त ईश्वर ही है और यह गाधीजी की दृढ मान्यता है कि 'हत्वाऽपि स इमाल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते'—वचन भी ईश्वर के लिए ही है। इसलिए वह कहते हैं—मनुष्य चाहे जितना बड़ा क्यों न हो, चाहे जितना शुद्ध क्यो न हो, ईश्वर का पद नही ले सकता और न व्यापक जनहित के लिए भी उसे हिंसा करने का अधिकार है। इस निर्णय मे से सत्याग्रह और उपवास की उत्पत्ति हुई।

इस एक स्थान को छोडकर बाकी पुस्तक मे मुझे कही कुछ भी नही खटका, बल्कि सारा विवेचन इतना तलस्पर्शी और सारा दर्शन इतना दोष-मुक्त मालूम हुआ है कि मैं पुस्तक को प्रूफ के रूप मे ही दो बार पढ़ गया तथा और भी कई बार पढू तो भी मुझे थकान नही आयेगी। मुझे आशा है कि और पाठको की भी यही दशा होगी और, जैसा कि मुझे मालूम हुआ है, औरों को भी इस पुस्तक का पठन शान्तिप्रद और चेतनाप्रद मालूम होगा।

सेवाग्राम, ८-६-४०

—महादेव देसाई

बापू

एक

गांधीजी का जन्म अक्तूबर सन् १८६९ ईस्वी में हुआ। इस हिसाब से वह इकहत्तर वर्ष समाप्त कर चुके। अनन्तकाल के अपरिमित गर्भ में क्या इकहत्तर और क्या इकहत्तर सौ! अथाह सागर के जल में विद्यमान एक बूंद की गणना भले ही हो सके, पर अनन्तकाल के उदर में बसे हुए इकहत्तर साल की क्या बिसात? फिर भी यह सही है कि भारत के इस युग के इतिहास में इन इकहत्तर वर्षों का अपना महत्त्व है।

भारतवर्ष में इस समय एक नई तरह की मानसिक हलचल का दौरदौरा है, जागृति है, एक नये अनुभव में से हम पार हो रहे हैं। धार्मिक विप्लव यहां अनेक हुए हैं, पर राजनीति का जामा पहनकर धर्म किस तरह अपनी सत्ता जमाता है, यह इस देश के लिए एक नया ही अनुभव है। इसका अन्त क्या होगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

पर जबकि सारा संसार अस्त्र-शस्त्रों के मारक गर्जन से त्रस्त है और विज्ञान नित्य ऐसे नये-नये ध्वंसक आविष्कार करने में व्यस्त है, जो छिन में एक पल पहले की हरी-भरी फुलवाड़ी को फूंककर श्मशान बना दे, जबकि स्वदेश और स्वदेश-भक्ति के नाम पर खून की नदियां बहाना गौरव की बात समझी जाती हो, जबकि सत्यानाशी कार्यों द्वारा मानव-धर्म की सिंहासन-स्थापना का सुख-स्वप्न देखा जाता हो, ऐसे अन्धकार में गांधीजी का प्रवेश आशा की एक शीतल किरण की तरह है, जो, यदि भगवान् चाहे तो, एक प्रचण्ड जीवक तेज में परिणत होकर संसार में फिर शांति स्थापित कर सकती है।

पर शायद मैं आशा के वहाव मे बहा जा रहा हू । तो भी इतना तो शुद्ध सत्य है ही कि गाधीजी के आविर्भाव ने इस देश में एक आशा, एक उत्साह, एक उमग और जीवन मे एक नया ढग पैदा कर दिया है, जो हजारो साल के प्रमाद के बाद एक बिलकुल नई चीज है ।

किसी एक महापुरुष की दूसरे से तुलना करना एक कष्टसाध्य प्रयास है। फिर गाधी हर युग मे पैदा भी कहा होते हैं ? हमारे पास प्राचीन इतिहास—जिसे दरअसल तवारीख कहा जा सके—भी तो नही है कि हम गणना करें कि कितने हजार वर्षों मे कितने गाधी पैदा हुए। राम-कृष्ण चाहे देहधारी जीव रहे हो, पर कवि ने मनुष्य-जीवन की परिधि से बाहर निकालकर उन्हे एक अलौकिक रूप दे दिया है । कवि तो कवि ही ठहरा, इसलिए उसका दिया हुआ अलौकिक स्वरूप भी अपूर्ण है। ऐसे स्वरूप के विवरण के लिए तो कवि अलौकिक, लेखनी अलौकिक और भाषा भी अलौकिक ही चाहिए। पर तो भी कवि की कृति के कारण राम-कृष्ण को मानवी मापदण्ड से मापना दुष्कर हो गया है ।

इसके विपरीत, कवि पुष्कल प्रयत्न करने पर भी बुद्ध की ऐतिहासिकता और उसका मानवी जीवन न मिटा सका । इसलिए ससार के ऐतिहासिक महापुरुषो मे बुद्ध ने एक अत्यन्त ऊचा स्थान पाया । पर कलियुग मे एक ही बुद्ध हुआ है और एक ही गाधी। बुद्ध ने अपने जीवन-काल में एक दीपक जलाया, जिसने उनकी मृत्यु के बाद अपने प्रचण्ड तेज से एशिया-भर मे प्रकाश फैला दिया। गाधीजी ने अपने जीवन-काल मे उससे कही अधिक प्रखर अग्निशिखा प्रदीप्त की, जो शायद समय पाकर ससार-भर को प्रज्ज्वलित कर दे ।

अपने जीवनकाल में गाधीजी ने जितना यश कमाया, जितनी ख्याति प्राप्त की और वह जितने लोकवल्लभ हुए, उतना शायद ही कोई ऐतिहासिक पुरुष हुआ हो। ऐसे पुरुष के विषय मे कोई कहा तक लिखे ? इकहत्तर साल की क्रमबद्ध जीवनी शायद ही कभी सफलता के साथ लिखी जा सके, और फिर गाधीजी को पूरा जानता भी कौन है ?

'सम्यग् जानाति वै कृष्णः किंचित् पार्थो धनुर्धर.'

जैसे गीता के बारे में कहा गया है, वैसे गाधीजी के बारे मे यह कहा जा सकता है कि उन्हे भली प्रकार तो स्वय वही जानते है, बाकी कुछ-कुछ महादेव देसाई भी ।

मैंने गांधीजी को पहले-पहल देखा तब या तो उन्नीससौ चौदह का अन्त था या पन्द्रह का प्रारम्भ। जाड़े का मौसम था। लन्दन से गांधीजी स्वदेश लौट आये थे और कलकत्ते आने की उनकी तैयारी थी। जब यह खबर सुनी कि कर्मवीर गांधी कलकत्ते आ रहे हैं, तो सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ के दिल मे एक तरह का चाव-सा उमड पडा। उन दिनों का सार्वजनिक जीवन कुछ दूसरा ही था। अखबारो मे लेख लिखना, व्याख्यान देना, नेताओं का स्वागत करना और स्वयं भी स्वागत की लालसा का व्यूह रचना—सार्वजनिक जीवन करीब-करीब यही तक सीमित था।

मैंने उन दिनो जवानी मे पांव रखा ही था, बीसी बस खत्म हुई ही थी। पाच सवारो में अपना नाम लिखाने की चाह लिये मैं भी फिरता था। मेलों में वालंटियर बनकर भीड़ में लोगों की रक्षा करना, बाढ-पीडित या अकाल-पीड़ित लोगों की सेवा के लिए सहायता-केन्द्र खोलना, चन्दा मागना और देना, नेताओं का स्वागत करना, उनके व्याख्यानों मे उपस्थित होना, यह उन दिनों के सार्वजनिक जीवन मे रस लेनेवाले नौजवानो के कर्त्तव्य की चौहद्दी थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा इस चौहद्दी के भीतर शुरू होती थी। मेरी भी यही चौहद्दी थी, जिसके भीतर रस और उत्साह के साथ मैं चक्कर काटा करता था।

नेतागण इस चौहद्दी के बाहर थे। उनके लिए कोई नियम, नियन्त्रण या विधान नही था। जोशीले व्याख्यान देना, चन्दा मागना, यह उनका काम था। स्वागत पाना, यह उनका अधिकार था। इसके माने यह नही कि नेता लोग अकर्मण्य थे, या कर्त्तव्य में उनका मोह था। बात यह थी कि उनके पास इसके सिवा कोई कार्यक्रम ही नही था, न कोई कल्पना थी। जनता भी उनसे इससे अधिक की आशा नही रखती थी। नेता थे भी थोड़े-से, इसलिए उनका बाजार गरम था। अनुयायी भक्ति-भाव से पूजन-अर्चन करते, जिसे नेता लोग बिना सकोच के ग्रहण करते थे।

उस समय के लीडरो की नुक्ताचीनी करते हुए अकबर साहब ने लिखा :

> कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ,
> रंज लीडर को बहुत है, मगर आराम के साथ।

अवश्य ही अकबर साहब ने घोड़े और गधे को एक ही चाबुक से हांकने की कोशिश की, मगर इसमे सरासर अत्युक्ति थी, ऐसा भी नही कहना चाहिए। यदि कुछ लीडरो के साथ उन्होंने अन्याय किया, तो बहुतों के बारे मे उन्होंने यथार्थ की बात भी कह दी।

गाधीवाद के आविर्भाव के बाद तो मापदण्ड कुछ न्यारा ही बन गया। नेताओं को लोग दूरबीन और खुर्दबीन मे देखने लग गये। एक ओर चरित्र की पूछताछ बढ गई, तो दूसरी ओर उसके साथ-साथ पाखण्ड भी बढा। स्वार्थ मे वृद्धि हुई, पर त्याग भी बढा। शात सरोवर मे गाधीवाद की मथनी ने पानी को बिलो डाला। उसमें से अमृत भी निकला और विष भी। उसमे से देवासुर-सग्राम भी निकला। गाधीजी ने न मालूम कितनी बार विष की कडवी घूटे पी और शिव की तरह नीलकठ बने। सग्राम तो अभी जारी ही है और सुरो की विजय अन्त मे अवश्यभावी है, यह आशा लिये लोग बैठे है। पर जिस समय की मैं बातें कर रहा हू, उस समय यह सब-कुछ न था। सरोवर का पानी शात था। ऊषा की लालिमा शातभाव से गगन मे विद्यमान थी; पर सूर्योदय अभी नही हुआ था। पुनर्जन्म की तैयारी थी; पर या तो नये जन्म से पहले की मृत्यु का सन्नाटा था, या प्रसव-वेदना के बाद की *सुषुप्ति-जनित शांति। न नेताओं को पाखण्ड मे आत्मग्लानि* थी, न अनुयायी ही इस चीज को वैसी बुरी नजर से देखते थे।

ऐसे समय मे गाधीजी अफ्रीका मे लन्दन होते हुए स्वदेश लौटे और सारे हिन्दुस्तान का दौरा किया। कलकत्ते मे भी उसी सिलसिले मे उनके आगमन की तैयारी थी।

मुझे याद आता है कि गाधीजी के प्रथम दर्शन ने मुझमे काफी कुतूहल पैदा किया। एक सादा सफेद अगरखा, धोती, सिर पर काठियावाडी फेंटा, नगे पाव, यह उनकी वेशभूषा थी। हम लोगो ने बडी तैयारी से उनका स्वागत किया। उनकी गाडी को हाथ से खीचकर उनका जुलूस निकाला, पर स्वागतो मे भी उनका ढग निराला ही था। मै उनकी गाडी के पीछे साईस की जगह खडा होकर "*कर्मवीर गाधी की जय !" गला फाड़-फाडकर चिल्ला रहा था।* गाधीजी के साथी ने, जो उनकी बगल मे बैठा था, मुझसे कहा, " 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' ऐसा पुकारो। गाधीजी इससे प्रसन्न होगे।" मैंने भी अपना राग बदल दिया।

पर मालूम होता था, गाधीजी को इन सब चीजो मे कोई रस नही था। उनके व्याख्यान मे भी एक तरह की नीरसता थी। न जोश था, न कोई अस्वाभाविकता थी, न उपदेश देने की व्यास-वृत्ति थी। आवाज मे न चढ़ाव था, न उतार। बस एक तार था, एक तर्ज थी। पर इस नीरसता के नीचे दबी हुई एक चमक थी, जो श्रोताओं पर छाप डाल रही थी।

मुझे याद आता है कि कलकत्ते मे उन्होने जितने व्याख्यान दिये—शायद कुल पाच व्याख्यान दिये होंगे—वे प्रायः सभी हिन्दी भाषा मे दिये। सभी व्याख्यानो मे उन्होंने गोखले की जी-भरकर प्रशसा की। उन्हें अपना राजनैतिक गुरु बताया और यह भी कहा कि श्री गोखले की आज्ञा है कि मैं एक साल देश मे भ्रमण करू,

अनुभव प्राप्त करू। इसलिए जबतक मुझे सम्यक् अनुभव नही हो जाता, तबतक मैं किसी विषय पर अपनी पक्की राय कायम करना नही चाहता। नौजवानो को गोखले का ढंग नापसन्द था, क्योंकि वह होश की, न कि जोश की, बातें किया करते थे, जो उस समय के नौजवानों की शिक्षा-दीक्षा से कम मेल खाती थी। लोकमान्य लोगों के आराध्य थे। इसलिए हम सभी नौजवानो को गांधीजी का बार-बार गोखले को अपना राजनैतिक गुरु बताना खटका।

पर तो भी गाधीजी के उठने-बैठने का ढंग, उनका सादा भोजन, सादा रहन-सहन, विनम्रता, कम बोलना, इन सब चीजों ने हम लोगों को एक मोहनी मे डाल दिया। नये नेता की हम लोग कुछ थाह न लगा सके।

मैंने उन दिनो गांधीजी से पूछा कि क्या किसी सार्वजनिक मसले पर आपसे खतो-किताबत हो सकती है? उन्होने कहा, "हां।" मुझे यह विश्वास नही हुआ कि किसी पत्र का उत्तर एक नेता इतनी जल्दी दे सकता है। वह भी मेरे-जैसे एक अनजान साधारण नौजवान को। पर इसकी परीक्षा मैंने थोड़े ही दिनों बाद कर ली। उत्तर मे तुरन्त एक पोस्टकार्ड आया, जिसमें पैसे की किफायत तो थी ही, भाषा की भी काफी किफायत थी।

पता नही, कितने नौजवानोंपर गाधीजी ने इस तरह छाप डाली होगी, कितनो को उलझन मे डाला होगा, कितनो के लिए वह कुतूहल की सामग्री बने होंगे! पर १६१५ मे जिस तरह वह लोगों के लिए पहेली थे, वैसे ही आज भी हैं।

तीन

१६३२ के सत्याग्रह की समाप्ति के बाद लार्ड विलिंग्डन पर, एक मर्तबा, शायद १६३४ की बात है, मैंने जोर डाला कि आप इस तरह गांधीजी से दूर न भागें, उनसे मिलें, उनको समझने की कोशिश करें, इसीमें भारत और इंग्लिस्तान दोनो का कल्याण है। पर वाइसराय पर इसका कोई असर न हुआ। उन्हें भय था कि गाधीजी उन्हे कही फास न लें। वह मानते थे कि गाधीजी का विश्वास नही किया जा सकता। मुझे मालूम है कि भारत-सचिव ने भी वाइसराय पर गाधीजी से मेल-जोल करने के लिए जोर डाला था, पर सारी क्रिया निष्फल गई। जिस मेल-मिलाप का अमल-दरामद अरविन के जाने के बाद टूटा, वह लिनलिथगो के आने तक न सध सका।

जिन गांधीजी पर मेरी समझ मे निर्भय होकर विश्वास किया जा सकता है,

उनके प्रति वाइसराय विलिंग्डन का विश्वास न था। वाइसराय ने कहा, "वह इतने चतुर है, बोलने में इतने मीठे हैं, उनके शब्द इतने द्विअर्थी होते है, कि जबतक मै उनके वाक्पाश में पूरा फस न चुकूगा, तबतक मुझे पता भी न लगेगा कि मैं फस गया हू। इसलिए मेरे लिए निर्भय मार्ग तो यही है कि मैं उनसे न मिलू, उनसे दूर ही रहू।" मेरे लिए यह अचम्भे की बात थी कि गाधीजी के बारे में किसी के ऐसे विचार भी हो सकते हैं। पर पीछे मालूम हुआ कि ऐसी श्रेणी मे वाइसराय अकेले ही न थे, और भी कई लोगों को ऐसी शका रही है।

अमरीका के एक प्रतिष्ठित ग्रथकार श्री गुन्थर ने गाधीजी के बारे में लिखा है :

"महात्मा गाधी मे ईसामसीह, चाणक्य और बापू का अद्भुत सम्मिश्रण है। बुद्ध के बाद वह सबसे महान् व्यक्ति हैं। उनसे अधिक पेचदार पुरुष की कल्पना भी नही की जा सकती। वह एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो किसी तरह पकड में नही आ सकते। यह मैं कुछ अनादर-भाव से नहीं कह रहा हू। एक ही साथ महात्मा, राजनीतिज्ञ, अवतार और प्रतापी अवसरवादी होना, यह मानवी नियमों का अपवाद या अवज्ञा है। जरा उनकी असगतियो का तो खयाल कीजिये। एक तरफ तो गाधीजी का अहिंसा और असहयोग मे दृढ विश्वास, और दूसरी ओर इग्लिस्तान को युद्ध मे सहायता देना! उन्होंने नैतिक दृष्टि से कैदखाने मे उपवास किये, पर वे उपवास ही उनकी जेलमुक्ति के साधन भी बने, यद्यपि उनको इस परिणाम से कोई गरज नही थी। जबतक आप यह न समझ लें कि वह सिद्धात से कभी नही हटते, चाहे छोटी-मोटी बिगतो पर कुछ इधर-उधर हो जाय, तबतक उनकी असगतिया बेतरह अखरती हैं। इग्लिस्तान मे असहयोग करते हुए भी आज गाधीजी से बढकर इग्लिस्तान का कोई मित्र नही है। आधुनिक विज्ञान से उन्हें सूग-सी है, पर वह थर्मामीटर का उपयोग करते हैं और चश्मा लगाते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य चाहते हैं, पर उनका लडका थोड़े दिनो के लिए धर्म-परिवर्तन करके मुसलमान बन गया था, इससे उन्हें चोट लगी। काग्रेस के वह प्राण हैं, उसके मेरुदण्ड हैं, उसकी आखें हैं, उसके पाव हैं, पर काग्रेस के वह चार आनेवाले मेम्बर भी नहीं। हर चीज को वह धार्मिक दृष्टि से देखते हैं। पर उनका धर्म क्या है, इसका विवरण कठिन है। इससे ज्यादा गोरखधधा और क्या हो सकता है? फिर भी सत्य यही है कि गाधीजी एक महान् व्यक्ति है, जिनका जीवन शुद्ध शौर्य की प्रतिमा है।

"इसमे कोई शक नहीं कि गाधीजी परस्पर-विरुद्ध-धर्मी गुणो के एक खासे सम्मिश्रण हैं। वह 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' हैं। अत्यन्त सरल, फिर भी अत्यन्त दृढ; अतिशय कजूस, पर अतिशय उदार। उनके विश्वास की कोई सीमा नही; पर मैंने उन्हें मौके-बेमौके अविश्वास भी करते पाया है। गांधीजी

एक कुरूप व्यक्ति हैं, जिनके शरीर, आखों और हरेक अवयव से दैवी सौन्दर्य और तेज की आभा टपकती है। उनकी खिलखिलाहट ने न मालूम कितने लोगों को मोहित कर दिया। उनके बोलने का तरीका बोदा होता है, पर उसमे कोई मोहिनी होती है, जिसे पी-पीकर हजारो प्रमत्त हो गए।

"गांधीजी को शब्दांकित करना दुष्कर प्रयास है। कोई पूछे कि कौन-सी चीज है, जिसने गांधीजी को महात्मा बनाया, तो उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर भी शायद सफलता न मिले। बात यह है कि गाधीजी, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, इतने परस्पर-विरुद्ध और समान सम्मिश्रणो के पुतले हैं कि पूरा विश्लेषण करना एक कठिन प्रयत्न है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये सब चीजें हैं, जिनकी सारी शक्ति ने गांधीजी को बड़ा बनाया। गाधीजी को आदमी उनसे सम्बन्धित साहित्य को पढ़कर तो जान ही नही सकता, पास मे रहकर भी सम्यक् नही जान सकता।

"गांधीजी का जीवन एक बृहत् दैवी जुलूस है, जिसने उनके होश सम्हालते ही गति पाई, जो अब भी द्रुतगति से चलता ही जा रहा है और मृत्यु तक लगातार चलता ही रहेगा। इस जुलूस मे न मालूम कितने दृश्य हैं, न मालूम कितने अंग हैं। पर इन सब दृश्यों का, इन सब अगों का, एक ही ध्येय है और एक ही दिशा मे वह जुलूस लगन के साथ चला जा रहा है। हर पल उस जुलूस को अपने ध्येय का ज्ञान है, हर पल उग्र प्रयत्न जारी है और हर पल वह अपने ध्येय के निकट पहुंच रहा है।"

किसी ने गाधीजी को केवल 'बापू' के रूप मे ही देखा है, किसी ने 'महात्मा' के रूप मे, किसी ने एक राजनैतिक नेता के रूप मे और किसी ने एक बागी के रूप में।

गाधीजी ने सत्य की साधना की है। अहिंसा का आचरण किया है। ब्रह्मचर्य का पालन किया है। भगवान् की भक्ति की है। हरिजनों का हित साधा है। दरिद्रनारायण की पूजा की है। स्वराज्य के लिए युद्ध किया है। खादी-आन्दोलन को अपनाया है। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए अथक प्रयत्न किया है। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग किये हैं। गोवंश के उद्धार की योजना की है। भोजन के सम्बन्ध में स्वास्थ्य और अध्यात्म की दृष्टि से अन्वेषण किये हैं। ये सब चीजें गाधीजी का अंग बन गई हैं। इन सारी चीजो का एकीकरण जिसमे समाप्त होता है, वह गाधी है।

"मेरा जीवन क्या है?—यह तो सत्य की एक प्रयोगशाला है। मेरे सारे जीवन मे केवल एक ही प्रयत्न रहा है—वह है मोक्ष की प्राप्ति, ईश्वर का साक्षात् दर्शन। मैं चाहे सोता हू या जागता हू; उठता हूं या बैठता हूं; खाता हू या पीता हू, मेरे सामने एक ही ध्येय है। उसीको लेकर मैं जिन्दा हूं। मेरे व्याख्यान

या लेख और मेरी सारी राजनैतिक हलचल, सभी उसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर गति-विधि पाते है। मेरा यह दावा नही है कि मैं भूल नही करता। मैं यह नहीं कहता कि मैंने जो किया वही निर्दोष है। पर मैं एक दावा अवश्य करता हूं कि मैंने जिस समय जो ठीक माना, उस समय वही किया। जिस समय जो 'धर्म' लगा, उससे मै कभी विचलित नही हुआ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेवा ही धर्म और सेवा मे ही ईश्वर का साक्षात्कार है।"

गाधीजी का जीवन क्या है, इसपर उनकी उपर्युक्त उक्ति काफी प्रकाश डालती है। ये बडे बोल हैं, जो एक प्रकाश-पुज से प्लावित व्यक्ति ही अपने मुह से निकाल सकता है, पर—

न त्वहं कामये राज्य न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

ये क्या कम बडे बोल थे ?

चार

मैंने एक बार कौतुकवश गाधीजी से प्रश्न किया कि आप अपने कौन-से कार्य के सम्बन्ध मे यह कह सकते हैं कि 'बस, यह मेरा काम मेरे सारे कामो का शिखर है ?'

गाधीजी इसका उत्तर तुरन्त नही दे सके। उन्हें एक पल—बस एक ही पल—ठहरना पडा, क्योकि वह सहमा कोई उत्तर नही दे सकते थे। समुद्र से पूछो कि कौन-सा ऐसा विशेष जल है, जिसने आपको सागर बनाया, तो समुद्र क्या उत्तर देगा ? गाधीजी ने कहा, "सबसे बडा काम कहो तो खादी और हरिजन-कार्य।" मुझे यह उत्तर कुछ पसन्द नही आया, इसलिए मैंने अपना सुझाव पेश किया, "और अहिसा ?—क्या आपकी सबसे बडी देन अहिसा नही है ?" "हा, है तो, पर यह तो मेरे हर काम मे ओत-प्रोत है। पर यदि समष्टि अहिसा से व्यष्टि कार्य का भेद करो, तो कहूंगा—खादी और हरिजन-कार्य, ये मेरे श्रेष्ठतम कार्य हैं। अहिसा तो मानो मेरी माला के मनको मे धागा है, जो मेरे सारे कामो मे ओत-प्रोत है।"

हरिजन-कार्य अत्यन्त महान् हुआ है. इसमे कोई शक नही। इनको यह चटक कब लगी, यह कोई नहीं बता सकता। पर जब यह बारह साल के थे, तभी इस विषय में इनका हृदय-मंथन शुरू हो गया था। इनके मेहतर का नाम ऊका था। वह पाखाना साफ करने आया करता था। इनकी मा ने इनसे कहा, "इसे मत

छूना।" पर गांधीजी को इस अछूतपन में कोई सार नहीं लगा। अछूतपन अधर्म है, ऐसा इनका विश्वास बढ़ने लगा था। उस समय के इनके बचपन के खयालात से ही पता लग जाता है कि इन्हें अछूतपन हिन्दू-धर्म में एक असह्य कलंक लगता था। जब इन्हें हिन्दू-धर्म में पूर्ण श्रद्धा नहीं थी, तब भी अछूतपन के कारण इन्हें काफी वेदना होती थी। यही संस्कार थे कि जिनके कारण आज से चालीस वर्ष पहले जब राजकोट में प्लेग चला और इन्होंने जन-सेवा का कार्यभार अपने ऊपर लिया, तब अछूतों की बस्ती का तुरन्त निरीक्षण किया। उस जमाने में इनके साथियों के लिए इनका यह कार्य अनोखा था, पर हरिजन-सेवा के बीज उस समय तक अंकुरित हो चुके थे, जो फिर समय पाकर पनपते ही गए और उस सेवा-वृक्ष की प्रचण्डता तो हरिजन-उपवास के समय ही प्रत्यक्ष हुई। हरिजन-उपवास तो क्या था, हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने का एक जबरदस्त प्रयत्न था, और उसमें गांधीजी को पूर्ण सफलता मिली।

एक भीषण षड्यन्त्र था कि पांच करोड़ हरिजनों को हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिया जाय। इस षड्यन्त्र में बड़े-बड़े लोग शरीक थे, इसका पता कुछ ही लोगों को था। गांधीजी इससे परिचित थे। उन्होंने द्वितीय गोलमेज-परिषद् में ही अपने व्याख्यान में कह दिया था कि हरिजनों की रक्षा के लिए वह अपनी जान लड़ा देंगे। इस मर्मस्पर्शी चुनौती का उस समय किसी ने इतना गम्भीर अर्थ नहीं निकाला। पर गांधीजी ने तो अपना निर्णय उसी समय गढ डाला था। इसलिए प्रधान मन्त्री ने जब अपना हरिजन-निर्णय प्रकट किया, तब गांधीजी ने हरिजन-रक्षा के लिए सचमुच ही अपनी जान लड़ा दी। इस प्रकार गांधीजी ने आमरण उपवास करके हिन्दू-समाज और हरिजन, दोनों को उबार लिया। अहिंसात्मक शस्त्र का यह प्रयोग बड़ी सफलता के साथ कारगर हुआ। इसमें उनकी कोई राजनैतिक चाल नहीं थी, हालांकि इसका राजनैतिक फल भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं था। पर उनकी मंशा तो केवल धार्मिक थी।

"हरिजनों को हमने बहुत सताया है। हम अपने पापों का प्रायश्चित्त करके ही उनसे उऋण हो सकते हैं"—इस मनोवृत्ति में धर्म और अर्थ दोनों आ जाते हैं। पर धर्म मुख्य था, अर्थ गौण। इसका असर व्यापक हुआ। हिन्दू-समाज के टुकड़े होते-होते बच गए। षड्यन्त्र बेकार हुआ। जिन्हें इस षड्यन्त्र का पता नहीं, उनके लिए हरिजन-कार्य की गुरुता का अनुमान लगाना मुश्किल है। खादी को भी गांधीजी ने वही स्थान दिया, जो हरिजन-कार्य को। इसको समझना आज जरा कठिन है, पर शायद फिर कभी यह भी स्पष्ट हो जाय।

"और अहिंसा?—क्या आपकी सबसे बड़ी देन अहिंसा नहीं है?" "हां, है, पर यह तो मेरे काम में ओत-प्रोत है। अहिंसा तो मानो मेरी माला के मनकों में धागा है।" यह प्रश्नोत्तर क्या है, गांधीजी की जीवनी का सूत्र-रूप में वर्णन

है। सत्य कहो या अहिंसा, गांधीजी के लिए ये दोनो शब्द करीब-करीब पर्यायवाची हैं। इसी तरह सत्य और ईश्वर भी उनके पर्यायवाची शब्द हैं। पहले वह कहते थे कि ईश्वर सत्य है, अब कहते हैं कि सत्य ही ईश्वर है। अहिंसा यदि सत्य है और सत्य अहिंसा है, और ईश्वर यदि सत्य है और सत्य ईश्वर है, तो यह भी कहा जा सकता है कि ईश्वर अहिंसा है और अहिंसा ईश्वर है। चूंकि सत्य, अहिंसा और ईश्वर इन तीनो की सम्पूर्ण प्राप्ति शायद मानव-जीवन में असम्भव है, इसलिए गाधीजी तीनों को सिंहासन पर बिठाकर तीनों की एक-ही साथ पूजा करते हैं।

परिणाम यह हुआ कि प्राणवायु जैसे शरीर की तमाम क्रियाओ को जीवन देती है, वैसे ही गाधीजी की अहिंसा उनके सारे कामों का प्राण हो गई है। कितने प्रवचन गाधीजी ने इस विषय पर किये होंगे, कितने लेख लिखे होंगे ! फिर भी कितने आदमी उनके तात्पर्य को समझे ? और कितनो ने समझकर उसे हृदयगम किया ? कितनो ने उसे आचरण में लाने की कोशिश की ? और कितने सफल हुए ? और दूसरी ओर गाधीजी की अहिंसा-नीति व्यग्य का भी कम शिकार न बनी। कुतर्कों की कमी न रही, पर इन सबके बीच ऐसे प्रश्न भी उपस्थित होते ही हैं, जो सरल भाव से शकास्पद लोगों द्वारा केवल समाधान के लिए ही किये जाते है।

"अहिंसा तो सन्यासी का धर्म है। राजधर्म मे अहिंसा का क्या काम ? हम अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा अहिंसा द्वारा कैसे कर सकते हैं ? क्या कभी सारा समाज अहिंसात्मक बन सकता है ? यदि नही, तो फिर थोडे-से आदमियो के अहिंसा धारण करने से उसकी उपयोगिता का महत्त्व क्या ? अहिंसा का उपदेश क्या कायरता की वृद्धि नही करता ? और गाधीजी के बाद अहिंसा की क्या प्रगति होगी ?"

ऐसे-ऐसे प्रश्न रोज किये जाते है। गाधीजी उत्तर भी देते हैं, पर प्रश्न जारी ही हैं, क्योकि यदि हम केवल जिज्ञासा ही करते रहे और आचरण का प्रयत्न भी न करें, तो फिर शका का समाधान भी क्या हो सकता है ? गुड का स्वाद भी तो आखिर खाने से ही जाना जाता है।

"हा, अहिंसा तो सन्यासी का धर्म है। राजधर्म मे तो हिंसा, छल-कपट सब विहित हैं। हम नि शस्त्र होकर आततायी का मुकाबला करें, तो वह हमे दबा लेगा, हमारी हार होगी और आततायी की जीत। 'आततायी वधार्हण:', 'आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्' ये शास्त्रो के वचन हैं।

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिः धनापह ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥

ये सब कुकर्मी आततायी हैं। इन्हें मारना ही चाहिए। यदि हम आततायी

को दण्ड न दें, तो संसार मे जुलम की वृद्धि होगी, सन्तजनों के कष्ट बढेंगे, अधर्म की वृद्धि और धर्म का ह्रास होगा।"

ऐसी दलीलें रोज सामने आती हैं। पर आश्चर्य तो यह है कि ऐसे तार्किक कोई राजा-महाराजा या राजधर्मी मनुष्य हो, सो नही। जज का क्या धर्म है, इसकी चर्चा रास्ता चलनेवाले मनुष्य क्वचित् ही करते सुने जाते हैं। फिर भी रास्ते चलते आदमी अपने को राजधर्म का अधिकारी क्यों मान लेते हैं ? यदि जज किसी को फासी की सजा दे सकता है, तो क्या रास्ते चलनेवाले सभी आदमी फांसी की सजा देने के अधिकारी हो सकते हैं ? कोई तार्किक तर्क करने से पहले अपने-आपसे ऐसा प्रश्न नही करता, और हमारा विपक्षी ही आततायी है, हम तो दण्ड देने के ही अधिकारी हैं, ऐसा भी हम सहज ही क्यों मान लेते हैं ? आततायी यदि हमी हो तो फिर क्या ?

हिटलर कहता है—चर्चिल आततायी है, चर्चिल कहता है—हिटलर आततायी है। परस्पर का यह आरोप पूरी सरगर्मी के साथ जारी है। अब दोनों ही अपने-आपको दण्ड देने का अधिकारी मानते हैं। ऐसी स्थिति में निर्णय तो तटस्थ पुरुष ही कर सकता है। पर तटस्थ पुरुष की बात दोनो-के-दोनो यदि स्वीकार करें, तो फिर दण्ड देने या लेने का सवाल ही नही रहता।

बात तो यह है कि अक्सर हम अपनी हिंसा-वृत्ति का पोषण करने के लिए प्रमाण का सहारा ढूढते हैं। 'आततायिनमायान्त हन्यादेवाविचारयन्' का उपयोग अपने विपक्षी के लिए ही हम करते है। ऐसा तो कोई नही कहता कि मैं आततायी हूं, इसलिए मेरा वध किया जाय। ऐसा कोई कहे तब तो तर्क मे जान आ जाय। पर 'मो सम कौन कुटिल खल कामी'—ऐसा तो सूरदास ने ही कहा। यदि हम विपक्षी के दुर्गुणो की अवगणना करके अपने दोषो का आत्म-निरीक्षण ज्यादा जाग्रत होकर करें, तो ससार का सारा पाप छिप जाय।

धन-सम्पत्ति-संग्रह, माल-जायदाद इत्यादि की रक्षा क्या अहिंसा से हो सकती है ? हो भी सकती है और नही भी। जो लोग निजी उपयोग के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, सम्भव नही कि वे अहिंसा-नीति के पात्र हों। अहिंसा यदि कायरता का दूसरा नाम नही, तो फिर सच्ची अहिसा वह है जो अपने स्वार्थ के लिए सग्रह करना नही सिखाती। अहिंसक को लोभ कहां ? ऐसी हालत मे अहिंसक को अपने लिए सग्रह करने की या रक्षा करने की आवश्यकता ही नही होती। योग-क्षेम के झगड़े मे शायद ही अहिंसा का पुजारी पड़े। 'निर्योग क्षेम आत्मवान्—गीता ने यह धर्म अर्जुन-जैसे गृहस्थ व्यक्ति को बताया है। यह तो संन्यासी का धर्म है—ऐसा गीता ने नही कहा। गीता सन्यास नही, कर्म सिखाती है, जो गृहस्थ का धर्म है। अहिंसावादी का भी शुद्ध धर्म उसे योग-क्षेम के झगडे से दूर रहना सिखाता है। पर संग्रह करना और उसकी रक्षा करना 'स्व' और 'पर'

दोनों के लाभ के लिए हो सकता है। जो 'स्व' के लिए सग्रह लेकर बैठे हैं, वे अहिंसा-धर्म की पात्रता सम्पादन नही कर सकते। जो 'पर' के लिए संग्रह लेकर बैठे हैं, वे गाधीजी के शब्दो में 'ट्रस्टी' हैं। वे *अनासक्त होकर योग-क्षेम का अनु*सरण कर सकते हैं। वे सग्रह रखते हुए भी अहिंसावादी हैं, क्योकि उन्हें संग्रह मे कोई राग नही। धर्म के लिए जो सग्रह है, वह धर्म के लिए अनायास छोड़ा भी जा सकता है और उसकी रक्षा का प्रश्न हो तो वह धर्म से ही की जा सकती है, पाप से नही। इसके विपरीत जो लोग सग्रह मे आसक्त हैं, वे न तो अहिंसात्मक ही हो सकते हैं, न फिर अहिंसा से धन की रक्षा का प्रश्न ही उनके सम्बन्ध मे उपयुक्त है। पर यह सम्भव है कि ऐसे लोग हो, जो पूर्णत अहिंसात्मक हो, जो सब तरह से पात्र हो और अपनी आत्मशक्ति द्वारा, यदि उन्हें ऐसा करना धर्म लगे तो, किसी के सग्रह की भी रक्षा कर सके।

पर यह कभी न भूलना चाहिए कि अहिंसक और हिंसक मार्ग की कोई तुलना है ही नही। दोनो के लक्ष्य ही अलग-अलग हैं। जो काम हिंसा से सफलतापूर्वक *हो सकता है—चाहे वह सफलता क्षणिक ही क्यों न हो—वह अहिंसा से हो ही* नही सकता। मसलन हम अहिंसात्मक उपायों से साम्राज्य नही फैला सकते, किसी का देश नही लूट सकते। इटली ने अबीसीनिया मे जो अपना साम्राज्य स्थापित किया, वह तो हिंसात्मक उपायो द्वारा ही हो सकता था।

इसके माने यह हैं कि अहिंसा से हम धर्म की रक्षा कर सकते हैं, पाप की नही, और सग्रह यदि पाप का दूसरा नाम है, तो सग्रह की भी नहीं। अहिंसा मे जिन्हें रुचि है, वे पाप की रक्षा करना ही क्यो चाहेंगे? अहिंसा का यह मर्यादित क्षेत्र यदि हम हृदयगम कर लें, तो इससे बहुत-सी शकाओ का समाधान अपने-आप हो जायगा। बात यह है कि जिस चीज को हम रक्षा करना चाहते हैं, वह यदि धर्म है, तब तो अहिंसात्मक विधियो से विपक्षी का हम सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकते हैं, और यदि वह पाप है तो हमे स्वय उसे त्याग देना चाहिए *और ऐसी हालत में प्रतिकार का प्रश्न ही नही रहता।*

यह निर्णय फिर भी हमारे लिए बाकी रह जाता है कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है? पर धर्माधर्म के निर्णय मे सत्य के अनुयायी को कहां कठिनता हुई है?

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ,
हौ बौरी ढूंढ़न गई, रही किनारे बैठ।

असल बात तो यह है कि जब हम धर्म की नहीं, पाप की ही रक्षा करना चाहते हैं—और चूंकि अहिंसा से पाप की रक्षा नही हो सकती—तब अहिंसा के गुण-प्रभाव मे हमें शका होती है और अनेक तर्क-वितर्क उपस्थित होते हैं।

राजनीति मे अहिंसा के प्रवेश से नई उलझन इसलिए बढ़ गई है कि राज-

नीति का चित्र हमने वही खींचा है, जो यूरोप की राजनीति का हमारे सामने उपस्थित है। जातीयता का अभिमान, जातियों में परस्पर वैरभाव, दूसरे देशों को दबा लेने का लोभ, हमारा उत्थान दूसरो के नाश से ही हो सकता है, ऐसा भ्रम, उससे प्रभावित होकर सीमा की मोर्चाबन्दी करना और नाना प्रकार के मारण-जारण शस्त्रास्त्रों की पैदाइश बढाना। घर के भीतर भी वही प्रवृत्ति है, जो बाहर के देशों के प्रति है। ऐसी हालत में अहिंसा हमारा शस्त्र हो या हिंसा, इसका निर्णय करने से पहले तो हमे यह निर्णय करना होगा कि हमे चाहे व्यक्ति के लिए चाहे समाज के लिए, शुद्ध धर्म का मार्ग ही अनुसरण करना है या पाप का ? अपनी राजनीति हम मानवता की विस्तृत बुनियाद पर रचना चाहते हैं या कुछ लोगो के स्वार्थ की सकुचित भित्ति पर ? फिर चाहे वे कुछ लोग हमारे कुटुम्ब के हों या कबीले के, प्रांत के या देश के।

यूरोप मे कई ऐसे सच्चे त्यागी हैं, जो निजी जीवन मे केवल सत्य का ही व्यवहार करते हैं, पर जहाँ स्वदेश के हानि-लाभ का प्रश्न उठता है, वहां सत्य, ईमानदारी, भलमनसाहत, सारी चीजो को तिलाजलि देने मे नही हिचकते। उनके लिए—यदि वे अहिंसा धारण करना चाहे तो—एक ही मार्ग होगा—पापवृत्ति का त्याग, चाहे वह निजी स्वार्थ के लिए हो या स्वदेश के लिए। उनके लिए स्वदेश की कोई सीमा नही।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

ईश्वर की सारी सृष्टि उनके लिए स्वदेश है। दैवी सपदा की स्थापना और आसुरी का ह्रास, यह उनका ध्येय है।

गाधीजी इसीलिए आत्म-शुद्धि पर बार-बार जोर देते हैं। यह ठीक भी है, क्योंकि अहिंसा-शस्त्र का संचालन बाहर की वस्तुओ पर नहीं, भीतर की वृत्तियो पर अवलम्बित है। फूटी हुई बन्दूक मे गोली भरकर चलाओ, तो क्या कभी निशाने पर जा सकती है ? वैसे ही, जो मनुष्य शुद्ध हृदयवाला नही है, दैवी-सपदा-वाला नही है, वह अहिंसा के शस्त्र को क्या उठायेगा ? असल मे तो शुद्ध मनुष्य स्वयं ही शस्त्र है और स्वय ही उसका चालक है। यदि आत्मशुद्धि नही है, आसुरी संपदावाला है, तो उसकी हालत फूटी बन्दूक जैसी है। उसके लिए अहिंसा के कोई माने नहीं। अहिंसक में ही अहिंसा रह सकती है। अहिंसा धारण करने से पहले मनुष्य को अहिंसक बनना है, और अहिंसक का सकुचित अर्थ भी किया जाय, तो वह है न्यायपूर्वक चलनेवाला नागरिक।

"क्या सारा समाज अहिंसात्मक हो सकता है ? यदि नही तो फिर इसका व्यावहारिक महत्व क्या ?" यह भी प्रश्न है। पर गाधीजी कहा यह आशा करते हैं कि सारा समाज हिंसा का पूर्णतया त्याग कर देगा ? उनकी व्यूह-रचना इस

बुनियाद पर है ही नही कि सारा समाज अहिंसा-धर्म का पालन करने लग जाय। उनकी यह आशा अवश्य है कि समाज का एक बृहत् अग हिंसा की पूजा करना तो कम-से-कम छोड दे, चाहे फिर वह आचरणों मे पूर्ण अहिंसावादी न भी हो सके।

यह आशा नही की जाती कि समाज का हर मनुष्य पूर्ण अहिंसक होगा। पर जहा हिंसक सेना के यत्न पर शांति और साम्राज्य की नीव डाली जाती है, वहा भी यह आशा नही की जाती कि हर मनुष्य युद्ध-कला में निपुण होगा। करोडो की बस्तीवाले मुल्क की रक्षा के लिए कुछ थोडे लाख मनुष्य काफी समझे जाते हैं। सौ मे एक मनुष्य यदि सिपाही हो तो पर्याप्त माना जाता है। फिर उन सिपाहियों मे से भी जो ऊपरी गणनायक होते हैं उन्हीं की निपुणता पर सारा व्यवहार चलता है।

आज इंग्लिस्तान में कितने निपुण गणनायक होगे, जो फौज के संचालन मे अत्यन्त दक्ष माने जाते हैं ? शायद दस-बीस। पर बाकी जो लाखो की फौज है, उससे तो इतनी ही आशा की जाती है कि उसमे अपने अफसरो की आज्ञा पर मरने की शक्ति हो। इसी उदाहरण के आधार पर हम एक अहिंसात्मक फौज की भी कल्पना कर सकते हैं। अहिंसात्मक फौज के जो गणनायक हो, उनमे पूर्ण आत्म-शुद्धि हो, जो अनुयायी हो, वे श्रद्धालु हो, और चाहे उनमे इतना तीक्ष्ण विवेक न हो पर उनमें सत्य-अहिंसा के लिए मरने की शक्ति हो। इतना यदि है, तो काफी है। इस हिसाब से अहिंसात्मक फौज बिल्कुल अव्यावहारिक चीज साबित नही होती।

हा, यदि हमारी महत्वाकांक्षा साम्राज्य फैलाने की है, यदि हमारी आखें दूसरो की सम्पत्ति पर गडी हैं, यदि भूखे पडोसियो के प्रति हमे कोई हमदर्दी नही है, हम अपने ही स्वार्थ मे रत रहकर भोगो के पीछे पडे हुए हैं, या अपने ही भोगों को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो अहिंसा के लिए कोई स्थान नही है।

गन्दे कपडे की गन्दगी की यदि हम रक्षा करना चाहते हैं, तो पानी और साबुन का क्या काम ? वहा तो कीचड़ की जरूरत है। गन्दगी रोग पैदा करती है, मृत्यु को समीप लाती है, इसका हमे ज्ञान है। इसलिए हम गन्दगी की रक्षा करना चाहते हैं तो हम दया के पात्र हैं। अहिंसा का पोषक हमे हमारी भूल से बचाने का प्रयत्न करेगा, पर हमारी गन्दगी का पोषण कभी नही करेगा, हम चाहे उसके स्वदेशवासी क्या, उसकी सन्तान ही क्यो न हो।

अहिंसा को राजनीति मे गांधीजी ने जान-बूझकर प्रविष्ट किया है, क्योंकि राजनीति मे अधर्म विहित है, ऐसा मानकर हम आत्मवंचना करते थे। हम उल-झन मे इसलिए पड गये हैं कि जहा हम गन्दगी का पोषण करना चाहते थे, वहां गांधीजी ने हमे पानी और साबुन दिया है। हम हैरान हैं कि पानी और साबुन से

हमारी गन्दगी की रक्षा कैसे हो सकती है? और यह हैरानी सच्ची है, क्योंकि गन्दगी की रक्षा किसी हालत मे न होगी। बस यही उलझन है, यही पहेली है और इसी के ज्ञान में शंका का समाधान है।

अहिंसा कहो, सत्य कहो, मोक्ष भी कहो, ये सभी वस्तुए ऐसी नही हैं कि सम्पूर्णतया जबतक इन चीजो की प्राप्ति न हो तबतक ये बेकार हैं। दरअसल जीवन मे इन चीजों की सम्पूर्णतया प्राप्ति असम्भव है। इतना ही कहा जा सकता है कि 'अधिकस्याधिकं फलम्' और 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्—' इसलिए ऐसी बात नही है कि बन्दूक की गोली दुश्मन के शरीर पर लगी तो सफल, वरना बेकार। यहा तो हार-जैसी कोई चीज ही नही है। जितनी भी आत्मशुद्धि हुई, उतना ही फल।

गाधीजी सत्य और अहिंसा का उपदेश देकर प्रकारांतर से लोगों को अच्छे नागरिक बनने का उपदेश देते हैं। वह कहते हैं, "अतिशय तृष्णा त्यागो", क्योंकि स्वार्थवश किये गए अतिशय संग्रह की रक्षा अहिंसा से याने धर्म से नही हो सकती। यदि अधर्म से रक्षा करने का कार्यक्रम गढ़ेंगे, तो फिर अधर्म की ही वृद्धि होगी। इसलिए कहते हैं, "अतिशय तृष्णा त्यागो, पडोसी की सेवा करना सीखो, व्यवहार में सचाई सीखो, सहिष्णु बनो, ईश्वर मे विश्वास रखो। किसी पर लोभवश आक्रमण न करो। यदि कोई दुष्टता से आक्रमण करता है, तो बिना मारे मरना सीखो। कायरता और अहिंसा एक वस्तु नही है। शौर्य की आत्यतिकता का ही दूसरा नाम अहिंसा है। क्षमा बलवान ही कर सकता है, इसलिए अत्यन्त शूर बनो। अत्यन्त शूर बनने के लिए जिन गुणों की जरूरत है, उनकी वृद्धि करो और शूर बनकर क्षमा करो। यदि इतना कर पाओ और ईश्वर में श्रद्धा है, तो निर्भय विचरो।"

गाधीजी के बाद क्या अहिंसा पनपेगी? अहिंसा को गाधीजी के जीवन के पश्चात् प्रगति मिलेगी या विगति?

बुद्ध और ईसामसीह के जीवन-काल मे जितना उनके उपदेशों ने जोर नहीं पकड़ा, उससे अधिक जोर उनकी मृत्यु के बाद पकड़ा। यह सही है कि उनके जीवन के बाद उनके उपदेशो का भौतिक शरीर तो पुष्ट होता गया, पर आध्यात्मिक शरीर दुर्बल बनता गया। तो फिर क्या यह कह सकते हैं कि बुद्ध का उपदेश आज नष्ट हो गया है या ईसामसीह का तेज मिट गया है? वर्षा होती है तब सब जगह पानी-ही-पानी नजर आता है। शरद् में वह सब सूख जाता है, तब क्या हम यह कहें कि वर्षा का प्रभाव नष्ट हो गया? बात तो यह है कि शरद् मे धान्य के खलिहानो से परिपूर्ण खेत वर्षा के माहात्म्य का ही विज्ञापन करते हैं। वर्षा का पानी खेतों की मिट्टी मे अवश्य सूख गया; पर वही पानी अन्न के दानो में प्रविष्ट होकर जीवित है। खेतों मे यदि पानी पड़ा रहता, तो गन्दगी फैलती;

कीचड़ बदबू और विष पैदा करता। अन्न में प्रवेश करके उसने अमृत पैदा किया।

महापुरुषों के उपदेश भी इसी तरह पात्रों के हृदय में प्रवेश करके स्थायी अमृत बन जाते हैं। गेहूं के दाने से पूछिए कि वर्षा का पानी कहां है ? वह बतायेगा कि वह पानी उसके शरीर में जिन्दा है। इसी तरह सत्पुरुषों के जीवन का फल भी पात्रों के हृदय में अमर है। गांधीजी का जीवन अहर्निश काम किये जा रहा है—और उनकी मृत्यु के बाद भी वह अमर रहेगा। बातों-ही-बातों में एक रोज उन्होंने कहा, "मेरी मृत्यु के बाद यदि अहिंसा का नाश हो जाय, तो मान लेना चाहिए कि मुझमें अहिंसा थी ही नहीं।" यह सच्ची बात है; क्योंकि धर्म का नाश कैसे हो सकता है ?

पर इस जमाने में तो हिंसा में श्रद्धा रखनेवालों की भी आंखें खुल रही हैं। पहले-पहल अबीसीनिया का पतन हुआ, पीछे धीरे-धीरे एक-के बाद एक मुल्क गिरते गये। पर जर्मनी ने लड़ाई छेड़ी तब से तो बड़ी हिंसा के सामने छोटी हिंसा ऐसी निर्बल साबित हुई, जैसे फौलाद की गोली के सामने शीशे की हांडी। पोलैंड गया, फिनलैंड गया, नार्वे, बेल्जियम, हालैंड, फिर फ्रांस, सब बात-की-बात में मिट गये, और मिटने से पहले श्मशान हो गये। एक डेन्मार्क मिटा तो सही, पर श्मशान नहीं हुआ।

प्रश्न उठता है कि इन देशों के लोग यदि बिना मारे मरने को तैयार होते, तो क्या उनकी स्थिति आज की स्थिति से कहीं अच्छी नहीं होती ? आज तो उनका शरीर और आत्मा दोनों ही मर गये। यदि वे बिना मारे मरते, तो बहुत सम्भव है कि उनका मुल्क उनके हाथ से शायद छिन जाता, पर उनकी आत्मा आज से कहीं अधिक स्वतन्त्र होती और मुल्क भी शायद ही छिनता या न भी छिनता। आज तो छिन ही गया। ये लोग अहिंसा से लड़ते, तो इनकी इस अनुपम अहिंसा का जर्मनी पर सौगुना अच्छा प्रभाव पड़ता।

'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्' यह वाक्य निरर्थक नहीं है। यह यूरोप का 'यादव-संग्राम' आखिर है क्या ? बढ़े हुए लोभ का ज्वालामुखी है, जो दहकती हुई आग से यूरोप के सारे मुल्कों को भस्म कर देना चाहता है। ऐसी अग्निवर्षा में अहिंसा अवश्य ही वर्षा का काम देती, पर हर हालत में यह तो साबित हो ही गया कि हिंसा भी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकी। बेल्जियम, फ्रांस और इंग्लैंड की सम्मिलित शक्ति बेल्जियम को नहीं बचा सकी। इसके बाद यदि कोई कहे कि "भाई, हिंसा की आजमाइश हो गई, अब अहिंसा, जो अत्यन्त शौर्य का दूसरा नाम है, उसको जाग्रत करो और उससे युद्ध करना सीखो," तो उसे कौन पागल बता सकता है, क्योंकि अहिंसा का उपदेशक प्रकारान्तर में इतना ही कहता है, "पाप छोड़ो, जो चीज जिसकी है वह उसे दे दो।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

धर्म से चलो; क्योंकि पाप खा जायगा। धर्म ही रक्षा कर सकता है। न डरो न डराओ।"

धर्म-धारण के माने ही हैं उस स्वार्थ का संयम, जो आज के भीषण संग्राम का स्रोत है। धर्म धारण करने के बाद संग्राम कहां, हिंसा कहां ?

लोग कहते हैं, "पर यह क्या कोई मान सकता है ?" न माने, पर क्या इसलिए यह कहना चाहिए कि पाप करो, चोरी करो, झूठ बोलो, व्यभिचार करो ? ऐसे तार्किक तो गीताकार को भी कह सकते हैं कि क्या यह कोई मान सकता है ?

शौर्य की परमावधि का ही दूसरा नाम अहिंसा है। कायरता का नाम अहिंसा हर्गिज नहीं है। सम्पूर्ण निर्भयता में ही अहिंसा संभव हो सकती है, और जो अत्यन्त शूर है, वही अत्यन्त निर्भय हो सकता है। असावधानी और अभय, ये अलग-अलग चीजें हैं। जिसे प्रमाद के कारण या नशे में भय का ज्ञान ही नहीं, वह निर्भय क्या होगा ? मगर जिसके सामने भय उपस्थित है, पर निर्भय है, वही परम शूर है, वही अहिंसावादी है।

एक हट्टे-कट्टे पिता को एक नादान बालक क्रोध में आकर चपत जमा जाता है, तो पिता को न क्रोध आता है, न बदले में चपत जमाने को उसकी हिंसा-वृत्ति जाग्रत होती है। पर वही चपत यदि एक हट्टा-कट्टा मनुष्य लगाता है, तो क्रोध भी आता है और हिंसा-वृत्ति भी जाग्रत होती है। यह इसलिए होता है कि बच्चे की चपत में तो पिता निर्भय था, पर समवयस्क की चपत ने भय का संचार किया। इस तरह हिंसा और भय का जोड़ा है। भय के आविर्भाव में हिंसा और भय के अभाव में अहिंसा है। हिटलर और चर्चिल दोनों को एक-दूसरे का डर है। शौर्य का इस दृष्टि से दोनों ओर अभाव है। दोनों ओर इसीलिए हिंसा का साम्राज्य है। शौर्य की आत्यन्तिकता में अहिंसा है, वैसे ही भय की आत्यन्तिकता में कायरता है।

एक और बात है। किसी प्राणी का हनन-मात्र ही हिंसा नहीं है। एक ऐसे पागल की कल्पना हम कर सकते हैं, जिसके हाथ एक मशीनगन पड़ गई हो और वह पागलपन में यदि जिन्दा रहने दिया जाय तो हजारों आदमियों का खून कर डाले। ऐसे मनुष्य को मारना हिंसा नहीं कही जायगी। द्वेषरहित होकर समबुद्धि से लोक-कल्याण के लिए किया गया हनन भी हिंसा नहीं हो सकेगी। पोलैंड के स्वदेश-रक्षा के युद्ध के सम्बन्ध में लिखते समय गांधीजी ने कहा, "यदि पोलैंड में स्वार्थ-त्याग और शौर्य की आत्यन्तिकता है, तो संसार यह भूल जायगा कि पोलैंड ने हिंसा द्वारा आत्म-रक्षा की। पोलैंड की हिंसा करीब-करीब अहिंसा में ही शुमार होगी।"

पोलैंड की हिंसा करीब-करीब अहिंसा में शुमार क्यों होगी, इसका विवेचन भी गांधीजी ने पिछले दिनों कुछ जिज्ञासुओं के सामने एक मौलिक ढंग से किया।

मेरा खयाल है कि वह विवेचन भी सम्पूर्ण नहीं था, और हो भी नहीं सकता था। एक ही तरह का कर्म, एक समय धर्म और दूसरे समय अधर्म माना जा सकता है। एक कर्म धर्म है, इसका निर्णय तो स्वयं ही करना है; पर पोलैंड की हिंसा भी करीब-करीब अहिंसा में ही शुमार हो सकती है, यह कथन उलझन पैदा कर सकता है, पर इसमें असंगति नहीं है।

इस सारे विश्लेषण से अहिंसा का शुद्ध स्वरूप और इसकी व्यावहारिकता समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

पांच

गांधीजी में अहिंसा-वृत्ति कब जाग्रत हुई, राजनीति में, समाजनीति में और आपस के व्यवहार में इसका प्रयोग कैसे शुरू हुआ, इसके गुणों में श्रद्धा कब हुई, यह बताना कठिन प्रयास है। हम देखते हैं कि कितनी ही चीजें जो हमें मालूम होती हैं कि हमारे भीतर अचानक आ गईं, वे दरअसल धीरे-धीरे पनपी हैं। गुणों के बीज हमारे भीतर रहते हैं, जो धीरे-धीरे अंकुरित होते हैं, फिर पनपते हैं। इसी तरह दुर्गुणों की भी बात है।

हम देखते हैं कि बचपन से ही गांधीजी के चित्त पर सत्य और अहिंसा के चिह्नों की एक अमिट रूप-रेखा खिंच चुकी थी। अत्यन्त बचपन में गांधीजी एक मित्र की सोहबत के कारण अधर्म को धर्म मानकर, यह समझकर कि मांसाहार समाज के लिए लाभप्रद है, स्वयं भी मांस खाने लगे। उन्हें यह कार्यक्रम चुभने लगा, क्योंकि यह काम वह लुक-छिपकर करते थे। उसमें असत्य था और मांस खाना उन्हें रुचिकर भी नहीं था। पर एक बुराई से दूसरी बुराई आती है। मांस खाने के बाद तम्बाकू पर मन गया। उसके लिए पैसे चाहिए, वे घर में चुराये। अब तो यह चीज असह्य हो गई और अन्त में उन्होंने यह तय किया कि सारी चीज पिता के सामने स्वीकार करके उनसे क्षमा-याचना करनी चाहिए। न जाने पिता को कितनी चोट लगे, गांधीजी को यह भय था। पर उन्होंने सारा किस्सा पत्र में लिखकर उसे पिता के हाथ में रखा। पिता ने पढ़ा और फूट-फूटकर रोने लगे। गांधीजी को भी रुलाई आ गई। कौन बता सकता है कि पिता के ये आंसू, चित्त को चोट पहुंची उस दुःख का नतीजा थे, या पुत्र ने सत्य का आश्रय लिया, उसके आनन्दाश्रु थे? "मेरे लिए तो यह अहिंसा का पाठ था। उस समय मुझे अहिंसा का कोई ज्ञान नहीं था, पर आज मैं जानता हूं कि यह मेरी एक शुद्ध अहिंसा थी।"

पिता ने क्षमा कर दिया। गांधीजी ने इन बुरी चीजों को तलाक दिया। पिता-पुत्र दोनों का बोझ हलका हो गया।

इस घटना से गांधीजी के विचारो मे क्या-क्या उथल-पुथल हुई, कोई नही बता सकता। पर अहिंसा का बीज, मालूम होता है, यही से अकुरित हुआ। मगर गांधीजी उस समय तो निरे बच्चे थे। जब इग्लैंड जाने लगे, तब तो सयाने हो आये थे। पिता का देहान्त हो चुका था। माता के सामने यूरोप जाने मे पहले प्रतिज्ञा करली थी कि परदेश मे कुछ भी कष्ट हो, मांस-मदिरा का सेवन न करूगा। पर इतने से जात-बिरादरी वालो को कहा सन्तोष हो सकता था? उन लोगों ने इन्हे जाने से रोका। "वहा धर्म-भ्रष्ट होने का भय है।" "पर मैंने तो प्रतिज्ञा करली है कि मैं अभोज्य भोजन नही करूंगा।"—गाधीजी ने कहा। पर जाति वालो को कहा सन्तोष होता था? गाधीजी को जात-बाहर कर दिया गया।

गाधीजी इंग्लैंड गये। अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। वापस लौटे, तब जाति-बहिष्कार सामने उपस्थित था। "पर मैंने जात मे वापस दाखिल होने की न तो आकाक्षा ही की, न पंचों के प्रति मुझे द्वेष ही था। पच मुझमे नाखुश थे, पर मैंने उनका चित्त कभी नही दुखाया। इतना ही नही, जाति वालों के बहिष्कार के सारे नियमो का मैंने सख्ती के साथ पालन किया, अर्थात् मैंने स्वयं ही जात-बिरादरी वालों के यहा खाना-पीना बन्द कर दिया। मेरी ससुराल वाले और बहनोई मुझे खिलाना-पिलाना चाहते भी थे, पर लुक-छिपकर, जो मुझे नापसन्द था। इसलिए मैंने इन निकटस्थों के यहा पानी पीना तक बन्द कर दिया। मेरे इस व्यवहार का नतीजा यह हुआ कि हालाकि जाति वालों ने मुझे बहिष्कृत कर दिया, पर उनका मेरे प्रति प्रेम बढ़ गया। उन्होने मेरे अन्य कार्यों मे मुझे काफी सहायता पहुंचाई। मेरा यह विश्वास है कि यह शुभ फल मेरी अहिंसा का परिणाम था।"

अफ्रीका मे गांधीजी ने करीब इक्कीस साल काटे। गये थे एक साधारण काम के लिए वकील की हैसियत से, पर वहा कालो के प्रति गोरों की घृणा, उनका जोर-जुल्म इतना ज्यादा था कि गांधीजी महज सेवा के लिए वहां कुछ दिन रुक गये। फिर तो स्वदेशवासियों ने उन्हें वहां से हटने ही नही दिया और एक-एक करके उनके इक्कीस साल वहां बीते। इस अरसे मे उन्हें काफी लड़ना पड़ा, पर अहिंसा-शस्त्र में जो श्रद्धा वहा जमी, वह अमिट बन गई। अहिंसा के बड़े पैमाने पर प्रयोग किये, उसमें सफलता मिली और जो विपक्षी थे उनका हृदय-परिवर्तन हुआ। जनरल स्मट्स, जिसके साथ उनकी लड़ाई हुई, अन्त मे उनका मित्र बन गया। द्वितीय गोलमेज-परिषद् के समय जब गाधीजी लन्दन गये, तब स्मट्स वहीं था। उसने कहलाया कि यदि मेरा उपयोग हो सके, तो आप मुझसे निस्सकोच काम लें। गाधीजी ने उसका साधारण उपयोग किया भी।

पर अहिंसात्मक उपायो द्वारा शत्रु मित्र के रूप मे कैसे परिणत हो सकता है, इसका ज्वलंत उदाहरण गांधीजी की इक्कीस साल की अफ्रीका की तपश्चर्या ने पैदा कर दिया। गाधीजी ने अफ्रीका मे सूक्ष्मतया अहिंसा का पालन किया। मार खाई, गालियां खाईं, जेल मे सड़े, सब-कुछ यतनाएं सही, पर विपक्षी पर कभी क्रोध नही किया, धीरज नही खोया, हिम्मत नही छोड़ी, लड़ते गये, पर क्रोध त्याग कर। अन्त मे सफलता मिली; क्योंकि 'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग.।'

अफ्रीका मे काले-गोरे का भेद इतनी गहराई तक चला गया था कि कालों को, जिनमे हिन्दुस्तानियों का भी समावेश था, पटरी पर चलने की भी मुमानियत थी। रात को अमुक समय के बाद घर से निकलने का भी निषेध था। गाधीजी को टहलने-फिरने की काफी आदत थी, समय-बेसमय घूमना भी पड़ता था। एक रोज प्रेसीडेंट क्रूगर के घर के सामने से गुजर रहे थे तो सन्तरी ने अचानक उन्हें धक्का मारकर पटरी से नीचे गिरा दिया और ऊपर से एक लात लगाई। गाधीजी चुपचाप मार खाकर खड़े हो गये। इन्हें तनिक भी क्रोध नही आया। इनके एक गोरे मित्र ने, जो पास से गुजर रहा था, यह घटना देखी। उसे क्रोध आगया। उसने कहा, "गाधी, मैंने सारी घटना आखों देखी है। तुम अदालत मे इस सन्तरी पर मुकदमा चलाओ, मैं तुम्हारा गवाह बनकर तुम्हारी ताईद करूंगा। मुझे दु.ख है कि तुम्हारे साथ यह दुर्व्यवहार हुआ।" गांधीजी ने कहा, "आप दुखी न हो। मेरा नियम है कि व्यक्तिगत अन्याय के प्रतिकार के लिए मै अदालत की शरण नही लेता। यह बेचारा मूर्ख क्या करे? यहा की आबहवा ही ऐसी है। मैं इस-पर मुकदमा नही चलाना चाहता।" इस पर उस सन्तरी ने गांधीजी से क्षमा-याचना की।

पर ऐसी तो अनेक घटनाएं हुईं। बीच मे कुछ दिनो के लिए स्वदेश आकर गाधीजी अफ्रीका लौटे, तब वहां के गोरे अखबार वालो ने इनके सम्बन्ध मे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर झूठी-झूठी बातें अखबारों में लिखी और गोरी जनता को इनके खिलाफ उभारा। जहाज पर से गांधीजी उतरने वाले थे, उस समय गोरी जनता ने इनके खिलाफ काफी प्रदर्शन किया। पुलिस ने और इनके कई मित्रो ने इन्हें कहलाया कि उतरने मे खतरा है, रात को उतरना अच्छा होगा। जहाज के कप्तान ने कहा, "यदि गोरो ने आपको पीटा, तो आप अहिंसा से उनका प्रतिरोध कैसे करेंगे?" गाधीजी ने उत्तर दिया, "ईश्वर मुझे ऐसी बुद्धि और शक्ति देगा कि उन्हें मै क्षमा कर दू। मुझे उनपर क्रोध नही आ सकता, क्योंकि वे अज्ञान के शिकार हैं। उन्हें सचमुच मैं बुरा लगता हू, तब वे क्या करें? और मैं उन पर क्रोध कैसे करू?"

गांधीजी आखिर जहाज से उतरे। इनका एक गोरा मित्र इनकी रक्षा के लिए

इनके साथ हो लिया। इन्होंने पैदल घर पहुंचने का निश्चय किया, जिससे किसी तरह की कायरता साबित न हो। बस, गोरी जनता का इन्हें देखना था कि उसके क्रोध का पारा ऊंचा उठने लगा। भीड़ बढ़ने लगी। आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। भीड़ ने इनके गोरे मित्र को पकड़कर इनसे अलहदा करके एक किनारे किया और इनपर होने लगी बौछार—पत्थर, ईंट के टुकड़ों और सड़े अंडों की। इनकी सिर की पगड़ी नोचकर फेंक दी गई। ऊपर से लात और मुक्कों के प्रहार होने लगे। गांधीजी बेहोश हो गये। फिर भी लातों का प्रहार जारी रहा। पर ईश्वर को इन्हें जिन्दा रखना था। पुलिस सुपरिंटेंडेंट की स्त्री ने, जो पास से गुजर रही थी, इस घटना को देखा। वह भीड़ में कूद पड़ी और अपना छाता तानकर इनकी रक्षा के लिए खड़ी हो गई। भीड़ सहम गई। इतने में तो पुलिस सुपरिंटेंडेंट खुद पहुंच गया और इन्हें बचाकर ले गया। गांधीजी जिन्दा बच गये।

उमरा हुआ जोश जब शान्त हुआ तब, सम्भव है, लोगों को पश्चात्ताप भी हुआ होगा। ब्रिटिश सरकार ने अफ्रीका की सरकार से कहा कि गुण्डे गोरों को पकड़कर सजा देनी चाहिए। पर गांधीजी ने कहा, "मुझे किसी से बैर नहीं है। जब सत्य का उदय होगा तब मुझे मारनेवाले स्वयं पश्चात्ताप करेंगे। मुझे किसी को सजा नहीं दिलवानी है।" आज तो यह कल्पना भी हमारे लिए असह्य है कि गांधीजी को कोई लात-मुक्का मारे या उनको गालियां दे।

उस समय की बात है जब गांधीजी ने दिल्ली में श्री लक्ष्मीनारायण के मन्दिर का उद्‌घाटन किया था। कोई एक लाख मनुष्यों की भीड़ थी। तिल रखने को भी जगह नहीं थी। बड़ी मुश्किल से गांधीजी को मन्दिर के भीतर उद्‌घाटन-क्रिया करने के लिए पहुंचाया गया। मन्दिर के बाहर नरमुण्ड-ही-नरमुण्ड दिखाई देते थे। वृक्षों की हरी डालियां भी मनुष्यों से लदी पड़ी थीं। भीड़ गांधीजी के दर्शन के लिए आतुर थी। गांधीजी ने मन्दिर के छज्जे पर खड़े होकर लोगों को दर्शन दिये। एक पल पहले ही भीड़ बुरी तरह कोलाहल कर रही थी। पर जहां गांधीजी छज्जे पर आये—हाथ जोड़े हुए, बिल्कुल मौन—वहां भीड़ का सारा कोलाहल बन्द हो गया और सहस्रों कण्ठों से केवल एक ही आवाज, एक ही स्वर, गगन को भेदता हुआ चला गया—"महात्मा गांधी की जय!"

यह दृश्य विचारपूर्वक देखनेवाले को गद्‌गद् कर देता था। मेरी घिग्घी बंध गई। मैं विचार के प्रवाह में बहा जा रहा था। सोचता था कि यह कैसा मनुष्य है! छोटा-सा शरीर, अर्द्धनग्न, जिसने इतने लोगों को मोहित कर दिया, जिसने इतने लोगों को पागल कर दिया! उस भीड़ में शायद दस मनुष्य भी ऐसे न होंगे, जिन्होंने गांधीजी से कभी बात भी की हो, पर तो भी उनके दर्शन-मात्र से सब-के-सब जैसे पागल हो गये। वृक्षों की डालियों पर हजारों मनुष्य लदे थे, जिन्हें

अपनी सुरक्षितता का भी भान नही था। वे भी केवल 'महात्मा गाधी की जय', बस इसी चिल्लाहट मे मग्न थे।

एक वृक्ष की डाल टूटी। उस पर पचासो मनुष्य लदे थे। डाल कड़कडाती हुई नीचे की ओर गिरने लगी, पर ऊपर चढे लोग तो 'महात्मा गाधी की जय' की बुलन्द आवाज में मस्त थे। किसी को अपनी जोखिम का खयाल न था। डाल नीचे जा गिरी। किसी को चोट न आई। एक यह दृश्य था, जिसमें 'गाधीजी की जय' चिल्लानेवाले गाधीजी के पीछे पागल थे। उनके एक-एक रोम के लिए वह भीड़ अपना प्राण न्योछावर करने को तैयार थी, और एक वह दृश्य था, जिसमें गोरी भीड़ 'गाधी को मार डालो', इस नारे के पीछे पागल थी।

गाधीजी द्वितीय गोलमेज-परिषद् के लिए जब गये, तो वहा करीब साढे तीन महीने रहे। जहा भी गये, वहा भीड इन पर मोहित थी, प्रेम से मुग्ध थी। आज यदि यह अफ्रीका भी जायें तो इनके प्रेम के पीछे वहा की गोरी जनता भी पागल हो जाय। यह सब पागलपन इसलिए है कि गाधीजी ने मार खाकर, लातें खाकर भी क्षमाधर्म को नही छोडा। अफ्रीका की गोरी भीड के पागलपन का वह दृश्य हमारी आखो के सामने आने पर हमे चाहे क्रोध आ जाय, पर वही दृश्य था, वही घटना थी, और ऐसी अनेक घटनाए थी, जिन्होंने आज के गाधी को जन्म दिया। ईसामसीह सूली पर न चढता, तो उसकी महानता प्रकट न होती। गाधीजी ने यदि शान्तिपूर्वक लातें न खाई होती, तो उनकी क्षमा कसौटी पर सफल न होती।

गाधीजी महात्मा हैं, क्योंकि उन्होंने मारने वालो के प्रति भी प्रेम किया। "मेरी इस वृत्ति ने जिन-जिनके समागम मे मैं आया, उनसे मेरी मैत्री करा दी। मुझे अक्सर सरकारी महकमो से झगडना पडता था, उनके प्रति सख्त भाषा का प्रयोग भी करना पडता था, पर फिर भी उन महकमो के अफसर मुझसे सदा प्रसन्न रहते थे। मुझे उस समय यह पता भी न था कि मेरी यह वृत्ति मेरा स्वभाव ही बन गई है। मैंने पीछे यह जाना कि सत्याग्रह का यह अग है और अहिंसा का यह धर्म है कि हम यह जानें कि मनुष्य और उसके कर्म, ये दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं। जहा बुरे काम की हमे निन्दा और अच्छे की प्रशसा करनी चाहिए, वहा बुरे मनुष्य के साथ हमे दया का और भले के साथ आदर का वर्ताव करना चाहिए। 'पाप से घृणा करो, पापी से नही' यह मन्त्र बहुतो की समझ में तो आ जाता है, पर व्यवहार मे बहुत कम लोग इसके अभ्यस्त हैं। यही कारण है कि संसार मे वैर का विष-वृक्ष इतनी सफलता से पनपता है।

"अहिंसा सत्य की बुनियाद है। मेरा यह विश्वास दिन-पर-दिन बढता जाता है कि यदि वह अहिंसा की भित्ति पर नहीं तो, सत्य का पालन असम्भव है। दुष्ट प्रणाली पर हमें आक्रमण करना चाहिए, उससे टक्कर लेनी चाहिए। पर उस

प्रणाली के प्रणेता से वैर करना, यह आत्म-वैर सरीखा है। हम सब-के-सब एक ही प्रभु की सन्तान हैं। हमारे सबके भीतर एक ही ईश्वर व्याप्त है, धर्मात्मा के भीतर और पापी के भीतर भी। इसलिए एक भी जीव को कष्ट पहुंचाना मानो ईश्वर का अपमान और सारी सृष्टि को कष्ट पहुंचाने-जैसी बात है।"

ये शब्द उस व्यक्ति के हैं, जिसने श्रद्धा के साथ अहिंसा का सेवन किया है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

गीता मे काम एवं क्रोध को दुश्मन बताया है और कहा है कि इन्हे वैरी समझो। पर यह बुराई के लिए घृणा है, न कि बुरे के लिए। बुरे के लिए तो दूसरा आदेश है :

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां, सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्।

(पा० यो० द०)

बुरे अर्थात् पापी के लिए करुणा और उपेक्षा का आदेश है।

छह

गाधीजी ने अफ्रीका मे जो आश्रम बसाया था, उसका नाम रखा था 'टालस्टॉय फार्म'। फिर स्वदेश लौटने पर साबरमती में सत्याग्रह-आश्रम बसाया और अब सेवाग्राम मे आश्रम बनाकर रहते हैं। कुछ संयोग की बात है कि इन सभी आश्रमों में सांप-बिच्छुओं का बड़ा उपद्रव रहा है। गाधीजी स्वयं सर्प को भी नहीं मारते। उन्होंने सर्प मारने का निषेध नही कर रखा है; पर चूकि गांधीजी सर्प की हत्या नही करते, इसलिए और आश्रमवासी भी इस काम से परहेज ही करते हैं।

सेवाग्राम में एक बार रात को एक बहन का पांव बिच्छू पर पड़ा कि बिच्छू ने बडे जोर से डंक मारा। रात-भर वह बहन दर्द के मारे परेशान रही। न अफ्रीका मे, न हिन्दुस्तान में—आजतक आश्रम मे सर्प ने किसीको नही काटा है। पर सर्प आएदिन पांव के सामने आ जाते हैं और आश्रमवासी उन्हें पकड़कर दूर फेंक आते हैं। बिच्छू तो कई मर्तबा आश्रमवासियों को डंक मार चुके। एक दिन महादेवभाई ने कहा, "बापू, आप सर्प नही मारने देते, इसलिए आपको कभी बहुत पछताना पड़ेगा। आएदिन साप आश्रमवासियों के पांवों में लोटते हैं। अबतक किसीको नही काटा, पर यदि दुर्घटना हुई और कोई मर गया तो आप कभी अपने-आपको

सन्तोष न दे सकेंगे।" "पर, महादेव," गांधीजी ने कहा, "मैंने कब किसीको मारने से मना किया है ? यह सही है कि मैं नही मारता; क्योंकि मुझे आत्मरक्षा के लिए भी साप को मारना रुचिकर नही है पर अन्य किसीको मैं जोखिम मे नही डालना चाहता। इसलिए लोगो को मारना हो, तो अवश्य मारें।" पर कौन मारे? गाधी-जी नही मारते, तो फिर दूसरा कौन मारे ?

'हमारे किसी आश्रम मे अबतक ईश्वर-कृपा से किसीको साप ने नही काटा। सभी जगह सापों की भरमार रही है, तथापि एक भी दुर्घटना नही हुई। मैं इसमे केवल ईश्वर का ही हाथ देखता हू। कोई यह तर्क न करे कि क्या ईश्वर को आपके आश्रमवासियो से कोई खास मुहब्बत है, जो आपके नीरस कामों मे इतनी माथा-पच्ची करता होगा ? तर्क करनेवाले ऐसे तर्क किया करें; पर मेरे पास इकरंगे इस अनुभव की व्याख्या करने के लिए सिवाय इसके कि यह ईश्वर का हाथ है, और कोई शब्द नही है। मनुष्य की भाषा ईश्वर की लीला को क्या समझा सकती है ? ईश्वर की माया तो अवाच्य और अगम्य है। पर यदि मनुष्य साहस करके समझाये, तो भी आखिर उसे अपनी अस्पष्ट भाषा की ही तो शरण लेनी पड़ती है। इसलिए कोई चाहे मुझे यह कहे कि आपके आश्रमो मे यदि साप से डसा जाकर अबतक कोई न मरा तो यह महज अकस्मात् था, इसे ईश्वर की कृपा कहना एक वहम है, पर मैं तो इस वहम से ही चिपटा रहूगा।"

इस तरह गाधीजी की अहिंसा अग्नि-परीक्षा मे सफल होकर सान पर चढी है।

सात

"अहिंसा सत्य की बुनियाद है।" प्राय· गाधीजी जब-जब अहिंसा की बात करते हैं तब-तब ऐसा कहते हैं और सत्य पर जोर देते हैं। हमारे यहा आपद्धर्म के लिए कई अपवाद शास्त्रों मे विहित माने गये हैं। प्राचीनकाल मे जब बारह साल का घोर दुर्भिक्ष पडा, तब विश्वामित्र भूख से व्याकुल होकर जहा-तहा खाद्य-पदार्थ ढूढने निकले। जब कहीं भी उन्हें कुछ खाने को नही मिला, तो एक चाण्डाल-बस्ती मे पहुचे और रात को एक चाण्डाल के यहा से कुत्ते का मास चुराने का निश्चय किया। पर चोरी करते समय उस चाण्डाल की आख खुल गई और उसने ऋषि से कहा, "आप यह अधर्म क्यो कर रहे हैं ?" विश्वामित्र की तो दलील यही थी कि आपद्‌काल मे ब्राह्मण के लिए चोरी भी विहित है।

आपत्सु विहितं स्तैन्यं विशिष्टं च महीयसः।
विप्रेण प्राणरक्षार्थं कर्तव्यमिति निश्चयः॥

चाण्डाल ने उन्हें काफी धर्मोपदेश दिया। उन्हें समझाया कि आप पाप कर रहे हैं। अन्त में विश्वामित्र उपदेश सुनते-सुनते ऊब गये। कहने लगे कि "मेढकों की टर्राहट से गाय सरोवर में जल पीने से विरत नहीं होती। तू धर्मोपदेश देने का अधिकारी नहीं है, इसलिए क्यों वृथा बकवाद करता है?

पिबन्त्येवोदकं गावो मण्डूकेषु रुवत्स्वपि।
न तेऽधिकारो धर्मेऽस्ति मा भूरात्मप्रशंसकः॥

"और क्या मैं धर्म नहीं जानता? यदि जिन्दा रहा तो फिर धर्म-साधन हो ही जायगा, पर शरीर न रहा तो फिर धर्म कहां? इसलिए इस समय प्राण बचाना ही धर्म है।"

गांधीजी ने इस तरह का तर्क कभी नहीं किया। न उन्हें तर्क पसंद है।

कुछ काम उन्होंने आत्मा के विरुद्ध किये हैं। जैसे, उन्होंने दूध न पीने का व्रत लिया था। व्रत की बुनियाद में कई तरह के विचार थे। दूध ब्रह्मचारी के लिए उपयुक्त भोजन नहीं है, यह भी उनका मानना था, यद्यपि हमारे प्राचीन शास्त्रों से यह बात सिद्ध नहीं होती। पर जब व्रत लिया, तब गायों पर फूंके की प्रथा का अत्याचार, जो कलकत्ते में ग्वालों द्वारा प्रचलित था, उनकी आंख के सामने था। व्रत ले लिया। कई सालों तक चला। अन्त में अचानक रोग ने आ घेरा। सबने समझाया कि दूध लेना चाहिए। गांधीजी इन्कार करते गये। गोखले ने समझाया, अन्य डाक्टरों ने कहा, पर किसी की न चली। फिर दूसरी बीमारी का आक्रमण हुआ। वह ज्यादा खतरनाक थी। पर दूध के बारे में वही पुराना हठ जारी रहा। एक रोज बा ने कहा, "आपने प्रतिज्ञा ली तब आपके सामने गाय और भैंस के दूध का ही प्रश्न था, बकरी का तो नहीं था। आप बकरी का दूध क्यों न लें?" गांधीजी ने बा की बात मानकर बकरी का दूध लिया, और तब से बकरी का दूध लेते हैं। पर गांधीजी को यह शंका है कि उन्होंने बकरी का दूध लेकर भी व्रत-भंग का दोष किया या नहीं।

असल में तो गांधीजी की आदत है कि जो प्रतिज्ञा या व्रत लिया, उसका अधिक-से-अधिक व्यापक अर्थ करना और उसपर अटल रहना। यदि किया हुआ काम अनीतियुक्त मालूम हुआ, तो चट उस मार्ग से बिना किसीके आग्रह किये हट जाते हैं। पर जबतक उन्हें अपना मार्ग अनीतियुक्त नहीं लगता, तबतक छोटी-छोटी चीजों में भी वह परिवर्तन नहीं करते। घूमने जाते हैं तो उसी रास्ते से। सोने का स्थान वही, खाने का स्थान वही, बर्तन वही, चीजें वही। मैंने देखा है कि दिल्ली आते हैं तो आती बार निजामुद्दीन स्टेशन पर उतरते हैं और जाती बार बड़े स्टेशन पर गाड़ी में सवार होते हैं। मेरे यहां ठहरते हैं तो उसी कमरे में, जिसमें

बार-बार ठहरते आये हैं। मोटर बदलना भी नापसन्द है। किसी भी आदत को *ख्वाहमख्वाह नहीं बदलते। छोटी चीजों में भी एक तरह की पकड़ है।*

"सत्य मेरा सर्वोत्तम धर्म है, जिसमें सारे धर्म समा जाते हैं। सत्य के माने केवल वाणी का सत्य नहीं है, बल्कि विचार में भी सत्य। मिश्रित सत्य नहीं, पर वह नित्य, शुद्ध, सनातन और अपरिवर्तनशील सत्य, जो ईश्वर है। ईश्वर की तरह-तरह की व्याख्याएं हैं, क्योंकि उसके अनेक स्वरूप हैं। इन व्याख्याओं को सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो जाता हूं और स्तब्ध भी हो जाता हूं। पर मैं ईश्वर को सत्यावतार के रूप में पूजता हूं। मैंने उसे प्राप्त नहीं किया है। पर उसकी मैं *खोज में हूं। इस खोज में मैं फना होने को भी तैयार हूं।* पर जबतक मैं शुद्ध सत्य नहीं पा लेता तबतक उस सत्य का, जिसको मैंने सत्य माना है, अनुसरण करता हूं। इस सत्य की गली सकरी है और उस्तरे की धार की तरह पैनी है, पर मेरे लिए यह सुगम है। *चूंकि मैंने सत्य-मार्ग को नहीं छोड़ा, इसलिए मेरी हिमालय जितनी* बड़ी भूलें भी मुझे परेशानी में नहीं डालती।"

मालूम होता है कि सत्य, अहिंसा और ईश्वर में श्रद्धा, इन तीनों चीजों के अंकुर उनके हृदय में बचपन से ही थे। कौन बता सकता है कि कौन-सी चीज उनको पहले मिली? पूर्वजन्म के बीज तो साथ ही आये थे, पर मालूम होता है कि इस जन्म में सत्य सबसे पहले अंकुरित हुआ। "बचपन में ही," वह कहते हैं, "एक चीज ने मेरे दिल में गहरी जड़ कर ली है, वह यह कि धर्म सब चीजों का मूल है। इसलिए सत्य मेरा परम लक्ष्य बन गया। इसका आकार ज्यों-ज्यों मेरे दिल में घर करता गया, त्यों-त्यों इसकी व्याख्या भी विस्तृत होती गई।"

गांधीजी बचपन में बड़ी लज्जाशील प्रकृति के थे। दस-बीस दोस्तों के बीच भी उनका मुंह नहीं खुलता था, और सार्वजनिक सभा में तो उनकी जबान एक तरह से बंद हो जाती थी। लन्दन में जब वह विद्याध्ययन में लगे थे तब छोटी-छोटी सभाओं में खड़े होकर बोलने का मौका आया तो जबान ने उनका साथ न दिया। *लोगों ने इनकी शर्मीली प्रकृति का मजाक उड़ाया। इन्हें भी इसमें अपमान लगा;* पर यह चीज जवानी तक बनी रही। बैरिस्टर बनकर भारत लौटने पर भी यह कमी बनी रही। बम्बई की अदालत में एक मुकदमे की पैरवी करने के लिए खड़े हुए तो घिग्घी बंध गई। *मुवक्किल को कागज वापस लौटाकर इन्होंने अपने घर* का रास्ता नापा।

यह शर्माऊ प्रकृति क्यों थी? आज गांधीजी की जबान धाराप्रवाह चलती है, *पर उस धाराप्रवाह में एक शब्द भी निरर्थक नहीं आता।* क्या वह शर्माऊ प्रकृति सत्य का दूसरा नाम था? क्या उनकी हिचकिचाहट इस बात की द्योतक थी कि वह बोलों को तोल-तोलकर निकालना चाहते थे, और क्या इस शर्माऊ *प्रकृति ने सत्य की जड़ को नहीं पोसा?* "सिवा इसके कि मेरे शर्माऊपन के कारण

मैं बाज-बाज लोगो के मजाक का शिकार बन जाता था, मेरी इस प्रकृति से मुझे कभी हानि नही हुई, उलटा मेरा तो खयाल है कि इससे मुझे लाभ ही हुआ। सबसे बडा लाभ तो मुझे यह हुआ कि मैं शब्दों की किफायत करना सीख गया। स्वभावत मेरे विचारों पर एक तरह का अकुश आ गया और अब मैं यह कह सकता हूं कि शायद ही कोई विचारहीन शब्द मेरी जबान या कलम से निकलते हैं। मुझे ऐसा स्मरण नही कि जो-कुछ मैंने कभी कहा या लिखा, उसके लिए मुझे पश्चात्ताप करना पड़ा हो। अनुभव ने मुझे यह बताया कि मौन सत्य के पुजारी के लिए आत्मनिग्रह का एक जबरदस्त साधन है। अतिशयोक्ति या सत्य को दबाने या विकृत करने की प्रवृत्ति मनुष्य मे अक्सर पाई जाती है। मौन एक ऐसा शस्त्र है, जो इन कमजोर आदतों का छेदन करता है। जो कम बोलता है, वह हर शब्द को तोल-तोलकर कहता है और इसलिए विचारहीन वाणी का कभी प्रयोग नही करता। मेरी इस लज्जाशील प्रकृति ने मेरी सत्य की खोज में मुझे अत्यन्त सहायता दी है।"

भगवान् जिसके सिर पर हाथ रखते हैं, उसके दूषण भी उसके लिए भूषण बन जाते हैं। शिव ने विषपान करके ससार का भला किया। इसके कारण उनका कण्ठ नीला पड़ गया, पर उसने शिव के सौन्दर्य को और भी बढा दिया और शकर नीलकंठ कहलाये। गांधीजी की लज्जाशील प्रकृति ने, मालूम होता है, उनके लिए कई अच्छी चीजें पैदा कर दी—शब्दो की किफायतशारी और तोल-तोलकर शब्दों का प्रयोग।

सत्य मे गाधीजी की इतनी श्रद्धा जम गई थी कि वह उनका एक स्वभाव-सा बन गया। सत्य के लाभ को वह युवावस्था मे ही हृदयंगम कर चुके थे। जब लन्दन गये, तब अभोज्य भोजन और ब्रह्मचर्य के विषय मे माता के सामने प्रतिज्ञा करके गये थे। चूंकि सत्य पर वह दृढ थे, उन्हें इस प्रतिज्ञा को निवाहने मे कोई परिश्रम नही करना पड़ा। लक्ष्य के प्रति उनकी श्रद्धा ने उन्हें गडहो में गिरने से बचा लिया।

आठ

"ईश्वर के अनेक रूप हैं, पर मैं उसी रूप का पुजारी हूं जो सत्य का अवतार है—वह नित्य, सनातन और अपरिवर्तनशील सत्य है, जो ईश्वर है।" हमारे पुराणो मे कई जगह कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये एक ही ईश्वर के तीन

रूप हैं। यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होता है कि गाधीजी की अहिसा, सत्य और ईश्वर ये एक ही वस्तु हैं। रामनाम के माहात्म्य को गाधीजी ने पीछे पहचाना, पर इसमे श्रद्धा पहले हुई।

कहते हैं कि गाधीजी को बचपन में भूत का डर लगता था, इसलिए वह समय-कुसमय अधेरे मे जाने से डरते थे, पर इनकी नौकरानी रभा ने इन्हें बताया कि रामनाम की ऐसी शक्ति है कि उसके उच्चारण से भूत भागता है। बालक गांधी को यह एक नया शस्त्र मिला और उसमे श्रद्धा जमती गई। पहले जो श्रद्धा अधी थी, ज्ञानविहीन थी, वह धीरे-धीरे ज्ञानवती होने लगी और बाद मे उस श्रद्धा के पीछे अनुभव भी जमा होने लगा।

मैंने देखा है कि गाधीजी जब उठते हैं, बैठते हैं, जभाई लेते हैं, *या अगड़ाई* लेते हैं, तो लम्बी सास लेकर "हे राम, हे राम" ऐसा उच्चारण करते हैं। मैंने ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है कि इनके "हे राम, हे राम" मे कुछ आह होती है, कुछ करुणा होती है, कुछ थकान होती है। मैंने मन-ही-मन सोचा कि क्या वह यह कहते होंगे, "हे राम, अब बुड्ढे को क्यो तेली के बैल की तरह जोत रक्खा है? जो करना हो सो शीघ्र करो। जिस काम के लिए मुझे भेजा है उसकी पूर्णाहुति मे विलम्ब क्यो?"

जयपुर के महाराज प्रतापसिंह कवि थे। अपनी बीमारी के असह्य दुःख को जब बर्दाश्त न कर सके, तब उन्होंने ईश्वर को उलाहना देते हुए गाया :

ग्वालीड़ा, थे काई जाणो रे पीड़ पराई।
थारे हाथ लकुटिया, कांधे कमलिया, थे बन-बन धेनु चराई॥

पर गाधीजी के *सम्बन्ध में शायद ऐसा न होगा, क्योंकि गाधीजी मे धीरज* है। वह जानते हैं, ईश्वर की उन पर अत्यन्त अनुकपा है। उन्हे ईश्वर मे विश्वास है। यश-अपयश और हानि-लाभ की चिन्ता उन्होंने भगवान् के चरणो मे समर्पण कर दी है, इसलिए उन्हे अधैर्य नही है, उन्हें असतोष नहीं है। पर तो भी उनका करुणामय "हे राम, हे राम" कुछ द्रौपदी की पुकार या गज के आर्त्तनाद की-सी कल्पना कराता है।

कुछ वर्षों पहले की बात है। एक सज्जन ने, जो भक्त माने जाते हैं, गाधीजी को लिखा, "मुझे रात को एक स्वप्न आया। स्वप्न मे मैंने श्रीकृष्ण को देखा। श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा, 'गाधी से कहो कि अब उसका अन्त नजदीक आ गया है, इसलिए उसे चाहिए कि वह सारे काम-धाम छोड़कर *केवल ईश्वर-भजन में ही* लगे।' " गाधीजी ने उस मित्र को लिखा, "भाई, मैं तो एक पल के लिए भी ईश्वर-*भजन को नही बिसारता।* पर मेरे लिए लोक-सेवा ही ईश्वर-भजन है। दूसरी बात, समय नजदीक आ गया है, क्या इसीलिए हम ईश्वर-भजन करें? मैं तो यह मानता हूं कि हमारी गर्दन हम जन्मते हैं उसी दिन से यमराज के हाथ मे है।

फिर ईश्वर-भजन करने के लिए हम बुढापे तक क्यों ठहरें ? ईश्वर-भजन तो हर अवस्था मे हमें करना चाहिए।"

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

ईश्वर मे उनकी श्रद्धा इस जोर के साथ जम गई है कि हर चीज में वह ईश्वर की ही कृति देखते हैं। आश्रमो मे सांपो ने किसी को नही काटा, यह ईश्वरीय चमत्कार है। छोटी-मोटी कोई घटना होती, तो वह कहते हैं—"इसमें ईश्वर का हाथ है।"

गांधी-अरविन-समझौते के बाद वाइसराय के मकान से आते ही उन्होने पत्र-प्रतिनिधियों को एक लम्बा बयान दिया, जो उस समय एक अत्यन्त महत्त्व का वक्तव्य समझा गया था। वक्तव्य देने से पहले उन्हे खयाल भी न था कि क्या कहना उचित होगा, पर ज्योंही बोलना शुरू किया कि जिह्वा धाराप्रवाह चलने लगी, मानो सरस्वती वाणी पर बैठी हो। इसी तरह गोलमेज-परिषद् मे उनका पहला व्याख्यान महत्त्वपूर्ण व्याख्यानो में से एक था। उस व्याख्यान के देने से पहले भी उन्होने कोई सोच-विचार नही किया था। वैसे तो उनके लिए यह साधारण घटना थी, पर दोनो घटनाओ के पश्चात् जब मैंने कहा, "आपका यह वक्तव्य अनुपम था, आपका यह व्याख्यान अद्वितीय था"—तो उन्होने कहा, "इसमे ईश्वर का हाथ था।"

हम लोग भी, यदि हमसे कोई कहे कि आपका अमुक काम अच्छा हुआ तो, शायद यह कहेंगे, "हां, आपकी दया से अच्छा हुआ" या "ईश्वर का अनुग्रह था।" पर हम लोग जब ईश्वर के अनुग्रह की बात करते हैं, तब एक तरह से वह सौजन्य या शिष्टाचार की बात होती है, किन्तु गांधीजी जब यह कहते हैं कि 'इसमें ईश्वर का हाथ था', तब दरअसल वह इसी तरह महसूस भी करते हैं। उनकी श्रद्धा एक चीज है, केवल शिष्टाचार या सौजन्य की वस्तु नही।

एक इनका प्रिय साथी है, जो दुश्चरित्र है। उसको यह अपने घर मे रखते थे। यह अफ्रीका की घटना है। यद्यपि वह साथी चरित्रहीन था, पर उसपर निश्शंक होकर गांधीजी विश्वास करते थे। उसकी कुछ त्रुटियों का इन्हे ज्ञान था, पर इन्हें यह विश्वास था कि इनकी संगति से सुधर जायगा। एक रोज इनका नौकर दफ्तर मे पहुंचता है और कहता है कि जरा आप घर चलकर देखें कि आपका विश्वासपात्र साथी आपको कैसे धोखा दे रहा है। गांधीजी घर आते हैं और देखते हैं कि उस विश्वासपात्र साथी ने एक वेश्या को घर पर बुला रखा है ! इन्हें सदमा पहुंचता है। उस साथी को घर से हटाते हैं। उसके प्रति इन्हें प्रेम था। उसका सुधार करने के लिए ही उसे पास टिका रखा था। इनके लिए यह भी एक कर्त्तव्य का प्रयोग था। पर इसका जिक्र करते समय यही कहते हैं,

"ईश्वर ने मुझे बचा लिया है। मेरा उद्देश्य शुद्ध था, इसलिए भगवान् ने मुझे भविष्य के लिए चेतावनी देकर सावधान कर दिया और भूलों से बचा लिया।" यह सारा किस्सा इनके अन्धविश्वास और भूल साबित होने पर झट अपनी भूल सुधार लेने की वृत्ति का एक सजीव उदाहरण है।

एक घटना मणिलालभाई के, जो इनके द्वितीय पुत्र हैं, कालज्वर से आक्रान्त हो जाने की है, जिसे मैं नीचे गाधीजी के शब्दो मे ही उद्धृत करता हू

"मेरा दूसरा लडका बीमार हो गया। कालज्वर ने उसे घेर लिया था। बुखार उतरता नही था। घबराहट तो थी ही, पर रात को सन्निपात के लक्षण भी दिखाई देने लगे। इस व्याधि से पहले, बचपन मे, उसे शीतला भी खूब निकल चुकी थी।

"डाक्टर की सलाह ली। डाक्टर ने कहा—इसके लिए दवा का उपयोग नही हो सकता। अब तो इसे अडे और मुर्गी का शोरबा देने की जरूरत है।

"मणिलाल की उम्र दस साल की थी, उससे तो क्या पूछना था! जिम्मेदार तो मैं ही था, मुझे ही निर्णय करना था। डाक्टर एक भले पारसी सज्जन थे। मैंने कहा—डाक्टर, हम सब तो अन्नाहारी है। मेरा विचार तो लडके को इन दोनो मे से एक भी वस्तु देने का नही है। दूसरी वस्तु न बतलायेंगे?

"डाक्टर बोले—तुम्हारे लडके की जान खतरे मे है। दूध और पानी मिलाकर दिया जा सकता है, पर उससे पूरा सतोष नही हो सकता। तुम जानते हो कि मैं तो बहुत-से हिन्दू-परिवारो मे जाया करता हूं, पर दवा के लिए तो हम जो चाहते हैं वही चीज उन्हें देते हैं, और वे उसे लेते भी है। मैं समझता हू कि तुम भी अपने लडके के साथ ऐसी सख्ती न करो तो अच्छा होगा।

"आप जो कहते हैं वह तो ठीक है, और आपको ऐसा करना ही चाहिए; पर मेरी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है, यदि लडका बडा होता, तो जरूर उसकी इच्छा जानने का प्रयत्न भी करता और जो वह चाहता, वही उसे करने देता; पर यहा तो इसके लिए मुझे ही विचार करना पड रहा है। मैं तो समझता हू कि मनुष्य के धर्म की कसौटी ऐसे ही समय होती है। चाहे ठीक हो या गलत, मैंने तो इसको धर्म माना है कि मनुष्य को मांसादि न खाना चाहिए। जीवन के साधनो की भी सीमा होती है। जीने के लिए भी अमुक वस्तुओ को हमे नही ग्रहण करना चाहिए। मेरे धर्म की मर्यादा मुझे और मेरे स्वजनो को भी ऐसे समय पर मास इत्यादि का प्रयोग करने से रोकती है। इसलिए आप जिस खतरे को देखते हैं, मुझे उसे उठाना ही चाहिए। पर आपसे मैं एक बात चाहता हूं। आपका इलाज तो मैं नही करूंगा, पर मुझे इस बालक की नाडी और हृदय को देखना नही आता है। जल-चिकित्सा की मुझे थोड़ी जानकारी है। उपचारो को मैं करना चाहता हूं, परन्तु आप नियम से मणिलाल की तबीयत देखने को आते रहे और उसके

शरीर मे होने वाले फेरफारो से मुझे अभिज्ञ कराते रहे, तो मैं आपका उपकार मानूगा।"

"सज्जन डाक्टर मेरी कठिनाइयो को समझ गये और मेरी इच्छानुसार उन्होने मणिलाल को देखने के लिए आना मंजूर कर लिया।

"यद्यपि मणिलाल अपनी राय कायम करने लायक नहो था, तो भी डाक्टर के साथ मेरी जो बातचीत हुई थी, वह मैंने उसे सुनाई और अपने विचार प्रकट करने को कहा।

"आप सुखपूर्वक जल-चिकित्सा कीजिए। मैं शोरबा नही पीऊंगा, और न अडे ही खाऊगा।' उसके इन वाक्यों से मैं प्रसन्न हो गया, यद्यपि मैं जानता था कि अगर मैं उसे दोनो चीजें खाने को कहता तो वह खा भी लेता।

"मैं कूने के उपचारो को जानता था, उनका उपयोग भी किया था। बीमारी में उपवास का स्थान बड़ा है, यह मैं जानता था। कूने की पद्धति के अनुसार मैंने मणिलाल को कटिस्नान कराना शुरू किया। तीन मिनट से ज्यादा उसे मै टब मे नही रखता। तीन दिन तो सिर्फ नारगी के रस मे पानी मिलाकर देता रहा और उसी पर रक्खा।

"बुखार दूर नही होता था और रात को वह कुछ-कुछ बडबड़ाता था। बुखार १०४ डिग्री तक हो जाता था। मैं चकराया। यदि बालक को खो बैठा तो जगत् मे लोग मुझे क्या कहेंगे ? बडे भाई क्या कहेंगे ? दूसरे डाक्टर को क्यों न बुलाया जाय ? क्यों न बुलाऊ ? मां-बाप को अपनी अधूरी अक्ल आजमाने का क्या हक है ?

"ऐसे विचार उठते। पर ये विचार भी उठते—'जीव ! जो तू अपने लिए करता है, वही लडके के लिए भी कर। इससे परमेश्वर सन्तोष मानेंगे। तुझे जल-चिकित्सा पर श्रद्धा है, दवा पर नही। डाक्टर जीवन-दान तो दे देते नहीं। उनके भी तो आखिर मे प्रयोग ही न हैं ? जीवन की डोरी तो एकमात्र ईश्वर के हाथ में है। ईश्वर का नाम ले और उस पर श्रद्धा रख। अपने मार्ग को न छोड।'

"मन में इस तरह उथल-पुथल मचती रही। रात हुई। मैं मणिलाल को अपने पास लेकर सोया हुआ था। मैंने निश्चय किया कि उसे भीगी चादर की पट्टी मे रखा जाय। मैं उठा, कपडा लिया, ठंडे पानी मे उसे डुबोया और निचोड़-कर उसमे पैर से लेकर सिर तक उसे लपेट दिया और ऊपर से दो कम्बल ओढ़ा दिये। सिर पर भीगा हुआ तौलिया भी रख दिया। शरीर तवे की तरह तप रहा था, पसीना तो आता ही न था।

"मैं खूब थक गया था। मणिलाल को उसकी मा को सौंपकर मैं आध घण्टे के लिए खुली हवा मे ताजगी और शांति प्राप्त करने के इरादे से चौपाटी की तरफ चला गया। रात के दस बजे होंगे। मनुष्यो की आमद-रफ्त कम हो गई थी;

पर मुझे इसका खयाल न था ! विचार-सागर मे गोते लगा रहा था—'हे ईश्वर! इस धर्म-सकट मे तू मेरी लाज रखना।' मुह मे 'राम-राम' की रटन तो चल ही रही थी। कुछ देर के बाद मैं वापस लौटा। मेरा कलेजा धड़क रहा था। घर में घुसते ही मणिलाल ने आवाज दी, 'बापू ! आ गये ?'

"हा, भाई।"

"मुझे इसमें से निकालिए न ! मैं तो मारे आग के मरा जा रहा हूं।"

"क्यो, पसीना छूट रहा है क्या ?"

"अजी, मैं तो पसीने से तर हो गया। अब तो मुझे निकालिए न !"

"मैंने मणिलाल का सिर देखा। उसपर मोती की तरह पसीने की बूदें चमक रही थीं। बुखार कम हो रहा था। मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया।

"मणिलाल, घबरा मत। अब तेरा बुखार चला जायगा; पर कुछ और पसीना आ जाय तो कैसा ?" मैंने उससे कहा।

"उसने कहा, 'नही बापू ! अब तो मुझे छुडाइए। फिर देखा जायगा।'

"मुझे धैर्य आ गया था, इसीलिए बातों ही मे कुछ मिनट गुजार दिये। सिर से पसीने की धारा बह चली। मैंने चद्दर को अलग किया और शरीर को पोंछकर सूखा कर दिया। फिर बाप-बेटे दोनो सो गये। दोनों खूब सोये।

"सुबह देखा तो मणिलाल का बुखार बहुत कम हो गया था। दूध,पानी तथा फलो पर चालीस दिन तक रक्खा। मैं निडर हो गया था। बुखार हठीला था, पर वह काबू मे आ गया था। आज मेरे लड़को में मणिलाल ही सबसे अधिक स्वस्थ और मजबूत है।

"इसका निर्णय कौन कर सकता है कि रामजी की कृपा है या जल-चिकित्सा, अल्पाहार की अथवा और किसी उपाय की ? भले ही सभी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार बरतें, पर उस वक्त मेरी तो ईश्वर ने ही लाज रक्खी। यही मैंने माना, और आज भी मानता हूं।"

मुझे तो लगता है, और शायद औरों को भी लगे कि गांधीजी का यह प्रयोग 'ऊट-वैद्य' या 'नीम-हकीम' का-सा प्रयोग था। यह जोखिम उठाना उचित नही था। "पर डाक्टर कहां शर्तिया इलाज करता है, और जो चीज धर्म के विपरीत हो, उसे हम जान बचाने के लिए भी कैसे करें ?"

तृतीय पुत्र रामदास को साधारण चोट लगी थी, उसपर भी कुछ ऐसे ही मिट्टी के उपचार के प्रयोग किये गए। यह भी एक साधारण घटना थी, पर इसका जिक्र करने में भी वही ईश्वरवाद आता है : "मेरे प्रयोग पूर्णतः सफल हुए, ऐसा मेरा दावा नही है। पर डाक्टर भी ऐसा दावा कहां कर सकते हैं ? मैं इन चीजों का जिक्र इसी नीयत से करता हूं कि जो इस तरह के नवीन प्रयोग करना चाहे, उसे स्वय अपने ऊपर ही इसकी शुरुआत करनी चाहिए। ऐसा करने से सत्य

की प्राप्ति शीघ्र होती है। ईश्वर ऐसा प्रयोग करनेवाले की रक्षा करता है।"

ये वचन निश्चय ही सांसारिक मापतोल के हिसाब से अव्यावहारिक है। सांसारिक मापतोल, अर्थात्—जिसे लोग सासारिक मापतोल मानते हैं, क्योंकि दरअसल तो अध्यात्म और व्यवहार दोनों असगत वस्तुएं हो ही नही सकती। यदि अध्यात्म की संसार से पटरी न खाये तो यह फिर कोरी कल्पना की चीज रह जाता है। पर यह तर्क तो हम आसानी से कर सकते हैं कि जो क्षेत्र हमारा नहीं है, उसमें पड़ने का हमें अधिकार ही कहां है ? यह सही है कि डाक्टर भी सम्पूर्ण नही हैं, पर यह भी कहा जा सकता है कि जिसने डाक्टरी नही सीखी, वह डाक्टर से कही अपूर्ण है। पर गाधीजी इसका जवाब यह देंगे कि प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग ही ऐसे हैं कि लाभ कम करें या ज्यादा, हानि तो कर ही नही सकते।

मैंने देखा है कि आज भी ऐसे प्रयोगों के प्रति उनकी रुचि कम नही हुई है। आज भी आश्रम मे यक्ष्मा के रोगी हैं, कुष्ठ के रोगी हैं, और कई तरह के रोगी हैं और उनकी चिकित्सा मे गाधीजी रस लेते हैं। इसमें भावना तो सेवा की है। रोगियो की सेवा और पतितो की रक्षा, यह उनकी प्रवृत्ति है। पर शायद जाने-अनजाने उनके चित्त में यह भी भावना है कि गरीब मुल्क मे ऐसी चिकित्सा, जो सुलभ हो, जो सादी हो, जो गाव-गवई मे भी की जा सके, जिसमे विशेष व्यय न हो, बजाय कीमती चिकित्सा के ज्यादा उपयोगी हो सकती है। इस दृष्टि से भी उनके प्रयोग जारी हैं। उनमे से कोई उपयोगी वस्तु ढूढ निकालने का लोभ चल ही रहा है और चूकि ये प्रयोग सेवा के लिए सेवा की दृष्टि से होते हैं, यदि ये भगवान् के भरोसे न हो तो काफी संकल्प-विकल्प और अशान्ति भी पैदा कर सकते हैं। जो हो, कहना तो यह था कि गांधी की ईश्वर-श्रद्धा हर काम में हर समय कैसे गतिमान रहती है।

"मैं निश्चयपूर्वक तो नही कह सकता कि मेरे तमाम कार्य ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं; पर जब मैं अपने बड़े-से-बड़े और छोटे-से-छोटे कामों का लेखा लगाता हूं तो मुझे यह लगता है कि वे ईश्वर की प्रेरणा से किये गए थे, ऐसा कथन अनुपयुक्त नही होगा। मैंने ईश्वर का दर्शन नही किया, पर उसमे मेरी श्रद्धा अमिट है और उस श्रद्धा ने अब अनुभव का रूप ले लिया है। शायद कोई यह कहे कि श्रद्धा को अनुभव का उपनाम देना, यह सत्य की फजीहत होगी। इसलिए मैं कहूंगा कि मेरी ईश्वर-श्रद्धा का नामकरण करने के लिए मेरे पास और कोई शब्द नहीं है।"

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध मे लिखते हुए भी वही 'रामनाम' साधको के सामने रख देते हैं : "बिना उस प्रभु की शरण में गये विचारो पर पूर्ण आधिपत्य असम्भव है, पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन के अपने इस सतत प्रयत्न मे, हर पल, मैं इस सीधे-सादे सत्य का अनुभव कर रहा हूं।"

बा को अफ्रीका में भयकर बीमारी ने आ घेरा, तब मास के शोरबे का प्रश्न आया। बा और गांधीजी दोनो ने डाक्टर की राय को अस्वीकार किया। वहा भी जीवन-मरण का प्रश्न था। वहा भी गाधीजी के वही उद्गार थे : "ईश्वर मे विश्वास करके मैं अपने मार्ग पर डटा रहा", और अन्त मे विजय हुई।

पर इससे भी छोटी घटनाओं मे गाधीजी ईश्वर की लीला का वर्णन करते हैं। स्वदेश लौट आने के बाद जब-जब वह दौरे पर जाते थे, तब-तब थर्ड क्लास में ही यात्रा करते थे। उस जमाने मे गाधीजी के नाम से तो काफी लोग परिचित हो गये थे, पर आज की तरह सूरत-शक्ल से सब लोग उन्हें पहचानते नही थे। जहा जाते थे वहा लोगो को पता लगने पर दर्शनार्थियो की तो भीड लग जाती थी, जिसके मारे उन्हें एकान्त मिलना दुष्कर हो जाता था, पर गाड़ी मे जहां लोग उन्हे पहचानते न थे वहा जगह मिलने की मुसीबत थी, और उन दिनो वह प्रायः अकेले ही घूमते थे।

वर्षों की बात है। गाधीजी लाहौर मे दिल्ली जा रहे थे। वहा से फिर कलकत्ते जाना था। कलकत्ते मे एक मीटिंग होनेवाली थी, इसलिए समय पर पहुंचना था। पर लाहौर के स्टेशन पर जब गाड़ी पकड़ने लगे तो गाड़ी मे कही भी जगह न मिली। आखिर एक कुली ने इनसे बारह आने की बखशीश मिले तो बिठा देने का वायदा किया। इन्होने बख्शीश देने का करार किया, पर जगह तो थी ही नही। एक डिब्बे के लोगो ने कहा, "जगह तो नही है, पर चाहो तो खडे रह सकते हो।" गांधीजी को जैसे-तैसे रेल में बैठना था, इसलिए खड़े रहना ही स्वीकार किया। कुली ने इन्हें खिड़की के रास्ते डिब्बे में ढकेलकर अपने बारह आने गाठ मे दबाये।

रात का समय और खडे-खडे रात काटना। दो घटे तक तो खडे-खडे समय काटा। कमजोर शरीर, रास्ते की थकान। फिर गाड़ी का शोरगुल, धूल और धुआ और खडे रहकर यात्रा करना। कुछ धक्का-मुक्की करना जाननेवाले लोग तो लम्बी तानकर सो गये थे, पर इन्होने तो बैठने के लिए भी जगह नही मागी। कुछ लोगो ने देखा, यह अजीब आदमी है, जो बैठने के लिए भी झगड़ा नही करता। अन्त मे लोगो का कुतूहल बढा। "भाई, बैठ क्यो नही जाते ?" कुछ ने कहा। पर इन्होने कहा, "जगह कहा है ?" आखिर लोग नाम पूछने लगे। नाम बताया, तब तो सन्नाटा छा गया। शर्म के मारे लोगो की गर्दनें झुक गईं। चारो तरफ से लोगो ने अपने हाथ-पाव समेटने शुरू किये। क्षमा मागी जाने लगी और अन्त मे जगह दी और सोने को स्थान दिया। थककर प्रायः बेहोश-जैसे हो गये थे। सिर में चक्कर आते थे। इस घटना का जिक्र करते समय भी गाधीजी इसमे ईश्वर की अनुकपा पाते हैं. "ईश्वर ने मुझे ऐसे मौके पर सहायता भेजी जबकि मुझे उसकी सख्त जरूरत थी।"

निलहे गोरो के अत्याचार से पीड़ित किसानो के कष्ट काटने के लिए वह जब चम्पारन जाते है तो किसानो की सभा करते हैं। दूर-दूर से किसान मीटिंग मे आकर उपस्थित होते हैं। गाधीजी जब उस मीटिंग मे जाते हैं तब उन्हे लगता है मानो ईश्वर के सामने खड़े हैं : "यह कहना अत्युक्ति नही, बल्कि अक्षरशः सत्य है कि उस सभा में मैंने ईश्वर, अहिंसा और सत्य, तीनों के साक्षात् दर्शन किये।" और फिर जब हम पकड़े जाते हैं तो हाकिम के सामने जो बयान देते हैं वह सब प्रकार से प्रभावशाली और सौजन्यपूर्ण होता है। उसमे भी अन्त मे कहते हैं, "श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहब, मैं जो-कुछ कह रहा हूं, वह इसलिए नही कि मेरे गुनाह की उपेक्षा करके मुझे कम सजा दें। मैं केवल यही बता देना चाहता हूं कि मैंने आपकी आज्ञा भग की, वह इसलिए नही कि मेरे दिल मे सरकार के प्रति इज्जत नही है, पर इसलिए कि ईश्वर की आज्ञा के सामने आपकी आज्ञा मान ही नही सकता था।"

ये असाधारण वचन हैं। एक तरह से भयकर भी है। क्या हो यदि हर मनुष्य इस तरह के वचन बोलने लग जाय ? "अन्दरूनी आवाज", "अन्तर्नाद" या "आकाशवाणी" सुनना हरेक की किस्मत मे नही बदा होता। इन चीजो के लिए पात्रता चाहिए। कर्मों के पीछे त्याग और तप चाहिए। सत्य चाहिए। साहस चाहिए। विवेक चाहिए। समानत्व चाहिए। अपरिग्रह चाहिए। जो केवल सेवा के लिए ही जिन्दा है, जिसे हानि-लाभ मे कोई आसक्ति नही, जिसने कर्मयोग को साधा है, जिसकी ईश्वर मे असीम श्रद्धा है, जिसको अभिमान छू तक नही गया, वही मनुष्य अतर्नाद सुन सकता है। पर झूठी नकल तो सभी कर सकते है। "मुझे अन्दरूनी आवाज कहती है", ऐसा कथन कई लोग करने लगे है। गाधीजी की झूठी नकल अवश्य ही भयप्रद है, पर कौन-सी अच्छी चीज का ससार मे दुरुपयोग नही होता ?

पर प्रस्तुत विषय तो गाधीजी की ईश्वर मे श्रद्धा दिखाना है। लडके का बुखार छूटता है तो ईश्वर की मर्जी से, गाडी मे जगह मिलती है तो ईश्वर की मर्जी से और सरकारी हुक्म की अवज्ञा होती है तो ईश्वर की आज्ञा से। ऐसे पुरुष के साथ कभी-कभी सासारिक भाषा मे बात करनेवालों को चिढ़ होती है। वाइस-राय विलिंग्डन को भी चिढ थी। पर आखिर गाधीजी के बिना काम भी तो नही चलता। चिढ़ हो तो हो। पेचदार भाषा की उलझन सामने होते हुए भी काम तो इन्ही से लेना है। राजकोट मे जब आमरण उपवास किया, तब वाइसराय लिन-लिथगो ने इन्हें तार भेजा कि "उपवास करने से पहले आप कम-से-कम मुझे सूचना तो दे देते। आप तो मुझे जानते हैं, इसलिए यकायक आपने यह क्या किया ?" गाधीजी ने लिखा, "पर मैं क्या करता ? जब अन्तर्नाद होता है, तब कैसी सलाह और कैसा मशविरा ?"

बात-बात में ईश्वर को सामने रखकर काम करने और बात करने की इनकी आदत, यह कोई अव्यावहारिक वस्तु नही है। बात यह है कि गाधीजी की हर चीज मे जो धार्मिक दृष्टि है वह हम सबके लिए समझना कठिन है। उनकी ईश्वर के प्रति जीती-जागती सतत श्रद्धा को हम समझ नही सकते। इसलिए हमें कभी परेशानी तो कभी चिढ होती है। पर यदि हम बेतार के तार के विज्ञान को पूरा न समझते हो, तो क्या उस वैज्ञानिक से परेशान हो जायंगे, जो हमे इस विज्ञान को समझाने की कोशिश करता हो ? क्या हम उस वैज्ञानिक से चिढ जायंगे, जो हमसे वैज्ञानिक भाषा मे उस विज्ञान की चर्चा करता है, जिसे हम समझ नही पाते, क्योकि हम उस भाषा से अनभिज्ञ हैं ? गाधीजी का भी वही हाल है। अध्यात्म-विज्ञान के मर्म को उन्होने पढकर नही, बल्कि आचरण द्वारा पहचाना है।

गांधीजी में जब धर्म की भावना जाग्रत हुई तब उन्होंने अनेक शास्त्रो का अध्ययन किया। हिन्दू-धर्म की खोज की। ईसाई-मत का अध्ययन किया। इस्लाम के ग्रथ पढे। जरथुस्त्र की रचनाए पढी। चित्त को निर्विकार रखकर बिना पक्ष-पात के सब धर्मों के तत्त्वो को समझने की कोशिश की। आसक्तिरहित होकर सत्यधर्म को, जो गुफा में छिपा था, जानने का प्रयत्न किया। 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।' इससे उनकी निरपेक्षता बढी, उनका प्रयत्न तेजस्वी बना, पर उन्हें सत्य मिला। उनमे बल आया। उनमें नीर-क्षीर-विवेक आया। साथ ही निश्चया-त्मक बुद्धि भी प्रबल हुई। उनके निश्चय फौलाद के बनने लगे। अन्तर्नाद सुनाई देने लगा। इस अन्तर्नाद की चर्चा मे उनका सकोच भागा।

नों

पर क्या वह हवा मे उड़ते हैं ? क्या वह अव्यावहारिक बन गये हैं ? तो फिर यह भी पूछा जाय कि क्या एक वैज्ञानिक अव्यावहारिक होता है ? गांधीजी इकहत्तर साल के हो चुके। इन इकहत्तर बरसो मे इन्होने इतना नाम पाया, जितना अपने जीवन मे किसी महापुरुष ने नही कमाया। ससार इन्हें एक महात्मा की अपेक्षा एक महान् राजनीतिज्ञ नेता के रूप मे ज्यादा जानता है। सकुचित विचार के अंग्रेज इन्हें एक छलिया, फरेबी, पेचीदा और कूट राजनीतिज्ञ समझते हैं। कट्टरपथी मुसलमान इन्हें एक घूर्त्त और चालबाज हिन्दू समझते हैं, जिसका उद्देश्य है हिन्दू-राज की स्थापना। इससे कम-से-कम इतना तो प्रकट है कि यह कोई हवाई उड़ान वाले अव्यावहारिक पुरुष तो नही हैं। भारत की नाव का जिस चातुरी, धीरज

और हिम्मत के साथ इन्होने पहले बीस साल अफ्रीका मे और फिर पच्चीस साल स्वदेश में सचालन किया उसे देखकर चकित होना पडता है। यह कोई अव्यावहारिक मनुष्य का काम नही था। इनका राजनीति मे इन बीस बरसों में एकछत्र राज रहा है। किसी ने उन्हे चुनौती नही दी, और यदि दी तो वह स्वयं गिर गया। गाधीजी राजनीति मे आज एक अत्यावश्यक, एक अपरिहार्य व्यक्ति बन गये हैं। क्या यह हवा मे विचरने का सबूत है ? इनके पास सिवा प्रेम के बल के और कौन-सा बल है ? पर इस प्रेम के बल ने इनके अनुयायियों के दिलो मे इनका सिक्का जमा दिया है। इनके विपक्षियो पर इस प्रेम की छाप पड़ी है। ऐसे राजनीतिज्ञ नेता को कौन अव्यावहारिक कहेगा ? जो मनुष्य देश के लोगो में एक जोरदार राजनैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रगति पैदा कर दे और उन्हें इन क्षेत्रो मे बड़े जोर से उठाये, उसे भला कौन हवाई किले का वाशिंदा कहेगा ? मेरा खयाल है, गाधीजी से बढ़कर चतुर और व्यावहारिक राजनीतिज्ञ कम देखने मे आते हैं।

पर असल बात तो यह है कि गाधीजी के जीवन मे राजनीति गौण है। असल चीज तो उनमे है धर्मनीति। राजनीति उन्होंने धारण की; क्योंकि यह भी उनके लिए मोक्ष का एक साधन है। खादी क्या, हरिजन-कार्य क्या, जल-चिकित्सा क्या, और बछड़े की हत्या क्या, सारी-की-सारी उनकी हलचलें मोक्ष के साधन है। लक्ष्य उनका है—ईश्वर-साक्षात्कार। उपर्युक्त सब व्यवसाय उनके लिए केवल साधन है। गांधीजी को जो केवल एक राजनैतिक नेता के रूप मे देखते हैं, उनके लिए गाधीजी की ईश्वर की रटंत, उनकी प्रार्थना, उनका अतर्नाद, उनकी अहिंसा, उनकी अन्य सारी आध्यात्मिकता, ये सब चीजें पहेली हैं। जो उन्हें आत्मज्ञानी के रूप में देखते हैं, उनके लिए उनकी राजनीति केवल साधन-मात्र दिखाई देती है।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारण मुच्यते ॥

गीता के इस तत्त्व को समझकर हम गाधीजी का अध्ययन करें, तो फिर वह पहेली नही रहते।

"तो क्या एक अध्यात्मवादी राजनीति का सुचारु रूप से संचालन कर सकता है ?" यह प्रश्न कई लोग करते हैं।

इसका उत्तर यही है कि यदि नही संचालन कर सकता तो क्या एक झूठा, अकर्मण्य, लोभी, स्वार्थी, अधार्मिक आदमी कर सकता है ? यदि एक नि स्वार्थ, ईश्वर-भक्त मनुष्य राजनीति का संचालन नहीं कर सकता, तो फिर गीता को पढ़कर हमे रद्दी की टोकरी में फेंक देना चाहिए। यदि राजनीति झूठ और दावपेंच की ही एक कला है, तो फिर 'यतो धर्मस्ततो जय' के कोई माने नहीं।

हमने गलती से यों मान रखा है कि धर्म और राजनीति ये दो असगत वस्तुए

हैं। गाधीजी ने इस भ्रम का छेदन किया और अपने आचरणो से हमे यह दिखा दिया कि धर्म और अर्थ दो चीजें नही हैं। सबसे बडा अर्थ है : परम+अर्थ= परमार्थ। गीता ने जो कहा, उसका आचरण गाधीजी ने किया। जिस चीज को हम केवल पाठ की वस्तु समझते थे, वह आचरण की वस्तु है, कोरी पाठ की नही, गाधीजी ने हमे यह बताया। गाधीजी ने कोई नई बात नही की। राजनीति और धर्मनीति का जिस तरह श्रीकृष्ण ने समन्वय किया, जिस तरह जनक ने राजा होकर विरक्त का आचरण किया, उसी तरह कर्मयोग को गाधीजी ने अपने आचार द्वारा प्रत्यक्ष किया। जिस तलवार मे जग लग चुका था, उसे गाधीजी ने फिर से सान पर चढ़ाकर नया कर दिया।

दस

उन्तीस अप्रैल सन् १९३३ की बात है। उन दिनों हरिजन-समस्या गांधीजी का काफी हृदय-मथन कर रही थी। यरवदा-पैक्ट के बाद देश में एक नई लहर आ रही थी। जगह-जगह उच्चवर्ण हिन्दुओ मे हजारो साल तक हरिजनो के प्रति किये गये अत्याचारों के कारण आत्मग्लानि जाग्रत हो रही थी। हरिजन-सेवक-सघ जोर-शोर से अपना सेवा-कार्य विस्तृत करता जा रहा था। गाधीजी के लेखो ने हरिजन-कार्य मे एक नई प्रगति ला दी थी। सत्याग्रह तो ठडा पड चुका था। वाइसराय विलिंग्डन ने मान लिया था कि गाधीवाद का सदा के लिए खातमा होने जा रहा है। पर प्रधान मन्त्री रेम्जे मैकडानल्ड के निर्णय के विरुद्ध गाधीजी के *आमरण उपवास ने एक ही क्षण मे आये हुए शैथिल्य का नाश करके एक नया* चैतन्य ला दिया। लोगो ने राजनैतिक सत्याग्रह को तो वही छोड़ा और चारो तरफ से हरिजन-कार्य मे उमड पडे। यह एक चमत्कार था। वर्षों से गाधीजी हरिजन-कार्य का प्रचार कर रहे थे, पर उच्चवर्ण हिंदुओं की आत्मा को वह जाग्रत नही कर सके थे। जो काम वर्षों मे नही हो पाया था, अब वह अचानक हो गया।

पर जैसे हर क्रिया के साथ प्रतिक्रिया होती है वैसे ही हरिजन-कार्य के सबध मे भी हुआ। एक तरफ हरिजनो के साथ जबर्दस्ती सहानुभूति बढी, तो दूसरी ओर कट्टर विचार के रूढिचुस्त लोगों मे कट्टरता बढ़ी।

हरिजनो के साथ जो दुर्व्यवहार होते थे, वे शहरी और नये विचार के लोगो के लिए कल्पनातीत हैं। इन सात वर्षों मे उच्चवर्ण हिन्दुओं की मनोवृत्ति मे आशातीत परिवर्तन हुआ है। पर उन दिनों स्थिति काफी भयकर थी। दक्षिण मेंतो

केवल अस्पृश्यता ही नही थी, बल्कि कुछ किस्म के हरिजनो को तो देखने मात्र मे पाप माना जाता था। हरिजनो को ओसर-मोसर पर हलवा नही बनाने देना, घी की पूरी नही बनाने देना, पांव मे चादी का कड़ा नही पहनने देना, घोड़े पर नही चढ़ने देना, पक्का मकान नही बनाने देना, ये साधारण दुर्व्यवहारो की श्रेणी मे गिने जानेवाले अत्याचार तो प्राय. सभी प्रान्तो और प्रदेशों मे उन दिनो पाये जाते थे, जो अब काफी कम हो गये हैं।

हरिजनो ने जब इस जागृति के कारण कुछ निर्भयता दिखानी शुरू की, तो कट्टर विचारों के लोगों मे क्रोध की मात्रा उफन पडी। जगह-जगह हरिजनों के साथ मारपीट होने लगी। गाधीजी के पास ये सब समाचार जेल मे पहुंचते थे। उनका विषाद इन दुर्घटनाओ से बढ रहा था। अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म का कलक है और उच्चवर्ण वालों के सिर पर इस पाप की जिम्मेदारी है, ऐसा गाधीजी बराबर कहते आये। हरिजनों के प्रति सद्व्यवहार करके हम पाप का प्रायश्चित्त करेंगे, ऐसा गांधीजी का हमेशा से कथन था। गाधीजी स्वय उच्चवर्णीय हैं, इसलिए यह अत्याचार उन्हें काफी पीड़ित कर रहा था। हृदय में एक तूफान चलता था। क्या करना चाहिए, इसके सकल्प-विकल्प चलते थे। पडितों से पत्र-व्यवहार चल रहा था।

"ईश्वर यह अत्याचार क्यो चलने देता है ? रावण राक्षस था, पर यह अस्पृश्यता-रूपी राक्षसी तो रावण से भी भयंकर है और इस राक्षसी की धर्म के नाम पर जब हम पूजा करते हैं, तब तो हमारे पाप की गुरुता और भी बढ जाती है। इससे हब्शियों की गुलामी भी कही अच्छी है। यह धर्म—इसे धर्म कहें तो—मेरी नाक मे तो बदबू मारता है। यह हिन्दू-धर्म हो ही नही सकता। मैंने तो हिन्दू-धर्म द्वारा ही ईसाई धर्म और इस्लाम का आदर करना सीखा है। फिर यह पाप हिन्दू-धर्म का अग कैसे हो सकता है ? पर क्या किया जाय ?"

इस तरह विचार करते-करते गांधीजी २९ अप्रैल की रात को जेल में सोये। कुछ ही देर सोये होंगे। इतने में रात के ११ बजे। जेल में सन्नाटा था। वसत का प्रवेश हो चुका था। रात सुहावनी थी। मीठी हवा चल रही थी। कैदी सब सो रहे थे। केवल प्रहरी लोग जाग्रत थे। ११ बजे के कुछ ही समय बाद गाधीजी की आंख खुली। नीद भाग गई। चित्त मे महासागर का-सा तूफान हिलोरें खाने लगा। बेचैनी बढने लगी। ऐसा मालूम देता था कि हृदय के भीतर एक संग्राम चल रहा है। इसी बीच एक आवाज सुनाई दी। मालूम होता था कि यह आवाज दूर से आ रही है, पर तो भी ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे कोई निकट से बोल रहा हो। लेकिन वह आवाज ऐसी थी, जिसकी हुक्मउदूली असम्भव थी। आवाज ने कहा—"उपवास कर।" गाधीजी ने सुना। उनको सन्देह नही रहा। उनको निश्चय हो गया कि यह ईश्वरीय वाणी है। अब संग्राम शान्त हो गया। बेचैनी

दूर हुई। गांधीजी स्वस्थ हो गये। उपवास कितने दिन का करना तथा कब आरम्भ करना, इसका निर्णय करके उन्होंने इस सम्बन्ध मे अपना वक्तव्य भी लिख डाला और फिर गाढ निद्रा मे मग्न होकर सो गये।

ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर वल्लभभाई और महादेवभाई के साथ प्रार्थना की। 'उठ जाग मुसाफिर भोर भयो, अब रैन कहा जो सोवत है', यह भजन महादेवभाई ने अनायास ही प्रार्थना में गाया। गांधीजी ने महादेवभाई से कहा कि तुम रात को जागे हो, इसलिए थोड़ा आराम और कर लो। महादेवभाई लेट गये। उन्हें तो पता भी नहीं था कि गांधीजी ने क्या भीषण संकल्प कर डाला है। गांधीजी ने जो वक्तव्य तैयार किया वह वल्लभभाई को सौंपा। सरदार ने उसे एक बार पढा, दो बार पढा, फिर तो सन्न हो गये। इसमें तर्क को कोई स्थान नहीं था, और सरदार तो गांधीजी के स्वभाव को अच्छी तरह जानते हैं। "नियागरा के जल-प्रताप को रोकने की चेष्टा करना व्यर्थ है। महादेव, इनसे बढकर शुद्ध-बुद्ध और कौन है? जो बढकर हो, वह इनसे तर्क करे। मैं तो नही करूगा।" इतना ही सरदार ने महादेवभाई से कहा और 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' ऐसा समझकर चुप हो गये।

महादेवभाई ने साधारण तर्क किया, पर अत मे ईश्वर पर भरोसा करके वह भी चुप हो गये। दूसरे दिन तो सब जगह खबर पहुच गई। सारे देश में सन्नाटा छा गया। मैं ठहरा हरिजन-सेवक-सघ का अध्यक्ष। मेरे पास सन्देश पहुंचा, जिसमें गांधीजी ने यह भी कहा कि पूना मत आओ। वही जो कर्त्तव्य है सो करो। मुझे स्पष्ट याद आता है कि मुझे और ठक्कर बापा को यह सदेश पाकर विशेष चिन्ता न हुई। गांधीजी इतनी भीषण आफतो मे से सही-सलामत निकल चुके हैं कि इस अग्नि-परीक्षा मे भी वह सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होंगे, ऐसा मुझे दृढ विश्वास था। इसलिए मैंने तो यही लिख दिया कि "ईश्वर सब मगल करेगा। हम आपके लिए अहर्निश शुभ प्रार्थना करेंगे। आपका उपवास सफल हो और वह सबका मगल करे।"

पर राजाजी को इतनी जल्दी कहां सन्तोष होता था? गांधीजी से काफी शास्त्रार्थ किया, तर्क किया, पर एक न चली। देवदास ने भी अत्यन्त उदासी के साथ मिन्नत-आरजू की। जनरल स्मट्स ने अफ्रीका से एक लम्बा तार भेजा कि आप ऐसा न करें। पर ईश्वरीय आज्ञा के सामने गांधीजी किसकी सुननेवाले थे? सरकार ने भी जब देखा कि उपवास हो रहा है, तो उन्हें पूना मे लेडी ठाकरसी के भवन 'पर्णकुटी' मे पहुचा दिया।

इक्कीस दिन का यह उपवास एक दुष्कर चीज था। इससे कुछ ही महीनों पहले एक उपवास हो चुका था। उससे काफी कमजोरी आ गई थी। उस पहले उपवास मे कुछ ही दिनो बाद प्राण सकट मे आ गये थे, इसलिए इस उपवास से प्राण बचेंगे या नही, ऐसी अनेक लोगो की शका थी। पर गांधीजी ने कहा, "मुझे

मृत्यु की अभिलाषा नहीं है। मैं हरिजनों की सेवा के लिए जिन्दा रहना चाहता हूं। पर यदि मरना ही है तो भी क्या चिन्ता? अस्पृश्यता की गंदगी जितनी मैंने जानी थी, उससे कहीं अधिक गहरी है, इसलिए यह आवश्यक है कि मैं और मेरे साथी, यदि जिन्दा रहना है तो, अधिक स्वच्छ बनें। यदि ईश्वर की यह मंशा है कि मैं हरिजनों की सेवा करूं, तो मेरा भौतिक भोजन बंद होने पर भी ईश्वर मुझे जो आध्यात्मिक भोजन भेजता रहेगा, वह इस देह को टिकाये रखेगा, और यदि सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहेंगे तो वह भी मेरे लिए भोजन का काम देगा। कोई अपने स्थान से न हटें। कोई मुझे उपवास रोकने को न कहें।"

७ मई १९३३ को उपवास शुरू हुआ और २९ मई को ईश्वर की दया से सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। उपवास की समाप्ति के कई दिनों बाद गांधीजी ने कहा, "यह उपवास क्या था, मेरी इक्कीस दिन की निरन्तर प्रार्थना थी। इसका मेरे ऊपर जो अच्छा असर हुआ, उसका मैं अब अनुभव कर रहा हूं। यह उपवास केवल पेट का ही निराहार न था, बल्कि सारी इन्द्रियों का निराहार था। ईश्वर में संलग्न होने के माने ही हैं तमाम शारीरिक क्रियाओं की अवहेलना, और वह इस आत्यंतिक हद तक कि हम केवल ईश्वर के सिवा और सभी चीजों को भूल जाय। ऐसी अवस्था सतत प्रयत्न और वैराग्य के बाद ही प्राप्त होती है। इसलिए तमाम ऐसे उपवास एक तरह की अव्यभिचारिणी ईश्वर-भक्ति है, ऐसा कहना चाहिए।"

१९२४ की गर्मियों की बात है। गांधीजी जेल से छूटकर आये थे। अपेंडिक्स का आपरेशन हुआ ही था। शरीर कुछ दुर्बल था। इसलिए स्वास्थ्य-लाभ के लिए जुहू ठहरे हुए थे। मैं रोज उनके साथ टहलता था। पास में बैठता था। घंटों हर विषय पर उनसे चर्चा करता था। एक रोज ईश्वर पर चर्चा चली, तो मैंने प्रश्न किया कि क्या आप मानते हैं कि आप ईश्वर का साक्षात्कार कर चुके हैं?

"नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। जब मैं अफ्रीका में था, तो मुझे लगता था कि मैं ईश्वर के अत्यन्त निकट पहुंच गया हूं। पर मुझे लगता है कि उसके बाद मेरी अवस्था उन्नत नहीं हुई है, बल्कि मैं सोचता हूं तो लगता है कि मैं पीछे हटा हूं। मुझे क्रोध नहीं आता, ऐसी अवस्था नहीं है। पर क्रोध का मैं साक्षी हूं, इसलिए मुझ पर क्रोध का स्थायी प्रभाव नहीं होता। पर इतना तो है कि मेरा उद्योग उग्र है। आशा तो यही करता हूं कि इसी जीवन में साक्षात्कार कर लूं। पर बाजी तो भगवान् के हाथ में है। मेरा उद्योग जारी है।"

इन बातों को भी आज सोलह साल हो गये। इसके बाद मैंने न कभी कुतूहल किया, न ऐसे प्रश्न पूछे। पर मैं देखता हूं कि ईश्वर के प्रति उनकी श्रद्धा और आत्मविश्वास उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं। पिछले दिनों किसी से बात करते-करते कहने लगे:

"अब मुझसे ज्यादा बहस-मुबाहिसा नही होता। मुझे मौन प्रिय लगता है। पर मैं ऐसा नही मानता कि मूक वाणी का कोई असर नही। असलियत तो यह है कि मूक वाणी की शक्ति स्थूल वाणी से कही अधिक बलवती है। लोग सत्याग्रह की बात करते हैं। सत्याग्रह जारी हुआ तो यह निश्चय मानना कि बीते काल में जिस तरह मुझे दौरा करना पडता था या व्याख्यान देना पडता था वैसी कोई क्रिया मुझे अब नही करनी पडेगी। ऐसा समझ लो कि मैं सेवाग्राम मे बैठा हुआ ही नेतृत्व कर लूगा, इतना आत्मविश्वास तो आ चुका है। यदि मुझे ईश्वर का पूर्ण साक्षात्कार हो जाय तब तो मुझे इतना भी न करना पडे। मैंने संकल्प किया कि कार्य बना, उस स्थिति के लिए भी मेरे प्रयत्न जारी हैं।"

ये मर्मस्पर्शी वाक्य हैं। हमारे भीतर कैसी अकथ शक्ति भरी है, जिसको हम ईश्वर के नाम से भी पुकार सकते हैं, इसका स्मरण हमें ये शब्द कराते हैं।

अमुक काम मे ईश्वर का हाथ था, ऐसा तो गाधीजी ने कई बार कहा है; पर प्रत्यक्ष आकाशवाणी हुई है, यह उनका शायद प्रथम अनुभव था। मेरा खयाल है कि ईश्वर पर उनकी असीम श्रद्धा का यह सबसे बडा प्रदर्शन था। मैंने उनसे इस आकाशवाणी के चमत्कार पर लम्बी बातें की, पर बातें करते समय मुझे लगा कि इस चीज को मुझे पूर्णतया अनुभव कराने के लिए उनके पास कोई सुगम भाषा नही थी। कितनी भी सुगमता से समझायें, कितनी भी प्रबुद्ध भाषा का उपयोग करें, आखिर जो चीज भाषातीत है, उसको कोई क्या समझाये ? जब हम कहते हैं कि एक आवाज आई, तब हम महज एक मानवी भाषा का ही प्रयोग करते हैं। ईश्वर की न कोई आकृति हो सकती है, न शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इत्यादि से ईश्वर बाधित है। फिर उसकी आवाज कैसी, आकृति कैसी ? फिर भी आवाज तो आई। उसकी भाषा कौन-सी ? "वही भाषा जो हम स्वयं बोलते हैं।" "उसके माने हैं कि हमे लगता है कि कोई हमसे कुछ कह रहा है। पर ऐसा तो भ्रम भी हो सकता है।" "हां भ्रम भी हो सकता है, पर यह भ्रम नही था।" इसके यह भी माने हुए कि उस 'वाणी' को सुनने की पात्रता चाहिए। एक मनुष्य को भ्रम हो सकता है। वह उसे आकाशवाणी कहेगा, तो ख्वाहमख्वाह अंधश्रद्धा फैलायेगा। दूसरा अधिकारी है, जाग्रत है। वह कह सकता है कि यह भ्रम नही था। आकाशवाणी भी अन्य चीजो की तरह उसका पात्र ही सुन सकता है। सूर्य का प्रतिबिंब शीशे पर ही पडेगा, पत्थर पर नही।

इक्कीस दिन का यह धार्मिक उपवास गाधीजी के अनेक उपवासो मे से एक था। छोटे-छोटे उपवासों की हम गणना न करें, तो भी अब तक शायद दस-बारह तो इनके ऐसे बड़े उपवास हो चुके हैं, जिनमें इन्होने प्राणो की बाजी लगाई।

जैसे और गुणो के विषय मे, वैसे ही उपवास के विषय मे भी यह नही जाना जा सकता कि यह प्रवृत्ति कैसे जाग्रत हुई। गुलाब का फूल पहले जन्मा या उसकी

सुगन्ध ? कौन-सी प्रवृत्ति पहले जाग्रत हुई, कौन-सी पीछे, इसका हिसाब लगाना यद्यपि दुष्कर है, पर इतना तो हम देख सकते हैं कि इनकी माता की उपवासो की वृत्ति ने शायद इनकी उपवास-भावना को जाग्रत किया। इनकी माता अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थी। उपवासों में उन्हें काफी श्रद्धा थी। छोटे-मोटे उपवास तो साल-भर होते ही रहते थे। पर 'चातुर्मास' मे तो एक ही बेला भोजन होता था। 'चान्द्रायण' व्रत इनकी माता ने कई किये। एक 'चातुर्मास' मे इनकी माता ने व्रत लिया कि सूर्य-दर्शन के बिना भोजन नही करूगी। बरसात में कभी-कभी सूर्य कई दिनो तक निकलता ही नही था। निकलता भी था तो चन्द मिनटों के लिए। बालक गांधी छत पर चढे-चढ़े एकटक सूर्य के दर्शन की प्रतीक्षा करते रहते और दर्शन होते ही मा को खबर देते। पर कभी-कभी बेचारी मा पहुंचे, उससे पहले ही सूर्य देवता तो मेघाच्छन्न आकाश में लुप्त हो जाते थे। पर मां को इससे असन्तोष नही होता था। "बेटा, रहने दो चिन्ता को, ईश्वर ने ऐसा ही चाहा था कि आज मैं भोजन न करूं।" इतना कहकर वह अपने काम मे लग जाती थी।

बालक गांधी पर इसकी क्या छाप पड़ सकती थी, यह हम सहज ही सोच सकते हैं। यह छाप जबर्दस्त पड़ी। पहला उपवास, मालूम होता है, उन्होंने अफ्रीका मे किया, जबकि 'टाल्स्टॉय फार्म' मे आश्रम चला रहे थे। यह कुछ दिनों के लिए बाहर थे। पीछे से आश्रमवासियो में से दो के सम्बन्ध मे इन्हें पता लगा कि उनका नैतिक पतन हुआ है। इससे चित्त को चोट तो पहुचनी ही थी, पर इन्हें लगा कि ऐसे पतन की जिम्मेदारी कुछ हद तक आश्रम के गुरु पर भी रहती है। चूकि आश्रम के सचालक गांधीजी थे, इस दुर्घटना मे इन्होंने अपनी जिम्मेदारी भी महसूस की। इसके लिए गाधीजी ने सात दिन का उपवास किया। इसके कुछ ही दिन बाद इसी घटना के सम्बन्ध मे इन्हें चौदह दिन का एक और उपवास करना पड़ा।

इसके बाद और अनेक उपवास हुए हैं। स्वदेश लौटने पर ऐसी ही घटनाओ को लेकर एक-दो और उपवास किये। अहमदाबाद की मिल-हड़ताल के लिए एक उपवास किया। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए इक्कीस दिन का एक उपवास किया। हरिजनों की सीटों के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री मैक्डानल्ड के निर्णय के विरुद्ध एक आमरण उपवास किया और फिर हरिजन-प्रायश्चित्त के लिए एक उपवास किया। हरिजन-प्रचार-कार्य के लिए सरकार ने जेल में इन पर बन्दिश लगा दी, तब एक और उपवास किया। हरिजन-प्रवास की समाप्ति पर कुछ हरिजन सेवकों के असहिष्णु व्यवहार के प्रायश्चित्त-स्वरूप वर्धा मे सात दिन का उपवास किया। एक उपवास राजकोट मे किया। प्रधान मंत्री के निर्णय के विरुद्ध जो उपवास किया उसकी सफल समाप्ति में कुछ हिस्सा मेरे भी जिम्मे आया था। इस-

लिए इस उपवास का निकट से अवलोकन और अध्ययन करने का मुझे काफी मौका मिला।

उन दिनों गाधीजी जेल मे ही थे। सत्याग्रह चल रहा था, यद्यपि लोगों की थकान बढ़ती जाती थी। अचानक एक बम गिरा—लोगो ने सुना कि गांधीजी ने आमरण-उपवास की ठानी है। चारों तरफ खलबली मच गई। मैं तो यह समाचार अखबारों मे पढते ही हक्का-बक्का रह गया। गाधीजी को मैंने तार भेजा कि क्या करना चाहिए ? मैं तो सहम गया हू। फौरन उत्तर आया, "चिता की कोई बात नही। हर्ष मनाने की बात है। अत्यन्त दलित के लिए यह अन्तिम यज्ञ करने का ईश्वर ने मुझे मौका दिया है। मुझे कोई शका नही कि उपवास स्थगित नही किया जा सकता। यहा से कोई सूचना या सलाह भेजने की मैं अपने मे पात्रता नही पाता।" किसी की समझ मे नही आया कि क्या करना चाहिए, पर हमारे सबके मुंह पूना की ओर मुड़े और लोग एक-एक करके वहा पहुंचने लगे।

राजाजी, देवदास और मैं तो शीघ्र ही पूना पहुच गये। पूज्य मालवीयजी, सर तेजबहादुर सप्रू, श्री जयकर, राजेन्द्रबाबू, रावबहादुर राजा, ये लोग भी एक-के-बाद-एक बम्बई और फिर पूना पहुचने लगे। पीछे से डाक्टर अम्बेडकर को भी बुला लिया गया था। सरकारी आज्ञा लेकर सर पुरुषोत्तमदास, सर चुन्नीलाल, मथुरादास बसनजी और मैं सर्वप्रथम गाधीजी से जेल मे मिले। हम लोगो को गाधीजी से जेल-सुपरिंटेंडेंट के कमरे मे मिलाया गया। उपवास अभी शुरू नही हुआ था। कमरा एकतल्ले पर था। उसकी खिडकियो मे से हमें जेल का काफी हिस्सा दृष्टिगोचर होता था। जहां फासी होती है, वह हाता भी खिडकी मे से दिखाई देता था। गाधीजी के आने का रास्ता उसी हाते की दीवार के नीचे से गुजरता था। मैंने गाधीजी को करीब नौ महीने से नही देखा था। अचानक खिड़की मे से मैंने गाधीजी को तेजी के साथ हमारी ओर आते देखा। मैं सब चिंता भूल गया। गाधीजी तो इस तरह सरपट चले आ रहे थे, मानो कुछ हुआ ही नही था। उनकी तरफ फासी का हाता था, जहा, मैंने सुना, दो-तीन दिन पहले ही एक आदमी को लटकाया गया था। मेरा जी भर आया। यह आदमी और ऐसी जगह पर।

गांधीजी ऊपर कमरे मे आये। मैंने बड़े प्रेम से पांव छुए। फिर तो काम की बातें होने लगीं। उन्होंने बडी सावधानी से हर चीज ब्योरेवार समझाई। उपवास क्योंकर बंद हो सकता है, यानी होने के बाद कैसे समाप्त हो सकता है, इसकी शर्तों का ब्योरेवार उन्होने जिक्र किया। बात करने से पहले जहा हमें उनका यह कार्य आवश्यकता से कुछ अधिक कठोर लगता था, बात करने पर वह धर्म है, एक कर्त्तव्य है, ऐसा लगने लगा। उनका मानसिक चित्र लेकर हम लोग वापस बम्बई लौटे और पूज्य मालवीयजी और दूसरे नेताओं को सारा हाल सुनाया।

मुझे याद आता है कि उस समय हमारे नेतागण किस तरह अत्यन्त आलस्य के साथ उलझन मे पड़े हुए किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। न तो गाधीजी का उपवास किसीको पसन्द था, न उनकी रचनात्मक सलाह की कोई उपयोगिता समझी जाती थी, न किसीको खयाल था कि समय की बरबादी गांधीजी की जान को जोखिम में डाल रही थी। बार-बार यही जिक्र आता था कि उन्हें ऐसा नही करना चाहिए था। यह उनका बलात्कार है। उन्हें समझाना चाहिए कि वह अब भी उपवास छोड दें। यह कोई महसूस भी नही करता था कि न तो वह उपवास छोड़ सकते थे, न यह समालोचना का ही समय था। हमारे सामने एक ही प्रश्न था कि कैसे उस गुत्थी को सुलझाकर गाधीजी की प्राण-रक्षा की जाय। मुझे स्पष्ट याद है कि नेताओं में एक मनुष्य था, जिसका दिमाग कुछ रचनात्मक कार्य कर रहा था। वह थे सर तेजबहादुर सप्रू। पर गाधीजी की प्राण-रक्षा का जिम्मा तो असल मे ईश्वर ने ले रक्खा था। हम वृथा ही चिन्ता करते थे।

हालांकि गाधीजी ने उपवास शुरू करने से पहले काफी समय दे दिया था, पर उस समय का कोई भी सार्थक उपयोग न हो सका। गांधीजी स्वयं सारा कारबार अपने हाथ में न ले लेते तो कोई उपयोगी काम होता या नही, इसमे भी मुझे शक है। उपवास शुरू होते ही सरकार ने जेल के दरवाजे खोल दिये। नतीजा इसका यह हुआ कि गांधीजी से मिलना-जुलना बिना किसी रोक-टोक के होने लगा। इसलिए इस व्यवसाय की सारी बागडोर पूर्णतया गाधीजी के हाथों मे चली गई। सरकार का तो यही कहना था कि हरिजन और उच्चवर्ग के लोगो के बीच जो भी समझौता हो जाय, उसको वह मान लेगी। इसलिए वास्तविक काम यही था कि उच्चवर्ग और हरिजन नेताओं के बीच समझौता हो।

वैसे तो हम लोग समझौते की चर्चा में दिन-रात लगे रहते थे; पर दरअसल सिद्धान्तों के सम्बन्ध मे तो दो ही मनुष्यो को निर्णय करना था। एक ओर गाधीजी और दूसरी ओर डाक्टर अम्बेडकर। पर इन सिद्धान्तो की नीव पर भी तो एक भीत चुननी थी। उसमे सर तेजबहादुर सप्रू की बुद्धि का प्रकाश हम लोगों को काफी सहायता दे रहा था। मैंने देखा कि गांधीजी यद्यपि धीरे-धीरे निर्बल होते जाते थे, पर मानसिक सतर्कता में किसी तरह का कोई फर्क न पड़ा। बराबर दिन-भर कभी उच्चवर्ण के नेताओं से तो कभी अम्बेडकर से उनका सलाह-मशवरा चलता ही रहता था।

राजाजी, देवदास और मैं अपने ढंग से काम को प्रगति दे रहे थे। पर बागडोर तो सम्पूर्णतया गाधीजी के ही हाथ में थी। गाधीजी का धीरज, उनकी असीम श्रद्धा, उनकी निर्भयता, उनकी अनासक्ति, यह सब उस समय देखने ही लायक थी। मौत दरवाजे पर खडी थी। सरकार क्रूरतापूर्वक तटस्थ होकर खडी थी। अम्बेडकर का हृदय कटुता से भरा था। हिन्दू नेता सुबह से शाम और शाम

से सुबह कर देते थे, पर समझौता अभी कोसों दूर था। राजाजी, देवदास और मुझको कभी-कभी झुंझलाहट होती थी, पर गांधीजी सारी चिन्ता ईश्वर को समर्पण करके शांत पड़े थे।

एक रोज जब जेल के भीतर मशवरा चल रहा था, तब गांधीजी ने कुछ हिन्दू नेताओं से कहा, "घनश्यामदास ने मेरी एक सूचना आपको बताई होगी।" एक नेता ने झटपट कह दिया, "नहीं, हमें तो कुछ मालूम नहीं।" गांधीजी ने एक क्षणिक रोष के साथ कहा, "यह मेरे दुर्भाग्य की बात है।" मुझे चोट लग गई। मैं जानता था, और यह नेता भी जानते थे कि गांधीजी की सारी सूचना में उन्हें दे चुका था। पर जो लोग गांधीजी को एक अव्यावहारिक, हवा में तैरनेवाला, शख्स मानते हैं, उन्हें गांधीजी की सूचना सुनने तक की फुरसत नहीं थी। उस सूचना को उन्होंने महज मजाक में उड़ा दिया था। मैंने सब बातें याद दिलाई और इसपर उन नेता ने अपनी भूल सुधारी। पर बुरा असर तो हो ही चुका था। इसी तरह किसी छोटी-सी बात पर उस रोज देवदास और राजाजी पर भी गांधीजी को थोड़ा रोष आ गया था। रात को नौ बजे सोने के समय गांधीजी को विषाद होने लगा। "मैंने रोष करके अपने उपवास की महिमा गिरादी।" रोष क्या था, एक पल-भर का आवेश था। पर गांधीजी के स्वभाव को इतना भी असह्य था। अपना दोष तिल-भर भी हो तो उसे पहाड़ के समान मानना और पराया दोष पहाड़ के समान हो तो भी उसे तिल के समान देखना, यह उनकी फिलासफी है। बिहार में जब भूकम्प हुआ, तो उन्होंने उसे 'हमारे पापों का फल' माना।

गांधीजी ने तुरन्त राजाजी को तलब किया और उनके सामने अत्यन्त कातर हो गये। आंखों से अश्रुओं की झड़ी लग गई। रात को ग्यारह बजे जेलवालों की मार्फत डेरे पर से देवदास की और मेरी बुलाहट हुई। मैं तो सो गया था, पर देवदास गया। गांधीजी ने उससे 'क्षमा' चाही। पिता पुत्र से क्या क्षमा मांगे? पर एक महापुरुष पिता यदि अपना व्यवहार सौ टंच के सोने के जितना निर्मल न रक्खे तो फिर संसार को क्या सिखा सकता है?

राजाजी और देवदास दोनों से गांधीजी ने अत्यन्त खेद प्रकट किया और कहा कि इसी समय जाकर घनश्यामदास से भी मेरा खेद प्रकट करो। उन्होंने तो मुझे जगाना भी उचित नहीं समझा, क्योंकि इस चीज को हमने तिल-भर भी महत्त्व नहीं दिया था। पर यह गांधीजी की महिमा है। 'आकाशवाणी' वाले उपवास पर भी, जो कुछ महीने बाद किया गया था, इसी तरह राजाजी और शंकरलाल पर उन्हें कुछ रोष आ गया था, जिसके लिए उन्होंने राजाजी को एक माफी की चिट्ठी भेजी थी। राजाजी ने तो उस चिट्ठी को मजाक में उड़ा दिया, क्योंकि जिस चीज को गांधीजी रोष मानते थे, वह हम लोगों की दृष्टि में कोई रोष ही नहीं था।

पर यह तो दूसरे उपवास की बात बीच में आ गई। प्रस्तुत उपवास, जिसका जिक्र चल रहा था, वह तो चला ही जाता था। सुबह होती थी और फिर शाम हो जाती थी। एक कदम भी मामला आगे नहीं बढता था। देवदास तो एक रोज कातर होकर रोने लगा। गांधीजी की स्थिति नाजुक होती जाती थी। एक तरफ अम्बेडकर कडा जी करके बातें करता था, दूसरी ओर हिन्दू नेता कई छोटी-मोटी बातो पर अड़े बैठे थे। प्रायः मोटी-मोटी सभी बातें तय हो चुकी थी, पर जबतक एक भी मसला बाकी रह जाय तबतक अंतिम समझौता आकाश-कुसुम की तरह हो रहा था और अन्तिम समझौता हुए बिना उनकी प्राण-रक्षा असम्भव थी।

हरिजनों को कितनी सीटें दी जायं, यह अम्बेडकर के साथ तय कर लिया गया था। किस प्रात मे कितने हरिजन हैं, न्यायपूर्वक उन्हें कितनी सीटें मिलें, इसका ज्ञान ठक्कर बापा को प्रचुर मात्रा में था, जो उस समय हम लोगो के काम आया। चुनाव किस तरह हो, इस पद्धति के सम्बन्ध मे भी अम्बेडकर से समझौता हो गया। पर यह पद्धति कितने साल चले, इसपर झगड़ा था। अम्बेडकर चाहता था कि चुनाव की यह पद्धति तो दस साल के बाद ही समाप्त हो, पर जो सीटें हरिजनों के लिए अलग रिजर्व की गई हैं, वे अलग रिजर्व बनी रहे या उच्चवर्ण के हिन्दुओं के साथ ही हरिजनों की सीटें भी सम्मिलित हो जाय और सबका सम्मिलित चुनाव हो, यह प्रश्न पन्द्रह साल के बाद हरिजनों के वोट लेकर उनकी इच्छानुसार निर्णय किया जाय। पर हिन्दू नेता इसके खिलाफ थे। वे चाहते थे कि सारी-की-सारी पद्धति एक अरसे के बाद, ज्यादा-से-ज्यादा दस साल के बाद, खत्म कर देनी चाहिए। उनकी दलील थी कि अछूतपन कलंक है, इसलिए दस साल में वह मिटा दिया जाय, और बाद मे राजनीति के क्षेत्र मे न कोई छूत रहे न अछूत, सबकी सम्मिलित सीटें हों।

अम्बेडकर साफ इन्कार कर गया और मामला फिर उलझ गया। गांधीजी की अपनी और राय थी। अम्बेडकर जब इस सम्बन्ध मे जेल में जाकर गांधीजी से बहस करने लगा तब गांधीजी ने कहा, "अम्बेडकर, मैं सारी सीटें बिना हरिजनों की मर्जी के सम्मिलित करने के पक्ष में नही हूं, पर मेरी राय है कि पांच साल के बाद ही हम हरिजनों की अनुमति का वोट मागें और उनकी इच्छानुसार निर्णय करें।" पर डाक्टर अम्बेडकर ने कहा कि दस साल से पहले तो किसी भी हालत में हरिजनों की अनुमति की जानकारी के लिए उनसे वोट न मागे जायं। यह बहस काफी देर तक चलती रही। गाधीजी की उत्कट इच्छा थी कि पांच साल के अन्दर-ही-अन्दर सवर्ण अपने आचरण से हरिजनों को सम्पूर्णतया अपना लें। इस काम के लिए इससे अधिक समय लग जाना कल्पना के बाहर मालूम देता था। राजाजी और मैं चिन्तित भाव से गांधीजी के मुंह की तरफ देख रहे

थे। मेरे दिल मे आता था कि जान की बाजी है, गाधीजी क्यो इतना हठ करते हैं? पर गाधीजी नि शंक थे। उनके लिए जीना-मरना प्राय एक समान था। बातें चलती रही। अन्त मे गांधीजी के मुंह से अचानक निकल गया, "अम्बेडकर, या तो पाच साल की अवधि, उसके बाद हरिजनो के मतानुसार अन्तिम निर्णय, नहीं तो मेरे प्राण।" हम लोग स्तब्ध हो गये। गाधीजी ने तीर फेंक दिया, अब क्या हो?

लम्बी सांस लेकर हम लोग वापस डेरे पर आगये। अम्बेडकर को समझाया, पर वह टस-से-मस न हुआ। उसके कट्टर हरिजन साथी डाक्टर सोलकी ने भी उसकी जिद को नापसंद किया। मैंने राजाजी से कहा, "राजाजी, क्यों पांच साल, और क्यो दस साल? हम यही क्यो न निश्चय रक्खें कि भविष्य में चाहे जब हरिजनो की अनुमति से हम इस करार को बदल सकेंगे?" राजाजी ने कहा कि गाधीजी को शायद यह पसद न आये। मैंने कहा—कुछ हम भी तो जिम्मेदारी लें। उन्हें पूछने का अब अवसर कहां है? राजाजी ने कहा—तीर चलाओ। मैंने यह प्रस्ताव अम्बेडकर के सामने रक्खा। लोगों ने इसका समर्थन किया और वह मान गया। एक समाप्ति तो हुई। पर गाधीजी की अनुमति तो बाकी थी। राजाजी जेल मे गये और गाधीजी को यह किस्सा सुनाया। उन्होंने करार के इस प्रकरण की भाषा ध्यानपूर्वक सुनी। एक बार सुनी, दो बार सुनी, अन्त मे धीरे से कहा—"साधु!" सबके मुह पर प्रसन्नता छा गई। मैं जब उनकी अनुमति मिल चुकी, तभी उनके पास पहुचा और उनके चरण छुए। बदले में उन्होंने जोर की थपकी दी। उपवास खुलने मे दो दिन और भी लगे, क्योंकि इतना समय सरकार ने यरवदा-पैक्ट की स्वीकृति देने मे लगाया। २० सितम्बर १९३२ को उपवास शुरू हुआ, २४ को यरवदा-पैक्ट बना, २६ को सरकार की स्वीकृति मिली और उपवास टूटा।

पर सारी घटना में देखने लायक चीज यह थी कि मौत की साक्षात् मूर्ति भी गाधीजी को एक तिल भी दायें-बायें नही डिगा सकी थी। सभी उपवासो मे इनका यही हाल रहा। राजकोट के उपवास में भी एक तरफ मृत्यु की तैयारी थी, वमन जारी था, बेचैनी बढती जा रही थी, और दूसरी तरफ वाइसराय से लिखा-पढ़ी करना और महादेवभाई और मुझको (दोनो-के-दोनो हम दिल्ली मे थे) सदेश भेजना जारी था। इसमे कोई शक नहीं कि हर उपवास में अन्तिम निर्णय—चाहे वह निर्णय हरिजन और उच्चवर्ण के नेताओ के बीच हुआ हो, चाहे वाइसराय और गाधीजी के बीच—गांधीजी की मृत्यु के डर के बोझ के नीचे दबकर हुआ। किसी मर्तबा भी शातिपूर्वक सोचने के लिए न समय था, न अवसर मिला। फिर भी गांधीजी कहते हैं कि "उतावलापन हिंसा है।" तुलसीदासजी ने जब यह कहा कि "समरथ को नहिं दोष गुसाईं" तब उन्होंने यह कोई व्यग्योक्ति

नहीं की थी। असल बात भी यह है कि समर्थ मनुष्य के तमाम कामों में एकरंगापन देखना, यह बिलकुल भूल है। एकरंगापन यह जरूर होता है कि हर समय हर काम के पीछे सेवा होती है, शुद्ध भावना होती है। हर काम यज्ञार्थ होता है, पर तो भी हर काम की शक्ल परस्पर निरोधात्मक भी हो सकती है।

ग्यारह

गांधीजी के उपवासों की काफी समालोचना हुई है, और लोगों ने काफी पुष्टि भी की है। पर साधारण वाद-विवाद से क्या निर्णय हो सकता है ? उपवास एक व्यक्ति के द्वारा किये जाने पर पापमय और केवल धरना भी हो सकता है, और दूसरे के द्वारा वही चीज धर्म और कर्त्तव्य भी हो सकती है।

बात सारी-की-सारी मंशा की है। उपवास यज्ञार्थ है क्या ? फलासक्ति त्याग कर किया जा रहा है क्या ? शुद्ध बुद्धि से किया जा रहा है क्या ? करनेवाला सात्विक पुरुष है क्या ? ईर्ष्या-द्वेष से रहित है क्या ? इन सब प्रश्नों के उत्तर पर उपवास धर्म है या पाप है, इसका निर्णय हो सकता है। पर निरी उपयोगिता की दृष्टि से भी हम उपवास-नीति के शुभ-अशुभ पहलू सोच सकते हैं।

संसार को उलटे मार्ग से हटाकर सीधे मार्ग पर लाने के लिए ही महापुरुषों का जन्म होता है। भिन्न-भिन्न महापुरुषों ने अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण किया। पर इन सब मार्गों के पीछे लक्ष्य तो एक ही था। नीति की स्थापना और अनीति का नाश—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

पर इस लक्ष्य-पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न महापुरुषों के साधनों की बाहरी शक्ल-सूरत में अवश्य ही भेद दिखाई देता है। प्रजा को सुशिक्षण देना, उसकी सोई हुई उत्तम भावनाओं को जाग्रत करना, इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति महापुरुष अपने खुद के आचरण द्वारा और उपदेश-आदेश द्वारा करते हैं। 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः' यह श्रीकृष्ण ने कहा। गांधीजी कहते हैं, "जैसे शारीरिक व्यायाम द्वारा शारीरिक गठन प्राप्त हो सकता है और बौद्धिक व्यायाम द्वारा बौद्धिक विकास, वैसे ही आत्मोन्नति के लिए आध्यात्मिक व्यायाम जरूरी है और आध्यात्मिक व्यायाम का आधार बहुत अंश में गुरु के जीवन और चरित्र पर निर्भर करता है। गुरु यदि शिष्यों से मीलों दूर भी हो, तो भी अपने चरित्र-

बल से वह शिष्यों के चरित्रों को प्रभावित कर सकता है। यदि मैं स्वयं झूठ बोलता हूं, तो अपने लड़कों को सत्य की महिमा कैसे सिखा सकता हूं ? एक कायर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को बहादुर नहीं बना सकता, न एक भोगी अध्यापक बालकों को आत्मनिग्रह सिखा सकता है। इसलिए मैंने यह देख लिया कि मुझे, कुछ नहीं तो अपने बालकों के लिए ही सही, सत्यवान, शुद्ध और शुभकर्मी बनना चाहिए।" इसलिए सभी महापुरुषों ने अपने चरित्र और उपदेशों द्वारा ही धर्म का प्रचार किया है। धर्म की वृद्धि से अधर्म का स्वत. ही नाश होता है। पर कभी-कभी अधर्म पर सीधा प्रहार भी महापुरुषों ने किया है और अनीति का नाश करने के साधनों का जब हम अवलोकन करते हैं तो मालूम होता है कि महापुरुषों के इन साधनों के बाहरी स्वरूप में काफी भेद रहा है।

श्रीकृष्ण ने भूमि का भार हलका किया, अर्थात् ससार में पापों का बोझ कम किया, तब जिन साधनों का उपयोग किया, उनके बाहरी रूप में और बुद्ध के साधनों के बाहरी रूप में अवश्य भेद मिलता है। महाभारत का युद्ध, कस का नाश, शिशुपाल और जरासंध इत्यादि दुष्ट राजाओं का श्रीकृष्ण के द्वारा वध होना आदि घटनाएं हम ऐतिहासिक मान लें, तो यह कहना होगा कि श्रीकृष्ण का भूमि-भार हरने का तरीका और बुद्ध का तरीका बाहरी स्वरूप में भिन्न-भिन्न थे। पर हम कह सकते हैं कि मूल तो दोनों तरीका का एक ही है। जिनका वध किया उनसे श्रीकृष्ण को न द्वेष था, न ईर्ष्या थी, न उन्हें उनके प्रति क्रोध था।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

यह लक्ष्य था और जिस तरह एक विज्ञ जर्राह रोगी के सड़े अग को रोगी की भलाई के लिए ही काटकर फेंक देता है, उसी तरह श्रीकृष्ण ने और श्रीरामचन्द्र ने समाज की रक्षा के लिए, और जिनका वध किया गया, उनकी भी भलाई के लिए, दुष्टों का दमन किया। जिनका वध किया गया—जैसे रावण, कंस, जरासंध इत्यादि, उन्हें भी श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण ने सुगति ही दी, ऐसा हमारे पुराण बताते हैं।

महापुरुषों ने दुष्टों का वध किया, इसलिए हमें भी ऐसा ही करना चाहिए, ऐसी दलील तो हिंसा के पक्षपाती चटपट दे डालते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि ये वध बिना क्रोध, द्वेष, फलासक्ति से रहित होकर समाज की रक्षा के लिए किये गए थे, और जो मारे गये उन्हें भगवान् द्वारा सुगति मिली। इसलिए मूल में तो राम क्या, कृष्ण क्या और बुद्ध क्या, सभी समानतया अहिंसावादी थे। राम और कृष्ण के साधनों का बाहरी रूप हिंसात्मक दिखाई देते हुए भी उसे हिंसा नहीं कह सकते, क्योंकि "न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा" और फिर—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

इन वचनो को यदि हम ध्यानपूर्वक सोचें तो सहज ही समझ में आ जायगा कि श्रीकृष्ण हिंसा से उतने ही दूर थे जितने कि बुद्ध।

गांधीजी ने भी बछड़े की हत्या करके उसे अहिंसा बताया; क्योंकि मार देना मात्र ही हिंसा नही है :

यस्य नाहकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥

हिंसा-अहिंसा का निर्णय करने के लिए हमें यह भी जानना जरूरी है कि मारनेवाले ने किस मानसिक स्थिति मे किस भावना से वध किया है। वध करने वाले की मानसिक स्थिति और भावना ही हमे इस निर्णय पर पहुंचा सकती है कि अमुक कर्म हिंसा है या अहिंसा। पर राग-द्वेष से रहित होकर, अक्रोधपूर्वक, शुद्ध भाव से लोक-कल्याण के लिए किसी का वध करनेवाला क्या कोई साधारण पुरुष हो सकता है ? वह तो कोई असाधारण दैवी पुरुष ही हो सकता है। इसके माने यह भी हुए कि उत्तम उद्देश्य के लिए भी हिंसात्मक शस्त्र-ग्रहण साधारण मनुष्य का धर्म नही बन सकता। राग, द्वेष, क्रोध और ईर्ष्या से जकड़े हुए हम न तो हिंसा-शस्त्र धर्मपूर्वक चला सकते हैं, न राग-द्वेष के कारण जिनकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है वे यही निर्णय कर सकते हैं कि वध के योग्य दुष्ट कौन है। राग-द्वेष से रहित हुए बिना हम यह भी तो सही निर्णय नही कर सकते कि दुष्ट हम हैं या हमारा विरोधी। यदि हम दुष्ट हैं और हमारा विरोधी सज्जन है, तो फिर लोक-कल्याण का बहाना लेकर हम यदि हिंसा-शस्त्र का उपयोग करते हैं तो पाप ही करते हैं और आत्म-वचना भी करते हैं। असल मे तो अनासक्ति-पूर्वक हिंसा-शस्त्र का उपयोग केवल उन उच्च महापुरुषो के लिए ही सुरक्षित समझना चाहिए, जिनमें कमल की तरह जल में रहते हुए भी अलिप्त रहने की शक्ति है। इसलिए साधारण आदमियों का निर्दोष धर्म तो केवल अहिंसात्मक ही हो सकता है।

जो अहिंसक नही बन सका, वह आत्म-रक्षा के लिए हिंसा का प्रयोग करे, पर वहां तुलना हिंसा और अहिंसा के बीच नही है। तुलना है कायरता और आत्म-रक्षा के लिए की गई हिंसा के बीच, और कायरता अवश्य ही आत्म-रक्षा के लिए की गई हिंसा से भी बुरी है। कायरता तमःप्रधान है। पर आत्म-रक्षा के लिए की गई हिंसा रजोगुणी भी हो सकती है। किन्तु आत्म-रक्षा के लिए की गई हिंसा भी शुद्ध धर्म नहीं, अपेक्षाकृत धर्म ही है। शुद्ध धर्म तो अहिंसा ही है।

स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि डकैती के लिए एक डाकू हिंसा करता है, तो वह निकृष्ट पाप करता है। आत्म-रक्षा के लिए, देश या धर्म की रक्षा के लिए की गई हिंसा, यदि न्याय हमारे साथ है, तो उस डकैत द्वारा की

गई हिंसा की तुलना मे धर्म है। पर अच्छे हेतु के लिए अनासक्त होकर की गई हिंसा अहिंसा ही है और इसलिए शुद्ध धर्म है। उसी तरह कायरता लेकर धारण की गई अहिंसा, अहिंसा नही, पाप है। अशोक वीर था। उसने दिग्विजय के बाद सोचा कि साम्राज्य-स्थापना के लिए की गई हिंसा पाप है। इसलिए उसने क्षमा-धर्म का अनुसरण किया। वह वीर की क्षमा थी; पर उसी का पौत्र अपनी कायरता ढांकने के लिए अशोक की नकल करने लगा। उसमे न क्षमा थी, न शौर्य था। उसमें थी कायरता। इसलिए कवियो ने उसे मोहात्मा के नाम से पुकारा। बलिष्ठ की अहिंसा ही, जो विवेक के साथ है, शुद्ध अहिंसा है। वह एक सत्त्वगुणमयी वृत्ति है। कायर की अहिंसा और डाकू की हिंसा दोनो पाप हैं। अनासक्त की हिंसा और बलिष्ठ द्वारा विवेक से की गई अहिंसा दोनो धर्म और अहिंसा हैं।

पर धर्म की गति तो सूक्ष्म है। मनुष्य क्रोध के वश या लोभ के वश हिंसक-वृत्ति पर आसानी से संयम नही कर पाता। इसलिए गाधीजी ने हिंसा को त्याज्य और अहिंसा को ग्राह्य माना। गाधीजी स्वय जीवन्मुक्त दशा मे, चाहे वह दशा क्षणिक—जब निर्णय किया जा रहा हो उस घडी के लिए ही—क्यो न हो, अहिंसात्मक हिंसा भी कर सकें, जैसे कि बछड़े की हिंसा, पर साधारण मनुष्य के लिए तो वह कर्म कौए के लिए हस की नकल होगी। इसलिए सबके लिए सरल, सुगम और स्वर्णमय मार्ग अहिंसा ही है, ऐसा गाधीजी ने मानकर अहिंसा-धर्म की वृद्धि की है। उपवास की प्रवृत्ति भी इसी में से जन्मी।

हिंसा को पूर्णतया त्याज्य मानने के बाद भी ऐसे शस्त्र की जरूरत तो रह ही जाती है, जिससे अधर्म का नाश हो। धर्म को अत्यन्त प्रगति मिलने पर भी अधर्म का नाश होता है, पर अधर्म का नाश होने पर भी तो धर्म की प्रगति का आधार रहता है। दोनो अन्योन्याश्रित हैं। मनुष्य हमसे वादाखिलाफी करता है, जैसा कि राजकोट मे हुआ था, या तो हम पर कोई जबरन एक ऐसी भयंकर चीज लादता है कि जो जबर्दस्त प्रतिवाद के बिना नही रोकी जा सकती— जैसा कि हरिजन साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में हुआ, तब अहिंसा-शस्त्रधारी ऐसी परिस्थिति मे क्या करे? हिंसा को तो उसने त्याज्य माना है। इसलिए उसे तो ऐसे ही शस्त्र का प्रयोग करना है, जो जनता की आत्मा को अधर्म के खिलाफ उत्तेजन दे, पर जनता का क्रोध न बढाये, जनता मे द्वेष पैदा न होने दे, जो बुराई को छेदन करने के लिए तो लोगों को उकसाये, पर साथ ही बुराई करनेवालो को भय से मुक्त कर दे। हमारा एक निकटस्थ बुरी लत मे फंसा है, उसको हम कैसे बुरे मार्ग से हटायें? उसे व्याकुल तो करना है, पर हिंसा के शस्त्र से नही, प्रेम के द्वारा। ऐसी तमाम परिस्थितियों के लिए कई अहिंसात्मक उपायो का विधान हो सकता है। ऐसे विधानो मे उपवास एक रामबाण शस्त्र है, जिसका गांधीजी ने बार-बार प्रयोग किया।

उपवास मे कोई बलात्कार नही होता, यह कौन कहता है ? पर बलात्कार होने मात्र से ही तो हिंसा नही हो सकती। प्रेम का भी तो बलात्कार होता है। प्रेम के प्रभाव मे हम कभी-कभी अनिच्छापूर्वक भी काम कर लेते हैं। पर प्रेम के वश अनिच्छा से यदि हम कोई पाप करते हैं तो उससे बुराई होती है। यदि, अनिच्छापूर्वक ही सही, हम पुण्य करते हैं तो समाज को उसका अच्छा फल मिल ही जाता है। असल बात तो यह है कि हिंसक नेता हमारी मानसिक निर्बलता का लाभ उठाकर अपने हिंसक शस्त्रों द्वारा हमे डराकर हमसे पाप कराता है। अहिंसक नेता हमारी धर्म-भीरुता को उकसाकर हमें अपने प्रेम से प्रभावित करके हमसे पुण्य कराता है। इसका यह भी फल होता है कि पाप के नीचे हमारी दबी हुई अच्छी प्रवृत्तियां स्वतन्त्र बनती हैं। इस तरह पहले जो काम प्रेम के बलात्कार से किया, वही हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से करने लगते हैं। परतन्त्रता को खोकर इस तरह हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेते हैं। आदर्श स्थिति तो अवश्य ही वह होगी कि अहिंसात्मक नेता को कोई बल-प्रयोग करना ही न पड़े, पर ऐसी स्थिति तो सतयुग की ही हो सकती है। महापुरुष के जन्म की पहली शर्त ही यह है कि समाज निर्बल है, अधर्म का जोर है, जुल्मों के मारे समाज त्रस्त है, उसे धर्म की प्यास है, जिसे मिटाने के लिए महापुरुष जन्म लेता है। यदि धर्म हो, निर्बलता न हो, तो क्यो तो महापुरुष के आने की जरूरत हो और क्यों उपवास की आवश्यकता हो ? क्यों उपदेश और क्यो सुशिक्षण की ही आवश्यकता हो ?

पर इसके माने यह भी नही कि हर मनुष्य इस उपवास-रूपी अहिंसा-शस्त्र का उपयोग करने का पात्र है। अहिंसात्मक हिंसा, जिसका प्रयोग राम, कृष्ण इत्यादि ने और गांधीजी ने बछडे पर किया, उसके लिए तो असाधारण पात्रता की जरूरत होती है, पर हिंसात्मक शस्त्र के लिए भी तालीम की जरूरत पडती है। तलवार, गदका, पटा, निशानेबाजी की कला सीखने को फौजी सिपाहियों को जरूरत होती है और उस तालीम के बाद ही वे अपने शस्त्रों का निपुणता से प्रयोग कर सकते हैं। इसी तरह उपवास के लिए भी, यदि अहिंसामय उपवास करना है, तो पात्रता की आवश्यकता है। सभी लोग अहिंसात्मक उपवास नही कर सकते। 'धरना' देना एक चीज है, धार्मिक उपवास दूसरी चीज। पर 'धरना' में धर्म कहा, और अहिंसा कहा ? 'धरना' ज्यादातर तो निजी स्वार्थ के लिए होता है। पर कुछ उपवास पाखण्ड और विज्ञापनबाजी के लिए भी लोग करते हैं। ऐसे उपवासो से कोई विशेष बलात्कार न भी हो, तो भी उनको हम अधार्मिक उपवासो की श्रेणी मे ही गिन सकते हैं। इसकी चर्चा का यह स्थान नही है। हम तो धार्मिक उपवास की ही चर्चा कर रहे हैं। यह समझना जरूरी है कि धार्मिक उपवास का जो प्रयोग करना चाहता है उसे पहले पात्रता सम्पादन करनी चाहिए। वह इसलिए कि हर धार्मिक उपवास मे बलात्कार की सम्भावना रहती है।

अधार्मिक उपवास में बलात्कार हो भी, तो लोग उसकी अवहेलना कर जाते हैं और अवहेलना करनी भी चाहिए, क्योंकि उसमें बल-प्रयोग के पीछे कोई नीति या धर्म नहीं होता। इसलिए ऐसे उपवास करनेवालों के सामने झुकना भी अधर्म है। पर धार्मिक उपवास में चूंकि सफल बल-प्रयोग की सम्भावना है, उपवास करनेवाले को ज्यादा सावधानी और ज्यादा पात्रता की आवश्यकता होती है।

इसीलिए राजकोट के उपवास के बाद गांधीजी ने लिखा, "सत्याग्रह के शस्त्रागार में उपवास एक बलिष्ठ शस्त्र है। पर इसके सभी पात्र नहीं होते। जिसकी ईश्वर में सजीव श्रद्धा न हो, वह सत्याग्रही उपवास का अधिकारी नहीं हो सकता। यह कोई नकल करने की चीज नहीं है। अत्यन्त अन्तर्वेदना हो तभी उपवास करना चाहिए, और इसकी आवश्यकता भी असाधारण मौकों पर ही होती है। ऐसा लगता है, मानो मैं उपवास के लिए अधिक उपयुक्त बन गया हूं। हालांकि उपवास एक शक्तिशाली शस्त्र है, इसकी मर्यादाएं अत्यन्त कठोर हैं; इसलिए जिन्होंने इसका शिक्षण नहीं पाया, उनके लिए उपवास कोई मूल्यवान चीज नहीं है, और जब मैं अपने माप-दण्ड से उपवासों को मापता हूं, तो मुझे लगता है कि अधिकतर उपवास जो लोग करते हैं वे सत्याग्रह की श्रेणी में आ ही नहीं सकते। वे तो महज 'धरना' या 'भूख-हड़ताल' के नाम से ही पुकारे जाने चाहिए।"

'अन्दरूनी आवाज' सुनने की तथा उपवासों की नकल कई लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए की है। कुछ लोग पाखण्ड भी करते हैं। पर कौन-सी अच्छी वस्तु का दुरुपयोग नहीं हुआ? किसी चीज का दुरुपयोग होता है, केवल इसीलिए वह चीज बुरी नहीं बन जाती। असल बात तो यह है कि हर चीज में विवेक की जरूरत है। इसलिए गांधीजी ने यद्यपि आकाशवाणी भी सुनी और कई उपवास भी किये, तो भी प्रायः अपने लेखों में इन दोनों चीजों के सम्बन्ध में वह सावधानी से काम लेने की लोगों को सलाह देते हैं। मैंने देखा है कि वह प्रायः 'अन्तर्नाद' की बात करनेवाले को शक की निगाह से देखते हैं और उपवास करनेवालों को प्रायः बिना अपवाद के अनुत्साहित करते हैं, और यह सही भी है।

बारह

गांधीजी का ध्यान करते ही हमारे सामने सत्याग्रह का चित्र उपस्थित होता है। जैसे दूध के बिना हम गाय की कल्पना नहीं कर सकते, वैसे ही सत्याग्रह के बिना

गाधीजी की कल्पना नही होती। गांधीजी तो सत्याग्रह का अर्थ अत्यन्त व्यापक करते हैं। वह इसकी व्याख्या सविनय कानून-भंग तक ही सीमित नही करते। सविनय कानून-भग सत्याग्रह का एक अग-मात्र है, पर हरिजन-कार्य भी उनकी दृष्टि से उतना ही सत्याग्रह है, जितना कि सविनय कानून-भंग। चरखा चलाना भी सत्याग्रह है। सत्य, ब्रह्मचर्य, ये सारे सत्याग्रह के अंग हैं।

सत्याग्रह, अर्थात् सत्य का आग्रह। इसी चित्र को सामने रखकर सत्याग्रह-आश्रम के वासियों को सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अपरिग्रह, अभयत्व, अस्पृश्यता-निवारण, कायिक परिश्रम, सर्व-धर्म-समभाव, नम्रता, स्वदेशी, इन एकादश व्रतों का पालन करना पड़ता है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि ये एकादश व्रत ही सत्याग्रह के अंग है। सविनय कानून-भंग—नम्रता, सत्य, अहिंसा और अभयत्व के अन्तर्गत प्रकारान्तर से आ जाता है। इसे कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं है। फिर भी साधारण जनता तो यही समझती है कि सत्याग्रह के माने ही हैं सविनय कानून-भंग। 'सविनय' का महत्त्व भी कम ही लोग महसूस करते हैं। सत्याग्रह का अर्थ है कानून-भग, साधारण जनता तो इतना ही जानती है। आश्चर्य है कि इन चालीस सालो के निरन्तर प्रयत्न के बाद भी यह गलतफहमी चली ही जा रही है। आमतौर से सभी तरह के अवैध विरोध का नाम आजकल सत्याग्रह पड़ गया है। जो लोग कानून-भग मे शुद्ध सत्याग्रह का आचरण नही करते, वे कानून-भंग को सत्याग्रह का नाम न देकर यदि महज 'नि:शस्त्र प्रतिकार' कहें, तो सत्याग्रह की ज्यादा सेवा हो।

गाधीजी मे यह शुद्ध सत्याग्रह बचपन से ही रहा है, पर सविनय आज्ञा-भंग का स्थूल दर्शन सर्वप्रथम अफ्रीका में होता है। अफ्रीका पहुंचते ही इन्हे प्रिटोरिया जाना था, इसलिए डरबन से प्रिटोरिया के लिए रवाना हुए। फर्स्ट क्लास का टिकट लेकर गाड़ी मे आराम से जाकर बैठ गये। रात को नौ बजे एक दूसरा गोरा मुसाफिर उसी डिब्बे में आया। गाधीजी को उसने एडी से चोटी तक देखा और फिर बाहर जाकर एक रेलवे अफसर को लेकर वापस लौटा। अफसर ने आते ही कहा :

"उठो, तुम यहा नही बैठ सकते, तुम्हे दूसरे नीचे दर्जे के डिब्बे में जाना होगा।"

"पर मेरे पास तो फर्स्ट का टिकट है।"

"रहने दो बहस को, उठो, चलो दूसरे डिब्बे मे।"

"मैं साफ कहे देता हूं कि मैं इस डिब्बे से ऐसे नही निकलने वाला हूं। मेरे पास टिकट है और अपनी यात्रा इसी डिब्बे मे समाप्त करना चाहता हूं।"

"तुम सीधी तरह नहीं मानोगे। मैं पुलिस को बुलाता हू।"

पुलिस कॉन्सटेबल आया। उसने गांधीजी को हाथ पकडकर बाहर निकाल

दिया और इनका सामान भी बाहर पटक दिया। इन्होंने दूसरे डिब्बे में जाना स्वीकार नहीं किया और गाड़ी इन्हें बिना लिये ही छूट गई। यह मुसाफिरखाने में चुपचाप जा बैठे। सामान भी रेलवेवालों के पास रहा। रात को भयंकर जाड़ा पड़ता था, उसके मारे ये ठिठुरे जाते थे। "मैं अपने कर्तव्य का विचार करने लगा। क्या मुझे अपने हक-हकूकों के लिए लड़ना चाहिए ? या अपमान को सहन करके भी प्रिटोरिया जाना चाहिए और मुकदमा समाप्त होने पर ही वहां से लौटना चाहिए ? अपना कर्तव्य पूरा किये बिना भारत लौटना मेरी नामर्दी होगी। यह काले-गोरे के भेदभाव का रोग तो गहरा था। मेरा अपमान तो रोग का एक लक्षण-मात्र था। मुझे तो रोग को जड़-मूल से खोदकर नष्ट करना चाहिए और उस प्रयत्न में जो भी कष्ट आये उसे सहन करना चाहिए। यह निश्चय करके मैं दूसरी गाड़ी में प्रिटोरिया के लिए रवाना हुआ।"

डरबन से प्रिटोरिया पहुंचने के लिए रेल से चार्ल्सटाउन पहुंचना था। वहां से घोड़ा-गाड़ी की डाक थी, उसमें सफर करना और जोहान्सबर्ग पहुंचकर वहां से फिर रेल पकड़कर प्रिटोरिया पहुंचना था। गांधीजी दूसरी गाड़ी पकड़कर चार्ल्सटाउन पहुंचे। पर अब यहां से फिर घोड़ा-गाड़ी की डाक में यात्रा करनी थी। रेल के टिकट के साथ ही उन्होंने घोड़ा-गाड़ी का टिकट भी खरीद लिया था। घोड़ा-गाड़ी के एजेण्ट ने जब देखा कि यह तो सांवला आदमी है, तो इनसे कहा कि तुम्हारा टिकट तो रद्द हो चुका है। गांधीजी ने उसे उपयुक्त उत्तर दिया तो वह चुप हो गया, पर मूल में जो कठिनाई काले-गोरे की थी वह कैसे दूर हो सकती थी ? गोरे यात्री तो सब गाड़ी के भीतर बैठे थे। इन्हें गोरों के साथ तो बिठाया नहीं जा सकता था, इसलिए बग्घी का संचालक जो कोचमैन की बगल में बैठा करता था वह तो स्वयं भीतर बैठ गया और इन्हें कोचमैन की बगल में बिठाया।

यह अपमान था, पर गांधीजी इस जहर के घूंट को पी गये। गाड़ी चलती रही। कुछ घण्टे बीत गये। अब गाड़ी के संचालक को तम्बाकू पीने की इच्छा हुई, इसलिए उसने बाहर बैठने की ठानी। उसकी जगह तो गांधीजी बैठे थे और गांधीजी को भीतर बैठाया जा नहीं सकता था। इस समस्या को भी उसने गांधीजी का और अपमान करके ही हल करना निश्चय किया। कोचमैन की दूसरी तरफ एक गन्दी-सी जगह बची थी, उसकी तरफ लक्ष्य करके गांधीजी से कहा, "अब तू यहां बैठ, मुझे तम्बाकू पीना है।" यह अपमान असह्य था। गांधीजी ने कहा, "मेरा हक तो भीतर बैठने का था। तुम्हारे कहने से मैं यहां बैठा। अब तुम्हें तम्बाकू पीना है, इसलिए मेरी जगह भी तुम्हें चाहिए ! मैं भीतर तो बैठ सकता हूं, पर और दूसरी जगह के लिए मैं अपना स्थान खाली नहीं कर सकता।" बस, इतना कहना था कि तपाक से उसने गांधीजी को तमाचा मारा। इनका हाथ

पकड़कर इन्हें नीचे गिराने की कोशिश करने लगा। पर यह भी गाड़ी के डण्डे से चिपटकर अपने स्थान पर जमे रहे।

दूसरे यात्री यह तमाशा चुपचाप देखते थे। गाड़ी का संचालक इन्हें पीट रहा था, गालियां दे रहा था, खींच रहा था और यह गाड़ी से चिपके हुए थे, पर शांत थे। वह बलिष्ठ था, यह दुर्बल थे। यात्रियों को दया आई। एक ने कहा, "भाई, जाने भी दो, क्यों गरीब को मारते हो?" उसका क्रोध शांत तो नहीं हुआ, पर कुछ शर्मा गया। इन्हें जहां-का-तहां बैठने दिया। गाड़ी अपने मुकाम पर पहुंची। वहां से फिर रेल पकड़ी, पर फिर वही मुसीबत। गार्ड ने पहले इनसे टिकट मांगा, फिर बोला, "उठो, थर्ड में जाओ।" फिर झंझट शुरू हुई, पर एक अंग्रेज यात्री ने बीच में पड़कर मामला शांत किया और यह सही-सलामत प्रिटोरिया पहुंचे।

सविनय अवज्ञा-भंग का गांधीजी के लिए यह पहला पाठ था। उनकी इस वृत्ति का प्रथम दर्शन शायद यहीं से होता है। ऐसे मौके पर ऐसा करना चाहिए, यह शायद उन्होंने निश्चय नहीं कर रखा था। पर ऐन मौके पर अचानक विवेक-बुद्धि आज्ञा-भंग करने के लिए उभारती है और वह सविनय आज्ञा भंग करते हैं। मार खाते हैं, पर मारनेवाले पर कोई क्रोध नहीं है। न इन्हें उस पर मुकदमा चलाने की रुचि होती है। इस तरह पहले पाठ का प्रयोग सफलतापूर्वक समाप्त होता है।

यह जो छोटी-सी चीज जाग्रत हुई, वह फिर बृहत् आकार धारण कर लेती है। पर यह कोरा आज्ञा-भंग नहीं है। सविनय है, जो कि सत्याग्रह की एक प्रधान शर्त है। सत्याग्रह उनके लिए कोई राजनैतिक शस्त्र नहीं है। आदि से अन्त तक उनके लिए यह धार्मिक शस्त्र है, जिसका उपयोग वह राजनीति में, घर में, हर समय, हर हालत में करते हैं।

बा को एक मर्तबा बीमारी होती है। चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ, तो गांधीजी ने अपनी जल-चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग शुरू किया। इन्हें लगा कि बा को नमक और दाल का त्याग करना चाहिए, पर बा को यह राय पसन्द न आई। एक रोज बहस करते-करते बा ने कहा, "यदि आपको भी दाल और नमक छोड़ने को कहा जाय, तो न छोड़ सकेंगे।" "तुम्हारी यह भूल है। यदि मैं बीमार पड़ूं और मुझे डाक्टर इन चीजों को छोड़ने के लिए कहे तो मैं अवश्य छोड़ दूं। पर लो मैं तो एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़ देता हूं, तुम छोड़ो या न छोड़ो। बा बेचारी घबरा गईं, फिजूल की आफत मोल ली। "मैं दाल और नमक छोड़ती हूं, पर आप न छोड़ें।" पर गांधीजी ने तो बातों-ही-बातों में प्रतिज्ञा ले ली थी। अब उससे टलनेवाले थोड़े ही थे। बा ने भी सन्तोष किया। इस घटना का जिक्र करते हुए गांधीजी कहते हैं, "मैं मानता हूं कि मेरा

यह सत्याग्रह मेरे जीवन की स्मृतियों मे सबसे ज्यादा सुखद है।"

ये दो घटनाएं गांधीजी की शुद्ध सत्याग्रह की नीति की रूपरेखा हमारे सामने रखती हैं। यद्यपि एक घटना एक अनजान के साथ घटती है, जो इनके प्रति क्रुद्ध था, और दूसरी घटती है एक निकटस्थ के साथ, जो हठ के कारण अपने प्रिय भोजन को स्वास्थ्य की अपेक्षा ज्यादा महत्त्व देती थी, पर दोनो मे भावना एक ही काम करती है। दोनो में हृदय-परिवर्तन की इच्छा है। दोनो मे स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन करने की नीति है। दोनो मे क्रोध या आवेश का अभाव है। इन घटनाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद हम देख सकेंगे कि इनके बाद के बड़े-से-बड़े राजनैतिक सग्रामो मे वही भावना, वही प्रवृत्ति रही है, जो इन दो घटनाओं मे हमे मिलती है—अक्रोध से क्रोध को जीतना, दूसरो की उत्तम भावना को स्वयं कष्ट सहकर जाग्रत करना। सत्याग्रह के शस्त्र का इन्होने जीवन की हर क्रिया मे उपयोग किया है। पर इस शस्त्र को अधिक ख्याति राजनीति मे मिली है, इसलिए राजनीति मे कुछ कार्यों का सिंहावलोकन सत्याग्रह की नीति को ठीक-ठीक समझने मे हमारे लिए ज्यादा सहायक हो सकता है।

गांधीजी ने सरकार के साथ कई लडाइया लडी और कई मर्तबा सरकार के संसर्ग मे आये। इन सभी लडाइयो मे या ससर्गों मे सत्याग्रह की झलक मिलती है, पर मेरा खयाल है कि १९१४-१८ का यूरोपीय महाभारत, और उसी जमाने मे किया गया चम्पारन-सत्याग्रह और वर्तमान यूरोपीय महाभारत, ये तीन प्रकरण इनके स्वदेश लौटने के बाद ऐसे हुए है कि जिनमें हमे शुद्ध सत्याग्रह का दिग्दर्शन होता है। अफ्रीका का सत्याग्रह-सचालन तो इनके अखड आधिपत्य मे हुआ था। इसलिए उस सत्याग्रह मे शुद्ध सत्याग्रह की नीति का ही अनुसरण हुआ। पर १९२०-२२ और १९३०-३२ की लडाइया विस्तृत थी, और अधिनायकी इनकी होते हुए भी अनेकों तक यह सत्याग्रह फैल गया था। उसका नतीजा यह हुआ कि सत्याग्रह सर्वांश मे सत्याग्रह न रहा। इन लडाइयो मे सत्याग्रह के साथ-साथ दुराग्रह भी चला।

यह सही है कि लोग शरीर से कोई हिंसा नही करते थे; पर जबान और दिल मे जहर की कमी न थी।

इटली और तुर्की के बीच कई साल पहले जब युद्ध छिड़ा तब अकबर साहब ने लिखा था .

न सीने में जोर है न बाज़ू में बल,
कि टरकों के दुश्मन से जाकर लड़ें;
तहेदिल से हम कोसते हैं मगर
कि इटली की तोपों में कीड़े पड़ें।

ऐसे सैंकड़ों सत्याग्रही थे, जिनके बारे मे थोड़े से हेर-फेर के साथ यह शेर कहा

जा सकता था। 'इंग्लैंड के फेफड़ों में कीड़े पड़ें' ऐसी मिन्नत मनानेवालों की भी क्या कमी थी! पर पिछले यूरोपीय महाभारत और वर्तमान यूरोपीय युद्ध में इनकी जो नीति रही, उसमें शुद्ध गांधीवाद का प्रदर्शन हुआ है।

तेरह

पिछला यूरोपीय युद्ध और वर्तमान यूरोपीय युद्ध, ये ऐसी बड़ी घटनाएं हैं, जिन्होंने संसार के हर पहलू को प्रभावित किया है और भविष्य में करेंगी। असल में तो वर्तमान युद्ध के जन्म के पीछे छिपा हुआ कारण तो पिछला युद्ध ही है और ये दोनों युद्ध संसार की बृहत् बीमारी के चिह्न-मात्र हैं। बीमारी तो कुछ दूसरी ही है। मालूम होता है कि जैसे पृथ्वी के गर्भ में तूफान उठता है उसे हम देख नहीं पाते और भूकम्प होने पर ही हमें उसकी खबर होती है, वैसे ही मानव-समाज में भी जो आग भीतर-ही-भीतर वर्षों से दहक रही थी उसे हमने युद्ध होने पर ही सम्यक् प्रकार से देखा है। पिछला युद्ध एक तरह का भूकम्प था। प्रेसीडेंट विलसन ने उस भूकम्प का निदान किया। बरतानिया के प्रधान मंत्री लायड जार्ज को भी स्थिति स्पष्ट दिखाई दी। पर दोनों की मानसिक निर्बलता ने इन्हें लाचार बना दिया। विजय के मद में ये लोग रोग को भूल गये। रोग की चिकित्सा न करके लक्षणों को दबाने की कोशिश की गई। नतीजा यह हुआ कि एक जबर्दस्त विस्फोटक मानव-समाज के अंग में फूट निकला है, जिसके दर्द के मारे सारी सृष्टि व्याकुलता से कराह रही है।

इन दोनों महाभारतों में गांधीजी ने क्या किया, यह एक अध्ययन करने लायक चीज है। गांधीजी की राजनीति में धर्मनीति प्रधान होती है। यूरोपीय महाभारतों से बढ़कर दूसरा राजनीति का प्रकरण इस सदी में और कोई नहीं हुआ। इन दोनों राजनैतिक प्रकरणों में गांधीजी ने राजनीति और धर्म का कैसे समन्वय किया, यह एक समालोच्य विषय हो सकता है, पर हर हालत में वह गांधीजी के व्यक्तित्व पर एक तेज प्रकाश डालता है। गांधीजी की प्रथम यूरोपीय युद्ध के बाद की नीति में इतना फर्क अवश्य पड़ा है कि इंग्लैंड के राज्यशासन में जो इनका अटूट विश्वास था वह मिट गया, पर उसके मिटने से पहले इन्हें कई आघात लगे, जिन्होंने उस विश्वास की सारी बुनियाद को तहस-नहस कर दिया।

"ब्रिटिश राज्य-शासन में मेरी जितनी श्रद्धा थी उससे बढ़कर किसी की हो ही नहीं सकती थी। मैं अब सोचता हूं तो मुझे लगता है कि इस राजभक्ति की

जड मे तो मेरी सत्यप्रियता ही थी। मैं ब्रिटिश शासन के दुर्गुणो से अनभिज्ञ न था, पर मुझे उस समय ऐसा लगता था कि गुण-अवगुणो के जमा-खर्च के बाद ब्रिटिश शासन का जमा-पक्ष ही प्रबल रहता था। अफ्रीका मे मैंने जो रंग-भेद पाया, वह मुझे ब्रिटिश स्वभाव के लिए अस्वाभाविक चीज लगती थी। मैंने माना था कि वह स्थानीय थी और अस्थायी थी, इसलिए कुटुम्ब के प्रति आदर-प्रदर्शन करने मे मैं हर अग्रेज से बाजी मारता था। पर मैंने इस राजभक्ति से कभी स्वार्थ नही साधा। मैंने तो ऐसा माना कि राजभक्ति द्वारा मैं एक ऋण-मात्र अदा कर रहा हूं।"

ये इनके प्राचीन भाव थे। फिर जब इन्होने सरकार के लिए 'शैतानी' शब्द की रचना की, तबतक विचारो मे परिवर्तन हो चुका था। पर सरकार 'शैतानी' हो गई तो भी कार्य-पद्धति मे कोई परिवर्तन न हुआ, क्योकि इन्हें शैतान से भी तो दुश्मनी नही है। एक बार मैंने कहा, "अमुक मनुष्य बड़ा दुष्ट है। आप क्यो उसे अपने पास रखते हैं?" गाधीजी ने उत्तर मे कहा, "मैं तो चाहता हूं कि शैतान भी मेरे पास बैठे, पर वह मेरे पास रहना पसन्द ही नही करता।" इसलिए राजभक्ति तो काफूर हुई, पर सल्तनत के हृदय-परिवर्तन की चाह न मिटी। जिस स्वराज्य की प्राप्ति 'ऋण अदा करके' होनेवाली थी, उसकी प्राप्ति अब 'हृदय-परिवर्तन' द्वारा होने की चाह जगी। पर स्वयं कष्ट-सहन करने की नीति और अन्य तत्सम चीजें ज्यो-की-त्यों हैं।

४ अगस्त १९१४ को लडाई का ऐलान हुआ। ६ अगस्त को गाधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से इंग्लैंड मे पदार्पण किया। लन्दन पहुंचते ही पहला ध्यान इनका अपने कर्त्तव्य की ओर गया। कुछ भारतीय मित्र उस समय इंग्लैंड मे थे। उनकी एक छोटी-सी सभा बुलाई और उनके सामने कर्त्तव्य-सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये। इन्हें लगा कि जो हिंदुस्तानी भाई इंग्लैंड में रहते थे, उन्हें सहायता देकर अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए। अग्रेज विद्यार्थी फौज में भर्ती हो रहे हैं। भारतीय विद्यार्थियों को भी ऐसा करना चाहिए, यह इनकी राय थी। "पर दोनो की स्थितियों मे क्या तुलना है? अग्रेज मालिक हैं, हम गुलाम हैं। गुलाम क्यों सहयोग दें? जो गुलाम स्वतंत्र होना चाहता है उसके लिए तो स्वामी का संकट ही अवसर है।" पर यह दलील उस समय गाधीजी को नही हिला सकी। आज भी ऐसी दलील का उन पर कोई असर नही होता।

"मुझे अग्रेज और हिन्दुस्तानी दोनो की हैसियत के भेद का सम्पूर्ण ज्ञान था, पर मैंने यह नही माना था कि हम गुलामो की हैसियत मे पहुच गये थे। मुझे लगता था कि यह सारा दोष ब्रिटिश शासन का नही, पर व्यक्तिगत अफसरो का था, और मेरा विश्वास था कि यह परिवर्तन प्रेम से ही सम्पादन किया जा सकता था। यदि हमें अपनी अवस्था का सुधार वाछनीय था, तो हमारा फर्ज था कि हम

अंग्रेजो की उनके संकट में मदद करें और उनका हृदय पलटायें।"

पर विरोधी मित्रों की ब्रिटिश सल्तनत में वह श्रद्धा नही थी, जो गांधीजी की थी, इसलिए वे सहयोग देने को उत्सुक नही थे। आज वह श्रद्धा गांधीजी की भी नही रही, इसलिए गांधीजी के सहयोग का अभाव है। पर 'अंग्रेजों का संकट हमारा अवसर है' इस दलील को आज भी गांधीजी स्वीकार नही करते। मित्रों ने उस समय कहा, "इस समय हमे अपनी मांगें पेश करनी चाहिए।" पर गाधीजी ने कहा, "यह ज्यादा सुन्दर होगा और दूरदर्शिता भी होगी कि हम अपनी मांगें लड़ाई के बाद पेश करें।" अबकी बार मांगें पेश की गई हैं, पर तो भी अंग्रेजो के संकट की चिन्ता से गांधीजी मुक्त नही हैं। वह उनके लिए किसी तरह की परेशानी पैदा करना नही चाहते। प्रथम और द्वितीय यूरोपीय युद्धो के प्रति इनकी मनोवृत्ति मे जो सूक्ष्म सादृश्य बराबर नजर आता है, वह अध्ययन करने लायक है।

अंत मे लन्दन में वालंटियरों की एक टुकडी खड़ी की गई। उस समय के भारत-मंत्री लार्ड क्रू थे। उन्होंने बड़ी अगर-मगर के बाद उस टुकड़ी की सेवा स्वीकार करने की सम्मति दी। अंग्रेजों में तब भी हमारे प्रति अविश्वास था, जो आजतक ज्यो-का-त्यो बना हुआ है।

गाधीजी के साथियो ने जब दक्षिण अफ्रीका मे सुना कि गाधीजी ने स्वयं-सेवकों की एक टुकड़ी लड़ाई मे सहायता देने के लिए खड़ी की है, तब उन्हें अत्यंत आश्चर्य हुआ। एक ओर अहिंसा की उपासना और दूसरी ओर लड़ाई मे शरीक होना! गाधीजी की इन दो परस्पर-विरुद्ध मनोवृत्तियों ने इनके साथियों को उलझन में डाल दिया।

युद्ध की नैतिकता में इन्हे कतई विश्वास न था। "यदि हम अपने घातक के प्रति भी क्षमा का पालन करते हैं, तो फिर ऐसे युद्ध मे, जिसमें हमें यह पूरा पता भी न हो कि धर्म किसकी ओर है, कैसे किसी का पक्ष लेकर लड़ सकते हैं?"

पर इसका उत्तर गाधीजी यों देते हैं:

"मुझे यह अच्छी तरह ज्ञात था कि युद्ध और अहिंसा का कभी मेल नही हो सकता। पर धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इसका निर्णय इतना सरल नही होता। सत्य के उपासक को कभी-कभी अंधकार में भी भटकना पड़ता है। अहिंसा एक विशाल धर्म है। "जीवो जीवस्य जीवनम्" इस वाक्य का अत्यन्त गूढ़ अर्थ है। मनुष्य एक क्षण भी जाने-अनजाने हिंसा किये बिना जीवित नही रहता। जिन्दा रहने की क्रिया-मात्र—खाना, पीना, डोलना—जीव का हनन करती है, चाहे वह जीव अणु जितना ही छोटा क्यो न हो। इसलिए जीवन स्वयं ही हिंसा है। अहिंसा का पूजक ऐसी हालत में अपने धर्म का यथार्थ पालन उसी दशा में कर सकता है, जबकि उसके तमाम कर्मों का एक ही स्रोत हो। वह स्रोत है दया। अहिंसावादी भरसक जीवो की रक्षा करने की कोशिश करता है और इस तरह

वह हिंसा के दलदल पड़े से बचता रहता है। उसका कर्तव्य होता है कि वह इन्द्रिय-निग्रह और दया-धर्म की वृद्धि करता रहे। पर मनुष्य हिंसा से पूर्णतः मुक्त कभी हो ही नहीं सकता। आत्मा एक है और सर्वत्र व्याप्त है। इसलिए एक मनुष्य की बुराई का असर प्रकारान्तर से सभी पर होता है। इस न्याय से भी मनुष्य हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि जबतक समाज का वह एक अंग है, तबतक समाज की हस्ती के लिए भी जो हिंसा होती है उसका वह भागीदार तो है ही। जब दो राष्ट्रों में युद्ध होता है तब अहिंसा के उपासक का प्रथम धर्म तो है युद्ध को बन्द कराना। पर जो इसके लिए अयोग्य है, जो युद्ध रोकने की शक्ति भी नहीं रखता, वह चाहे युद्ध में शरीक तो हो, पर साथ ही राष्ट्रों को, समाज को और अपने-आपको युद्ध से मुक्त करने का प्रयत्न भी निरन्तर करता रहे।"

गांधीजी के तब के और आज के विचारों में कोई फर्क नहीं है, चाहे कार्यक्रम की बाहरी सूरत कुछ भिन्न मालूम देती हो। "अहिंसा का पुजारी अपने धर्म का पालन पूर्णतया तभी कर सकता है जबकि उसके कर्म-मात्र का स्रोत केवल दया ही हो।" यह वाक्य उनके तमाम निर्णयों के लिए आज के पत्थर का-सा काम देता है। पर उस युद्ध में शरीक होने में एक और दलील थी

"मैं अपने स्वदेश की स्थिति ब्रिटिश सल्तनत की सहायता से सुधारने की आशा करता था। मैं इंग्लैंड में ब्रिटिश जल-सेना की सहायता से सुरक्षित था। चूंकि मैं इंग्लैंड की छत्रछाया में सुरक्षित था, एक प्रकार से मैं इंग्लैंड की हिंसा में भी शरीक था। मैं इंग्लैंड से अपना नाता तोड़ने को यदि तैयार न था तो इस हालत में मेरे लिए तीन ही मार्ग खुले थे या तो युद्ध के विरुद्ध बगावत करना और सत्याग्रह-धर्म के अनुसार जब तक इंग्लैंड अपनी नीति को न त्याग दे तबतक इंग्लैंड की शहंशाहत से असहयोग करना, अथवा कानून-भंग करके जेल जाना, अथवा ब्रिटिश राष्ट्र को जंग में सहायता देना और ऐसा करते करते युद्ध की, हिंसा के प्रतिकार की शक्ति प्राप्त करना। चूंकि मैं प्रथम दो मार्गों के अनुसरण के लिए अपने-आपको अयोग्य पाता था, मैंने अंतिम मार्ग ग्रहण किया।"

यह तर्क कुछ सूना-सा लगता है, पर गांधीजी जिस तरह निर्णय पहले करते हैं और दलील पीछे उपजाते हैं, इसकी चर्चा आगे करेंगे। पर तर्क अकाट्य न भी हो तो न सही, गांधीजी की आत्मा को जिस समय जो सत्य जंचा, उसी के पीछे वह चले हैं। उनके तर्कों में जान-बूझकर आत्म-वंचना नहीं होती। असल बात तो यह थी कि उनकी ब्रिटिश शासन-पद्धति में बेहद श्रद्धा थी। दक्षिण अफ्रीका में उनके साथ इतना दुर्व्यवहार हुआ, तो भी उनका धीरज और उनकी श्रद्धा अडिग रही। बोअर-लड़ाई में और जूलू-बलवे में यद्यपि उनकी सहानुभूति बोअरों और जूलू लोगों की तरफ थी, तो भी अंग्रेजों को सहायता देना ही उन्होंने अपना धर्म माना। इस सहायता के बाद भारतीयों की स्थिति समझने के लिए उपनिवेश-मन्त्री

जोसेफ चेम्बरलेन जब अफ्रीका आये और हिन्दुस्तानियो की प्रतिनिधि-मंडली उनसे मिलने के लिए प्रवन्ध करने लगी, तो उन्होने साफ कहला दिया, "और सब आयें, पर गांधी को नेता बनाकर न लाया जाय। उनसे एक बार मुलाकात हो चुकी है, अब बार-बार उनसे नही मिलना है।"

अग्रेजो की यह पुरानी वृत्ति आजतक ज्यो-की-त्यों जिन्दा है।

गोलमेज परिषद् हुई तब भारतीय प्रतिनिधिगण भारतीयों द्वारा चुने हुए नुमाइंदे नही थे, पर सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए थे। सरकार ने हमे शान्ति दी, रक्षा दी, परतन्त्रता दी, तो फिर नुमाइदे भी वही नियुक्त क्यों न करे? आज भी कांग्रेस और ब्रिटिश सल्तनत मे इसी सिद्धान्त पर बहस चालू है। सरकार कहती है, लड़ाई के बाद तमाम जातियों, समाजों और फिरकों के नुमाइंदों से, हिन्दुस्तान के नये विधान के सम्बन्ध मे सलाह-मशवरा करेंगे। कौन जातियां हैं, कौन-से समाज है और कौन-से फिरके हैं, इसका निर्णय भी सरकार ही करेगी। प्रान्तीय सरकारें चुने हुए नुमाइंदो द्वारा सचालित हो रही थी। पर वे नुमाइदे अपने घर रहे। सरकार तो अपनी आवश्यकता देखकर नये नुमाइदे पैदा करती है। गांधी दक्षिण अफ्रीका मे हिन्दुस्तानियो का प्रतिनिधि बनकर चेम्बरलेन से मिले, यह अनहोनी बात कैसे बर्दाश्त हो सकती है? इसलिए गाधी नही मिल सकता।

पर गांधीजी पर इसका भी कोई बुरा असर नही हुआ। जब यूरोपीय युद्ध शुरू हुआ, तब फिर सहायता दी। बाद मे पजाब मे खून-खराबी हुई, रौलट कानून बना, जलियावाला बाग आया। गाधीजी की श्रद्धा फिर भी जीवित रही। नये सुधार आते हैं तब गांधीजी उन्हे स्वीकार करने के पक्ष मे जोर लगाते है, ऐसी गाधीजी की श्रद्धा और अहिंसा है—

जो तोको कांटा बुवे, ताहि बोय तू फूल,
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।

गाधीजी की यह मनोवृत्ति एकधार, अखडित, शुरू से आखिर तक जारी है। हालाकि ब्रिटिश राज्य की नेकनीयती में उनकी श्रद्धा अब उठ गई है, फिर भी व्यवहार वही प्रेम और अहिंसा का है। गाधीजी अब भी 'फूल बोने' मे मस्त है।

यह उनकी ब्रिटिश शासन की नेकनीयती मे श्रद्धा ही थी, जिसके कारण उन्होने गत युद्ध मे सहायता दी। उनकी दलील तो निर्णय के बाद बनती है, इसलिए पगु-जैसी लगती है। पर चूंकि लड़ाई मे सरकार को सहायता देना, यह उस समय गाधीजी को अपना धर्म लगा, उन्होने मर्यादा के भीतर सहायता देने का निश्चय किया। बोअर-लड़ाई मे और जूलू-विप्लव मे गाधीजी की सहानुभूति बोअरों और जूलू लोगो के साथ होते हुए भी उन्होने माना कि अग्रेजो को सहायता देना उनका धर्म था, इसलिए सहायता अग्रेजो को दी। ऐसी असंगति कोई आश्चर्य की बात नहीं है। एक कर्म जो एक समय धर्म होता है, वही कर्म अन्य समय मे

अधर्म हो सकता है। इसीलिए यह कहा है कि धर्म की गति गहन है।

ऐसी ही एक असगति की कहानी हमे महाभारत में मिलती है। महाभारत-युद्ध की जब सब तैयारी हो जाती है और योद्धा आमने-सामने आकर खड़े होते हैं तब युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास जाकर प्रणाम करते हैं और युद्ध के लिए उनकी आज्ञा मांगते हैं। युधिष्ठिर की इस विनय से भीष्म अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, और कहते हैं, "पुत्र, तू युद्ध कर और जय प्राप्त कर। मैं तुझ पर प्रसन्न हूं। और भी जो-कुछ चाहता हो वह कह, तेरी पराजय नही होगी।" इतनी आशीष दी, पर युद्ध तो भीष्म पितामह को दुर्योधन की ओर से ही करना था, इसलिए असगति को समझाते हुए कहा, "मैंने कौरवों का अन्न खाया है, इसलिए युद्ध तो उन्ही की ओर से करूंगा, बाकी जो तुम्हें चाहिए वह अवश्य, मांगो।"

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवः॥

"हे महाराज! सच तो यह है कि पुरुष अर्थ का दास है और किसी का दास नही, इसलिए मैं कौरवों से बधा पड़ा हू।"

भीष्म पितामह के लिए तो कैसा अर्थ और कैसा बधन? पर बात तो यह है कि यहां अर्थ से भी मतलब धर्म से ही है। भीष्मजी का कहना था कि मैं धर्म से बधा हूं, इसलिए युद्ध तो मैं कौरवो की तरफ से ही करूंगा, बाकी मेरा पक्ष तो तुम्हारी तरफ है।

हजारों साल के बाद एक दूसरा महाभारत यूरोप मे होता है। गाधीजी कहते हैं, "मैं युद्ध के पक्ष में नही, पर चूकि इग्लैंड की सुरक्षा में पला हू, इसलिए मेरा धर्म यह है कि मैं इंग्लैंड की सहायता करूं।" हजारो साल के बाद इतिहास की पुनरावृत्ति का यह एक अनुपम उदाहरण है।

गत यूरोपीय युद्ध चार साल तक चला और उसमे मित्रराष्ट्रों को जान लड़ाकर युद्ध करना पड़ा। कई उतार-चढ़ाव आये। भारतवर्ष मे गाधीजी ने जिस खालिस मन से इग्लैंड को सहायता दी उतनी सरलता से शायद ही किसी ने दी हो। कई नेता तो विपक्ष मे भी थे, पर ज्यादातर तटस्थ थे। लोकभावना मे भी जब और तब में कितना सादृश्य है, यह देखने लायक चीज है।

लड़ाई के जमाने मे वाइसराय चेम्सफोर्ड ने तमाम नेताओं और रईस लोगो की युद्ध-सभा बुलाई। गांधीजी को भी निमन्त्रण मिला। कुछ हिचकिचाहट और अगर-मगर के साथ गाधीजी ने सभा मे शरीक होने का निश्चय किया। सभा मे जो प्रस्ताव था उसके समर्थन मे गाधीजी ने हिन्दी मे केवल इतना ही कहा, "मैं इसकी ताईद करता हूं।" पर जो उन्हें कहना था, वह पत्र द्वारा वाइसराय को लिखा। वह पत्र भी देखने लायक है.

"मैं मानता हू कि इस भयकर घडी मे ब्रिटिश राष्ट्र को—जिसके कि अत्यंत

निकट भविष्य में हम अन्य उपनिवेशो की तरह साझेदार बनने की आशा लिये बैठे हैं—हमे प्रसन्नतापूर्वक और स्पष्ट सहायता देनी चाहिए। पर यह भी सत्य है कि हमारी इस मशा के पीछे यह आशा है कि ऐसा करने से हम अपने ध्येय को शीघ्र ही पहुच जायेंगे। कर्त्तव्य का पालन करने से अधिकार अपने-आप ही मिल जाते हैं, और इसलिए लोगो को विश्वास है कि जिस सुधार की चर्चा आपने की है उसमे कांग्रेस-लीग की योजना को आप पूरी तरह से स्वीकार करेंगे। कई नेताओ का ऐसा विश्वास है और इसी विश्वास ने सरकार को पूर्ण सहायता देने पर नेताओ को आमादा किया है।"

गाधीजी के पत्र का यह एक अंश है। कितना निर्मल विश्वास ! उस समय हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य था। आज की तरह साम्प्रदायिक अनैक्य की दुहाई देने की कोई गुजाइश न थी। लीग और काग्रेस दोनो ने सम्मिलित योजना गढ़कर सरकार के सामने पेश की थी। पर सरकार ने उसे महत्त्व नही दिया। उसे अस्वीकार किया और इस तरह सारी आशाएं निष्फल हुई। जो लोग यह मानते है कि हिन्दू-मुस्लिम अनैक्य ही भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए इग्लैड के मार्ग में बाधक है, उनके लिए यह पुरानी कहानी एक सबक है।

आगे चलकर गाधीजी ने लिखा, "यदि मैं अपने देशवासियों को समझा सकू तो उनसे यह करवाऊ कि जग के जमाने मे वे स्वराज्य का नाम भी न लें।"

वर्तमान युद्ध के आरम्भ मे जब गांधीजी वाइसराय लिनलिथगो से मिले तो उसके वाद उन्होंने अपने एक वक्तव्य मे कहा, "मुझे इस समय देश की स्वाधीनता का कोई खयाल नही है। स्वतन्त्रता तो आयेगी ही, पर वह किस काम की, यदि इग्लैंड और फ्रांस मर मिटें या मित्रराष्ट्र जर्मनी को तबाह और दीन करके जीतें? इन दोनों उक्तियों मे भी वही सादृश्य जारी है।

आगे चलकर गाधीजी ने वाइसराय चेम्सफोर्ड को लिखा, "मैं चाहता हूं कि भारत हर हट्टे-कट्टे नौजवान को ब्रिटिश राष्ट्र की रक्षा के लिए होम दे। मुझे यकीन है कि भारत का यह बलिदान ही उसे ब्रिटिश साम्राज्य का एक आदरणीय साझेदार बना देने के लिए पर्याप्त होगा। इस सकट के समय यदि हम साम्राज्य की जी-जान से सेवा करें और उसकी भय से रक्षा कर दें, तो हमारा यह कार्य ही हमे हमारे ध्येय की ओर शीघ्रता से ले जायगा। अपने देशवासियों को मैं यह महसूस कराना चाहता हूं कि साम्राज्य की सेवा यदि हमने कर दी, तो उस क्रिया में से ही हमे स्वराज्य मिल गया, ऐसा समझना चाहिए।"

आश्चर्य है कि गांधीजी ने उस समय जिस भाषा का उपर्युक्त उक्ति मे प्रयोग किया, करीब-करीब वही भाषा आज सरकारी हलकों द्वारा हमारी मागो के सम्बन्ध मे प्रयोग की जाती है। वे कहते हैं कि इस समय केवल जग की ही बात करो, और जी-जान से हमारा पक्ष लेकर लड़ो। बस, इसी मे तुम्हे स्वराज्य मिल

जायगा। गत युद्ध मे भी सरकार की तरफ से कहा गया था कि इस समय हमे सारे घरेलू झगड़ो को भूलकर युद्ध मे दत्तचित्त हो जाना चाहिए, और गाधीजी ने वैसा ही किया भी। भारत ने अपने नौजवानो की बलि भी चढाई। धन को भी साम्राज्य-रक्षा के लिए फूका, पर उससे भारत को स्वतन्त्रता नही मिली। युद्ध के अन्त में जब जलियांवाला बाग आया, तब गाधीजी का यह विश्वास और श्रद्धा चल बसे, पर तो भी व्यवहार मे कोई फर्क नही पडा।

वर्तमान यूरोपीय युद्ध नम्बर दो मे गाधीजी ने जिस नीति का अवलम्बन किया है, वह भी शुद्ध सत्याग्रह है। पिछले युद्ध मे ब्रिटिश साम्राज्य की मनोवृत्ति में उन्हे जो श्रद्धा थी, वह अब नही रही। पर सत्याग्रह की नीति ही उनके मतानुसार यह है कि जितनी ही अधिक बुराई विपक्ष मे हो, उतना ही ज्यादा हमे अहिंसामय होने की जरूरत पडती है। इसलिए यद्यपि गाधीजी का असहयोग तो जारी है, पर इस सकटकाल मे इग्लैड जरा भी तग हो, ऐसा कोई भी कार्य करना उन्हें रुचिकर नही है। नतीजा यह हुआ है कि ज्यो-ज्यो इग्लैंड की शक्ति कम होती गई, त्यो-त्यो गाधीजी इस बात का ज्यादा खयाल करने लगे कि ब्रिटिश सरकार को किसी तरह हमारी ओर से परेशानी न हो।

पर पिछले युद्ध और इस युद्ध मे एक और फर्क है और उस फर्क के कारण गाधीजी का युद्ध मे शरीक होना या न होना, इस निर्णय पर काफी असर पड़ा है।

गत युद्ध मे हम बिलकुल पराधीन थे, हमारी कोई जिम्मेदारी नही थी, हमारी कोई पूछ नही थी। हम उपद्रव करके अग्रेजो को सहायता मिलने मे कुछ हद तक रुकावट अवश्य डाल सकते थे, किन्तु यह कार्य सत्याग्रही नीति और गाधीजी की अहिंसा-नीति के खिलाफ होता। पर रुकावट डालना एक बात थी और सक्रिय सहायता देना दूसरी बात। रुकावट न डालते हुए भी सक्रिय सहायता देने मे हम असहयोग कर सकते थे, तो भी गाधीजी ने सक्रिय सहायता देना ही अपना धर्म माना। "हम जब इग्लैंड द्वारा सुरक्षित हैं और खुशी-खुशी उस सुरक्षा को स्वीकार करते हैं, तब तो हमारा धर्म हो जाता है कि हम अंग्रेजो को सक्रिय सहायता दें और उनकी ओर से शस्त्र लेकर लड़ें भी।" पर इस तर्क मे आज की स्थिति मे कोई प्राण नही है, क्योकि तब की और अब की परिस्थिति मे काफी अन्तर पड़ गया है। इसलिए वह पुरानी दलील आज की स्थिति मे लागू नही होती।

इस बार युद्ध छिड़ा तब प्रान्तो मे प्रान्तीय स्वराज्य था और उनमे से आठ प्रान्तो मे तो स्वराज्य की बागडोर काग्रेस के हाथ मे थी। एक और प्रान्त मे भी, अर्थात् सिन्ध में, आधी-पड़धी बागडोर काग्रेस के हाथ मे थी। इस तरह कुल नौ प्रान्तो मे काग्रेस का आधिपत्य था। केन्द्र मे भी स्वराज्य का वादा हो चुका था। और अनुमान से यह भी कहा जा सकता है कि हम पूर्ण स्वराज्य के काफी निकट

पहुंच गये हैं। इसलिए आज 'उन्हीं की दी हुई रक्षा से हम सुरक्षित हैं', ऐसा नहीं कहा जा सकता। आज हम इस योग्य बन गये हैं कि हम अपनी ही रक्षा से भी सुरक्षित हो सकते हैं। हम गत युद्ध के समय जितने पराधीन थे उतने आज पराधीन नहीं हैं। हमें यह कहने का नैतिक स्वत्व—कानूनी न सही—अवश्य है कि हम अपनी रक्षा किस तरह करेंगे, कैसे करेंगे। जहां इंग्लैंड को परेशान न करना गांधीजी ने अपना धर्म माना, वहां यह निश्चय करना भी उनका धर्म हो गया कि भारतवर्ष पर आक्रमण हो तो उस आक्रमण का मुकाबला—प्रतिरोध—हिंसात्मक उपायों द्वारा करना या अहिंसात्मक उपायों द्वारा। हम मारते-मारते मरें या बिना मारे भी मरना सीखें। तमाम परिस्थिति पर ध्यानपूर्वक सोच-विचार के बाद गांधीजी ने युद्ध छिड़ा तभी यह निश्चय कर लिया था कि उग्र हिंसा का सामना अहिंसा से ही हो सकता है। अबीसीनिया, स्पेन और चीन के युद्ध में विपद्ग्रस्त राष्ट्रों को गांधीजी ने अहिंसा की ही सीख दी थी। जो सलाह अन्य विपद्ग्रस्त राष्ट्रों को दी गई थी, क्या उससे विपरीत सलाह अपने देशवासियों को दें?

गांधीजी की दृष्टि में अहिंसा की जीवित कसौटी का समय आ चुका था। यदि अहिंसा के प्रयोग की सक्रिय सफलता का प्रदर्शन करना है, तो इससे उत्तम अवसर और क्या हो सकता था? नैतिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से युद्ध छिड़ने से पहले ही गांधीजी इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि इतनी उग्र और सुव्यवस्थित हिंसा का सामना कम-से-कम हिन्दुस्तान तो हिंसात्मक उपायों द्वारा कर ही नहीं सकता। उसके पास इतने उग्र साधन ही कहां हैं, जो सुव्यवस्थित मुल्कों के शस्त्रास्त्रों से मुठभेड़ ले सकें? पर यह तो गौण बात थी। प्रधान बात तो यह थी, "क्या हम भयंकर हिंसा का अहिंसा से सफल मुकाबला करके संसार के सामने एक धार्मिक शस्त्र का प्रदर्शन नहीं कर सकते?" और इसी विचार ने गांधीजी को इस निर्णय पर पहुंचाया कि भारत और इंग्लैंड के बीच समझौता होने पर अंग्रेजों को नैतिक सहयोग अवश्य दिया जाय, पर कम-से-कम कांग्रेस हिंसा में शरीक होकर अपनी नैतिक ध्वजा को झुकने न दे।

कांग्रेस के दिग्गज इस नीति की उत्तमता को महसूस करते थे, पर इस मार्ग पर पांव रखने में ही हिचकते थे। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य-जैसे तीक्ष्ण बुद्धिवादी तो न लड़ने की नीति को धर्म भी नहीं मानते थे। युद्ध के शुरू-शुरू में इस प्रश्न ने इतना जोर नहीं पकड़ा। कांग्रेस की मांगें सरकार के सामने रखी पड़ी थीं। पर सरकार ने न तो उन्हें पूरा किया, न कोई आशा दिलाई। इस तरह कांग्रेस के प्रस्ताव का मानसिक अर्थ दो पक्ष के लोगों का भिन्न-भिन्न था। गांधीजी सरकार से समझौता होने पर केवल नैतिक सहायता-भर देना चाहते थे। अन्य दिग्गजों ने अपनी कल्पना पर भौतिक सहायता देना भी कर्त्तव्य मान रखा था। प्रस्ताव-पर-

प्रस्ताव कांग्रेस पास करती चली गई और इसकी द्विअर्थी भावना भी दोनो पक्ष अपने-अपने मन मे पुष्ट करते रहे।

गाधीजी ने तो लेखो, वक्तव्यो और वाइसराय की मुलाकातो मे इस चीज को स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दुस्तान तो अग्रेजो को नैतिक बल का ही दान दे सकता है। पर वाइसराय ने भी अपने मन मे अवश्य मान रखा होगा कि भौतिक बल का दान भी समझौता होने पर मिलना नितात असम्भव नही। दिन निकले, महीने निकले। जर्मनी की मृत्यु-बाढ एक-के-बाद दूसरे राष्ट्र को अपने उदर मे समेटती हुई आगे बढती चली। जब फ्रास का पतन हुआ, तब 'मारते-मारते मरना' या 'बिना मारे मरना' यह प्रश्न तेजी के साथ महत्त्वपूर्ण बन गया। अबतक जिस तरह से दो पक्ष अपनी-अपनी कल्पना लेकर गाडी हाकते थे, वह अब असंभव-सा हो गया। गाधीजी शुरू से इस भेद को जानते थे। शुरू से अपने सहकर्मियो से कहते थे कि मुझे छोड दो, पर गाधीजी को जबतक राजी-खुशी उनके सहकर्मी छोड़ न दें, तबतक वह काग्रेस से निकल नही सकते थे। अत मे काग्रेस के दिक्पालो ने देख लिया कि गाधीजी को अधिक दिन तक निबाहना उनके प्रति सरासर अन्याय है और वर्धा मे २० जून, १६४० को लम्बी बहस के बाद गाधीजी को बिदाई दे दी।

यह भी गाधीजी के जीवन की एक अनोखी घटना थी। शायद इससे अत्यन्त मिलती-जुलती घटना हमारे पुराणो मे युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के वर्णन मे मिलती है। गाधीजी से अन्य नेताओ के मतभेद की चर्चा करते हुए मैने कहा, "बापू! इसे मतभेद नही कहना चाहिए। एक शक्कर ज्यादा मीठी हो और दूसरी कम मीठी हो, तो क्या हम यह कहेंगे कि दोनो शक्करो मे मतभेद है? बात तो यह है कि आप जहा शुद्ध धर्म की बात करते हैं, वहा अन्य नेता आपद्धर्म की बात करते हैं। उनकी श्रद्धा इतनी बलवती नही है कि वे शुद्ध धर्म की वेदी पर कही जानेवाली व्यावहारिकता का बलिदान कर दें। और आप यह आशा भी कैसे कर सकते हैं कि आपकी-जितनी सजीव श्रद्धा सभी के हृदय-पट पर अपना प्रभुत्व जमा ले? जैसे युधिष्ठिर स्वर्ग मे गये तब एक-एक करके उनके निकटस्थ गिरते चले गये, उसी तरह आपका हाल है। ज्यों-ज्यों आप बढते हैं, ऊपर चढते हैं, त्यो-त्यो आपके साथी पिछड़ते जाते हैं, थकान के मारे गिरते जाते हैं।" पास मे बैठी हुई डा० सुशीला ने मजाक मे कहा, "पर युधिष्ठिर के साथ कुत्ता तो रहा। बापू! इस दृष्टात से स्वर्ग पहुचनेवाला कुत्ता कौन-सा है?" गाधीजी ने कहा, "पहले यह बताओ कि वह युधिष्ठिर कौन-सा है?" विषय के गाम्भीर्य ने सबके चेहरो पर जो एक तरह की सलवटें डाल दी थी वे इस मजाक से रफा हुईं। सब खिल-खिलाकर हँस पडे।

पर इसका नतीजा क्या होगा? अभी तो कालदेव इतिहास का निर्माण करते

हो जाते हैं। अत तो बाकी है, होनहार भविष्य के गर्भ में है। पर एक बात स्पष्ट हो गई। काग्रेस की अहिंसा-नीति, यह एक उपयोगितावाद था। गाधीजी की अहिंसा, यह उनका प्राण है। पर कौन कह सकता है कि गांधीजी की अहिंसा काग्रेस को प्रभावित न कर देगी ? और जो अहिंसा अबतक उपयोगिता के ढकने से ढकी थी वह अब अपना शुद्ध स्वरूप प्रकाशित न कर देगी ?

दो महीने तक उपयोगिता के सेवन के पश्चात् बम्बई मे फिर गांधीजी के हाथ में बागडोर सौंपना क्या यह सिद्ध तो नही कर रहा है कि इच्छा या अनिच्छा से काग्रेस शुद्ध गाधीवाद की तरफ खिची जा रही है ?

मेरा खयाल है कि जब बाहर के आक्रमणो से भारतवर्ष की रक्षा का प्रश्न सचमुच उपस्थित होगा, तब हमारे नेताओं का काफी हृदय-मंथन होनेवाला है। हिंसात्मक शस्त्रास्त्रो से किसी बड़े राष्ट्र से मुकाबला करने की हमारी हौंस— यदि सचमुच वह हौंस हो तो—छोटे मुह बड़ी बात है। दूसरी ओर हमारे पास सत्याग्रह का एक शस्त्र है, जो चाहे, सान पर चढ़कर सम्पूर्ण न भी बन पाया हो तो भी एक ऐसा शस्त्र है जो अन्य किसी राष्ट्र के पास आज नही है। इसलिए जिस दिन भारतवर्ष की रक्षा का प्रश्न सचमुच ही उपस्थित होगा उस दिन सत्याग्रह का शस्त्र गाधीजी जिंदा हो और खटाई मे पड़ा रहे, ऐसी सम्भावना नही। गांधीजी का तो यह भी विश्वास है कि भारत की जनता अहिंसात्मक सग्राम मे पीछे नही रहेगी। श्रद्धा की कमी उनकी समझ में नेताओं मे है, न कि जनता में।

जो हो, एक चीज जो साबित हुई, वह है गांधीजी की अहिंसा मे सजीव श्रद्धा। दूसरी चीज जो अभी साबित होनी बाकी है वह है अहिंसाशास्त्र का कौशल। उसके लिए, मालूम होता है, अवसर आ रहा है। और यदि गांधीजी के जीवन मे वह अवसर आ जाय और उसमे उस शस्त्र की विजय साबित हो जाय, तो यह ससार के भविष्य के इतिहास-निर्माण के लिए एक अद्भुत घटना होगी।

पर बीच में भविष्य की कल्पना आ गई। जो हो, अंग्रेजों को परेशानी न हो, गांधीजी की इस मशा का देश ने अबतक एकस्वर से पालन किया। खाकसारो ने उपद्रव किया, पर काग्रेस शात रही। वह बलवान की शाति थी। सहज ही आज कांग्रेस लाखों आदमी कटा सकती है, जेलें ठसाठस भर सकती है, पर गाधीजी ने शाति रखकर इस युद्ध के जमाने मे जनता पर उनका कितना काबू है, यह साबित कर दिया। भारतवर्ष मे इतनी शाति पहले कभी न थी जितनी आज है। हमने अपनी उदारता का प्रदर्शन कर दिया। इससे हमारी शक्ति साबित हुई है। हमारी नेकनीयती का प्रमाण मिला। शुद्ध सत्याग्रह का स्वरूप इग्लैंड के सामने आ गया। अंग्रेजों से हमारी लड़ाई बंद नही हुई। मुमकिन है, जंग के बाद उनसे लड़ाई हो। शायद बड़ी भयंकर लड़ाई हो। यह भी मुमकिन है कि सरकार अपनी गलतियों

में कांग्रेस को झगड़ने के लिए बाध्य करे, पर गांधीजी अंग्रेजों को परेशानी से बचाने के लिए कुछ उठा न रखेंगे। आज अंग्रेज त्रस्त हैं, इसलिए उनपर आज वार करना कायरता होगी, ऐसी भावना गांधीजी के चित्त में अवश्य रही है। गांधीजी को स्वराज्य से भी सत्याग्रह प्रिय है, और गांधीजी तो मानते ही थे हैं कि स्वराज्य की अधिक-से-अधिक सेवा इसी में है कि हम शुद्ध सत्याग्रह का अनुसरण करें। इसलिए गांधीजी ने ब्रिटिश सल्तनत को परेशानी से काफी बचाया। इंग्लैंड इसके लिए कृतज्ञ नहीं है और न इंग्लैंड की मनोवृत्ति में कोई फर्क पड़ा है। पर गांधीजी आशा किये बैठे हैं कि "चमत्कार का युग गया नहीं है। जबतक ईश्वर है तबतक चमत्कार भी है।" इस श्रद्धा की भाप से गांधीजी का स्टीम-इंजन चला जा रहा है।

वर्तमान युद्ध के समय में गांधीजी में एक बात और मैंने देखी है। जब से युद्ध चला है तब से वह प्राय. सेवाग्राम में ही रहना पसन्द करते हैं। अति आवश्यकता के कारण एक बार उन्हें बंगाल जाना पड़ा। रामगढ़-कांग्रेस में तो जाना ही था। वाइसराय के पास जब-जब जाना पड़ा तब-तब गये, पर इन यात्राओं को छोड़कर और कहीं न तो जाना चाहते हैं, न बाहर जाने के किसी कार्यक्रम को पसंद करते हैं। पहले के जो वादे बाहर जाने के थे, वे भी उन्होंने वापस लौटा लिये। मुझसे भी एक वादा किया था, पर वह लौटा लिया गया। क्यों? "मुझे, जबतक लड़ाई चलती है, सेवाग्राम छोड़ना अच्छा नहीं लगता।" कुछ सोचते रहते होंगे, पर कभी उन्हें विचारमग्न नहीं पाया। फिर भी मालूम होता है कि वर्तमान युद्ध में उन्हें काफी विचार करना पड़ा है।

चौदह

पर गांधीजी कब सोचते हैं, यह प्रश्न सामने आता है। गांधीजी के पास इतना काम रहता है कि सचमुच यह कहा जा सकता है कि उन्हें एक पल की भी फुर्सत नहीं रहती, मुझे अक्सर ऐसा लगा है कि काम के इतने बाहुल्य के कारण कभी-कभी महत्त्व के कार्य ध्यान से ओझल हो जाते हैं और कम महत्त्व के कामों को आवश्यकता से अधिक समय मिल जाता है। द्वितीय गोलमेज-परिषद् में जब गये तब उनके मंत्रिवर्ग में वही लोग थे, जो सदा से उनके साथ रहे हैं। नये-नये कामों की बाढ़-सी आ रही थी और इसपर भी काम शीघ्र निपट जाय, ऐसी व्यवस्था नहीं थी। सिवाय नये आदमी मंत्रिवर्ग में भर्ती करने के और क्या उपाय हो

सकता था ? पर यह गांधीजी को स्वीकार नही था। ज्यों-ज्यों काम बढ रहा था, त्यों-त्यो आपस मे बाट-चूटकर काम निपटाया जाता था। फलस्वरूप, गाधीजी की नीद में कमी होती जा रही थी।

लन्दन मे काम करते-करते रात के दो तक बज जाते थे। सुबह चार बजे प्रार्थना करके नौ बजे तक टहल-फिरकर, खा-पीकर तैयार होकर, फिर काम करना पडता था। चार घटे से ज्यादा तो नीद शायद ही कभी मिलती थी। इसीलिए गाधीजी ने कान्फ्रेंस में ही, जब स्पीचें होती रहती थी, कुर्सी पर बैठे-बैठे आख मूदकर नीद लेना शुरू कर दिया। मैंने टोका। कहा, "यह कुछ अच्छा नही लगता कि बड़े-बडे लोग बैठे हों, व्याख्यान दिये जा रहे हों, और आप सोते हों।" उत्तर मिला, "फिर क्या जागरण करके यहां बीमार पडना है ? और तुमने कभी देखा भी है कि क्या एक भी मर्म के व्याख्यान को मैं न सुन पाया होऊं ?" यह बात सही भी थी। न मालूम कौन-सी वृत्ति काम करती थी ! जब कभी कोई महत्त्व का पुरुष बोलने खडा होता था, तो गाधीजी चट आंखें खोल देते थे और समाप्ति पर फिर नीद ले लेते थे।

पर मुझे यह स्थिति अच्छी नही लगती थी। साथवालों मे आपस मे हम लोग यह चर्चा किया करते थे कि बापू को चाहिए कि अपने मत्रिवर्ग में कुछ नये आदमियों का और समावेश करें। इसकी क्या जरूरत है कि हर खत बापू या महादेवभाई ही हाथ से लिखें ? गाधीजी का दाहिना हाथ लिखते-लिखते थक जाता था, तो वह बायें हाथ से काम करने लगते थे। गोलमेज-परिषद्-सम्बन्धी कामों की कभी-कभी वह अवहेलना भी करते थे, और इसके बदले गायो की प्रदर्शनी मे जाना, विलायती बकरिया देखना, साधारण मनुष्यो से मिलना-जुलना, कई तरह की खब्तियों को काफी मे ज्यादा समय दे देना, ये सब चीजें बढती जा रही थीं। अक्सर गरीबों के बच्चों से खेलते-खेलते कह दिया करते थे कि मेरी गोलमेज-परिषद् 'सेण्ट जेम्स' महल मे नहीं, इन बच्चों के बीच मे है। ये सब चीजें पास में रहनेवालों को खटकती भी थी। जब मैं देखता हूं तो लगता है कि गाधीजी ने गोलमेज-परिषद् की अवहेलना करके कुछ नहीं खोया। तो भी यह मैं अब भी महसूस करता हूं कि उनके पास काम ज्यादा है, आदमी कम। क्यों नही स्टेनो-टाइपिस्ट रखते, जिससे कि लिखा-पढी मे सुभीता हो, समय की बचत हो ? कई मर्तबा मैंने इसका जिक्र किया, पर कोई फल नही निकला।

पर प्रश्न तो यह है, "इतने काम के बीच इन्हें सोचने की फुर्सत कब मिलती है ?"

कितने ऐसे किस्से हैं, जिनपर उनका उनके साथियो से मतभेद हुआ। कितनी घटनाए मुझे याद हैं, जिनके सम्बन्ध मे मुझे ऐसा लगा कि गाधीजी गलती कर रहे हैं और पीछे साबित हुआ कि गलती उनकी नही, उनसे मतभेद रखनेवालो की

थी। एक प्रतिष्ठित मित्र ने एक मर्तबा, जब एक घटना घट रही थी, कहा कि गाधीजी गलती कर रहे हैं। मैंने भी कहा,"हा, गलती हो रही है।" पर फिर उसी मित्र ने याद दिलाई कि हम लोगो ने कई मर्तबा जिस चीज को गांधीजी की भूल माना था, वह पीछे से उनकी बुद्धिमत्ता साबित हुई। यह सच बात थी। यह आश्चर्य की बात है कि इतना काम और इतने जटिल प्रश्नो की समस्या और फिर इतना शुद्ध निर्णय। भूल मनुष्य-मात्र करता है। गाधीजी भी भूल करते हैं। उन्होंने अपनी कितनी ही भूलों का बढ़ा-चढ़ाकर जिक्र किया है। मजा यह है कि जिन चीजों को उन्होने भूल माना है उन्हें साथियो ने भूल नही माना, बल्कि उनके साथियो ने यह माना कि गाधीजी ने अपनी भूल स्वीकार करने में भूल की है। भूल मनुष्य-मात्र करता ही है। गाधीजी भी करते हैं, पर सबसे कम।

गाधीजी का निर्णय करने का तरीका क्या है? यह कैसे सोचते हैं? इतने कामो के बीच कब सोचते हैं? गाधीजी को मैंने कभी विचारमग्न नहीं देखा। प्रश्न सामने आया कि झट गाधीजी ने फैसला दिया। बड़े-बड़े मौकों पर मैंने पाया है कि प्रश्न उपस्थित हो गया है, निर्णय करने का समय आ गया है, पर जबतक ऐन मौका नही आया तबतक निर्णय नही करते।

गोलमेज-परिषद् की प्रथम बैठक मे उनका महत्त्वपूर्ण व्याख्यान होने वाला था, जो प्रथम व्याख्यान था। उसे सुनने को, उनके विचार जानने को, सब लोग अत्यन्त उत्सुक थे। गाधीजी ने न कोई विचार किया, न तैयारी ही की, और वहा पहुंचते ही धारा-प्रवाह मर्म की बातें उनकी जबान से निकलने लगती हैं। अत्यन्त महत्त्व के काम के लिए वाइसराय से मुलाकात करने जा रहे हैं। पांच मिनट पहले मैं पूछता हू, "क्या कहेंगे?" उत्तर मिलता है, "मेरा मस्तिष्क शून्य है। पता नही, क्या कहूंगा।" और वहा पहुचते ही कोई अनोखी बात कह बैठते हैं। यह एक अद्भुत चीज है।

अहमदाबाद मे मिल-मजदूरों की हड़ताल हुई। न्याय मजदूरों के साथ था, यह गाधीजी ने माना था। मिल-मालिकों से भी प्रेम था। इसलिए एक हद तक तो प्रेम का भी झगडा था। मजदूर पहले तो जोश मे रहे, पीछे ठडे पड़ने लगे। भूख के मारे चेहरो पर हवाइया उड़ने लगी। मजदूरों की सभा में गाधीजी व्याख्यान दे रहे थे। मजदूरों के चेहरे सुस्त थे। अचानक गाधीजी के मुह से निकल पड़ा, "यदि हड़ताली डटे न रहे और जबतक फैसला न हो तबतक हड़तालियो ने हड़ताल को जारी न रखा, तो मैं भोजन न छूऊंगा।" यह अचानक निर्णय मुह से निकल पड़ा। न पहले कोई विचार उपवास का था, न कोई मन मे तर्क करके तत्त्व का मोल-तोल था। राजकोट का उपवास भी इसी तरह अचानक ही किया गया था।

इन घटनाओं मे एक बात मैंने स्पष्ट पाई। गांधीजी निर्णय करनेके लिए न विचार-मग्न होते हैं, न अपने निर्णय को विचार की कसौटी पर पहले कसते हैं। निर्णय पहले होता है, तर्क-दलील पीछे पैदा होती है। यही कारण है कि कभी-कभी उनकी दलीलें कच्ची मालूम देती हैं, तो कभी-कभी 'घृताधार पात्र वा पात्राधार घृतम्' की तरह अत्यन्त सूक्ष्म या तोडी-मरोडी हुई या खीचातानी की हुई मालूम देती हैं। कभी-कभी ऐसी दलीलों के मारे उनके विपक्षी परेशान हो जाते है। उन्हें चाणक्य बताते हैं। उन्हे उस मछली की उपमा दी जाती है, जो अपनी चिकनाहट के कारण हाथ की पकड़ मे नही आती और फिसलकर कब्जे से निकल जाती है।

पर दरअसल बात यह है कि गाधीजी की दलीलें सहज स्वभाव की होती हैं। लेकिन चूकि ये दलीलें निर्णय के बाद पैदा होती हैं, न कि निर्णय दलील और तर्क की भित्ति पर खड़ा किया जाता है, इसलिए उनका सारे-का-सारा निर्णय तक कभी अनावश्यक जटिलता लिये, कभी चाणक्यीय वाग्जाल से भरा हुआ और कभी थोथा प्रकट होता है। और हो भी क्या सकता है ? सूरज से पूछो कि आप सर्दी मे दक्षिणायन और गर्मी मे उत्तरायण क्यो हो जाते हैं, तो क्या कोई यथार्थ उत्तर मिलेगा ? सर्दी-गर्मी उत्तरायण-दक्षिणायन के कारण होती है, न कि उत्तरायण-दक्षिणायन सर्दी-गर्मी के कारण। गाधीजी की दलीलें भी वैसी ही हैं। वे निर्णय के कारण बनती हैं, न कि निर्णय उनके कारण बनता है। असल मे तो जबर्दस्त दलील उनके निर्णय के बारे में यही हो सकती है कि यह गाधीजी का निर्णय है। यह मैं अतिशयोक्ति नही कर रहा हूं; क्योकि मैंने यह पाया है कि उनका निर्णय उनकी दलीलों से कही अधिक प्राबल्य रखता है, कही अधिक अकाट्य होता है।

'चार तरह के सत्यानाश' वाली स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य मे जो शपथ है, उसमे कथन है कि अंग्रेजों ने भारतवर्ष का आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक नाश किया है। यह पुरानी शपथ है, जो वर्षों से चली आती है। पर इस साल काफी कोलाहल हुआ। अंग्रेजी के पत्रकारो ने और कुछ अंग्रेज नेताओ ने कहा कि "यह सरासर झूठ है। हम लोगों ने कब आध्यात्मिक या सामाजिक नाश किया ? यह कथन ही नितांत असत्य है कि हमने भारतीय अध्यात्म या संस्कृति का खून किया है।"

बात मे कुछ वजन भी है, पर जैसा कि हर दफा होता है, गाधीजी जो कहते है उसका अर्थ जनता या सर्वसाधारण कुछ भी करें, गांधीजी को तो वही अर्थ मान्य है, जो उनका अपना है। वह शब्दों के साहित्यिक अर्थ के कायल नही है। शब्दो में जो तत्त्व भरा रहता है, वह उसके पक्षपाती हैं। कांग्रेस ने कहा, आजादी

चाहिए। गांधीजी ने कहा, "हां, आजादी चाहिए।" पर जवाहरलालजी आजादी मांगते हैं तो वह कुछ अलग चीज चाहते हैं। गांधीजी की आजादी अलग चीज है। गांधीजी की आजादी पूर्ण स्वराज्य तो है ही, पर कई पहलुओं से महज राजनैतिक आजादी की अपेक्षा अधिक जटिल भी है। गांधीजी के पूर्ण स्वराज्य में अंग्रेजों के लिए तो त्याग है ही, पर भारतीयों के लिए भी सुख की नींद नहीं। 'आजादी' कहते-कहते गांधीजी 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग करने लगते हैं, फिर 'रामराज्य' कह जाते हैं।

असल में तो वह रामराज्य ही चाहते हैं। कई मर्तबा उन्होंने पाश्चात्य चुनाव-प्रणाली की निंदा की है और रामराज्य को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि उनकी दृष्टि में रामराज्य के माने पूर्ण स्वराज्य हो सकता है, पर पूर्ण स्वराज्य के माने राक्षस-राज्य भी हो सकता है। जर्मनी स्वतन्त्र है, ऐसा हम मान सकते हैं, पर गांधीजी ऐसी स्वतंत्रता नहीं चाहते। वह मुर्दे के पीछे चलते हैं, शब्द के गुलाम नहीं हैं। हलुवा कहो या और किसी नाम से पुकारो, वह एक पोषक और स्वादिष्ट भोजन चाहते हैं। वह शब्द का ऐसा अर्थ करते हैं कि जिसके पीछे कुछ मुद्दा रहता है, तथ्य रहता है। इसलिए हर शब्द का अपना अर्थ करते हैं और उसी पर डटे रहते हैं। इसमें बहुत गलतफहमियां हो जाती हैं, पर इससे उनको व्याकुलता नहीं होती।

कान्स्टिट्यूएण्ट असेम्बली शब्द के अर्थ का भी शायद यही हाल है। रामगढ़ के सविनय आज्ञा-भंग के प्रस्ताव के पीछे जो कैद लगी है उसको लोग भूल जाते हैं और आज्ञा-भंग को याद रखते हैं, पर गांधीजी आज्ञा-भंग को ताक पर रखकर उसके पीछे जो कैद है उसकी रटन करते हैं। लोग जब रसगुल्ला-रसगुल्ला चिल्लाते हैं, तब उनकी मंशा होती है एक गोल, अंडाकार सफेद चीज से, जो मीठी और रसभरी होती है। पर गांधीजी इतने से संतुष्ट नहीं। उन्हें गोलाकार, अंडाकार या सफेद की परवा नहीं। चाहे चपटी क्यों न हो, चाहे पिलास लिये क्यों न हो, पर मीठी तो हो ही, ताजगी भी लिये हो। उसमें कोई जहर न मिला हो, स्वच्छ दूध की बनी हो, जो-जो उसमें वांछनीय चीजें होती हैं वे सब हो, फिर शक्ल चाहे कुछ भी हो, रंगरूप की कोई कैद नहीं। शक्कर सफेद न हो और लाल हो और उसके कारण रसगुल्ले का रंग यदि लाल है तो उन्हें ज्यादा पसन्द है। गांधीजी ने जब 'चार सत्यनाश' वाली शपथ का समर्थन किया तो उनका अपना अर्थ कुछ और था, कांग्रेस का अर्थ कुछ और।

इसलिए जब कुछ प्रतिष्ठित अंग्रेजों ने इस शपथ की शिकायत की और इसे असत्य और हिंसात्मक बताया तो झट गांधीजी ने अपनी व्याख्या दे डाली— "मेरे पिताजी सीधे-सादे आदमी थे। पांव में नरम कपड़े का देसी जूता पहना करते थे, पर जब उन्हें गवर्नर के दरबार में जाना पड़ा, तो मोजा पहना और बूट और

पहने। कलकत्ते मे मैंने देखा कि कुछ राजा-महाराजाओं को कर्जन के दरबार का न्योता आया तो उन्हें अजीब तैयारियां करनी पडी। उनकी बनावट और स्वांग इतने भद्दे थे, मानो वे खानसामा के भेष मे हो, ऐसे लगते थे। हजारों भारतीय ऐसे हैं, जो अग्रेजीदां तो बन गये, पर अपनी भाषा से कोरे हैं। क्या यह संस्कृति और अध्यात्म का ह्रास नही है? माना कि यह हमने अपनी स्वेच्छा से किया, पर स्वेच्छा से हमने आत्म-समर्पण किया, इससे क्या अंग्रेजो का दोष कम हो जाता है? जो बेड़िया बदी को बंधन मे रखती हैं, उन्ही को यदि बंदी पूजा करने लग जाय और अपने बंधनकर्त्ता का अनुवर्तन करे तो फिर ह्रास का कौन-सा अध्याय बाकी रहा?"

यह कुछ अनोखी-सी दलील है, पर इस दलील ने 'शपथ' से पैदा हुई कटुता को अवश्य ही कम कर दिया। साथ ही, गांधीजी के विपक्षियों को यह लगे बिना नही रहा कि बाल की खाल खीची जाती है। पर दरअसल बात तो यह है कि उस शपथ के माने गाधीजी के अपने और रहे हैं, लोगों के कुछ और। गाधीजी के निर्णय तर्क के आधार पर नही होते। तर्क पीछे आता है, निर्णय पहले बनता है। दरअसल शुद्ध बुद्धिवालो को निर्णय मे ज्यादा सोच-विचार नही करना पडता। एक अच्छी बदूक से निकली हुई गोली सहसा तेजी के साथ निशाने पर जाकर लगती है। उसी तरह स्थितप्रज्ञ का निर्णय भी यत्न की तरह झटपट बनता है, क्योंकि 'सत्य प्रतिष्ठाया क्रियाफलाश्रयत्वम्।'

पर यह उनकी विभूति—और इसे विभूति के अलावा और क्या कह सकते हैं?—मित्र और विपक्षी दोनो को उलझन में डाल देती है। यह चीज गांधीजी को रहस्यमय बना देती है। इसके कारण कितने ही लोग उनके कथन को अक्षरश: न स्वीकार करके उसे शंका की दृष्टि से देखते हैं।

गाधी-अरविन पैक्ट के समय की बात है। करीब-करीब सारी चीजें तय हो गई। एक-एक शब्द वाइसराय और गांधीजी ने आपस में मिलकर पढ लिया। पढते-पढ़ते वाइसराय के घर पर दोपहरी हो गई। वाइसराय ने कहा, "मैं भोजन कर लेता हू। आप भी थक गये हैं। मेरे कमरे मे आप सो जाइए, फिर उठकर आगे काम करेंगे।" गांधीजी सो गये। ढाई बजे सोकर उठे, हाथ-मुह धोया। गाधीजी का कथन है, "मुझे कुछ बेचैनी-सी मालूम हुई। मैंने सोचा, यह क्या है? बेचैनी क्यों है? यह शारीरिक बेचैनी नही थी, यह मानसिक बेचैनी थी। लगा कि मैं कोई पाप कर रहा हूं। इकरारनामे का मसविदा मैंने लिया और उसे पढना शुरू किया। पढते-पढते जमीन-सम्बन्धी धारा पर पहुंचते ही मेरा माथा ठनका। बस मैंने जान लिया, यही भूल हो रही थी। वाइसराय से मैंने कहा, यह मसविदा ठीक नही। मैं इसे नही मान सकता। यह सही है कि मैंने इसकी स्वीकारोक्ति दे दी थी, पर मैंने देखा कि मैं पाप कर रहा था। इसलिए मैं इस स्वीकारोक्ति से वापस

हटता हूं।"

वाइसराय बेचारा हक्का-बक्का रह गया। यह भी कोई तरीका है? दलीलें तो गाधीजी के पास हजार थी और दलीलें शिकस्त देने वाली थी। पर दलीलो ने नाट्य मंच पर पीछे प्रवेश किया, पहले आया निर्णय। अन्त मे वाइसराय दलीलो के कायल हुए। पर क्या वाइसराय ने नही माना होगा कि यह आदमी टेढा है?

६ अप्रैल को सत्याग्रह-दिवस मनाया जाता है। इसके निर्णय का इतिहास भी ऐसा ही है। कुछ दिन पहले तक गाधीजी ने इसकी कोई कल्पना ही नही की थी। एक रात गांधीजी सो जाते हैं। रात को स्वप्न आता है कि तारीख ६ को सत्याग्रह-दिवस मनाओ। सहकर्मी कहते है कि अब समय नही रह गया, सफलता मुश्किल है। पर इसकी कोई परवा नही। मुनादी फिरादी जाती है और छ' तारीख का दिन शान के साथ सफल होता है। क्या यह कोई दलील पर बना हुआ निर्णय था? क्या सहकारियो ने नही सोचा होगा कि यह कैसा बेजोड आदमी है, जो हठात् निर्णय करता है और दलीलें पीछे से पैदा करता है? पर मेरा खयाल है कि जो अतरात्मा मे प्रेरित होकर निर्णय करते हैं, उनके निर्णय तर्क के आधार पर नही होते। पर यह अतरात्मा सभी को नसीब नही होती। यह क्या वस्तु है, इसके समझने का प्रयास भी कठिन है। प्रस्तुत विषय तो इतना ही है कि गाधीजी के निर्णय कैसे हुआ करते है।

सोलह

जब से मुझे गाधीजी का प्रथम दर्शन हुआ, तब से मेरा उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध जारी है। पहले कुछ साल मैं समालोचक होकर उनके छिद्र ढूढने की कोशिश करता था; क्योकि नौजवानो के आराध्य लोकमान्य की ख्याति को इनकी ख्याति टक्कर लगाने लग गई थी, जो मुझे रुचिकर नही मालूम देता था। पर ज्यों-ज्यो छिद्र ढूढने के लिए मैं गहरे उतरा त्यों-त्यो मुझे निराश होना पड़ा और कुछ अरसे मे समालोचक की वृत्ति आदर मे परिणत हो गई, और फिर आदर ने भक्ति का रूप धारण कर लिया। बात यह है कि गाधीजी का स्वभाव ही ऐसा है कि कोई विरला ही उनके ससर्ग से बिना प्रभावान्वित हुए छूटता है।

हम जब स्वप्नावस्था मे होते है तब न करने योग्य कार्य कर लेते हैं, जो जाग्रत अवस्था मे हम कभी न करें। पर शारीरिक जाग्रत अवस्था मे भी मानसिक सुषुप्ति रहती है और ध्यानपूर्वक खुर्दबीन से अध्ययन करनेवाले मनुष्य को, रूहानी

बेहोशी में किये गए कामों से, उस तिल के तेल का माप मिल जाता है। गांधीजी से मेरा पच्चीस साल का संसर्ग रहा है। मैंने अत्यन्त निकट से सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा उनका अध्ययन किया है। समालोचक होकर छिद्रान्वेषण किया है, पर मैंने उन्हें कभी सोते नहीं पाया। मालूम होता है, वह हर पल जाग्रत रहते हैं। इसलिए जब वह मुझे कहते हैं कि "हर पल मेरा जीवन ईश्वर-सेवा में व्यतीत होता है।" तो मैं इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं पाता। ऐसा कथन अभिमान की निशानी नहीं है; क्योंकि गांधीजी द्रष्टा होकर ही अपना विवेचन देते हैं। यदि द्रष्टा होकर कोई अपने-आपको देखे, तो फिर वह चाहे अपना विवरण दे या पराया, उसमें कोई भेद नहीं रह जाता, और वह अपना विवरण भी उतना ही निःसंकोच दे सकता है जितना कि पराया।

यरवदा में जब वह उपवास के बाद उपवास करने लगे तो मुझे ऐसा लगा कि शायद अब वह सोचते होंगे, "मैं बूढ़ा होकर अब जानेवाला तो हूं ही, इसलिए क्यों न लड़ते-लड़ते जाऊं?" मैंने उन्हें एक तरह का उलाहना देते हुए कहा, "मालूम होता है कि आपने जीकर देश का भला किया, पर अब चूंकि मरना है, इसलिए मृत्यु से भी आप देश को लाभ देना चाहते हैं।" उन्होंने कहा, "ऐसी कल्पना करना भी अभिमान है, क्योंकि करना, कराना, न कराना यह ईश्वर का क्षेत्र है। यदि इस तरह का मन में हम कोई नक्शा खींचें तो ईश्वर के अस्तित्व की अवहेलना होगी और इससे हमारा अभिमान साबित होगा।" मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, अहंकार का उन्होंने कहां तक नाश किया है, इसका मुझे पता लगा।

अहंकार से गांधीजी इतनी दूर हैं, यह उनके अंतर में झांकने से ही पता लग सकता है।

हरिजन-सेवक-संघ के हर पदाधिकारी को एक तरह की शपथ लेनी पड़ती है। उसका आशय है कि "मैं अपने जीवन में ऊंच-नीच का भेद न मानूंगा।" इस शपथ के लेने का समय आया तो मैंने इन्कार किया। मैंने कहा, "केवल जन्म से न कोई ऊंचा है न नीचा, यह तो मैं सहज मान सकता हूं, पर यदि एक आदमी चोर है, दुष्ट है, पापी है, उसके पाप-कर्म प्रत्यक्ष हैं और मुझमें वे ऐब नहीं हैं तो मैं अभिमान न भी करूं तो भी, इस ज्ञान से कि मैं अमुक से भला हूं, कैसे वंचित रह सकता हूं? इसके माने यह हैं कि मैं द्रष्टा होकर भी यह मान सकता हूं कि मैं अमुक से ऊंचा हूं, अमुक से नीचा।"

इस बहस ने उन्हें कायल नहीं किया, तो मैंने मुद्दे की दलील पेश की, "आप अपने ही को लीजिए। आप ईश्वर से अधिक निकट हैं बनिस्बत मेरे, अब क्या आप इस बात को आपमें अभिमान न होते हुए भी भूल जायेंगे कि आप ऊंचे हैं और मैं नीचा हूं?"

"पर यह बात ही सही नहीं है, क्योंकि जबतक हम अपनी मंजिल तय न

कर लें, कौन कह सकता है कि ईश्वर के निकट कौन है और दूर कौन ? जो दूर दिखाई देता है वह निकट भी हो सकता है और जो निकट दिखाई देता है वह दूर भी हो सकता है। मैं हिन्दुस्तान से एक बार अफ्रीका जा रहा था। जहाज पर ठीक समय न पहुच सका। लंगर उठ चुका था, इसलिए एक नाव मे बैठाकर मुझे जहाज के पास पहुचाया गया। पर तूफान इतना था कि कई बार मेरी किश्ती जहाज के बाजू से टकरा-टकराकर दूर हट गई। अन्त मे जैसे-तैसे मुझे जहाज पर चढाया गया। पर यह भी सभव था कि जैसे किश्ती कई बार जहाज से टकराकर दूर निकल गई, वैसे दूर ही रह जाती और मैं जहाज पर सवार ही न हो पाता। क्या केवल किश्ती के छू जाने से हम यह कह सकते हैं कि हम जहाज के निकट पहुच गये ? निकट पहुचकर भी तो दूर चले जा सकते हैं। तो मैं फिर कैसे मान लू कि मैं ईश्वर के निकटतर हू और अमुक मनुष्य दूर है ? ऐसी कल्पना ही भ्रम-मूलक है और अहकार से भरी है।"

मुझे यह दलील मोहक लगी। अधिक मोहक तो यह चीज लगी कि गाधीजी किस हद तक जाग्रत है। राजा का स्वाग भरनेवाला कलाकार अपने स्वाग से मोहित नही होता। गाधीजी अपने बडप्पन मे बेभान नही हैं। अहकार मोह का एक दूसरा नाम है। जाग्रत मनुष्य को मोह कहा, अहकार कहा ? यही कारण है कि गाधीजी कभी-कभी नि सकोच आत्मश्लाघा भी कर बैठते है। "मैं प्रचार-शास्त्र का पण्डित हू; अखबारनवीसी मे निपुण हू, मैं पक्का बनिया हूं, मैं शरीर-शास्त्र का विद्यार्थी हू, मेरा दावा है कि मैं अड़तीस वर्ष से गीता के अनुसार आचरण करता आ रहा हूं (यह सन् १६२६ ई० मे इन्होने लिखा था), मैं सत्य का पुजारी हू, मेरा जीवन अहर्निश ईश्वर-सेवा मे बीतता है।" इस शब्दावली मे और किसी के मुह से अहकार की गध आ सकती है, पर गाधीजी के मुह में नही, क्योकि गाधीजी तटस्थ होकर अपनी विवेचना करते हैं।

एक दक्ष सर्जन छुरी लेकर चीर-फाड करके मनुष्य-शरीर के भीतर छिपे हुए अवयवो को दर्शको के सामने ला देता है। सडे हुए हिस्से को निर्दयता से काट डालता है, टाके लगाता है, और इस बेरहमी से छुरी चलाता नजर आता है मानो वह जिंदा शरीर पर नही, बल्कि एक लकडी पर कौशल दिखला रहा हो। पर वही सर्जन यह व्यवहार अपने ऊपर नही कर सकता। ऐसा सर्जन कहा, जो हँसते-हँसते काम पडने पर अपनी सडी टांग को काट फेंके ? पर गाधीजी वैसे सर्जन हैं। उनके स्नायु ममता-रहित हो गये हैं, इसलिए गाधीजी जिस बेरहमी से पर-पुरुष को नश्तर मार सकते हैं उससे कही अधिक निर्दयता से अपने ऊपर नश्तर चला सकते हैं। "मैंने हिमालय के समान बडी भूल की है, मैंने अमुक पाप किया।" ऐसी स्वीकारोक्तियो से उनकी आत्मकथा भरी है। क्या आश्चर्य है, यदि वह कहें, "बुद्ध की अहिंसा मेरी अहिंसा से न्यून थी। टाल्स्टॉय कभी अपने विचारो का

अनुसरण नहीं कर सका, क्योंकि उसके विचार उसके आचारों से कई मील आगे दौड़ते थे। मैं अपने विचारों से अपने आचार को एक कदम आगे रखने का प्रयत्न करता आ रहा हूं।" ये उक्तियां अभिमान की नहीं, एक तटस्थ जर्राह की है, जो उसी दक्षता और कुशलता से अपने-आपको चीर-फाड़ सकता है, जिस दक्षता से वह औरों की चीर-फाड़ करता है।

सूक्ष्मतया अध्ययन करनेवाले को सहज ही पता लग जाता है कि अभिमान गांधीजी को छू तक नहीं गया। मेरा खयाल है कि मनुष्यों की परख छोटे कामों से होती है, न कि बड़े कामों से। बड़े-से-बड़ा त्याग करनेवाला रोजमर्रा के छोटे कामों में लापरवाही भी कर बैठता है और कभी-कभी अत्यन्त कमीना काम भी कर लेता है। कारण यह है कि बड़े कामों में लोग जाग्रत रहकर काम के साथ-साथ आत्मा को जोड़ देते हैं, इसलिए वह कार्य दिप उठता है। पर छोटे कामों में लापरवाही में मनुष्य असावधान बन जाता है। ऐसे मनुष्य के सम्बन्ध में यह साबित हो जाता है कि उसका त्याग उसका एक स्वाभाविक धर्म नहीं बन गया है। पर गांधीजी के बारे में यह कहा जा सकता है कि चाहे छोटा हो या बड़ा, सभी काम वह जाग्रत होकर करते हैं। इसके माने यह है कि त्याग, सत्य, अहिंसा इत्यादि उनका स्वाभाविक धर्म बन गया है। उन्हें धर्मपालन करने में प्रयत्न नहीं करना पड़ता और यदि प्रयत्न करना पड़ता है तो अत्यन्त सूक्ष्म। वह आठ पहर जाग्रत रहते हैं। यह कोई साधारण स्थिति नहीं है।

सत्रह

गांधीजी को एक महात्मा के रूप में हमने देखा, एक नेता के रूप में भी देखा, पर गांधीजी का असल रूप तो 'बापू' के रूप में देखने को मिलता है। सेवाग्राम में बड़े-बड़े मसले आते हैं। वाइसराय से खतोकिताबत होती है, वर्किंग कमेटी की बैठकें होती हैं, बड़े-बड़े नेता आते है। मंत्रिमंडल में लोग कांग्रेस-राज के जमाने में सलाह-सूत के लिए आते ही रहते थे। पर आश्रमवासी न बड़े लोगों की चिट्ठियों से चौंधियाते हैं, न बड़े नेताओं को देखकर मोहित होते हैं, न राजनीति में उन्हें कोई बड़ी भारी दिलचस्पी है। उन्हें तो बापू ने क्या खाया, क्या पिया, कब उठ गये, कब सो गये, फलां से क्या कहा, फलां ने क्या सुना, इन बातों में ज्यादा रस है, और गांधीजी भी आश्रम की छोटी-छोटी चीजों में आवश्यकता से अधिक रस लेते हैं।

आश्रम भी क्या है, एक अजीब मण्डली है। उसे शिवजी की बरात कहना चाहिए। कई तरह के तो रोगी हैं, जिनकी चिकित्सा में गांधीजी खास दिलचस्पी लेते हैं। पर सब-के-सब बापू के पीछे पागल हैं। मैंने एक रोज देखा कि एक रोगी के लिए जाड़े में ओढ़ने के लिए रजाई बनाई जा रही है। बा की फटी-पुरानी साड़ियां लाई गईं। गांधीजी ने अपने हाथ से उन्हें नापा। जितना कपड़ा लगेगा, उसकी कूत की गई। रजाई के भीतर रुई की जगह पुराने अखबारों को एक के ऊपर दूसरी परत रखकर कपड़े के साथ सीया जा रहा था। गांधीजी ने सारा काम दिलचस्पी से कराया। मुझे बताया कि अखबार रुई से ज्यादा गरम है। मुझे लगा, ऐसे-ऐसे कामों में क्या इनका बहुमूल्य समय लगना चाहिए? मैंने मजाक में कहा, "जान पड़ता है, आपको आश्रम के इन कामों में देश के बड़े-बड़े मसलों से भी ज्यादा दिलचस्पी है।" "ज्यादा तो नहीं, पर उतनी ही है, ऐसा कहो।"

मैं अवाक् रह गया, क्योंकि गांधीजी ने गम्भीरता से उत्तर दिया था, मजाक में नहीं। पर बात सच्ची है। शायद इसका यह भी कारण हो कि गांधीजी रात-दिन यदि गम्भीर मसलों पर ही विचार किया करें, तो फिर तनिक भी विश्राम न मिले। शायद आश्रम उनके लिए परोपकार और खेल की एक सम्मिलित रसायन-शाला है। आश्रम गांधीजी का कुटुम्ब है। महान्-से-महान् व्यक्ति को भी कौटुम्बिक सुख की चाह रहती है। गांधीजी का वैसे तो सारा विश्व कुटुम्ब है, पर आश्रम के कुटुम्ब की उन पर जिम्मेदारी है। उस जिम्मेदारी को वह निर्मोही होकर निबाहते हैं।

आश्रम में उन्होंने इतने भिन्न-भिन्न स्वभाव और शक्ति के आदमी रखे हैं कि बाहरी प्रेक्षक को अचम्भा होता है कि यह शिवजी की बरात क्यों रखी है! परन्तु एक-एक का परिचय करने से पता चलता है कि हरेक का अपना स्थान है, बल्कि गांधीजी उनमें से कई को कुछ बातों में तो अपने से भी अधिक मानते हैं। किसी आध्यात्मिक प्रश्न का निराकरण करना होता है तो वह अक्सर अपने साथियों—विनोबा, किशोरलालभाई, काका साहब आदि को बुला लेते हैं। ऐसे साथियों को रखकर ही मानो उन्होंने अपने मन में उच्च-नीच भावना नष्ट कर डाली है। जो काम हलके-से-हलका माना जाता है उसे करनेवाला और जो काम ऊंचे-से-ऊंचा माना जाता है उसे करनेवाला, दोनों आश्रम में भोजन करते समय साथ-साथ बैठते हैं। जैसे पंक्ति में उच्च-नीच का भेद नहीं है, वैसे ही गांधीजी के मन में और उनके आश्रमवासियों के मन में भी यह भेद नहीं है।

कुछ दिन पहले की बात है। वाइसराय से मिलने के लिए गांधीजी दिल्ली आये हुए थे। पर वापस सेवाग्राम पहुंचने की तालावेली लगी हुई थी। वापस पहुंचने के लिए एक प्रकार का अधैर्य-सा टपकता था। अन्त में गांधीजी ने जब देखा कि शीघ्र वापस नहीं जा सकते, तो महादेवभाई को झटपट सेवाग्राम लौटने

का आदेश दिया। काम तो काफी पडा ही था और मैं नही समझ सका कि इतने बडे मसले सामने होते हुए कैसे तो वापस जाने का उतावलापन वह खुद कर सकते थे और कैसे महादेवभाई को यकायक वापस लौटा सकते थे। मैंने कहा, "इतने बड़े काम के होते हुए वापस लौटने का यह उतावलापन मुझे कुछ कम जंचता है।" "पर मेरी जिम्मेदारी का तो ख्याल करो।" गांधीजी ने कहा, "मैं सेवाग्राम मे एक मजमा लेकर बैठा हूं। रोगी तो हैं ही, पर पागलपन भी वहां है। कभी-कभी तो मन में आता है कि बस, अब मैं सबको छोड़ दू और केवल महादेव को ही पास रखूं। बा चाहे तो वह भी रहे। पर सबको छोड़ दू, तब तो जिम्मेदारी से हट जाता हू। पर जबतक इस मजमे की जिम्मेदारी लेकर बैठा हूं, तबतक तो मुझे उस जिम्मेदारी को निबाहना ही चाहिए। यही कारण है कि मेरा शरीर तो दिल्ली मे है, पर मेरा मन सेवाग्राम मे पड़ा है।"

सेवाग्राम के कुटुम्ब के प्रति उनके क्या भाव हैं, इस पर ऊपरी उद्गार कुछ प्रकाश डालते हैं।

अठारह

गाधीजी के यहा एक-एक पैसे का हिसाब रखा जाता है। गांधीजी की आदत बचपन से ही रुपये-पैसे का हिसाब सावधानी से रखने की रही है। गांधीजी व्यवस्था-प्रिय हैं। यह भी बचपन से ही उनकी आदत है। इसलिए उनकी झोपड़ी साफ-सुथरी, लिपी-पुती और व्यवस्थित है। कमर मे कछनी है, वह भी व्यवस्थित। वाइसराय ने कहा कि गाधीजी बुड्ढे तो हैं, पर उनकी चमडी की चिकनाहट युवको की-सी है। यह सही बात है कि वे स्वास्थ्य का पूरा जतन रखते हैं। हर चीज मे किफायतशारी की जाती है। कोई पिन चिट्ठियो मे लगी आई, तो उसको निकालकर रख लिया जाता है।

लन्दन जाते समय जहाज पर एक गोरा था, जो गांधीजी को नित्य कुछ-न-कुछ गालियां सुना जाया करता था। एक रोज उसने गाधीजी पर कुछ व्यंग्यपूर्ण कविता लिखी और गाधीजी के पास उसके पन्ने लेकर आया। गाधीजी को उसने पन्ने दिये, तो उन्होंने चुपचाप पन्नो को फाड रद्दी की टोकरी मे डाल दिया और उन पन्नो मे लगी हुई पिन को सावधानी से निकालकर अपनी डिबिया मे रख लिया। उसने कहा, "गांधी, पढो तो सही, इसमे कुछ तो सार है।" "हा, जो सार

था वह तो मैंने डिबिया मे रख लिया है।" इस पर सब हँसे और वह अंग्रेज खिसियाना पड़ गया।

मैंने देखा है कि छोटी-सी काम की चीज को भी गांधीजी कभी नही गवाते। एक-एक, दो-दो गज की सुतली के टुकड़ो को सुरक्षित रखते हैं, जो महीनो बाद काम पड़ने पर सावधानी से निकाल लेते हैं। उनके चरखे के नीचे रखने का काले कपड़े का एक छोटा-सा टुकड़ा आज कोई बारह साल से देखता हू, चला आ रहा है। लोगों की चिट्ठियो मे से साफ कागज निकालकर उसके लिफाफे बनवाकर उन्हे काम मे लाते हैं। यह दृश्य एक हद दर्जे के मक्खीचूस से भी बाजी मारता है।

लन्दन की बात है। गांधीजी का नियत स्थान था शहर से दूर पूर्वी हिस्से मे। दफ्तर था पश्चिमी हिस्से में, जो नियत स्थान से सात-आठ मील की दूरी पर था। दिन का भोजन दफ्तर में ही—जो एक मित्र के मकान मे था—होता था। नियत स्थान से भोजन का सामान रोजमर्रा दफ्तर मे ले आया जाता था।

भोजन के साथ-साथ कभी-कभी गांधीजी शहद भी लेते हैं। हम लोग इंग्लैंड जाते समय जब मिस्र से गुजरे, तो वहा के मिस्री लोगो ने शहद का एक मटका भरकर गांधीजी के साथ दे दिया था। उसी मे से कुछ शहद रोजमर्रा भोजन के लिए बरता जाता था। उस रोज भूल से मीराबेन घर से शहद लाना भूल गई और जब समय पर खयाल आया कि शहद नही है तो चार आने की एक बोतल मगाकर भोजन के साथ रख दी। गांधीजी भोजन करने बैठे तो नजर शीशी पर गई। पूछा—यह शीशी कैसे ? उत्तर मे बताया गया कि क्यो शहद खरीदना पड़ा। "यह पैसे की बर्बादी क्यो ? क्या लोगों के दिये हुए पैसे का हम इस तरह दुरुपयोग करते हैं ? एक दिन शहद के बिना क्या मैं भूखा मर जाता ?"

भारतवर्ष के बड़े-बड़े पेचीदा मसले सामने पड़े थे। उनको किनारे रखकर शहद पर काफी देर तक व्याख्यान और डांट-डपट होती रही, जो पास बैठे हुए लोगों को अखरी भी, पर गांधीजी के लिए छोटे मसले उतने ही पेचीदा हैं जितने कि बड़े मसले। इसमें कभी-कभी लोगों को लघु-गुरु के विवेक का अभाव प्रतीत होता है। पास में रहनेवालों को झुंझलाहट होती है, पर गांधीजी पर इसका कोई असर नहीं होता।

कपड़ों की खूब एहतियात रखते हैं। जरा फटा कि उस पर कारी लगती है। हर चीज को काफी स्वच्छ रखते हैं, पर कंजूसी यहां तक चलती है कि पानी को भी फिजूल खर्च नहीं करते। हाथ-मुह धोने के लिए बहुत ही थोड़ा-सा पानी लेते हैं। पीने के लिए उबला हुआ पानी शीशी में रखते हैं, जो जरूरत पड़ने पर पीने और हाथ-मुह धोने के काम आता है।

उन्नीस

गांधीजी की दिनचर्या भी व्यवस्थित है। एक-एक मिनट का उपयोग होता है। बाहर से काफी भारी डाक आती है, उसका उत्तर भेजना पडता है। अक्सर वह खाते-खाते भी पढ़ते हैं। कभी-कभी खाते-खाते किसी को वार्तालाप के लिए भी समय दे देते हैं। घूमने का समय भी बेकार नही गुजरता।

गाधीजी प्रायः चार बजे उठते हैं। उठते ही हाथ-मुंह धोकर प्रार्थना होती है। इसके बाद शौचादि से निवृत्त हो सात बजे सुबह कुछ हलका-सा नाश्ता होता है। उसके बाद टहलना होता है। फिर काम मे लग जाते हैं। नौ बजे के करीब तेल-मालिश कराते हैं, पर काम मालिश के समय भी चलता रहता है। फिर स्नान से निवृत्त होकर ग्यारह बजे भोजन करते हैं। एक बजे तक काम करके कुछ झपकी लेते हैं। दो बजे के करीब उठते हैं, उसके बाद फिर शौच जाते हैं। उस समय भी कुछ काम तो जारी रहता है। शौच के बाद पेट पर मिट्टी की पट्टी बांधकर कुछ विश्राम करते हैं, पर काम लेटे-लेटे भी जारी रहता है। चार बजे के करीब चरखा कातते हैं। फिर लिखने-पढने का काम होता है। पाच के करीब शाम का ब्यालू होता है, उसके बाद टहलना। सात बजे प्रार्थना, फिर कुछ काम और नौ-साढे नौ बजे के करीब सो जाते हैं।

आवश्यकता होने पर रात को दो बजे भी उठ जाते हैं और काम शुरू कर देते हैं। गांधीजी का भोजन सीधा-सादा है, पर साल-दो साल से हेर-फेर होते रहते हैं। एक जमाना था, जब केवल मूगफली और गुड खाकर ही रहते थे। बहुत वर्षों पहले मैंने देखा था, वह दूध का बिलकुल परित्याग करके उसके बदले मे सौ से ज्यादा बादाम रोज खाते थे। कई वर्षों पहले एक मर्तबा यह भी देखा था कि रोटी का परित्याग करके करीब एक सौ खजूर खाते थे। इसी तरह एक जमाने मे रोटी ज्यादा खाते थे, फल कम खाते थे, इसी तरह के प्रयोग और रद्दोबदल भोजन मे चलते ही रहते हैं। कुछ ही वर्षों पहले नीम की कच्ची पत्तियां और इमली का बड़े जोरों से प्रयोग जारी था, पर बाद मे उसे छोड दिया। कच्चे अन्न का प्रयोग भी बीमार होकर छोडा।

ये सब प्रयोग हर मनुष्य के लिए अवाछनीय हैं। आजकल गाधीजी का भोजन खूब खरखरी सिकी पतली रूखी रोटी, उबला हुआ साग, गुड, लहसुन और फल है। हर चीज मे थोड़ा-सा सोडा डाल लेते हैं। उनकी राय है कि सोडा स्वास्थ्य के लिए अच्छी चीज है। एक दिन में पाच से अधिक चीजें गांधीजी नही खाते। इस गणना में नमक भी शुमार में आ जाता है।

गाधीजी अपनी जवानी मे पचास-पचास मील रोजाना चल चुके हैं, पर बुढापे

में भी इन्होंने टहलने का व्यायाम कभी नहीं छोड़ा। कभी-कभी कहते हैं कि खाना एक रोज न मिले तो न सही, नींद भी कम मिले तो चिन्ता नहीं, पर टहलना न मिले तो बीमारी आई समझो। पेट पर रोजमर्रा एक घंटे तक मिट्टी की पट्टी बांधे रखते हैं, इसका भी काफी माहात्म्य बताते हैं।

नींद का यह हाल है कि जब चाहें तब सो सकते हैं। गांधी-अरविन समझौते के समय की मुझे याद है कि मेरे यहां कुछ अंग्रेजों ने गांधीजी से मिलना निश्चित किया था। निर्धारित समय से पन्द्रह मिनट पहले गांधीजी आये। कहने लगे, "मुझे आज नींद की जरूरत है, कुछ सो लूं।" मैंने कहा, "सोने का समय कहां है? पन्द्रह मिनट ही तो हैं।" उन्होंने कहा, "पन्द्रह मिनट तो काफी हैं।" चट खटिया पर लेट गये और एक मिनट के बाद गाढ़ निद्रा में सो गये। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि पन्द्रह मिनट के बाद अपने-आप ही उठ गये। मैंने एक बार कहा, "आपमें सोने की शक्ति अद्भुत है।" गांधीजी ने कहा, "जिस रोज मेरा नींद पर से काबू गया तो समझो कि मेरा शरीरपात होगा।"

गांधीजी को बीमारों की सेवा का बड़ा शौक है। यह शौक बचपन से ही है। अफ्रीका में सेवा के लिए उन्होंने न केवल नर्स का काम किया, बल्कि एक छोटा-मोटा अस्पताल भी चलाया, यद्यपि अपनी 'हिन्द-स्वराज्य' नामक पोथी में एक दृष्टि से उन्होंने अस्पतालों की निन्दा भी की है। बीमारों की सेवा का वह शौक आज भी उनमें ज्यों-का-त्यों मौजूद है। वह केवल सेवा तक ही रस लेते हैं, ऐसा नहीं है। चिकित्सा में भी रस लेते हैं और सीधी-सादी चीजों के प्रयोग से क्या लाभ हो सकता है, इसकी खोज बराबर जारी ही रहती है।

कोई अत्यन्त बीमार पड़ा हो और मृत्यु-शय्या पर हो, और गांधीजी से मिलना चाहता हो, तो असुविधा और कष्ट बर्दाश्त करके भी रोगी से मिलने जाते हैं। मैंने कई मर्तबा उन्हें ऐसा करते देखा है, और एक-दो घटनाएं तो ऐसी भी देखी हैं कि उनके जाने से रोगियों को बेहद राहत मिली।

बहुत वर्षों की पुरानी बात है। दिल्ली की घटना है। एक मरणासन्न रोगिणी थी। रोग से संग्राम करते-करते बेचारी के शरीर का ह्रास हो चुका था। केवल सांस बाकी थी। उसने जीवन से विदाई ले ली थी और लम्बी यात्रा करना है, ऐसा मानकर राम-राम करते अपने अंतिम दिन काट रही थी। पर गांधीजी से अपना अंतिम आशीर्वाद लेना बाकी था। रोगिणी ने कहा, "क्या गांधीजी के दर्शन भी हो सकते हैं? जाते-जाते अंत में उनसे तो मिल लूं।" गांधीजी तो दिल्ली के पास भी नहीं थे, इसलिए उनका दर्शन असम्भव था। पर मरते प्राणी की आशा पर पानी फेरना मैंने उचित नहीं समझा, इसलिए मैंने कहा, "देखेंगे, तुम्हारी इच्छा ईश्वर शायद पूरी कर देगा।"

दो ही दिन बाद मुझे सूचना मिली कि गांधीजी कानपुर से दिल्ली होते हुए

अहमदाबाद जा रहे हैं। उनकी गाड़ी दिल्ली पहुंचती थी सुबह चार बजे। अहमदाबाद की गाडी पाच बजे छूट जाती थी। केवल घंटे-भर की फुरसत थी, और रुग्णा बेचारी दिल्ली से दस मील के फासले पर थी। घंटे-भर मे रोगी से मिलना और वापस स्टेशन आना, यह दुश्वार था।

जाड़े का मौसम था। हवा तेजी से चल रही थी। मोटरगाड़ी में—उन दिनों खुली गाड़िया हुआ करती थी—गांधीजी को सवेरे-सवेरे बीस मील सफर कराना भी भयानक था। गांधीजी आ रहे हैं, इसका बेचारी रोगिणी को तो पता भी न था। उसकी तीव्र इच्छा गाधीजी के दर्शन करने की थी, पर इसमे कठिनाई प्रत्यक्ष थी। गाधीजी गाड़ी से उतरे। मैंने दबी जबान में कहा, "आज आप ठहर नही सकते ?" गांधीजी ने कहा, "ठहरना मुश्किल है।" मैं हताश हो गया। रोगी को कितनी निराशा होगी, यह मैं जानता था।

गाधीजी ने उथलकर पूछा, "ठहरने की क्यों पूछते हो ?" मैंने उन्हे कारण बताया। गांधीजी ने कहा, "चलो, अभी चलो।" "पर मैं आपको इस जाड़े में, ऐसी तेज हवा मे सुबह के वक्त मोटर में बैठाकर कैसे ले जा सकता हू ?" "इसकी चिन्ता छोड़ो। मुझे मोटर मे बिठाओ। समय खोने से क्या लाभ ? चलो, चलो।" गाधीजी को मोटर मे बैठाया। जाड़ा और ऊपर से पैनी हवा। ये बेरहमी मे अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहे थे। सूर्योदय तो अभी हुआ भी न था। ब्राह्म मुहूर्त की शान्ति सर्वत्र विराजमान थी। रुग्णा शय्या पर पड़ी 'राम-राम' जप रही थी। गांधीजी उसकी चारपाई के पास पहुचे। मैंने कहा, "गाधीजी आये हैं।" उसे विश्वास न हुआ। हक्की-बक्की-सी रह गई। सकपकाकर उठ बैठने की कोशिश की; पर शक्ति कहा थी ? उसकी आखों से दो बूदें चुपचाप गिर गईं। मैंने सोचा, मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया।

रोगिणी की आत्मा को क्या सुख मिला, यह उसकी आखें बता रही थी।

गांधीजी की गाडी तो छूट चुकी थी, इसलिए मोटर से सफर करके आगे के स्टेशन पर गाड़ी पकड़ी। गाधीजी को कष्ट तो हुआ, पर रोगी को जो शाति मिली उस सन्तोष मे गाधीजी को कष्ट का कोई अनुभव नही था।

थोड़े दिनो बाद रोगिणी ने ससार से विदा ली, पर मरने मे पहले उसे गाधीजी के दर्शन हो गये, इससे उसे बेहद शान्ति थी।

हम भूखे को अन्न देते हैं, प्यासे को पानी देते हैं, उसका माहात्म्य है। रन्तिदेव और उसके बाल-बच्चों ने स्वयं भूखे रहकर किस तरह भूखे को रोटी दी, इसका माहात्म्य हमारे पुराण गाते हैं। पर एक मरणासन्न प्राणी है, अन्तिम घड़ियां गिन रहा है, चाहता है कि एक पूज्य व्यक्ति के दर्शन कर लूं। इस दर्शन से भूखे रोगी की भूख तृप्त होती है, उसे सन्तोष-दान मिलता है, इस दान का माहात्म्य कितना होगा ?

बीस

गांधीजी इकहत्तर के हो चले।

पच्चीस साल पहले जब मुझे उनका प्रथम दर्शन हुआ तब वह प्रौढ़ावस्था में थे, आज वृद्ध हो गये हैं। उस समय की सूरत-वेशभूषा का आज की सूरत-वेशभूषा से मिलान किया जाय तो बड़ा भारी अन्तर है। हम जब एक वस्तु को रोज-रोज देखते रहते हैं तो जो दैनिक परिवर्तन होता है उसको हमारी आंखें पकड़ नहीं सकतीं। परिवर्तन चोर की तरह आता है। इसलिए गांधीजी के शरीर में, उनकी बोलचाल में, उनकी वेशभूषा में कब और कैसे परिवर्तन हुआ, यह आज किसी को स्मरण भी नहीं है। मैंने जब गांधीजी को पहले-पहल देखा, तब वह अंगरखा पहनते थे। फिर कुर्ता पहनने लगे और साफे की जगह टोपी ने ले ली। एक सभा में व्याख्यान देते-देते कुर्ता भी फेंक दिया, तब से घुटनों तक की धोती और ओढ़ने की चादर-मात्र रह गई।

पहले चोटी बिलकुल नहीं रखते थे। हरिद्वार के कुंभ पर एक साधु ने कहा, "गांधी, न यज्ञोपवीत, न चोटी; हिन्दू का कुछ तो चिह्न रखो।" तब से गांधीजी ने शिखा धारण करली, और वह एक खासी गुच्छेदार शिखा थी। एक रोज अचानक सिर की तरफ मेरी नजर पड़ी तो, देखता हूं, शिखा नहीं है। शिखा के स्थान के सब बाल धीरे-धीरे उड़ चले और जो शिखा धारण की गई थी वह अपने आप ही विदा हो गई। शिखा के अभाव ने मुझे याद दिलाया कि जिन पांच तत्त्वों से एक-एक चीज पैदा हुई थी उन्हीं में धीरे-धीरे वे अब विलीन हो रही हैं। दांत सारे चले गये, पर कब-कब गये, कैसे-कैसे चुपके-से चलते गये, इसका पता रहने वालों को भी कभी ध्यान नहीं है।

लोगों को अपने जीवन में यश-अपयश दोनों मिले हैं। कभी लोकप्रियता आई, कभी चली गई। ड्यूक आफ वेलिंग्टन, नेपोलियन, डिजरायली इत्यादि राजनैतिक नेताओं ने अपने जीवन में उतार-चढ़ाव सबकुछ देखा। पर गांधीजी ने चढ़ाव-ही-चढ़ाव देखा, उतार कभी देखा ही नहीं। अपने जीवन में बड़े-बड़े काम किये। हर क्षेत्र में कुछ-न-कुछ दान किया। साहित्यिक क्षेत्र भी इस दान से न बचा। कितने नये शब्द रचे, कितने नये प्रयोग चलाये, लेखन-शैली पर क्या असर डाला, इसका तलपट भी कभी लगेगा।

किसी ने मिसेज बेसेंट से पूछा था कि हिन्दुस्तान में हमारी सबसे बड़ी बुराई कौन-सी है? मिसेज बेसेंट ने कहा, "हिन्दुस्तान में लोग दूसरे को गिराकर चढ़ने की कोशिश करते हैं, यह सबसे बड़ी बुराई है।" चाहे यह सबसे बड़ी बुराई हो या न हो, पर इस तरह की बुराई राजनैतिक क्षेत्र में अक्सर यहां पाई जाती है। पर

गांधीजी ने जमीन से खोद-खोदकर हीरा निकाला। उन्होंने छान-छानकर सोना जमा किया। सरदार वल्लभभाई को बनाने का श्रेय गांधीजी को है। राजगोपालाचार्यजी को, राजेन्द्रबाबू को गढा गाधीजी ने। सैंकडो दिग्गज और लाखो सैनिक गांधीजी ने पैदा किये। करोड़ो मुर्दा देशवासियो मे एक नई जान फूक दी। छोटे-छोटे आदमियों को काट-छाटकर सुघड बना दिया। 'चिडियों से मैं बाज लडाऊं, तब गोविन्दसिंह नाम रखाऊं।'

जिन गाधीजी की ऐसी देन रही, वह अब बुड्ढे होते जा रहे हैं।

कब बुड्ढे हो गये, इसका हमे ध्यान नही रहा।

"दिन-दिन, घडी-घडी, पल-पल, छिन-छिन स्रवत जात जैसे अजुरी को पानी", ऐसे आयु बीतती जा रही है। पर गाधीजी लिखते है, बोलते हैं, हमारा सचालन करते हैं, इसलिए उनके शारीरिक शैथिल्य का हमे कोई ज्ञान भी नहीं है। हमने मान लिया है कि गाधीजी का और हमारा सदा का साथ है। ईश्वर करे, वह चिरायु हों!

यदि कोई अपनी जवानी देकर गाधीजी को जिंदा रख सके तो हजारो युवक अपना जीवन देने के लिए उद्यत हो जाय। पर यह तो अनहोनी कल्पना है।

अन्त मे फिर प्रश्न आता है, गाधीजी का जीवनचरित्र क्या है?

राम की जीवनी को किसी कवि ने एक ही श्लोक मे जनता के सामने रख दिया है:

> आदौ रामतपोवनाधिगमनं, हत्वा मृग काञ्चनं।
> वैदेहीहरण जटायुमरणं सुग्रीवसभाषणम्।
> बालीनिग्रहणं समुद्रतरण लकापुरीदाहनं।
> पश्चाद्रावणकुंभकर्णहननम् एतद्धि रामायणम्॥

गाधीजी की जीवनी भी शायद एक ही श्लोक मे लिखी जा सके; क्योंकि एक ही चीज आदि से अन्त तक मिलती है—अहिंसा, अहिंसा। खादी कहो या हरिजन-कार्य, ये अहिंसा के प्रतीक हैं। पर एक बात है। राम के जीवन को अंकित करनेवाला श्लोक अन्त मे बताता है, "पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननम्।" क्या हम गाधीजी के बारे मे

> "आदौ मोहन इंग्लैंडगमन विद्याविशेषार्जनम्
> अफ्रीकागमन कुनीतिदमनं सत्याग्रहान्दोलनम्
> धृत्वा भारतमुक्तये प्रयतनं शस्त्रं त्वहिंसामयम्
> अस्पृश्योद्धरणं स्वतन्त्रकरणं..............."

इत्यादि-इत्यादि कहकर अन्त में कह सकते हैं—पारतन्त्र्यविनाशनम्?

कौन कह सकता है? गांधीजी अभी जिन्दा हैं।

थोड़े ही दिन पहले चीन-निवासी एक विशिष्ट सज्जन ने उनसे प्रश्न किया,

"क्या आप अपने जीवन मे भारत को स्वतन्त्र देखने की आशा करते हैं ?" "हां, करता तो हूं। यदि ईश्वर को मुझसे और भी काम लेना है तो जरूर मेरे जीवन-काल मे भारत स्वतन्त्र होगा। पर यदि ईश्वर ने मुझे पहले ही उठा लिया, तो इसमे भी मुझे कोई सदमा नही पहुचेगा।"

पर कौन कह सकता है कि भविष्य मे क्या होगा ?

"को जाने कल की ?"

○

परिशिष्ट

बापू की सम्मति

सेवाग्राम, २२-७-४१

भाई घनश्यामदास,

'बापू' अभी पूरी की। दो-तीन जगह हकीकत दोष है। अभिप्राय को हानि नही पहुचती है। निशानी की है।

बछड़ा के बारे मे जो दलील की है, वह कर सकते हैं, लेकिन उसमे कुछ मौलिक दोष पाता हूं, जो रावणादि के वध के साथ यह वध किसी प्रकार मिलता नही है। बछड़े के वध मे मेरा कुछ स्वार्थ नही था, केवल दु ख-मुक्त करना ही कारण था। रावणादि के वध मे तो लौकिक स्वार्थ था, पृथ्वी पर भार था, उसे हलका करना था। उसका सहारक साक्षात् रामरूपी ईश्वर था। यहा तो सहारक कोई काल्पनिक अवतार न था। मेरा तो कथन यह है कि मेरी हालत मे सब कोई ऐसा कर सकते है। अबालाल ने ४० कुत्तो को मेरी प्रेरणा या प्रोत्साहन से मारा, इसमे लौकिक कल्याण था सही, लेकिन इसमे और रावणादि के वध मे बडा अन्तर है, और मैंने तो इन चीजो का अलग अर्थ किया है। उसकी चर्चा वहा आवश्यक थी। ज्यादा और कोई समय आवश्यक समझा जाय तो।

भाषा मधुर है। कोई जगह दलील की पुनरुक्ति हो गई है। यह काम प्रूफ सुधार मे हो सकता था। उससे भाषा के प्रवाह मे कुछ क्षति नही आती। शायद दूसरे तो इस पुनरुक्ति को देख भी नही सके होंगे।...

बापू के आशीर्वाद

○
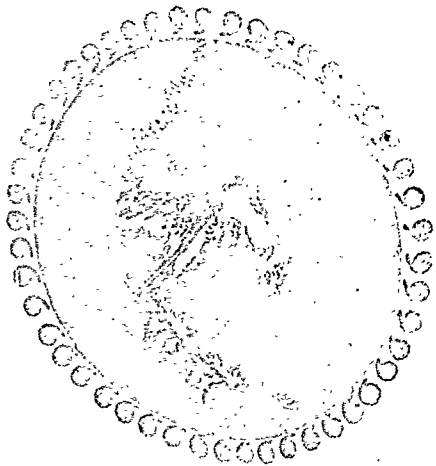
गांधीजी
की
छत्रछाया
में

प्राक्कथन

मुझसे इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखने को कहा जाने पर मैं तुरंत राजी हो गया। श्रीघनश्यामदास बिड़ला से मेरा बहुत पुराना और घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वतन्त्रता-संग्राम के समय उन्होने हमेशा हमारा साथ दिया और आवश्यकतानुसार रुपये-पैसे से हमारी सहायता की। पर पुस्तक का प्राक्कथन लिखना स्वीकार करने का यही एकमात्र कारण नही था, बल्कि पुस्तक के प्रूफ देखकर मुझे यह रचना भविष्य मे एक महत्वपूर्ण विषय पर बहुमूल्य साहित्य सिद्ध होती जान पड़ी।

भारतीय इतिहास मे स्वतन्त्रता-संग्राम का युग एक क्रान्तिकारी युग था। उस समय महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ा था और उसमें कामयाबी हासिल की थी। उन महत्वपूर्ण वर्षों मे देश मे होनेवाली घटनाओ से समाचार-पत्रों का प्रत्येक पाठक परिचित है। समाचार-पत्रो की मिसिलें उन दिनों के समाचारों से रंगी पड़ी हैं; पर महात्मा गांधी तथा सरकार के बीच पर्दे की आड़ मे होनेवाली बातों के सम्बन्ध मे लोगो को बहुत ही कम जानकारी है। इस पुस्तक से वह कमी एक हद तक पूरी होती है। घनश्यामदासजी और महात्मा गांधी तथा देश के अन्य राजनैतिक नेताओ के बीच पिछले २५ वर्षों मे हुआ पत्र-व्यवहार इस पुस्तक में दिया गया है। इसमें तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के उच्चपदस्थ अधिकारियों तथा वहां के सार्वजनिक जीवन मे प्रमुख अन्य अंग्रेजों के साथ की गई घनश्यामदासजी की भेंटों का विवरण भी है। गोलमेज-परिषद् का तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कुछ ही समय पहले तक सरकार और कांग्रेसी नेताओ में होनेवाली चर्चा का विवरण भारतवासियो के तथा उस समय के इतिहास से परिचित होना चाहनेवालों के लिए समान रूप

मे रोचक होगा। तत्कालीन इतिहास के प्रेमियो के लिए तो यह पुस्तक विशेप महत्वपूर्ण होगी। घनश्यामदासजी ने अपने पास विद्यमान सामग्री मे से एक अश के प्रकाशित करने के निश्चय का मैं स्वागत करता हू।

महात्मा गाधी पत्र-व्यवहार मे बडे नियमित थे। वह पत्रो का उत्तर स्वयं देते या अपने सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई के द्वारा दिलवाते या अपने साप्ताहिक पत्रो के मार्फत देते। इस प्रकार वह देश के तथा बाहर के असख्य नर-नारियों के जीवन से सम्बन्ध बना रखते और उनकी विचारधारा को प्रभावित करते थे। मनुष्यो के सद्‌गुणो को परख लेने की उनमें एक विशेप शक्ति थी। परख लेने पर वह मनुष्यो का देशहित के निमित्त पूर्ण उपयोग करते थे। अपने जीते-जी उन्होंने ऐसे आदमियो को गढा, जो उनकी अनेक योजनाओ से सहमत न होते हुए भी उनसे स्फूर्ति पाते और अपने-अपने क्षेत्र मे बहुमूल्य सेवाए करते रहे। घनश्यामदासजी की गणना इन्ही लोगो में थी। यह नही कि वह महात्माजी से सदा सब विषयो मे सहमत रहे हो, तथापि एक सैनिक की भाति वह अपने नेता के आदेश का पालन करते थे। पुस्तक से पता चलेगा कि अनेक विषयो मे, विशेपत. आर्थिक विषयो मे बापू मे कभी-कभी उनका दृष्टिकोण भिन्न होते हुए भी वह उनके द्वारा हाथ मे लिये गए कामों मे सोलह आना योग देते थे। गाधीजी की राजनैतिक कार्य-योजना क सम्बन्ध मे, अनेक अग्रेजो के सामने उन्होंने अपने को गाधीजी के दृष्टिकोण का विश्वासी व्याख्याता सिद्ध किया। आगे के पृष्ठो मे पता चलेगा कि किस प्रकार उन्होंने स्वय बार-बार इग्लैंड जाकर अधिकारी वर्ग को इस बात से पूर्ण परिचित रखा कि गाधीजी का दिमाग किस दिशा मे काम कर रहा है। उन्होंने गाधीजी की ओर से अधिकार के साथ बोलने का भी दावा नही किया, पर उनकी विचारधारा का उन्होंने इतना अध्ययन और मनन किया था कि उन्होंने गणमान्य व्यक्तियो को उसका मर्म समझाने का दायित्व स्वयं ही ले लिया। स्वेच्छा से अपने ऊपर लिये हुए दायित्व को पूरा करने मे उन्हे निस्सदेह असाधारण सफलता प्राप्त हुई, घनश्यामदासजी गाधीजी का मानस ठीक समझ पाते थे। राजनैतिक विषयों के सिवा अन्य विषयो के सम्बन्ध मे भी यह बात घटती है। घनश्यामदासजी उन गिने-चुने व्यक्तियो मे से थे, जो गांधीजी के लिए एक सन्तान के समान थे। उनकी शिक्षा उनमे अकुरित होकर फलित हुई। सम्बन्ध घनिष्ठ होने के साथ-साथ वह प्रभाव बढता गया। दोनों का यह अंतरग सम्बन्ध बत्तीस वर्ष तक बना रहा। मुझे उनका यह पारस्परिक सम्बन्ध वर्षों तक देखने का गौरव प्राप्त है, क्योकि गाधीजी के जितना ही अतरंग सम्बन्ध उनका मेरे साथ भी था।

गाधीजी की अनेक शिक्षाओ मे से एक शिक्षा थी कि लक्ष्मी के कृपापात्रो को अपने आपको धरोहरधारी और अपनी सम्पत्ति को दूसरों के उपकार के निमित्त

एक धरोहर की भांति समझना चाहिए। बिड़लों ने यह शिक्षा भली-भांति हृदयंगम की है। देश के कोने-कोने में बिखरी हुई अनेक शिक्षा-संस्थाएं, मन्दिर, धर्मशालाएं और अस्पताल इसके साक्षी हैं। पिलानी इनमें शीर्ष स्थानीय है। जैसे उन्होंने खूब कमाया है, वैसे ही भांति-भांति के सत्कार्यों में उदारतापूर्वक मुक्तहस्त होकर खर्च भी किया है। अपनी स्थापित-संचालित संस्थाओं के सिवा ऐसी भी अनगिनत संस्थाएं हैं, जो इनके दान से लाभान्वित हुई हैं। कहना तो यह उचित होगा कि ऐसा कदाचित् ही कोई सत्कार्य होगा, जिसके लिए मांग करने पर उन्होंने उस पर ध्यान न दिया हो। स्वातन्त्र्य संग्राम के सम्बन्ध में भी यही बात थी। उसमें भी बापू और अन्य राजनैतिक नेताओं के मार्फत मुक्तहस्त होकर निस्संकोच भाव से उन्होंने धन दान दिया। गांधीजी के कोई भी सत्कार्य, कोई भी अच्छी योजना, हाथ में लेने पर बिड़लों की उदारता का उपयोग हुआ। इन पृष्ठों में यह सब भली-भांति देखने को मिलेगा। वास्तव में आवश्यकता होने पर गांधीजी कभी इनके साधनों का उपयोग करते न हिचकते थे, न ये अपने साधन उनकी सेवा में अर्पित करने में सकोच करते थे।

इन पृष्ठों में यह भी देखने को मिलेगा कि किस प्रकार भांति-भांति के कामों से घिरे रहने पर भी गांधीजी बिड़लों से सम्बन्ध रखने वाली जरा-जरा-सी बात में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी लेते थे—ठीक वैसे ही, जैसे कोई पिता अपनी सन्तान के कार्यकलाप में रस लेता है। उनकी दिलचस्पी यहां तक बढ़ गई थी कि वह घनश्यामदासजी-जैसे व्यक्ति को, जिन्हें डाक्टरी मशवरे का कोई अभाव न था, चिकित्सा-सम्बन्धी नुस्खे बताते, क्योंकि उन्हें पूरा भरोसा था कि उनकी नसीहत श्रद्धापूर्वक सुनी जाकर उस पर अमल किया जायगा।

अतएव इस पुस्तक को प्रकाशित होते देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक गांधीजी के जीवन और उनकी विचारधारा का अध्ययन करनेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए ही नहीं, उन इतिहासकारों के लिए भी उपयोगी और सहायक सिद्ध होगी, जो उन घटनाओं में रुचि रखते हों, जिनकी इतिश्री भारत में स्वतन्त्रता-स्थापना के रूप में हुई।

—राजेन्द्रप्रसाद

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली

प्रास्ताविक

इस पुस्तक का नाम क्या रखा जाय, यह मेरे सामने एक बडी समस्या थी। एक सुझाव था कि 'गांधीजी के साथ मेरा पत्र-व्यवहार' नाम रखा जाय, पर मुझे प्रस्ताव पसन्द नही आया। यह सही है कि पुस्तक मे गाधीजी और उनके सेक्रेटरी महादेव देसाई के साथ मेरे पत्र-व्यवहार का विशेष रूप से सग्रह है। गाधीजी को जब स्वय लिखने का अवकाश नही मिलता था तब महादेवभाई उनके निर्देश से मुझे समय-समय पर लिखते रहते थे और उनके कैंप की आवश्यक घटनाओ से परिचित करते रहते थे। पर यदि पत्र-व्यवहार तक ही इस पुस्तक को मैं सीमित रखता तभी यह नाम सही होता। जो चित्र मैं पाठको के सामने रखना चाहता था वह तो इससे कुछ भिन्न था। मैंने जान-बूझकर अनेक सस्मरणो और भेंटो का भी उसमे समावेश कर लिया है, जो समय-समय पर वाइसरायो, कूटनीतिज्ञों और अन्य लोगो के साथ मैंने की थीं। यदि मैं इन सब विवरणो को छोड देता तो यह पुस्तक अधूरी रह जाती। इनके सिवाय इस पुस्तक से मैंने कई राजनीतिज्ञो से प्राप्त कुछ ऐसे पत्र भी दे दिये हैं, जिन्हे विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से मैं आवश्यक समझता हू। इसलिए मैंने 'बापू की छत्रछाया मे---कुछ व्यक्तिगत सस्मरण' यही नाम रखना उचित समझा। मुझे लगता है कि यह नाम सार्थक होगा, क्योंकि अपने सब कामो मे मैंने अपने को, बापू के सान्निध्य मे और उनकी छत्रछाया मे हू, ऐसा माना है।

गाधीजी सन् १९१५ के अत में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। तब से ले हत्यारे के गोली से मारे जाने के दिन तक वह भारत का एक प्रकार से मथन करते रहे। प्राय. रोज-रोज ही उन्होने इतिहास का निर्माण किया। नये विचार, नई अभिलाषाएं और नये स्वप्न उन्होने जनता के सामने रखे। जब मंथन हुआ

तो कुछ मक्खन भी ऊपर आने लगा और साथ-साथ में थोडा मैल भी तैरने लगा। गाधीजी हमारे बीच से अब चले गये, किन्तु इस मंथन-क्रम को वह जो गति दे गये हैं, उसमे आज भी कोई शिथिलता नही आई है। इस मथन मे हमें शुद्ध ताजा मक्खन मिलेगा या मैल-मिश्रित घी, या केवल मैल ही पल्ले पड़ेगा, इसकी भविष्य-वाणी करना मेरे बूते के बाहर की बात है। अत मे तो यह सबकुछ हमारे लोक-समाज पर ही निर्भर है।

यह मेरे लिए कठिन नही था कि पत्र-व्यवहार तथा अन्य सामग्री के आधार पर मैं एक ऐसी रचना कर डालू, जो पाठको को एक क्रमबद्ध चित्र दे दे। पर यह कार्य मेरा नही था। यह तो इतिहास-लेखको का काम है। मैंने तो जैसी सामग्री मेरे पास थी उसको उसी अनगढ रूप मे ही प्रस्तुत करके सतोष कर लिया है। इसमे कुछ ऐसे विवरण भी हैं, जो अबतक अज्ञात थे और जब प्रकाश मे आकर भारत के राजनैतिक इतिहास की शृंखला मे एक नई कड़ी जोडने में सहायक होगे। भविष्य के इतिहासकार जब वर्तमान युग का चित्रण करने बैठेंगे तो अवश्य ही उन्हें इस पुस्तक मे कुछ नई सामग्री मिलेगी, जिसके सहयोग से वे अपने चित्र में कुछ नये रग भर सकेंगे। इस विवरण मे तिथि की शृंखला बीच-बीच मे टूटी हुई दिखाई देती है, उसका भी कारण है। गाधीजी द्वारा लिखित और उनके निर्देश से महादेवभाई द्वारा लिखे गये सब पत्रो को मैंने अत्यन्त सावधानी से सुरक्षित रखा। महादेवभाई तथा गाधीजी के अन्य सेक्रेटरियों द्वारा लिखे गये पत्रों को भी मैं गाधीजी के ही पत्र मानता था, क्योकि वे सब उनके निर्देश से लिखे जाते थे, इसलिए मैंने उन्हे सुरक्षित रखा। पर जो पत्र मैंने उन्हें लिखे, दुर्भाग्यवश उन्हें मैं सभालकर नही रख सका। मुझे इस बात का दु ख है कि समय-समय पर उनके साथ हुई अपनी चर्चा का भी कोई विवरण मैंने नही रखा। पुस्तक मोटी हो जाने और उसकी कीमत बढ जाने के डर से गाधीजी के सभी पत्रो का भी मैंने इसमे समावेश नही किया है। उन्ही पत्रो को इस पुस्तक मे मैंने स्थान दिया है, जो मेरी दृष्टि में महत्त्वपूर्ण या ज्ञानवर्द्धक थे। कही-कही शृंखला की कड़िया टूटी है, उसका और भी एक कारण है। जब-जब मैं स्वय गाधीजी के साथ होता था उस समय कोई पत्र-व्यवहार हो नही सकता था। जहां अधिक दिनों का अन्तर पड गया है, जैसे कि एक बार सन् १६३१ में और १६४२ या १६४४ के बीच, उसका कारण यह था कि गाधीजी उस समय जेल में थे और उनके साथ पत्र-व्यवहार उस जमाने मे सम्भव नहीं था। इसके सिवा बहुत-से ऐसे कागज-पत्र भी थे, जो कि मुझे महादेवभाई से मिले थे। उन्होने उन कागजो की अपने कई पत्रों में चर्चा भी की है, पर दुर्भाग्यवश इस तरह की सारी-की-सारी सामग्री उपलब्ध नही है। इसलिए कुछ अंशो में यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक अधूरी है। किन्तु अवलोकन करने से पता लग जाता है कि इसके

कारण कोई ज्यादा क्रम-भंग नहीं हुआ है। इतिहासकार को घटनाओं की कड़ियां जोड़ने में, मेरा विश्वास है, कोई कठिनाई नहीं होगी। जहां शृंखला टूटी भी है वहां अन्य सामग्री इतनी स्पष्ट है कि वह उस कमी को पूरा कर देती है।

गांधीजी के साथ मेरी पहली मुलाकात सन् १९१६ में हुई थी। तब वह दक्षिण अफ्रीका से लौटने के कुछ दिन बाद कलकत्ता आये थे। उस दिन हमारा जो सम्पर्क स्थापित हुआ, वह पूरे ३२ वर्ष तक, अर्थात् उस दिन तक बना रहा जिस दिन दिल्ली में मेरे ही निवास-स्थान पर उनकी मृत्यु हुई।

मैं उनके सपर्क में किस प्रकार आया? मेरे जीवन की इस सौभाग्यपूर्ण घटना का एकमात्र श्रेय प्रारब्ध को ही मिलना चाहिए, जिसका रहस्यमय हाथ भीतर-ही-भीतर अपना काम करता रहता है। मेरी कोई राजनैतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, इसलिए मैं इस योग्य कहा था कि किसी विश्व-विख्यात व्यक्ति की दृष्टि में आ पाता। मेरा जन्म सन् १८९४ में एक गाव में हुआ था, जिसकी जनसख्या मुश्किल से तीन हजार रही होगी। रेल, पक्की सड़क या डाकघर के जरिये बाहरी दुनिया से सम्पर्क का कोई आधुनिक साधन उपलब्ध न होने के कारण हमारा गाव राजनैतिक हलचल से एक प्रकार से बिलकुल अलग-सा था। यात्रा के साधन ऊंट, घोड़े या बैलों द्वारा चलने वाले रथ थे। बैलो द्वारा चलने वाले रथ विलास की वस्तु थे और साधारणत. सम्पन्न लोगो द्वारा महिलाओं और अपाहिजों के लिए रखे जाते थे। घोड़ा दुर्लभ जानवर था और अधिकतर भूस्वामियो द्वारा उसका उपयोग किया जाता था। हमारे परिवार में तो बहुत अच्छे ऊंट थे और बाद में हमारे पास बैलोवाला एक रथ भी हो गया। किन्तु ऊंट ही सदा यातायात का सबसे अधिक उपयोगी और लोकप्रिय माध्यम रहा। आजकल ऊट पर लम्बी यात्रा की सम्भावना को लोग कोई उत्साह के साथ नही देखते हैं। किन्तु अपनी सहन-शक्ति, धीरज और भोलेपन के कारण इस पशु ने मुझे सदा आकर्षित किया। मुझे याद है कि जब एक बार मुझे लगातार छह दिनों तक ऊंट की पीठ पर यात्रा करनी पड़ी थी तो कितना आनन्द आया था!

हमारे गाव में कोई भी अखबारो के पीछे सिर नही खपाता था। दो-चार आदमी ही अखबार पढ़ पाते होगे और उन दिनो अखबार थे भी कहां? देहात में अंग्रेजी पढ़ना-लिखना कोई न जानता था। वहां कोई स्कूल भी नही था। बहुत कम लोग ही, शायद सौ मे एक, मामूली हिन्दी या उर्दू लिख-पढ सकते थे।

चार वर्ष की आयु में मुझे पढ़ाने को एक ऐसे अध्यापक रखे गये, जो लिखाई-पढ़ाई की अपेक्षा हिसाब अधिक जानते थे। इस प्रकार मेरी शिक्षा का आरम्भ अकों के साथ हुआ—जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि। नौ वर्ष की आयु में मैंने

थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना सीख लिया। कुछ अंग्रेजी भी आ गई; किन्तु मेरी स्कूली शिक्षा का अन्त प्यारेचरण सरकार द्वारा लिखित अंग्रेजी की पहली पुस्तक (फर्स्ट बुक ऑव रीडिंग) के साथ ही हो गया। उस समय मैं ग्यारह वर्ष का था।

मेरे परदादा एक व्यापारी के यहां दस रुपये मासिक पर मैनेजरी का काम करते थे। उनकी मृत्यु हो जाने पर मेरे दादाजी ने अठारह वर्ष की आयु मे अपना निजी व्यापार चलाने का निश्चय किया और किस्मत आजमाने बम्बई चले गये। बाद मे मेरे पिताजी ने काम-काज बढाया और जब मेरा जन्म हुआ, उस समय तक हम लोग काफी सम्पन्न समझे जाने लगे थे। हमारे पैंतीस वर्ष पुराने कारबार की जड़ उस समय तक अच्छी तरह जम चुकी थी। इसलिए जब मेरे तथाकथित स्कूली जीवन का अन्त हुआ तो मुझसे खानदानी कारबार मे हाथ बटाने को कहा गया, और बारह वर्ष की उम्र में ही मैं उसमे लग गया। पर मुझे विद्या से लगन थी, इसलिए स्कूल छोड़ने के बाद भी मैं अपनी शिक्षा स्वयं चलाता रहा। न मालूम क्यो, मुझे किसी अध्यापक द्वारा पढ़ने से चिढ थी। इसलिए स्कूल छोडने के बाद पुस्तको और अखबारो के अलावा एक शब्दकोश और कापीबुक ही मेरे मुख्य अध्यापक रहे। इसी ढंग से मैंने अंग्रेजी, संस्कृत, एक-दो दूसरी भारतीय भाषाए, इतिहास और अर्थशास्त्र सीखा और काफी जीवनिया तथा यात्राओं के विवरण भी पढ डाले। मेरा यह मर्ज आज भी ज्यो-का-त्यों बना हुआ है।

सम्भव है, इस पठन-पाठन द्वारा ही मुझे देश की राजनैतिक स्वतत्रता के लिए काम करने और उस समय के राजनैतिक नेताओ से सम्पर्क स्थापित करने का लोभ पैदा हुआ। उन दिनो रूस-जापान युद्ध से एशियाई प्रजा मे एक जोश लहराने लगा था। उससे भारत भी बचा न रहा। एक बालक के रूप मे मेरी सहानुभूति सोलहो आने जापान के साथ थी और भारत को स्वतत्र देखने की लालसा मेरे मन को उद्वेलित करने लगी थी। किन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हू, हमारे परिवार, गाव या जाति मे किसी प्रकार की राजनैतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, इसलिए राजनीति के प्रति मेरी इस रुचि को मेरे आसपास वालो ने कुछ अधिक पसन्द नही किया। पर यह सब मुझे गाधीजी की ओर खीच ले जाने को काफी नही था, इसलिए मेरा अब भी यही विश्वास है कि कृपालु प्रारब्ध ही मुझे उनके पास ले गया।

सोलह वर्ष की आयु मे मैंने दलाली का अपना एक स्वतत्र धंधा शुरू कर दिया और इस प्रकार मैं अंग्रेजों के सम्पर्क मे आने लगा। वे मेरे सरक्षक भी थे और मुझे काम भी देते थे। उनके सम्पर्क मे आने पर मैंने देखा कि जहा वे अपने कामकाज के ढग मे, अपनी सगठन-सम्बन्धी क्षमता मे तथा कितने ही अन्य गुणो

मे बेजोड है, वहा वे अपने जातीय दर्प को भी छिपा नही पाते हैं। उनके दफ्तरों मे जाने के लिए मुझे लिफ्ट का इस्तेमाल नही करने दिया जाता था, न उनमे मिलने के लिए प्रतीक्षा करते समय उनकी बेंचो पर ही बैठने दिया जाता था। इस प्रकार के तिरस्कार से मैं तिलमिला उठता था और सच पूछिये तो इसी ने मेरे भीतर राजनैतिक अभिरुचि जाग्रत की, जिसे मैंने सन् १९१२ से लेकर आज तक उसी प्रकार बनाये रखा है। लोकमान्य बाल गगाधर तिलक और गोखले को छोडकर ऐसा कोई राजनैतिक नेता नही हुआ, जिससे मेरा सम्पर्क न रहा हो। न देश मे ऐसा कोई राजनैतिक आन्दोलन ही हुआ, जिसमें मैंने गहरी दिलचस्पी न ली हो और जिसमे मैंने अपने ढग से सहायता करने की चेष्टा न की हो।

उन दिनो के आतंकवादियो का साथ करने के कारण एक बार मैं बडी विपत्ति मे पड गया और लगभग तीन महीने तक मुझे छिपकर रहना पडा। कुछ कृपालु मित्रो के हस्तक्षेप ने मुझे जेल जाने से बचा लिया। फिर भी मैं यह तो कह ही दू कि आतकवाद के लिए मेरे मन मे कभी कोई गहरी रुचि नही रही और उसके जो कुछ भी अणु मुझमे शेष रह गये थे वे गाधीजी के सम्पर्क मे आने के बाद से तो बिलकुल ही नष्ट हो गये।

ऐसी पृष्ठभूमि के कारण मेरा गाधीजी की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। मैंने आरम्भ उनके आलोचक की हैसियत से किया और अत मे उनका अनन्य भक्त बन गया। फिर भी यह कहना बिलकुल गलत होगा कि मैं सब बातो में गाधीजी से सहमत था। सच तो यह है कि अधिकाश मामलो मे मैं अपना स्वतत्र विचार रखता था। जहा तक रहने-सहने के ढग का सवाल था, मेरे और उनके बीच बहुत कम समानता थी। गांधीजी सत पुरुष थे। उन्होने सुख-ऐश्वर्य के जीवन का परित्याग कर दिया था। उनकी प्रधान निष्ठा धर्म मे थी और उनकी यह निष्ठा ही मुझे बरबस उनकी ओर खीच ले गई। पर अर्थशास्त्र के सम्बन्ध मे उनका दृष्टिकोण मेरे दृष्टिकोण से भिन्न था। उनकी आस्था चरखा-घानी जैसे छोटे-छोटे घरेलू उद्योगो मे थी, इधर मैं काफी ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता था और बड़े-बडे उद्योगो की सहायता से देश के औद्योगीकरण मे विश्वास रखता था। तो फिर मेरे और उनके बीच इतनी निकटता का सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ? क्या कारण था कि मेरे प्रति उनका विश्वास और स्नेह अत तक बना रहा? इसका श्रेय तो मैं मुख्यत: उनकी महत्ता और उदारता को ही दूगा। इतना आकर्षण, इतना स्नेह, मित्रो के प्रति इतनी प्रीति मैंने बहुत कम आदमियो मे पाई। इस ससार मे सतो का पैदा होना कोई बहुत बडी बात नही है और राजनैतिक नेता भी ढेरो आते-जाते ही रहते है; पर सच्चे मानव इस पृथिवी पर बहुतायत से नही पाये जाते। गाधीजी एक महामानव थे—एक ऐसे दुर्लभ

प्राणी, जो विश्व मे शताब्दियो के बाद पैदा हुआ करते है। पर लोगों को एक मानव के रूप में गांधीजी के सम्बन्ध मे बहुत कम जानकारी है। यही कारण था कि बहुत-सी समस्याओं पर उनसे सहमत न होते हुए भी मैंने उनकी इच्छाओं का पालन करने से कभी इन्कार नही किया और उन्होंने भी न केवल मेरे विचार-स्वातत्र्य को ही सहन किया,बल्कि इसके लिए मुझसे और भी अधिक स्नेह किया—ऐसा स्नेह जो केवल एक पिता के द्वारा ही सम्भव है। इसलिए हमारे सम्बन्ध ने पारिवारिक स्नेह का रूप ले लिया था। मेरे प्रति उनका यह पितृ-सुलभ स्नेह उनके जीवन की अतिम घड़ियो तक ज्यों-का-त्यो बना रहा।

अतिम बार मुझे उनके शव के ही दर्शन हो पाये। यह प्रारब्ध की क्रूरता ही कही जायगी कि मैं उनके जीवन के अतिम क्षणो मे उनके पास मौजूद न था। मैं उनकी मृत्यु से दस घटे पहले ही उनसे अलग हुआ था। मुझे दिल्ली से लगभग एक सौ बीस मील दूर अपने गाव जाना पड़ा था, जहा मैं एक प्रभावशाली मत्री महोदय को पिलानी की शिक्षा-संस्था दिखाने ले गया था। मैं अपने घर से सवेरे सात बजे चला था और जाने से पहले गाधीजी के कमरे मे प्रणाम करने गया था, पर वह आराम कर रहे थे और गहरी नीद मे थे, इसलिए मैंने उन्हे जगाया नही। दस घंटे बाद पिलानी मे मेरा लडका मेरे पास दौड़ा आया और बोला कि रेडियो ने गाधीजी के गोली से मारे जाने की खबर सुनाई है। मुझे सहसा विश्वास नही हुआ। किन्तु भाग्य के आगे चारा ही क्या था!

तत्काल दिल्ली लौट आना सम्भव न था, क्योकि आज भी मेरे गाव तक न रेल गई है, न पक्की सड़क। इसलिए मुझे रात-भर वही ठहरना पडा। पर नीद ठीक तरह नही आई और मैने सपना देखा कि मैं अपने दिल्ली वाले मकान मे (जहा गाधीजी ठहरे हुए थे) लौट आया हू। वहा जैसे ही मैं उनके कमरे मे घुसा, मैंने देखा कि उनका शव भूमि पर पड़ा हुआ है। मेरे प्रवेश करते ही वह उठ बैठे और बोले, "आ गये, बहुत अच्छा हुआ। बडी खुशी की बात है। मुझे जो गोली मारी गई है, वह कोई एकाकी घटना नही है, इसके पीछे एक गहरा षड्यत्र है; किन्तु मुझे खुशी है कि उन्होने मेरा अन्त कर दिया। मेरा काम पूरा हो गया है, इसलिए मुझे अब इस संसार से विदा होते हुए क्लेश नही हो रहा है।" फिर हम दोनों ने कुछ देर तक बातचीत की, बाद को उन्होंने अपनी घड़ी निकालकर कहा, "अब मेरी अन्त्येष्टि का समय हो चला, लोग मुझे ले जाने के लिए आयेंगे, इसलिए मैं लेटा जा रहा हूं।" यह कहकर वह फिर लेट गये और बिलकुल निश्चेष्ट हो गये। कैसा आश्चर्यजनक स्वप्न था वह! किन्तु शायद यह सब मेरे हृदय की प्रति-ध्वनि-मात्र थी।

अगले दिन तड़के ही दिल्ली लौटा और उस कमरे मे गया, जहा उनका शव रखा हुआ था। लाखो की भीड़ बिड़ला-भवन को घेरे खड़ी थी। वह शांत और

स्थिर लेटे हुए थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता ही नही था कि उनके शरीर से प्राण निकल चुके हैं। मेरे लिए यही उनके अतिम दर्शन थे।

वर्षों पहले १६ जून, सन् १६४० को एक पत्र मे महादेव देसाई ने मुझे लिखा था कि उन्हें लार्ड लिनलिथगो के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र मिला है, जिसमें लिखा है कि जर्मन रेडियो मे यह खबर प्रसारित की गई है कि अंग्रेजों के गुर्गे गाधीजी की हत्या कराने की योजना कर रहे है। उसी पत्र मे यह भी आशंका प्रकट की गई थी कि कौन जाने, जर्मन गुर्गे स्वय ही अंग्रेजो के विरुद्ध प्रचार करने के लिए ऐसा कोई षड्यंत्र रच रहे हो; इसलिए सतर्क रहना चाहिए। क्या गांधीजी यह पसन्द करेंगे कि उनकी रक्षा के लिए सादी पुलिस तैनात कर दी जाय ? वाइसराय महोदय को ऐसी व्यवस्था करने मे बडी प्रसन्नता होगी। महादेवभाई ने लिखा था कि उन्होंने वाइसराय को यह उत्तर दे दिया है कि गाधीजी ऐसी कोई व्यवस्था नही चाहते; क्योंकि वह बीसो वर्षों से हत्या की आशंका का सामना करते आ रहे हैं और अनुभव ने उन्हें सिखा दिया है कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही हिलता है, और न तो कोई हत्यारा किसी के जीवन की अवधि में कमी ही कर सकता है, न कोई मित्र उसकी रक्षा ही कर सकता है। महादेवभाई ने लिखा था कि ये बापू के अपने शब्द हैं। सचमुच ही होनी लगभग आठ वर्ष पहले से ही अपनी काली छाया डालने लगी थी। परतु उस होनी का प्रतिनिधि न कोई जर्मन था, न कोई अंग्रेज, उनका हत्यारा एक भारतीय था—एक कट्टर हिन्दू। जब गाधीजी की बम से हत्या करने का प्रथम प्रयत्न निष्फल हुआ था तभी से भारत सरकार ने उनकी रक्षा के लिए कड़ा प्रबन्ध कर दिया था, यहा तक कि मेरे मकान के कोने-कोने मे सतरी और सफेदपोश पुलिस के हथियारबंद सिपाही चक्कर लगाते दिखाई देते थे। यह अतिशय सतर्कता मुझे दुःखदायी लगती थी।

सन् १६१६ मे तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास करने बनारस गये हुए थे। इससे कुछ समय पूर्व जब उनका जलूस नई राजधानी मे प्रवेश कर रहा था तो उन पर एक बम फेंका गया था। इसलिए बनारस मे उनकी रक्षा का कडा प्रबन्ध किया गया था। राइफलो और रिवाल्वरो से लैस पुलिस आसपास के तालाबो तक पर तैनात कर दी गई थी। गाधीजी को यह तमाशा बेहूदा प्रतीत हुआ था और उन्होंने खुले आम इस बात की आलोचना की थी कि वाइसराय का जीवन मृत्यु से भी बदतर है।

एक बार मैंने गाधीजी को उनके इन शब्दो की याद दिलाई और कहा, "क्या यह अशोभनीय नही है कि हमारी प्रार्थना-सभाए तक सगीनों के साये मे हो ? मुझे आपके जीवन की बडी चिन्ता है, पर उससे भी अधिक चिन्ता मुझे आपकी कीर्ति की है। आप जब स्वय ही जीवन-भर इस प्रकार से प्रबन्धो से घृणा करते

आये है तब क्या अब आप यह सब सहन कर लेंगे ?" गाधीजी मेरी बात से सहमत हुए और बोले, "वल्लभभाई से पूछो; क्योकि आखिर यह सब इंतजाम उसने ही तो किया है। मुझे यह सब पसन्द नही है; पर मै यह सब अपनी रक्षा के लिए नही, सरकार के नाम की खातिर सह रहा हूं।" बाद में मैंने सरदार से बातचीत की और, जैसी कि उनकी आदत थी, उन्होने संक्षेप मे उत्तर दिया, "तुम्हें चिन्ता क्यो ? तुम्हारा इन बातो से सरोकार नही है। जिम्मेदारी मेरी है। मेरा बस चले तो मैं बिड़ला-भवन मे घुसने वाले एक-एक आदमी की तलाशी लू, पर बापू मुझे ऐसा करने नही देंगे।" निष्ठुर नियति की यही इच्छा थी और महादेव के शब्दो मे—पर गाधीजी की भाषा मे—उन्हे कोई मित्र नही बचा सका। मैं स्वय प्रार्थना-सभा मे अपनी कमर-पेटी मे पिस्तौल छिपाकर जाया करता था और बापू की ओर बढ़नेवाले हर आदमी पर निगाह रखता था, पर यह सब मिथ्या गर्व-मात्र था। "ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही हिलता है।"

इस घटना के लगभग दो वर्ष बाद एक दूसरा महान् व्यक्ति इस संसार से उठ गया। इनके साथ भी मेरा उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध था। वह थे सरदार पटेल। वह हर बात में महात्माजी के सबसे कट्टर अनुयायी थे, विशेषरूप से संयम के मामले मे। वह लौहपुरुष कहे जाते थे; पर उनकी बाहर से वज्र-जैसी दिखाई देनेवाली कठोरता के पीछे अतिशय कोमलता छिपी रहती थी। उनके भी अपने स्वतंत्र विचार थे, फिर भी प्रत्येक आन्दोलन मे, चाहे वह राजनैतिक हो, चाहे सामाजिक, उन्होंने सदैव अपने गुरुदेव का अनुसरण किया। एकान्त मे वह उनसे लड़-भिड़ लेते थे, परन्तु प्रकाश मे उनका अनुसरण करते थे। यह कुछ विचित्र-सी बात थी कि देश के अनेक महान् व्यक्ति गाधीजी मे मतभेद रखते हुए भी उनका अनुसरण करते थे, बहुधा आख मूदकर। गाधीजी अपने आकर्षक व्यक्तित्व और मित्रों के प्रति वफादारी के बल पर ही इस प्रकार का असम्भव-सा चमत्कार दिखा सके थे। यही कारण था कि बहुत-सी बातो में गाधीजी से सहमत न होते हुए भी सरदार प्राय. सभी अवसरों पर उनका आंख मूंदकर अनुसरण करते रहे।

गांधीजी के मरने के बाद सरदार को कारोनरी थ्रामबोसिस (एक जटिल हृदय-रोग) हो गया। गांधीजी की मृत्यु मे जो धक्का लगा, उसमे उनका दिल टूट गया था। कोई साधारण कोटि का मनुष्य होता तो रो-धोकर अपने मन का उफान निकाल लेता; पर सरदार ने अपने शोक का प्रदर्शन नही किया, इसीलिए उनका हृदय शोक से जर्जर हो गया था। मुझ पर उनका जादू उनकी मृत्यु से लगभग अट्ठाईस साल पहले चला था और उनके जीवन के अन्त तक हममे स्नेह का सम्बन्ध बना रहा।

यद्यपि सरदार की मृत्यु भी मेरे ही घर पर हुई, तथापि प्रारब्ध की क्रूरता का यह दूसरा उदाहरण है कि उनके अंतिम क्षणों में भी मैं उनके पास मौजूद न था। अपनी मृत्यु से चार दिन पहले वह दिल्ली से बम्बई चले गये थे। उनके बहुत से मित्र, जिनमें कुछ मंत्री भी थे, उन्हें विदा करने हवाई अड्डे पर गये थे। उन्होंने कुर्सी पर बैठे-बैठे ही हवाई जहाज के द्वार से एक उदास मुस्कान के साथ सबको नमस्कार किया था। उन्हें भासित हो गया था कि जल्दी ही इस संसार से विदा लेनी है। मैं भी जानता था कि वह शीघ्र ही अपनी महायात्रा के लिए प्रस्थान करने वाले हैं, किन्तु अपने मन को इस भुलावे में रखकर कि अन्त इतना निकट नहीं है, मैं दिल्ली में ही रह गया। चार दिन बाद ही वह चल बसे। सरदार की अन्तिम झांकी भी मुझे उनके शव की ही मिली।

महादेव देसाई की मृत्यु सन् १९४२ में आगाखां महल में हुई थी, जो उन दिनों बंदीगृह बना दिया गया था। महादेवभाई भी मेरे एक अभिन्न मित्र थे। उन्होंने अपने गुरुदेव की गोद में ही शरीर-त्याग किया। उस समय उनके इष्ट-मित्र उनके पास नहीं थे। वह सबके ही प्यारे थे। यह ठीक है कि महात्माजी ने उन्हें बनाया था, पर यह कहना भी गलत न होगा कि कुछ सीमा तक महादेव ने भी महात्माजी को अपने सांचे में ढाला था। महादेव देसाई के व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण था, बड़ी मोहिनी थी। वह बड़े विद्वान् थे और दूसरों से अपनी बात मनवाने की उनमें असाधारण क्षमता थी। जब कभी बापू किसी मामले में हठ पकड़ लेते थे तो केवल सरदार और महादेव ही उस महान् संकल्पी को दूसरी ओर मोड़ पाते थे। कितनी ही बार गांधीजी को महादेव भाई की बात माननी पड़ी, कभी उबल पड़ने के बाद, कभी खिलखिलाकर हंसते-हंसते।

आज यदि ये तीनों व्यक्ति जीवित होते और इतने स्वस्थ होते कि आगे पन्द्रह वर्ष और जीवित रह सकते तो भारत के इतिहास की रूपरेखा क्या होती, यह एक वृथा कल्पना है। मेरा तो विश्वास है कि मनुष्य अपना कार्य समाप्त करने के बाद ही इस संसार से विदा लेता है। हमारा शोक करना बेकार है। उत्तर-दायित्व का भार अब आज की, और आगे आने वाली, पीढ़ियों पर है। सम्भव है, इन महापुरुषों की प्रेरणा का कुछ अंश इन पृष्ठों के द्वारा उन पीढ़ियों के हिस्से में आ जाय।

१८ जुलाई, सन् १९३५ को मैं लन्दन में श्री बाल्डविन से मिला था। बात-चीत के सिलसिले में उन्होंने निम्नलिखित बातें कहीं, जिन्हें मैंने उसी समय नोट कर लिया था.

"प्रजातंत्रीय शासन-प्रणाली त्रुटियों से सर्वथा मुक्त हो, ऐसी बात नहीं है। किन्तु अबतक की शासन-प्रणालियों में वही सबसे अच्छी सिद्ध हुई है। भगवान् को धन्यवाद है कि इस देश में तानाशाही नहीं है। जन-हितकारी तानाशाही स्वतः

एक बहुत अच्छी चीज है; पर इस प्रकार की तानाशाही में जनता को कुछ करना नही पडता, केवल चुपचाप बैठे रहना होता है, जो कि ठीक नही है। प्रजातन्त्र में सबको काम करना पडता है, यही इस प्रणाली का सबसे अच्छा गुण है। भारतवर्ष में भी यदि सब लोग काम करेंगे तो यह प्रयोग सफल सिद्ध होगा। यह प्रयोग-मात्र है, यह समझकर यदि सब लोग काम में नही जुटेंगे तो कभी सफल नही होगा। प्रजातंत्रीय व्यवस्था में समाज के कुछ लोग भले ही उत्पात करें, पर हमें इन इने-गिने लोगों को समाज का मापदण्ड नही बनाना चाहिए। कांग्रेस को तो अपने वास्तविक स्वरूप को ध्यान में रखकर इस बात को समझ लेना चाहिए कि उसे काफी बडे क्षेत्र में देश की सेवा करने का अवसर मिल रहा है।"

१८ जुलाई, सन् १९३७ को, जब हमने प्रजातंत्रीय सरकार बनाने का दायित्व सभाल लिया तो बापू ने मुझे लिखा था, "हमारी असली कठिनाई तो अब आरम्भ होती है। यह बात तो अच्छी है कि हमारा भविष्य अब हमारी शक्ति, सत्यवादिता, साहस, संकल्प, परिश्रमशीलता और अनुशासन पर निर्भर है। अन्त में जो कुछ किया है वह ईश्वर के नाम से ईश्वर के भरोसे से। अच्छे होंगे, अच्छे रहो। तुम्हे मैं आशीर्वाद देता हूं।"

श्री बाल्डविन ने कहा था, "प्रजातंत्र में सबको काम करना होता है।" बापू ने इस बात पर जोर दिया कि हमारा भविष्य हमारी शक्ति, सत्यवादिता, साहस, सकल्प, परिश्रमशीलता और अनुशासन पर निर्भर है। दोनों ने एक ही बात भिन्न-भिन्न ढग से कही और ये दोनों ही हमारे लिए मार्गदर्शक सिद्ध होने चाहिए।

गांधीजी की छत्रछाया में

१. मेरा सामाजिक बहिष्कार

इस पुस्तक मे मैंने इस बात की काफी चर्चा की है कि लोगो से जान-पहचान करने और व्यक्तिगत सम्पर्क करने का क्या महत्व है। इसमें मैंने अपनी फाइलो में सुरक्षित उन पत्रों का संकलन किया है, जो मेरे और दूसरे लोगो के बीच पिछले पच्चीस वर्षों मे या उससे भी कुछ अधिक समय से जाते-आते रहे है। इसमें वे पत्रादि भी संगृहीत किये गए हैं, जो गाधीजी तथा दूसरे लोगो ने मुझे राष्ट्र के इस संकटकाल मे भेजे थे। हम भारतवासी स्वभाव मे ही भावुक होते हैं। हम मित्रता मे पिघलते हैं, प्रेम और सहानुभूति से द्रवित हो जाते हैं और करुणा की अनुभूति करते हैं। हम घृणा करना भी जानते हैं; परन्तु यह घृणा साधारण तौर पर किसी एक व्यक्ति के प्रति नही, बल्कि व्यक्तियों के समूहों और उनकी कार्य-प्रणालियों के विरुद्ध होती है। यदि कभी वह किसी व्यक्ति विशेष के प्रति होती भी है तो अक्सर ऐसे व्यक्ति के प्रति होती है, जिसके साथ हमारी जान-पहचान या साक्षात्-कार नही होता है या जिसका नाम किवदंती ने हमारे लिए घृणास्पद बना दिया है। सम्पर्क से सत्य का पता चल जाता है, कभी-कभी तो बहुत ही अप्रिय सत्य का। हंस माना गया व्यक्ति बगुला निकल आता है। स्वर्गीय महादेव देसाई ने अपने एक मर्मस्पर्शी पत्र मे उन साथियो की करतूतों का जिक्र किया है, जिन्होंने राष्ट्रीय हित के लिए पहले तो अपना पेशा छोड दिया; पर जिन्हें बाद में अपना पेट भरने के लिए बाध्य होकर तरह-तरह के हथकंडे अपनाने पड़े। उस पत्र में महादेव देसाई ने चेतावनी दी थी कि भविष्य में भी ऐसा संकट उपस्थित हो सकता है। लेकिन, जैसा कि मेरी यह कहानी बतायेगी, लोगों के अधिक निकट

सम्पर्क मे आने से हमे उनकी जिन अच्छाइयो का पता चलता है उनका पलडा कुल मिलाकर उनकी बुराइयो से कही भारी होता है। बुद्धिमानो ने तो 'अपने को पहचानो' के सिद्धान्त-वाक्य को सर्वोपरि स्थान दिया है। उसके बाद शायद 'एक-दूसरे को पहचानो' का नम्बर है, और तीसरा नम्बर है 'तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया जाय वैसा ही तुम औरो के साथ करो' के सिद्धान्त-वाक्य का। इन सभी कामो के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क जरूरी है। हा, उन लोगो की बात दूसरी है, जो सिर्फ एकान्त जीवन व्यतीत करते-करते ही मर जाते है। पर हममे से अधिकाश के लिए तो यह सम्भव नही है।

अधिकाश देशवासियो की तरह मुझपर भी गाधीजी का गहरा प्रभाव पडा है। इसलिए मैं भारत के स्वतन्त्र होने के दिन की वडी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करता था। पर साथ ही जब अग्रेजो और उनकी पार्लमेंट ने यह घोषणा की कि भारत को स्वतन्त्र करना उनका भी लक्ष्य है तो मैंने उनकी नेकनीयती पर कभी सदेह नही किया। अपने कार्यकलाप के प्रारम्भिक युग मे गाधीजी का भी ऐसा विश्वास था; पर रौलट-रिपोर्ट ने और उसके फलस्वरूप बने हुए कानून ने, जिसे वास्तव मे कभी अमल मे नही लाया गया, इस विश्वास की नीव खोखली कर दी। राजनीति के साथ मेरा जो कुछ भी सम्बन्ध रहा है, वह उसके आर्थिक क्षेत्र मे ही रहा है, लेकिन मैं भारत मे रहनेवाले अग्रेजो के मन मे गाधीजी के उच्च उद्देश्यो के बारे मे अविश्वास की बढती हुई भावना को, और साथ ही भारतवासियो के मन मे भारत-प्रवासी अग्रेजो के प्रति ही नही, वल्कि अग्रेज कूटनीतिज्ञो और ब्रिटिश पार्लमेंट तक के प्रति अविश्वास की जबरदस्त भावना को रोकने मे सचेष्ट रहा।

एक हिन्दू के नाते मेरी जो भावना थी उसके कारण मेरे जीवन पर गांधीजी का प्रभाव सबसे अधिक था। मेरा जन्म एक ऐसे व्यापारी परिवार मे हुआ है, जो सदा से सनातन धर्म की परम्परा का पालन करता आया है। मेरे दादा और उन-जैसे दूसरे लोगो की तुलना इंग्लैंड और अमरीका के 'क्वेकरो' के साथ की जा सकती है। 'क्वेकरो' की ही तरह उन्होने भी व्यापार मे खूब धन कमाया, साथ ही उन्होंने अच्छे कामो मे खुले हाथ खर्च करना अपना कर्त्तव्य समझा। 'क्वेकरो' की तरह ही वे भी कट्टरपथी नही थे, अर्थात् वे जात-पात के किसी कठोर बधन मे जकडे हुए नही थे। 'बिडला एजूकेशन ट्रस्ट' के द्वारा महिलाओं के उत्थान-कार्य को बडी प्रेरणा मिली है। गांधीजी हरिजनो के हितो के जबर्दस्त समर्थक थे। ट्रस्ट ने इन हरिजनों को अन्य वर्गों के लोगों की बराबरी के दर्जे के पेशो के लिए तैयार करने मे भी बडा काम किया है। लेकिन यहा मैं 'बिड़ला एजूकेशन ट्रस्ट' के कार्य के बारे मे कुछ कहने नही बैठा हूं। मेरे कहने का अभिप्राय तो यही है कि गाधीजी का मुझ पर जो प्रभाव पडा है

वह उनके एक शक्तिशाली राजनैतिक नेता होने के कारण उतना नही पड़ा, जितना कि उनकी धर्मपरायणता, उनकी नेकनीयती और उनकी सत्य की खोज करने की प्रवृत्ति के कारण पड़ा। अक्सर मैं उनके तर्कों को नही समझ पाता था और कभी-कभी मैं उनसे असहमत भी हो जाता था; लेकिन मुझे यह विश्वास सदा बना रहता था कि वह जो कुछ कहते या करते हैं, वह अवश्य ही ठीक होगा, मैं उनका अभिप्राय न समझा होऊं, यह बात दूसरी है। उन्होंने मुझसे जितना भी रुपया मागा (और वह कहा करते थे कि जिन कामो में वह लगे हुए हैं, उनका भिक्षा-पात्र सदैव आगे बढा रहता है) इस विश्वास के साथ मागा कि उन्हें वह रकम अवश्य मिल जायगी; क्योंकि उनके लिए मेरा सर्वस्व हाजिर था। पर उन्होंने तानाशाही कभी नही अपनाई। वह तो स्वभाव से ही विनयशील थे। इतना ही नही, जब कभी मैं उनकी बातों को समझ नही पाता था और अपने मन की बात कह देता था तो वह मेरी आलोचना को रत्ती-भर भी नाराज हुए बिना ग्रहण कर लेते थे, जैसा कि हमारे पत्र-व्यवहार से जाहिर होगा। उनका यह कहना कि वह अपने दोस्तो को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं, न तो उनकी कोरी नम्रता ही थी, न दूसरो के मनोभावो को ठेस न पहुंचाने की इच्छा ही; वह सचमुच ही उनकी सलाह मानने को तैयार रहते थे, बशर्ते कि वह सलाह उन्हे उस अंतिम सत्य की खोज से न डिगाए—उस चिरतर सत्य की खोज से, जो हम सबका सृजन करता है।

गांधीजी ने अपनी 'आत्मकथा' सन् १६२४ मे समाप्त की। बस, तभी से मैंने उनके और दूसरे लोगो के साथ अपने पत्र-व्यवहार को सुरक्षित रखना आरम्भ किया। मैं बड़े कष्ट में था, इसलिए स्वभावतया मैं नसीहत के लिए बापू की शरण मे आया। मारवाड़ी समाज रूढ़िवादी है ही। उसने हमारे परिवार की आधुनिकता के कारण हमारा सामाजिक बहिष्कार आरम्भ कर दिया था। इससे मेरे मन मे बड़ा रोष भरा हुआ था और मैं गांधीजी की अहिंसा की नीति का पालन करने और यह सबकुछ चुपचाप सहन करते जाने को तैयार नही था। मैं गांधीजी को लिख भी चुका था कि वह विरोधियों के साथ पेश आने के मामले मे जरूरत से ज्यादा नम्रता और विश्वास से काम लेते हैं और जिन्हें वह हंस समझते है, उनमें से कुछ तो बगुले-मात्र हैं। इसके उत्तर मे उन्होंने लिखा, "मैं किसी पर भी आवश्यकता से अधिक विश्वास नही करता हूं। पर जब दोनो पक्ष दोषी होते है तब यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि एक का दोष दूसरे के दोष से कितना अधिक है। इसलिए मैंने एक सीधी-सादी युक्ति सोच ली है—बुरा करने वाले के साथ भी नेकी ही करो।" और जब मैंने अपनी बिरादरी के अंधकार मे पड़े पोंगापंथियों के विरुद्ध दिल का गुबार निकाला तो गांधीजी ने आश्वासन देकर मुझे शान्त किया। उनके वे आश्वासन अब सच्चे सिद्ध हो चुके हैं। उन्होंने लिखा :

जुहू, बम्बई
१३-५-२४

भाई श्रीयुत् घनश्यामदास,

आपका पत्र मुझको मिला है।

मेरा विश्वास है कि यदि जाति वालों के विरोध आप बरदाश्त कर सकेंगे तो आखिर मे फल अच्छा ही होगा। हम सब मे दैवी और आसुरी प्रकृति कार्य कर रही है। इसलिए थोडी-बहुत अशान्ति अवश्य रहेगी। उससे डरने की कुछ आवश्यकता नही है। प्रयत्नपूर्वक निग्रह करते रहने से आसुरी प्रकृति का नाश हो सकता है। परंतु दिल मे पूरा विश्वास होना चाहिए कि दैवी प्रकृति को ही सहायता देना हमारा कर्त्तव्य है। मुझे फिक्र आपके पिता और बन्धु के लिए है। यदि वे आपके पक्ष का संगठन कर सग्राम चाहते हैं और आप उनको शान्ति-मार्ग की ओर न ला सकें तो आपके ही कुटुम्ब मे दो विरोधी प्रवृत्ति होने का सम्भव है। ऐसे मौके पर धर्म-सकट खड़ा होता है। मैं तो अवश्य उनसे भी प्रार्थना करूगा कि आपके ही हाथ से जाति मे दो गिरोह पैदा न हों।

जिस चीज को आपने अच्छी समझकर की है और जिसकी योग्यता के लिए आज भी आप लोगो के दिल मे शका नही है, उसके लिए माफी मागना मैं हरगिज उचित नही समझूगा।

आपकी तरफ से मुझे ५,०००) रु० मिल गये हैं। 'यग इडिया', 'नवजीवन' के लिए आप उचित समझें, उतना द्रव्य भेज दें। करीब ५० नकल मुफ्त देने की आवश्यकता है।

आपका
मोहनदास गाधी

११ जून को मैंने गाधीजी को लिखा :

पिलानी
११ जून, १९२४

परम पूज्य महात्माजी,

आपके पत्र सदैव मुझे कुछ-न-कुछ नई शान्ति देते रहते है। यद्यपि दो गिरोह हो गये हैं तथापि कुछ बहुत ज्यादा अविवेक से कार्य नही हो रहा है। हालाकि हम लोगो ने इस मामले मे अबतक थोड़ा कष्ट सहन कर एक छोटा-सा स्वार्थ-त्याग किया है, फिर भी जो पवित्रता ऐसे कार्यों मे होनी चाहिए, वह हम लोग धारण नही कर सके हैं। कुछ धर्म-संकट भी है और कुछ कौटुम्बिक दौर्बल्य भी है। आप 'नवजीवन' मे सामाजिक विषयों पर कुछ लिखें तो लोगों का अत्यन्त उपकार भी हो सकता है।

स्वराजियो ने सिराजगज की कान्फ्रेंस में हिंसा की घोषणा कर दी है और अपनी अहिंसा के पुराने बुरके को उतारकर फेंक दिया है। अहिंसा के नाम से जो हिंसा का नाटक खेला जा रहा था, उसका इस प्रकार अंत हो गया। मम्भव है, आप अल्पसख्यक रह जायं, किन्तु जिस पवित्रता से आपका काम होगा, उसकी ताकत कितनी बड़ी-चढी होगी, इसकी तो कल्पना भी मेरे लिए असम्भव-सी है।

आपने मुझे अहिंसा का उपदेश दिया और मैंने भी उसे बिना शंका के सुन लिया; किन्तु आपसे दूर होने के पश्चात् मुझे फिर समय-समय पर शकाएं होती हैं। इसमें तो मुझे रत्ती-भर भी शका नही कि अहिंसा एक उत्तम ध्येय है, किन्तु आप जैसे द्वन्द्व-विमुक्त पुरुष संसार की भलाई के लिए किसी मनुष्य का यदि वध कर दें तो क्या इसको हिंसा कहा जा सकता है ? समझ में तो ऐसा आता है कि निष्काम भाव से किया हुआ कर्म एक प्रकार से अकर्म ही है; किन्तु जो साधारण श्रेणी के मनुष्य द्वन्द्व से छूट नही गये हैं उनके हाथ से किया हुआ वध तो अवश्य हिंसा ही है। क्या ऐसी हिंसा के लिए विधि नहीं है ? आपने तो स्वयं ऐसा कहा है कि भाग जाने की अपेक्षा प्रहार करना कही अधिक अच्छा है। इस हालत मे लोगों को अन्तिम श्रेणी की शिक्षा देकर प्रहार करने से रोकना कहां तक फलदायक होगा, मो मेरी बुद्धि मे नही आता। आप लाठियां खाने का उपदेश भी देते हैं। लोग इस अन्तिम ध्येय को पहुंचने का प्रयत्न कर सकते हैं या नही, इसमें मुझे पूरा शक है। मुझे तो ऐसा भय भी होता है कि कहीं ऐसा न हो कि लोग न तो उस उच्चतम अहिंसा को प्राप्त कर सकें और न अपनी बहू-बेटियों की रक्षा के लिए तलवार ही चलायें। हिन्दू सभा एव आर्यसमाजी भाइयों ने जब से तलवार चलाने के लिए लोगो को उत्तेजित किया तब मे मुसलमान लोग भी वार करने मे थोडा भय मानते हैं। मैं जानता हूं कि ऐसा होने से झगड़ा एक दफा बढ़ता ही है; किन्तु इसी सग्राम में झगड़ा तय न हो जायगा, यह भी तो नहीं माना जा सकना।

हम लोग ऐसा भी देख रहे है कि जिन हिन्दुओ को २०० वर्ष पूर्व जबर्दस्ती मुसलमान बना लिया गया था वे यद्यपि उस समय मुसलमानो से रुष्ट हुए होंगे, तथापि आज वे वैसे ही कट्टर मुसलमान हैं जैसे अरब, ईरान से आये हुए आदिम मुसलमान। इससे तो यही सिद्ध हो जाता है कि हिंसात्मक उपायो से की गई शुद्धिया भी, सम्भव है, हिन्दुओ का बल बढाकर अन्त मे प्रेम उपस्थित कर सकें। यद्यपि आपने मुझसे ऐसा कहा था कि पशुबल से कोई सुधार स्थायी नही हो सकता, किन्तु जब यह देखता हूं कि पशुबल से ही सती की घृणित प्रथा को ब्रिटिश सल्तनत ने बन्द कर दिया तो फिर यह समझ मे नही आता कि पशुबल से अन्य सुधार भी क्यो नही किये जा सकते ? आप मुझसे कहते थे कि मुसलमानों के धर्म की वृद्धि तलवार से नही हुई, किन्तु पुराने लेखो के पढने से इतना तो पता लगता है कि मुसलमानो ने जबर्दस्ती बहुत-से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। सन्

१८२९ ईस्वी मे लार्ड बैंटिक के ईस्ट इडिया कम्पनी के डाइरेक्टरो के नाम लिखे हुए पत्र से ऐसा स्पष्ट पता भी चलता है कि मुसलमान जबरन तबलीग करते थे।

पशुबल से अर्थात् प्रोटेक्टिव टैरिफ (रक्षात्मक चुगी) द्वारा खादी का प्रचार एवं विदेशी माल का बायकाट भी किया जा सकता है। यदि गवर्नमेंट चाहे तो अनेक सामाजिक कुप्रथाओ को रोक सकती है। इस हालत मे मुझे यह भी शका होती है कि समाजी लोग पशुबल से शुद्धिया कर लें और हिन्दुओं का बल बढ़ा लें तो इसमें कौन-सी बुराई है ? इसमें तो कोई शक नही कि जिन मुसलमानो को हम किसी भी प्रकार हिन्दू बना लेंगे, वे हिन्दुओं को उतना ही प्यार करेंगे जितना कि हिन्दू एक हिन्दू से कर सकता है।

मैं आपसे यह स्पष्ट कर देता हू कि मुझे यह हिंसात्मक नीति बिलकुल पसन्द नही है। अहिंसात्मक नीति मुझे प्रिय भी मालूम पड़ती है, किन्तु कभी-कभी मन मे उठता है कि कही यह वृत्ति आलस्य के कारण तो नही है। मैंने आपको ये शकाए इसलिए लिखी हैं कि मुझे इनका माकूल जवाब मिले।

यदि आप यह कहें कि कार्य सिद्ध हो या असिद्ध, हमे कर्म की पवित्रता को नही बिगाडना चाहिए तब तो मेरे लिए कोई प्रश्न ही नही रह जाता, किन्तु जो लोग मुक्ति के मार्ग के पथिक नही हैं और मध्यम श्रेणी मे विचरते हैं वे फलाफल को तोले बिना कोई उत्तम कार्य नही कर सकते। उन्हें 'आब्जेक्ट' (लक्ष्य) की चिन्ता है, न कि 'मैथड' (साधन) की, इसलिए आप कृपाकर मुझे यह लिखें कि यदि 'आब्जेक्ट' हिंसात्मक प्रणाली से प्राप्त कर सकें तो क्यो न किया जाय।

यह मैं फिर निवेदन कर देता हू कि हिंसात्मक नीति मुझे दिन-दिन अप्रिय होती जा रही है, और यह पत्र मैंने केवल अपनी शकाओं के समाधान के लिए ही लिखा है।

विनीत
घनश्यामदास

२० जून, १९२४

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

कार्य सिद्ध हो या न हो तो भी हमें अहिंसक ही रहना चाहिए। यह सिद्धात को प्राकृत रूप से बताने का तरीका है। ठीक कहना यह है कि अहिंसा का फल शुभ ही है। ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। इसलिए आज मिले या वर्षों के बाद, उससे हमें कुछ वास्ता नही है। २०० वर्ष के आगे जिनको जबर्दस्ती इस्लाम मे

लाया गया उससे इस्लाम को लाभ हो ही नही सकता, क्योकि इससे बलात्कार की नीति को स्थान मिला है। इसी तरह यदि किसी को बलात्कार से या फरेब से हिन्दू बनाया जावे तो उसमे हिन्दू धर्म के नाश की जड है। सामान्यत तात्कालिक फल देखकर हम धोखा खाते हैं। बडे समाज मे २०० वर्ष कोई चीज नही है।

कानून के जरिये से किसी की बुरी आदत छुड़ाना, इतनी-सी हिंसा पशुबल नही कहा जाय। कानून से शराब का धन्धा बन्द करना और इसीलिए शराबियों का शराब को छोडना बलात्कार नही है। यदि ऐसा कहा जाय कि शराब पीने वालो को बेंत लगाये जायेंगे तो अवश्य पशुबल माना जाय। शराब बेचने का हमारा कर्त्तव्य नही है।

आपका
मोहनदास

स्पष्ट ही इससे मुझे सतोप नही हुआ और, जैसा कि उनके दूसरे पत्र से प्रकट होता है, मैंने वही शिकायत की होगी।

२० जुलाई, १९२४

भाई श्री घनश्यामदास,

ईश्वर ने मुझको नीति-रक्षक दिये हैं, उन्ही मे से मैं आपको समझता हूं। मेरे कई बालक भी ऐसे हैं और कई बहनें भी है और आप, जमनालालजी-जैसे प्रौढ भी हैं, जो मुझको सम्पूर्ण पुरुष बनाना चाहते है। ऐसा समझते हुए आपके पत्र से मुझे दु ख कैसे हो सकता है। मैं चाहता हूं कि हर वक्त ऐसे ही आप मुझे सावधान बनाते रहें।

आपकी तीन फर्यािद हैं। एक, मेरा स्वराज्य दल को तख्त के आरोप से मुक्त रखना, दूसरा, सोहरावर्दी को प्रमाण-पत्र देना और तीसरा, सरोजनीदेवी को सभापतित्व दिलाने की कोशिश करना।

प्रथम बात यह है कि मनुष्य का धर्म है कि साधना के पश्चात् जो अपने को सत्य लगे उसी चीज को कहना, भले जगत को वह भूल-सी प्रतीत हो। इसके सिवा मनुष्य निर्भय नही बन सकता है। अपनी मोक्ष के सिवा और किसी चीज का मैं पक्षपाती नही बन सकता हू, परन्तु यदि मोक्ष सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल हो तो मुझे मोक्ष भी त्याज्य है। उक्त तीनों बातो में मैंने सत्य का ही सेवन किया है। आपने जो कुछ मुझे जुहू मे कहा था उसे स्मरण में रखते हुए मैंने जो कुछ भी कहा है, वह कहा। जब मेरे नजदीक कुछ भी प्रमाण न हो तो मेरा धर्म है कि मैं स्वराज्य दल को आरोप से मुक्त समझू। यदि आप मुझको प्रमाण देंगे तो मैं अवश्य निरीक्षण करूंगा और आप उसका उपयोग करने देंगे तो मैं जाहिर मे भी

कह दूंगा, वरना मेरे दिल मे समझकर मैं खामोश रहूंगा।

सरोजनीदेवी के लिए आप खामखा घबराते हैं। मेरा दृढ विश्वास है कि उन्होंने भारतवर्ष की अच्छी सेवा की है और कर रही हैं। उनके सभापतित्व के लिए मैंने कुछ प्रयत्न इस समय नही किया है। परन्तु मेरा विश्वास है कि इस पद के लिए वह योग्य है, यदि दूसरे जो आजतक हो गये हैं वे योग्य थे तो। उनके उत्साह पर सब कोई मुग्ध हैं। उनकी वीरता का मैं साक्षी हू। मैंने उनका चरित्र-दोष नही देखा है।

इन सब बातों का आप यह अर्थ न करें कि उनके या किसी के सब कार्यों को मैं पसन्द करता हू।

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
सत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।।

आपका
मोहनदास गांधी

पुनश्च :

शरीर को अच्छा रखो तब तो मैं काफी काम ले लूगा और कुछ दूगा। कम-से-कम पन्द्रह दिन दूध की आवश्यकता लगे तो अवश्य पिओ। फल खाओ। रोटी नुकसान करेगी। दही अवश्य लेना।

१५ सितम्बर, १९२४

भाई घनश्यामदासजी,

आपके पत्र मिलते रहते हैं। जबलपुर के मामले से मैं घबराता नही हू। मैंने जो आत्म-प्रायश्चित्तकरने की मेरी शक्ति थी, वह कर लिया, इसलिए मैं शात रह सकता हू। फल का अधिकार हमको नही है, यह तो ईश्वर के ही हाथ मे है। मेरा स्वास्थ्य ठीक होने से कई अग्रगण्य नेताओ को साथ लेकर दौरा करने का मेरा इरादा तो है ही, सबसे पहले मैं कोहाट जाना चाहता हू। सम्भव है कि मैं ८ दिन मे तैयार हो जाऊंगा।

समय आने पर आपकी सब भाति की सहाय मैं माग लूगा।

आपके लोगो से मुझे यहा खूब सहाय मिल रही है।

रुपये आप जमनालालजी को या तो आश्रम साबरमती को भेजने की कृपा करें।

आपका
मोहनदास गांधी

हिन्दुओ और मुसलमानो के आपसी सबध की दृष्टि से यह एक बहुत ही बुरा

गया था। कितनी ही जगहों पर मदद करते हुए और सदा की भांति तब भी बापू ने समझौता कराने की प्राणपण से चेष्टा की। दंगों में उन्होंने दिल्ली में इक्कीस दिन तक अनशन किया; लेकिन उससे कोई ठोस लाभ न हुआ। इन दिनों हमारा पत्र-व्यवहार अधिकतर इसी विषय पर होता था। बापू ने लिखा :

"हिन्दू लोगों पर जो हमला हो रहा है उस बारे में हमारा ही दोष मैं समझता हूं। हम ऐसे कायर बन गये हैं कि हमारी बहनों की रक्षा भी नहीं करते हैं। इस विषय में मैं खूब लिखूंगा। इसका कोई तात्कालिक इलाज मेरे नजदीक नहीं है। कई बात जो आपके सुनने में आई हैं, उसमें अतिशयोक्ति का संभव है, परन्तु अतिशयोक्ति बाद देने के बाद जो शेष रहता है, हमको लज्जित करने के लिए काफी है।"

पर इन घटनाओं के बावजूद मुसलमानों के प्रति उनकी हितैषिता में कोई कमी नहीं हुई, जैसा कि अगले पत्र से स्पष्ट हो जाता है :

भावनगर
२१-३-१९२५

भाई श्रीयुत् घनश्यामदासजी,

अलीगढ़ में राष्ट्रीय मुस्लिम युनिवर्सिटी चलती है, उसकी आर्थिक स्थिति बहुत ही कठिन है। मैंने उन भाइयों को कहा है, मैं सहाय दिलवाने का प्रयत्न करूंगा। वे लोग एक रकम इकट्ठी कर रहे हैं। मैंने कहा है कि उसमें रु० ५०,००० की सहायता मांगने की कोशिश मैं करूंगा। आप भी इस बात को सोचिये और आपका दिल यदि इस सहायता में पूरी या कुछ भी देना चाहता है तो मुझे लिखियेगा। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न का मैं खूब अभ्यास कर रहा हूं। मेरा यह विश्वास हिन्दू समाज पर बढ़ता जा रहा है, यद्यपि मुश्किलें ज्यादा देखता हूं तो भी।

मैं आजकल काठियावाड़ में घूम रहा हूं। आज मेरा प्रवास खतम होगा।

आपका
मोहनदास गांधी

२३-३-२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मिले हैं।

मुस्लिम युनिवर्सिटी के बारे में आपने मुझको निश्चिन्त कर दिया है। मैं तो यह हरगिज नहीं चाहता हूं कि आपके दान से आप भाइयों में कुछ भी विवाद हो। आपका नाम मैं प्रगट नहीं करूंगा।

आपने जो जमीन छोटा नागपुर मे ली है, उसको नौकरी की मृत्यु के कारण छोडने की सलाह मैं नही दूगा। धातु रूप और जमीन रूप द्रव्य मे बडा फरक नही है। द्रव्य के कारण झगडा होना, खून भी होना अनिवार्य है। आपके धर्म-सकट का एक ही इलाज है, मिलकियत छोड देना। यह तो आप इस समय करना नही चाहते हैं। हा, एक बात तो मैंने कही है, क्योकि मिलकियत फिसादो का कारण बनती है और हमारे पास अकर्त्तव्य भी करवाती है। उसे छोड देना और जबतक उसको हम सम्पूर्णतया छोडने के लिए तैयार नही हैं तबतक उसका व्यय पारमार्थिक भाव से ट्रस्टी की हैसियत से करना और अपने लोगों के लिए उसका कम-से-कम व्यय करना। एक वात और सभावित है। जो सज्जन झगड़ा करता है उसको मिलने की कुछ कोशिश हुई है ? उसकी अशाति का कारण क्या है ? उसकी मूर्खता भले हो; परंतु उसकी जमीन पानी के दाम से तो नही मिली है। दुष्ट पुरुष भी अपनी मिलकियत फेंक देना नही चाहता है। यह तो दूसरा तात्विक प्रश्न मैंने छेड़ा है।

आपकी धर्मपत्नी का स्वास्थ्य कुछ ठीक है क्या ? मै मद्रास २४ तारीख को छोड़ूगा।

आपका
मोहनदास गाधी

२६ मार्च, १९२५

भाई घनश्यामदासजी,

यह है हकीम साहब का तार। क्या आप मुझको २५,०००) रु० अब भेज सकते हो ? यदि भेजा जाय तो दिल्ली मे हकीम साहब के यहा भेजोगे कि मुझको मुंबई मे जमनालालजी के यहां भेजोगे। मुझे यदि क्रेडिट दिल्ली मे मिले तो कमीशन का शायद बचाव होगा। मैं पहली अप्रैल तक आश्रम मे हूगा। उसके बाद काठियावाड मे दुबारा जाऊगा। मई दो तारीख को फरीदपुर पहुचना होगा।

आपका
मोहनदास गाधी

बापू ने मुझे एक खास तरह का चरखा उपहार मे दिया और मेरी कताई मे बडी दिलचस्पी दिखाई, यहा तक कि मेरे काते हुए सूत की बारीकी पर मुझे बधाई भी दी :

३० मार्च, १९२५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपका खत मिला है।

आपका सूत अच्छा है। जिस पवित्र कार्य का आपने आरम्भ किया है उसको आप हरगिज न छोड़ें। आपकी धर्मपत्नी के बारे में आप प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि यदि उनका स्वर्गवास हो तो आप एक पत्नीव्रत का सर्वथा पालन करेंगे। यदि ऐसी प्रतिज्ञा लेने की इच्छा और शक्ति हो तो मेरी सलाह है कि आप आपकी धर्मपत्नी के समक्ष यह प्रतिज्ञा लें।

२० हजार रुपये के लिए मैं जमनालालजी की दुकान से पूछूंगा।

श्री रायचन्दजी से मेरा खूब सहवास था। मैं नही मानता हू कि सत्य और अहिंसा के पालन मे वे मेरे से बढते थे, परन्तु मेरा विश्वास है कि शास्त्रज्ञान मे और स्मरण-शक्ति मे मेरे से बहुत बढते थे। बाल्यावस्था से उनको आत्मज्ञान और आत्मविश्वास था। मैं जानता हूं कि वे जीवनमुक्त नही थे और वे खुद जानते थे कि वे नही थे। परन्तु उनकी गति उसी दिशा मे बडे जोर से चल रही थी। बुद्ध-देव इत्यादि के बारे में उनके ख्यालों से मैं परिचित था। जब हम मिलेंगे तो उस बारे मे बाते करेंगे। मेरा बगाल मे प्रवास मई मास मे शुरु होता है।

अलीगढ के बारे में मैंने आपसे २५,०००) रु० की मांगनी की है। हकीमजी का तार भी आपको भेजा है।

आपका
मोहनदास गांधी

आश्रम, साबरमती
६ अप्रैल, १६२५

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला है। आपने जो चेक भेजा उसमें से देशबन्धु-स्मारक के पैसे की जो रसीद जमनालालजी के यहा से आई है आपको देखने के लिए भेज देता हूं। चेक पर जो हुंडियावण काट लेते है वह काटकर रसीद दी जाती है, उसका मुझको यह पहला अनुभव है।

हिन्दू-मुस्लिम झगडों के लिये मैं और क्या लिखू? भली-भाति समझता हूं कि हमारे लिए क्या उचित है? परन्तु आज मेरा कहना निरर्थक है, यह भी जानता हूं। शहद पर बैठी हुई माख को कौन हटा सकता है, बत्ती के इर्द-गिर्द घूमते परवाने की गति को कौन रोक सकता है?

मसूरी न जाने से मैं बहुत लाभ उठा रहा हू। आपका अभिप्राय यहां मिलने के बाद आपने क्यों दिल्ली से मसूरी जाने का तार भेजा? परन्तु जिसको ईश्वर बचाना चाहता है, उसको कौन मिटा सकता है?

फिनलैंड के बारे मे मैं नही जानता हूं, मैं क्या करना चाहता हूं? जाने न जाने

के मेरे नजदीक बहुत-से कारण हैं। और क्योंकि मैं निश्चय नहीं कर सका हू, इसलिए निमन्त्रण देनेवालो को मैंने मेरी शर्त सुना दी। शर्त के स्वीकार के साथ अगर वे लोग मेरी हाजिरी चाहे तो मैं समझूगा कि मेरा जाना आवश्यक है।

आल इडिया काग्रेस कमेटी मे क्या होगा, देखा जावेगा ?

आपका
मोहनदास

कहने की जरूरत नही कि एक जाति-बहिष्कृत के रूप मे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए थे उनके कारण दलित जातियो के प्रति मेरी सहानुभूति बढ गई थी। फलतः बापू के हरिजन-आन्दोलन को आगे बढाने के लिए मैं लालायित हो गया था। हमारे पत्र-व्यवहार का बहुत बडा भाग इसी आन्दोलन के सम्बन्ध में था। परन्तु मैं अपने पाठकों को इन विस्तार की बातो से परेशान नहीं करूगा, क्योंकि हरिजनो का विषय इस पुस्तक में आगे चलकर फिर आयेगा। फिर भी यह तो बता ही दू कि बापू ने अपने सुझावों के द्वारा कि चेकों को कहां जमा कराया जाय, जिससे उनके भुगतान का कमीशन न देना पडे, अपनी वणिक-सुलभ व्यापार-कुशलता का परिचय दिया। यहा यह भी बता दू कि हरिजनो से व्यक्तिगत सम्पर्क न होने के कारण ही कट्टर हिन्दुओं के मन मे, जिनमें मालवीयजी-जैसे साधु पुरुष भी थे, हरिजनो के लिए उपेक्षा की भावना ने जड पकड ली थी। पत्र-व्यवहार को देखने से पता चलता है कि राष्ट्रीय प्रश्न को छोडकर और सभी बातो मे बापू और मालवीयजी में मौलिक मतभेद था। यद्यपि बापू स्वराज्य-पार्टी बनाने और उसके विधान-सभाओं मे भाग लेने के विरोधी थे, फिर भी उनकी सहानुभूति पार्टी के कट्टरपंथी नेताओं—मोतीलाल नेहरू और सी० आर० दास—के साथ अपेक्षाकृत अधिक थी।

शुक्रवार, ७ अगस्त, १९२५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपके पत्र का उत्तर मैंने जमनालालजी के मार्फत भेजा था, वह मिला होगा, आपका लम्बा पत्र जब मुझे मिला था तब मैंने उसका सविस्तार उत्तर भेज दिया था और उसकी निज की रजिस्ट्री भी है। वह उत्तर सोलन मे भेजा गया था। कैसे गुम हो गया, मैं नही समझ सकता हू।

उसमे मैंने जो लिखा था उसकी तफसील यहा देता हू। आपने एक लाख का दान देशबन्धु-स्मारक मे किया, उसकी स्तुति की और यथाशक्ति शीघ्रता से देने की चेष्टा करने की प्रार्थना की।

पू० मालवीयजी और पू० लालाजी को मैं साथ नही दे सकता हू, उसका

कारण बताया और मेरे उनके लिए पूज्य भाव की प्रतिज्ञा की। पं० मोतीलाल और स्वराज्य-दल को सहाय देता हूं, क्योंकि उनके आदर्श कुछ-न-कुछ तो मेरे से मिलते हैं। उसमें व्यक्तिगत सहाय की बात नहीं है।

और बातें तो बहुत-सी लिखी थी, परन्तु इस समय वे सब मुझे याद भी नहीं हैं।

आप दोनों का स्वास्थ्य अच्छा होगा। मेरे उपवास की कथा आपने सुन ली होगी। मेरे इस खत के लिखने से ही आप समझ सकते हैं कि मेरी शक्ति बढ़ रही है। उम्मीद है कि थोड़े दिनों में मैं थोड़ा शारीरिक श्रम उठा सकूंगा।

मैं ता० १० को वर्धा पहुंचूंगा। वहां कुछ दस दिन रहने को मिलेगा।

आपका
मोहनदास

मेरी धर्मपत्नी को एक ऐसी बीमारी लग गई थी जो बाद में घातक सिद्ध हुई। बापू की शुभ कामनाएं और उनके चिकित्सा-सम्बन्धी सुझाव लगातार आते रहते थे। इसी बीच उन्होंने यौन-प्रश्नों पर भी अपने विचार लिखे

बम्बई, १३ अप्रैल, १९२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दो पत्र मिले हैं। आपने तिथि या तारीख का देना छोड़ दिया है। देते रहिये, क्योंकि मेरे भ्रमण में पत्र मिलते हैं, इससे कौन-सी तारीख के कौन पत्र हैं, उसका पता बगैर तारीख मुझे नहीं मिल सकता।

हकीमजी तो यूरोप गये हैं। मैंने ख्वाजा साहब को पुछवाया है कि द्रव्य मिल गया है या नहीं। आपको कुछ पता मिले तो बताइये। जमनालालजी की दुकान से मैंने जांच की तो पता मिला कि उनको आपकी तरफ से रु० ३०,०००) अबतक मिले हैं। मुनीम ने पहुंच तो दी थी, ऐसा कहते हैं। मिलने की तिथि अनुक्रम से १०,०००) की १-१-२४ और २०,०००) की ५-१-२५ है।

यदि डाक्टर लोग आशा बताते हैं तो आपको धर्मपत्नी के मृत्यु का भय क्यों रहता है? विकारों का वश करना मेरे अनुभव में बहुत कठिन तो है ही; परन्तु वही हमारा कर्त्तव्य है। इस कलिकाल में मैं रामनाम को बड़ी वस्तु समझता हूं। मेरे अनुभव में ऐसे मित्र हैं, जिनको रामनाम से बड़ी शांति मिली है। रामनाम का अर्थ ईश्वर नाम है, मन्त्र भी वही फल देता है। जिस नाम का अभ्यास हो उसका स्मरण करना चाहिये। विषयासक्त संसार में चित्तवृत्ति का निरोध कैसे हो, ऐसा प्रश्न होता ही रहता है। आजकल जनन-मर्यादा के पत्रों को पढ़कर मैं दुखित होता हूं। मैं देखता हूं कि कई लेखक कहते हैं कि विषय-भोग हमारा

कर्त्तव्य है। इस आयु मे मेरा संयम-धर्म का समर्थन करना विचित्र-सा मालूम होता है। तथापि मेरे अनुभव को मैं कैसे भूलू ? निर्विकार बनना शक्य है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। प्रत्येक मनुष्य को इस चेष्टा को करना अपना कर्त्तव्य है। निर्विकार होने का साधन है। साधनों में राजा रामनाम है। प्रातःकाल उठते ही रामनाम लेना और राम से कहना 'मुझे निर्विकार कर', मनुष्य को अवश्य निर्विकार करता है। किसी को आज, किसी को कल। शर्त यह है कि यह प्रार्थना हार्दिक होनी चाहिये। बात यह है कि प्रतिक्षण हमारे स्मरण मे हमारी आखो के सामने ईश्वर की अमूर्त मूर्ति खडी होनी चाहिये। अभ्यास से इस बात का होना सहल है।

मैं बगाल मे प्रथमा को पहुचूगा। उसी रोज कलकत्ता फरीदपुर के लिये छोड़ूगा।

मोहनदास के वदेमातरम्

गोरक्षा की लक्ष्य-सिद्धि के प्रयास के मामले मे बापू की व्यावहारिक विवेक-बुद्धि की झलक निम्नलिखित पत्र से मिलेगी :

१ जुलाई, २५

भाई श्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। लोहानी के बारे मे आपको विशेष तकलीफ इस समय तो नही दूगा।

जमनालालजी मुझे कहते थे कि जो २५,०००) रुपये आपने मुस्लिम यूनिवर्सिटी को दिये वे जो ६०,०००) जुहू मे देने की प्रतिज्ञा की थी उसीमें के थे। मेरी समझ ऐसी थी और मैंने ६०,०००) रुपये दूसरे कामो मे खरचने का इरादा कर रखा था। परन्तु यदि आपकी समझ ऐसी न थी कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी के रुपये अलग न माने जाय तो मुझे कुछ कहना नही है।

दूसरी बात यह है। गोरक्षा के बारे में मेरे ख्याल आप जानते हैं। श्रीमधुसूदन दास की एक टेनरी कटक मे है, उसको उन्होने कम्पनी बनाई है। उसमें ज्यादा शेयर लेकर प्रजा के लिए गोरक्षा के कारण कब्जा लेने का दिल चाहता है। उस पर १,२०,०००)का कर्ज होगा। उस कर्ज में मे उसकी मुक्ति आवश्यक है। टेनरी में चमडे केवल मृत जानवरो के लिये जाते हैं, परन्तु पाटलधो को मरवाकर के भी उसके चमड़े लेते हैं। यदि टेनरी लें तो तीन शर्त होनी चाहिए :

(१) मृत जानवर का ही चमडा खरीदा जाय।

(२) पाटलधो को मरवाकर उसका चमड़ा लेने का काम बन्द किया जावे।

(३) सूत लेने की बात ही छोड दी जावे। यदि कुछ लाभ मिले तो टेनरी

का विस्तार बढाने के लिए उसका उपयोग किया जावे।

मैं चाहता हूं कि यदि इस शर्त से टेनरी मिले तो आप ले लें। उसकी व्यवस्था आप ही करें तो मुझको प्रिय लगेगा। यदि न करें तो व्यवस्थापक मैं ढूढ लूगा। टेनरी की अपनी ही जमीन कुछ बीघा है। मैंने देख ली है। श्री मधुसूदन दास ने इसमें अपने बहुत पैसे खर्च किये है।

तीसरी बात है चर्खा-सघ की। आप इसमे साथ दे सकते हैं। आप अखिल भारत देशबन्धु-स्मारक में अच्छी रकम दें, ऐसा मागता हूं।

इन तीनों बात के बारे मे आपसे जमनालालजी ज्यादा बात करेंगे, यदि आपका उनके साथ दिल्ली मे मिलना हुआ तो।

आपकी धर्मपत्नी को कुछ आराम हुआ है क्या ?

मैं बिहार मे १५ तारीख तक रहूंगा।

आपका
मोहनदास गांधी

मुझे ठीक याद नही कि मैंने उन्हें ऐसी क्या बात लिखी थी, जिस पर उन्होने निम्नलिखित पत्रों में मुझे डांट बताई :

नवम्बर, १९२५

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

मेरे लेख के बारे मे मुझे विश्वास है कि मैंने बा को अन्याय से बचा लिया है। बा भी दिल में यही समझती है, ऐसा मुझको प्रतीत होता है, अन्यथा इतने प्रफुल्लित चित्त से मेरे साथ घूम न सकती। कई वृथा दोषारोपण से बा और छगनलाल आदि को मैंने बचा लिया है। दोष के जाहिर स्वीकार का मीठा अनुभव मैंने जितना लिया है इतना शायद ही और किसी ने हमारे समाज में लिया हो। मुझको आश्चर्य है कि यह बात आपने नही पहचान ली।

आपका
मोहनदास

पाठकों ने देखा होगा कि बापू ने अपने पत्रों में बार-बार आर्थिक बातों की चर्चा की है। दलित जातियों की सहायता के लिए किये जानेवाले संघर्ष में मैं रुपये-पैसे से उनकी जितनी भी सहायता कर सकता था, करता रहा, क्योंकि यही एक ऐसी चीज थी, जो उनके पास नहीं थी। ये चर्चाएं उनके पत्रों मे बार-बार

आयेंगी। इन पत्रो मे व्यावसायिक मामले मे उनकी व्यवहार-कुशलता के दर्शन होते हैं·

साबरमती
३ जनवरी, १९२६

भाई रामेश्वरदासजी,

आपका पत्र मिला। जमनालालजी आजकल यहा हैं। उन्होंने मुझे खबर दी है कि १०,०००) रु० उनको पेढ़ी पर मिल गये हैं। उनका व्यय अन्त्यज-सेवा में करूगा।

आपका स्वास्थ्य अच्छा है, जानकर आनन्द हुआ।

आपका
मोहनदास गाधी

उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम समस्या विकट रूप में मौजूद थी।

आश्रम, साबरमती
शुक्र० १६-४-२६

भाई घनश्यामदास,

आपका खत और २६ हजार रुपये का चेक मिला है। हिन्दू-मुसलमान झगडे के बारे मे आपने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर मैं देता हू, परन्तु अखबारो के लिए नही। मैंने आपसे कहा था कि आजकल हिन्दू जनता पर या तो हिन्दू जनता के उस विभाग पर कि जो इन झगडो में दखल देता है, मेरा कोई असर नही है। इसलिये मेरे कहने का अनर्थ हो जाता है। इसलिये मैं शात रहना, वही मेरा कर्तव्य समझता हूं।

(१) जुलूस यदि सरकार ने बद कर दिये हैं और कोई धार्मिक कार्य के लिए जुलूस की आवश्यकता हो तो सरकार की मनाही होते हुए भी जुलूस निकालना मैं धर्म समझूगा। परन्तु जुलूस निकालने के आगे मैं मुसलमानो से मेलजोल की बात कर लूगा। और इतनी भी विनय करने पर वह न मानें तो जुलूस निकालूगा और वे मारपीट करें उसको बरदाश्त करूंगा। यदि इतनी अहिंसा की मेरे मे शक्ति न हो तो मैं लडाई का सामान साथ रखकर जुलूस निकालूगा।

(२) मुसलमान सईस वि० नौकरों के बारे मे किसी को उसके मुसलमान होने के कारण नहीं निकालूगा। परन्तु किसी मुसलमान को मैं नही रखूगा जो वफादारी से अपना काम नही करेगा या तो मेरे से उद्दड बनेगा। मेरा ऐसा अभि-

प्राय नही है कि मुसलमान अन्य कौमों मे ज्यादे कृतघ्न हैं। ज्यादा लड़ाकू हैं, यही बात मैंने उनमे देखी। किसी मुसलमान को मुसलमान होने के कारण ही त्याग करना मुझको तो बहुत ही अयोग्य मालूम होता है।

(३) जो हिन्दू शाति-मार्ग को नापसन्द करता है या तो उसके लिए तैयार नही है उसको लड़ाई करने की शक्ति हासिल कर लेनी चाहिये।

(४) यदि सरकार मुसलमानो का पक्षपात करती है तो हिन्दुओं को बेफिकर रहना चाहिये। सरकार से बेपरवाह रहें, खुशामद न करें, परन्तु अपनी शक्ति पर निर्भर होकर स्वाश्रयी बनें। जब हिन्दू इतना हिम्मतवान बन जायगा तब सरकार अपने-आप तटस्थ रह जायेगी और मुसलमान सरकार का सहारा लेना छोड़ देगा। सरकार की मदद लेने में न धर्म का पालन होता है, न कुछ पुरुषार्थ बनता है। मेरी तो सलाह है कि आप इस चीज को तटस्थता से देखें और कार्य करें। इसी मे हिन्दू जाति का भला है, हिन्दू धर्म की सेवा है। यह मेरा दीर्घकाल का—कम-से-कम ३५ वर्ष का—अनुभव है। झगड़ा होने के समय जिस शाति और वीरता से आपने काम लिया वह मुझको बहुत ही प्रिय लगा। इसी शाति को कायम रखकर आप जो कुछ योग्य हो वह करें। यदि मेरे उत्तर मे कही भी स्पष्टता का अभाव है तो अवश्य दुबारा पूछियेगा।

जो लोन चर्खा संघ को देने का आपने कहा है उसमें से कुछ हिस्सा बम्बई के माल पर लेने का इरादा है। बम्बई में चर्खा सघ के दो गोडाउन हैं। आप चाहें तो उनमे से एक का कब्जा ले लेवें और इसी में लोन कवर करने के लिए जितना माल चाहिये उतना रखा जाय, और उससे ज्यादा माल भी आप समत हो तो हम रखना चाहते हैं, जिससे एक गोडाउन का किराया हम बचा सकें। और वह माल हम जब चाहे तब ले सकें, ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये। जो माल चर्खा सघ सीक्यो-रिटी के बाहर रखें उसमे हमेशा बढ़-घट होनी होगी। इसलिए हमेशा उसमें प्रवेश करने का सुभीता मिलना चाहिये।

आपका
मोहनदास

आश्रम साबरमती
२३-५-२६. रवि०

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला था। खादी के विषय मे जो लोन आपने देने की प्रतिज्ञा की है इस बारे मे आपके खत की नकल जमनालालजी को भेज दी है।

साबरमती समझौते के बारे मे मैं तो स्तब्ध हो गया। अबतक मैं कुछ समझ सकता नहीं हूं। हिन्दू-मुसलमान के बारे मे मैं सब समझ सकता हूं, परन्तु लाचार

बन गया हूं, क्योंकि मैं आत्मविश्वास को नहीं छोड़ सकता हूं, इसलिए निराश नहीं होता। इतना तो समझता हूं कि जिस ढंग से आज हिन्दू-धर्म की रक्षा करने की कोशिश होती है उस ढंग से रक्षा नहीं हो सकती है। परन्तु मैं तो निर्बल के बल राम वस्तु को सम्पूर्णतया मानता हूं। इसलिए निश्चिन्त हो बैठा हूं।

आपका
मोहनदास

अगले पत्र में उनके और मालवीयजी के मतभेद की चर्चा है, खास तौर से मेरे राजनैतिक क्षेत्र में क्रियात्मक रूप से प्रवेश करने के बारे में।

आश्रम साबरमती
८-६-२६ मंगल०

भाई घनश्यामदासजी

आपका पत्र मिला है। खादी प्रतिष्ठान को चर्खा-संघ की मार्फत से आज तक कम-से-कम ७० हजार रुपये दिये हैं। मुझको स्मरण है, यहां तक ३५ हजार अन्य आश्रम को और ६ हजार प्रवर्तक संघ को। और भी छोटी-छोटी रकमें दी गई हैं। सब मिलकर करीब सवा लाख रुपये होंगे। और भी बंगाल में पैसे दिये जावेंगे। मैं जानता हूं कि खादी प्रतिष्ठान की आवश्यकता बहुत बड़ी है। सतीश बाबू अपना काम बहुत ही बढ़ाना चाहते हैं। मुझे यह बात प्रिय भी है। परन्तु चर्खा-संघ में आज तो पैसे बहुत ही कम हैं। इसलिए यद्यपि चर्खा-संघ के मार्फत से जो कुछ हो सकता है वह किया जावेगा तदपि आप जितना दे सकें उतना सतीश बाबू को अवश्य दें।

कौंसिल के बारे में क्या लिखूं? पूज्य मालवीयजी से इस बारे में मेरा तात्विक मतभेद है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि यदि आप मानें कौंसिलों में आपके जाने से लोकोपकार होगा तो आप अवश्य जायें। स्वराज्य दल का विरोध और राजनैतिक शिक्षण प्राप्ति का प्रलोभन यह दोनों बातें नैतिक दृष्टि से ख्याल करने में अप्रस्तुत हैं। यदि आप ऐसा समझते हैं कि आपने कौंसिलों में न जाने की प्रतिज्ञा मेरे समक्ष की है तो इस समझ को आप दूर करें। ऐसा कोई प्रतिबन्ध का निश्चयपूर्वक स्वीकार नहीं किया है। ऐसे बन्धन से मुक्त समझकर केवल औपकारिक दृष्टि से आप कौंसिलों में जाने के बारे में आपका अभिप्राय निश्चित करें।

आपका
मोहनदास

आश्रम साबरमती
२५-७-२६

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं इस पत्र के साथ एक वक्तव्य भेजता हूं, जो उस पत्र के साथ जाना चाहिये था, जो आपको उस दिन भेजा था।

आपके खादी प्रतिष्ठान वाले पत्र के सम्बन्ध मे बापू का कहना है कि कोई ऐसी खास बात नही जिसके लिए उनके उत्तर की जरूरत हो। वह इस बात में आपसे सहमत हैं कि व्यापार और परोपकार को मिलाना ठीक नहीं है, और प्रतिष्ठान की आप केवल एक ही प्रकार से सहायता कर सकते हैं, और वह यह है कि उसे ३०,०००) रुपये का कर्ज दिया जाये, जो वह जनवरी १९२७ में अदा कर देगा।

आपका
महादेव

बापू को यह बात तो बहुत भायी कि मैंने नाइटहुड की उपाधि लेने से इन्कार कर दिया, पर उन्हें यह बात जितनी पसंद थी उतनी ही विधान सभा के लिए मेरे खड़े होने की बात नापसद थी। (सन् १९२७ मे मैं असेम्बली का सदस्य था, बाद में उनकी सलाह से मैंने उसे त्याग दिया था।) 'सर' की उपाधि के बारे में उन्होंने लिखा, "किसी उपाधि को इन्कार करने के लिए न तो यह जरूरी है कि सरकार को अपना दुश्मन समझा जाय और न यह कि उपाधियों को बुरा माना जाय, यद्यपि आजकल की परिस्थितियों मे तो मैं उन्हे बुरा ही समझता हूं।"

मेरे सन् १९२७ मे यूरोप जाने के बारे में शुरू में तो उन्होंने कोई उत्साह नही दिखाया, पर जैसा कि हम देखेंगे, मेरा जाना एक बार निश्चित हो गया तो उन्होंने उसमे पूरी दिलचस्पी ली।

२. लाला लाजपत राय

मेरे शुरू के पथ-प्रदर्शकों में पण्डित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय थे। मालवीयजी बहुत बड़े विद्वान् थे और उनमें देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी; किन्तु सामाजिक विषयों में वह पक्के सनातनी थे। लाला लाजपतराय रूढ़िवादी विचारों के नही थे; पर थे बड़े ही भावुक और तुनकमिजाज। मेरे मन मे

अछूतों के प्रति अभिरुचि सबसे पहले उन्होंने ही जाग्रत की थी। 'हरिजन' और 'परिगणित' जाति-जैसे शब्द तो उस समय कोई जानता भी न था। ३० दिसम्बर १९२३ को उन्होंने मुझे एक पत्र में लिखा :

"जेल से छूटकर आने के बाद से ही मैं तुमसे मिलने को छटपटा रहा था, पर बीमारी के कारण कलकत्ता न आ सका, और मुझमें इतना साहस नहीं हुआ कि तुममें से किसी को यहां आकर मिलने के लिए लिखूं। मैं तुमसे हिन्दुओं की एकता और हिन्दू अछूतों की शुद्धि के मसले पर बातचीत करना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि हिन्दू संस्थाएं और हिन्दू नेता शोरगुल तो बहुत मचाते हैं, परन्तु ठोस काम बहुत कम करते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें आगे की पीढ़ियों के लिए पैसा इकट्ठा करने का तो चाव है, पर इस बात में कोई रुचि नहीं है कि उस पैसे का इस समय किस तरह अच्छे-से-अच्छा उपयोग किया जाय। कुछ दूसरे लोग ऐसे हैं, जो एक-साथ बहुत-सी योजनाएं बना लेते हैं, और अपनी सारी योजनाओं को विशाल रूप दे देते हैं, पर निश्चय-निर्णय करने में बहुत समय लेते हैं। इस दूसरी श्रेणी के लोगों में हमारे पूज्य नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय हैं। मेरा उनके प्रति स्नेह है और मैं उनकी श्रद्धा करता हूं, किन्तु उनकी जिस बात से मुझे दुःख होता है वह यह है कि वह निर्णय करने और उसे कार्य-रूप में परिणत करने में देर लगा देते हैं। मैं समझता हूं कि यह जमाना झटपट निर्णय करने और तत्परता से काम करने का है। यदि हम अपने हिन्दू समाज की महत्त्वाकांक्षी और साहसिक शत्रुओं से रक्षा करना चाहते हैं तो हमारे आगे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि इसमें किस तरह से एका हो और हम दलित वर्गों की रक्षा किस प्रकार करें। इस दूसरी समस्या में तो जरा भी देर करना आत्मघातक सिद्ध होगा। मालवीय-जी का खयाल है कि हिन्दू विश्वविद्यालय से ही हमारा बेड़ा पार हो जायगा। वह सारा रुपया और सारा समय उसी में लगा रहे हैं। यह तो ठीक है कि विश्व-विद्यालय के लिए उन्होंने शानदार काम किया है और हम मालवीयजी तथा उनके कार्य पर गर्व कर सकते हैं, पर विश्वविद्यालय को और फैलाने का काम अभी रोका जा सकता है।"

आगे चलकर लालाजी ने एक संस्था का रेखाचित्र दिया और उसके लिए मेरा सहयोग मांगा। उनकी और मालवीयजी की प्रेरणा से ही मैं बनारस और गोरख-पुर से व्यवस्थापिका सभा का सदस्य बना था और उनकी 'रिसपान्सिविस्ट पार्टी' में शामिल हुआ था। राजनीति के क्षेत्र में मानो मेरा यह रैनबसेरा था।

सन् १९२७ आते-आते हम एक-दूसरे को और भी अच्छी तरह से जानने और समझने लगे और लालाजी ने मुझे खरी-खरी बातें सुनाने का निश्चय किया।

जुलाई के महीने में, जब हम दोनो लन्दन मे थे, उन्होने मुझे लिखा :

प्रिय घनश्यामदासजी,

तुम्हारे बारे मे मेरी जो धारणा है वह मैं तुम्हें साफ-साफ और दिल खोल-कर बता देना चाहता हूं। जहाज पर और जिनेवा में साथ-साथ रहने के कारण अब मैं तुम्हें पूरी तरह समझने लगा हूं। इतने पास से तुम्हारा अध्ययन करने का अवसर मुझे पहली बार मिला। तुममे कुछ ऐसे गुण हैं, जिनकी मैं मुक्त कंठ से सराहना करता हूं; पर तुममे कुछ ऐसी आदतें है, जिन्हें मैं चाहूंगा कि तुम बदल दो। तुममे मेरी दिलचस्पी एक पिता की दिलचस्पी है, जो चाहता है कि उसका बेटा उससे भी अधिक बड़ा और अच्छा बने। तुममें एक महान् नेता बनने के गुण विद्यमान हैं, वे सभी गुण जो एक सच्चे नेता मे होने चाहिए। बस, तुम्हे अपने व्यवहार के ढंग मे कुछ परिवर्तन करना होगा। इस समय तुम्हारे व्यवहार से कुछ रुखाई का और धैर्य के अभाव का आभास मिलता है और इस कारण जो लोग तुम्हें अच्छी तरह से नही जानते, वे तुम्हें अभिमानी समझ बैठते हैं। बातचीत और व्यवहार के मामले मे हमें महात्मा गाधी से अच्छा व्यक्ति कोई नही मिलेगा। वैसे तो इस संसार में किसी को भी सर्व-गुण-सम्पन्न व्यक्ति नही कहा जा सकता; पर महात्मा गाधी को लगभग पूर्णता-प्राप्त पुरुष अवश्य कहा जा सकता है। वह महान् हैं, हम सबसे महान्, पर वह अपने मित्रों और सहकर्मियों के प्रति अपने व्यवहार का बड़ा ध्यान रखते हैं। उन्हें उपेक्षा या उदासीनता या अशिष्टता का दोष देना सम्भव ही नही है। तुमसे उनका लाख मतभेद होते हुए भी वह तुम्हारी सारी बातें धैर्य के साथ सुनेंगे और अपना निर्णय सुनाने मे कभी जल्दबाजी से काम नही लेंगे। वह अडिग हैं, उन्हें कोई दुर्बलता का दोषी नही ठहरा सकता। पर उनकी दृढता को कोई उद्दडता समझ बैठे, यह सम्भव नहीं है। वह तो उनसे भी दिल खोलकर तर्क-वितर्क करते हैं जो किसी भी दृष्टि से उनके समकक्ष नहीं माने जा सकते। तुम अभी युवक ही हो और अभी तुमने दुनिया नही देखी है; पर तुम्हारी बुद्धि अच्छी है और निश्चय करने में तुम्हे देर नहीं लगती है। पर बुरा न मानना। एक राजनैतिक नेता के रूप मे, जो कि आगे चलकर तुम बनोगे ही, तुम्हे मस्तिष्क और आचार-विचार-सम्बन्धी जिन गुणों की दरकार होगी वे उन गुणों से भिन्न होगे, जिन्होंने तुम्हें एक सफल उद्योगपति बनाया है।

मेरे जीवन की तो संध्या आ गई। गाधीजी और मालवीयजी भी तिल-तिल करके मर ही रहे हैं। भगवान् करें वे चिरायु हों। हिन्दुओं मे आज ऐसे बहुत ही कम लोग हैं, जिन पर हम अपने देश के नेतृत्व का भार छोड़ना पसन्द करेंगे। मेरी आशाएं तो बुद्धिजीवियों मे जयकर पर और उद्योगपतियों में तुम पर बधी हुई हैं। लेकिन जयकर बम्बई के हैं। हमे एक ऐसे हिन्दू नेता की जरूरत है, जो उत्तर

भारत के हिन्दुओ का नेतृत्व करने के लिए अपने साथियों और सहकर्मियों का पूरा-पूरा स्नेह तथा विश्वास प्राप्त कर सकें। आज मुझे एक भी ऐसा आदमी दिखाई नही देता है। मुझे तुमसे आशा है। यही कारण है कि मैने तुम्हें यह पत्र लिखने का जिम्मा लिया। मेरे स्नेह और देश-प्रेम ने मुझे ऐसा करने को प्रेरित किया है। यदि तुम समझो कि मैं व्यर्थ ही टाग अडाने की धृष्टता कर रहा हू तो मुझे क्षमा कर देना और इस पत्र को रद्दी की टोकरी मे डाल देना और फिर कभी इसकी याद न करना। भगवान् तुम्हारा भला करे, यही मेरी कामना है।

तुम्हारा सच्चा हितैषी
लाजपत राय

मैं कह नही सकता कि इस पत्र का मुझ पर कितना असर पडा; पर मैं अपनी त्रुटियो की ओर से सचेत था और मुझे नेता बनने कीकोई आकाक्षा भी नही थी। इसलिए मैंने उनकी सलाह को उसी रूप मे ग्रहण किया, जिस रूप मे एक युवक अपने बुजुर्गों की सलाह को ग्रहण करता है।

इसके बाद उन्होने पेरिस से यह डाट लिखकर भेजी·

पेरिस, ६ जुलाई, १९२७

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं अभी पेरिस में ही हू। दिल की बात कह रहा हूं, माफ करना। मेरे लन्दन छोडने से पहले तुम मुझसे मिलने नही आये, इससे मेरे दिल को चोट पहुची है। तुम सर शादीलाल के भोज और श्री पटेल के स्वागत-समारोह में नही आये सो मेरी समझ मे ठीक नही हुआ। चाहे तुम कुछ खाते नही; पर तुम्हे आना जरूर चाहिए था। लोगो के साथ नम्रता और शिष्टता का व्यवहार करना और उनपर अच्छा प्रभाव डालना बडे काम आता है। तुम पर लक्ष्मी की कृपा है, इसलिए तुम्हारे लिए यह और भी आवश्यक है कि तुम जीवन के इन औपचारिक शिष्टाचारो का पालन करो। मैं चाहता हू कि लोग तुम्हे तुम्हारे धन के लिए नही, वल्कि तुम्हारे गुणों के लिए प्यार करें। मेरी राय में तुम्हे अपने में थोड़ा-सा परिवर्तन करना चाहिए और अपने दोनो पूज्य नेताओ (गांधीजी और मालवीयजी) के आदर्श का अनुकरण करते हुए छोटी-छोटी बातो मे भी उदार बनना सीखना चाहिए।

मैं कल या परसों विशी जा रहा हू। मैं इस *यात्रा* के लिए बड़ा आभारी हू और तुम्हें विशी पहुचकर पत्र लिखूगा। मैं यहा अपने दातों की परीक्षा कराने का प्रयत्न कर रहा हू। इन बातो मे लन्दन इतना महंगा है कि मैंने आगे की डाक्टरी

परीक्षा पेरिस के लिए रोक रखी थी।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

इस उलाहने के बाद भी मुझमे पार्टियों और भोजो के लिए कोई विशेष रुचि उत्पन्न नही हुई।

होटल रेडियो, विशी
९-७-२७

प्रिय घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र आज सवेरे मिला। धन्यवाद। मै तुम्हारे दृष्टिकोण को समझता हूं और मैंने कभी यह आशा नही की थी कि तुम स्टेशन पर मुझे छोड़ने आओगे। मैंने तो केवल यह आशा की थी कि तुम या तो क्लब में मुझसे आकर मिल लोगे या टेलीफोन पर ही नमस्ते कर लोगे। मैं समझता हूं कि शिष्टाचार की ये छोटी-छोटी बातें मित्रो और परिवार के लोगो मे भी अच्छी ही लगती हैं। इनसे सम्बन्ध मीठे बने रहते हैं।

मेरा ख्याल है कि तुम्हे सर शादीलाल के भोज और श्री पटेल के स्वागत-समारोह, दोनों मे ही जाना चाहिए था। मेरी राय मे तो तुम्हारा ग्लासगो जाना उतना जरूरी नही था। मैं चाहता था कि स्वागत-समारोह मे विद्यार्थीगण और भोज मे सिख लोग, तुम्हें देख-समझ सकें। खैर, अब तो बात बीत गई। मैं यह सब सिर्फ इसलिए लिख रहा हू कि तुममे मुझे बहुत ज्यादा दिलचस्पी है और मुझे इस बात की खुशी है कि तुम मेरी नुक्ताचीनी का बुरा नही मानते।

यहा मैं कल पहुंच गया। आज वर्षा हो रही है, पर एक घंटे में मैं जो कुछ भी देख सका हूं, उसके आधार पर कह सकता हूं कि स्वास्थ्य के लिए यह स्थान बहुत ही लोकप्रिय है। इस समय यहा हजारो यात्री हैं और होटलो तथा शहर मे उनके लिए हर तरह से आराम की व्यवस्था की गई है। सभी खास-खास सड़को के किनारे बरामदे बने हुए हैं, जो धूप और वर्षा से यात्रियों की रक्षा करते है।

मैं जिस होटल मे ठहरा हुआ हूं वह अच्छा-खासा है। फिर भी मैं हमेशा की तरह यही चेष्टा कर रहा हूं कि साधारण आराम को ध्यान में रखते हुए जितना भी कम खर्च किया जा सके, करूं। मैंने अपने लिए एक पौंड तीन शिलिंग पर एक कमरा लिया है, जिसमे गुसलखाना नही है। गुसलखाने के साथ कमरे का किराया २२५ फ्रैंक यानी लगभग दो गिन्नी है, पर मेरे कमरे के सामने का दृश्य बड़ा सुन्दर है, और उसमे एक छोटा-सा कक्ष है, जिसमें दिन-रात गर्म और ठंडा पानी

मिल सकता है। पेरिस में मुझे नींद न आने की बहुत शिकायत थी। अब फिर लिखूगा।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

विशी से उन्होंने अपने देश की राष्ट्रीय विशेषताओं पर एक बार फिर लिखा :

रविवार, १७ जुलाई, १९२७

प्रिय घनश्यामदास,

जब लोकसभा मे भारत के ऊपर बहस हुई थी तो क्या तुम वहा मौजूद थे? यह तो ठीक है कि वहा बहुत-सी वाहियात बाते भी हुई, पर मैं समझता हू कि भारत सरकार के उपसचिव का अपने भाषण मे यह कहना कि भारतीयों की भौतिक उन्नति मे उनकी चित्तवृत्ति एक बहुत बडी बाधा है, बहुत कुछ सत्य है। परलोक पर जरूरत से ज्यादा जोर और जीवन से संघर्ष करने की मनोवृत्ति का अभाव इहलौकिक उन्नति के मार्ग मे बहुत बड़ी रुकावटें हैं। मेरा तो दिन-पर-दिन यह विश्वास पक्का होता जा रहा है कि हमारा खास काम जनता की प्रवृत्ति को बदलना और उसे अधिक महत्त्वाकाक्षी और आक्रामक विचारो का बनाना है। उसके विचार आक्रामक न हो, न सही, उसमे अपने व्यक्तित्व को आगे आने की प्रवृत्ति तो अवश्य मौजूद रहनी चाहिए।

मेरा विचार यहा से २९ या ३० को चलने का है। यहा से मैं नाइस या मान्टे-कार्लो जाना चाहता हूं, और फिर ५ अगस्त को जहाज मे बैठ जाने का इरादा है। पता नही, तुम जर्मनी जा रहे हो या नही, या तुम्हारे पास वहा जाने के लिए समय भी है या नहीं।

सोच रहा हूं, ज्यादा घूमना-फिरना बद कर दू और किसी एक जगह (लाहौर, दिल्ली या बनारस मे) जमकर कुछ अधिक स्थायी साहित्यिक कार्य करूं।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

पत्र समाप्त करने के बाद उन्होंने 'पुनश्च' करके ये मर्मस्पर्शी शब्द लिखे :

पुनश्च .

पत्र का एक अंश काटने-कूटने से गदा-सा हो गया है, क्षमा करना। कोई खास बात नही लिखी थी, कुछ शौकीनी की चीजों के लिए लिखने की मूर्खता की थी,

पर बाद को सोचने पर मैंने उसे काट देना ही उचित समझा।

लदन के 'कलकत्ता यूरोपियन एसोसिएशन' के कार्यकलाप से उन्हे चिन्ता हो गई थी, जैसा कि नीचे के पत्र से स्पष्ट है :

२१-७-२७

प्रिय घनश्यामदास,

मुझे उम्मीद है कि लदन मे भारत से आये हुए अंग्रेजों की जो सभा हुई थी उसकी उस कार्रवाई को तुमने जरूर पढा होगा, जो २० तारीख के 'टाइम्स' के पृष्ठ १८ पर छपी है। अब तुमने देख लिया होगा कि दोस्त कर्नल क्राफर्ड क्या कर रहे हैं। यह बहुत जरूरी है कि तुम पूरे मनोयोग के साथ प्रतिरोध आरम्भ कर दो, नही तो व्यापार और उद्योग-धंधों के क्षेत्र मे भारतीय हित हमेशा के लिए पिछड जायगे। मैं इस समय तुम्हारे जैसे विचारो वाले देशभक्तों का भारत से बाहर रहना ठीक नही समझता। एक-एक दिन महत्वपूर्ण है। अब राजनीति के क्षेत्र मे उतरने के बाद तुम्हारे लिए राजनैतिक समस्याओं की उपेक्षा करना सम्भव नही है। यह तो ठीक है कि तुम्हारे उद्योग-धंधे सम्बन्धी हित बड़े महत्व-पूर्ण हैं, क्योंकि वही युद्ध की सज्जा-सामग्री जुटाते हैं। लेकिन मेरा अपना खयाल है कि अगले छः महीने आम तौर पर सारे भारतवर्ष के लिए और खास तौर पर भारतीय व्यापार और उद्योग के लिए बड़े ही महत्व के हैं। अंग्रेज कुछ भारतीयों को अपने जाल में फसाकर एक मजबूत संस्था बनाने और एक जबरदस्त आन्दोलन का आरम्भ करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस आन्दोलन का जवाब देना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है और मैं समझता हूं कि तुम बहुत कुछ कर सकते हो। मेरा मतलब तुम्हारे धन से नही है, बल्कि भारतीय उद्योगपतियों में तुम्हारे प्रभाव से है। मैं जितना सोचता हूं उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि तुम्हें असेम्बली मे लौट जाना चाहिए और शिमला-अधिवेशन के समय जोर-शोर के साथ काम करना चाहिए। इसके अलावा और किसी तरह इतने प्रमुख व्यक्तियों को इकट्ठा करना मुश्किल है। मुझे अपने घेवते के एक पत्र से पता चला है कि मालवीयजी ने तुम्हें भारत से बाहर रहने की अनुमति दे दी है। मैं समझ नही पाता कि इसका मतलब क्या है। जो कुछ भी हो, मेरा मन्तव्य इससे भिन्न है। घटनाओं का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है और यह समय बाहर रहने का नही है। स्वय मुझे इस बात का दुख हो रहा है कि मैं भारत से चला आया।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

पुनश्च .

अभी-अभी मुझे घ्यान आया कि मैं तुम्हे अपने और तुम्हारे शिमला रहने के बारे मे कुछ लिखू। मैं समझता हू कि हम दोनो का पास-पास रहना बहुत फायदेमन्द होगा। मेरे पास गत वर्ष जो कमरे थे उन्ही के लिए मैंने इस बार भी लाला मोहनलाल को लिख दिया है। परन्तु उनका मकान बहुत दूर है और वहा से इधर-उधर आना-जाना बहुत मुश्किल होता है। मैं समझता हू कि मिलने-जुलने के लिए तुम्हारा मकान केन्द्रीय स्थान सिद्ध होगा। अगर तुम शिमले लिखो तो तीन कमरे मेरे लिए भी सुरक्षित करा लेना—ऐसे कमरे, जिनमें एक या दो अलग गुसलखाने भी हो।

तुम्हारा हितैषी
लाजपत राय

इसके बाद उसी महीने उन्होने लदन से एक पत्र भेजा, जिसमे धर्म को आलोचना का विषय बनाया। उन्होने लिखा कि यूरोपियन राष्ट्रो की महत्ता का कारण यह नही है कि वे ईसा का अनुकरण करते है, बल्कि यह है कि वे उसका अनुकरण नही करते ! भारत मे साधु-सतो की भरमार है और गाधीवाद का त्यागमय जीवन एक भूल है।

बहुत ही भावुक होने के कारण लालाजी को उस जगह भी षड्यत्र और शत्रुता दिखाई देने लगी थी, जहा शायद वह मौजूद नही थी। असेम्बली के प्रेसिडेंट विट्ठलभाई पटेल से उन्हें सख्त नफरत हो गई थी। उन्होने वस्तुस्थिति का वर्णन जिस निराशकारी ढग से किया, उसके कारण राजनीति से पीछा छुडाने की मेरी इच्छा और भी बलवती हो गई। इस प्रकार मुझे राजनेता बनाने की उनकी योजना असफल हुई। इस चिट्ठी की सबसे मार्के की बात यह है कि इससे स्पष्ट हो जाता है कि जिन लालाजी ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने मे अन्त में अपने प्राण गंवा दिये, वह शुरू-शुरू मे बहिष्कार के पक्ष मे नही थे और दूसरो के प्रति अपनी निष्ठा की खातिर ही उन्होने बहिष्कार मे भाग लिया था।

२ कोर्ट स्ट्रीट, लाहौर
२६-२-२७

प्रिय घनश्यामदास,

मेरे तार के उत्तर मे तुम्हारा तार मिला। इस समय कलकत्ते की ओर जाने का मेरा कोई इरादा नही है, पर साथ ही मैं तुमसे जल्दी-से-जल्दी मिलना चाहता हू। इसके दो कारण हैं : एक तो यह कि मैं तुमसे रिजर्व बैंक के बारे में

बातें करना चाहता हूं, और दूसरी यह कि अपनी पार्टी के भविष्य के सम्बन्ध में भी तुम्हारे साथ विचार-विनिमय करना है। इन दोनों ही मामलों में पूज्य मालवीयजी से मेरा मतभेद रहा है। पिछले अधिवेशन में हम एक प्रकार से एक-दूसरे के खिलाफ रास्तों पर चलते रहे। पटेल नारद मुनि का काम कर रहे हैं। उन्होंने स्वयं बताया है कि जब वह अधिवेशन से लौटे तब वायसराय उनसे इस बात पर नाराज हुए कि उन्होंने वायसराय से सलाह लिये बिना ही अंग्रेज-राजनेताओं के सामने क्रान्तिकारी योजनाएं क्यों रख दीं।

पटेल चाहते थे कि हम यह घोषणा कर दें कि यदि रायल कमीशन में भारतीयों का बहुमत नहीं हुआ तो हम उसका बहिष्कार कर देंगे। मैंने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। इसके बाद उन्होंने मालवीयजी को फांसना चाहा और उनके और मेरे बीच एक खाई खोदने की हद से ज्यादा कोशिश की, यहां तक कि एक दिन मैंने पार्टी के सामने अपना त्यागपत्र रख दिया और मेरे उसे वापस ले लेने के बाद भी मालवीयजी ने उसे मेरे पास लिखित रूप में भेजा। मुझे खूब मालूम है कि यह सलाह पटेल और श्रीनिवास आयंगर ने मालवीयजी को पटेल के घर पर दी थी। दुर्भाग्यवश इस अधिवेशन के दौरान में मालवीयजी पटेल से बहुत ज्यादा मिलते रहे और पटेल के दाव-पेंच को भांप न पाये। तब पटेल ने जयकर को बुलाया और सुझाया कि हम अपनी पार्टी भंग करके कांग्रेस-पार्टी में मिल जायं और इस पार्टी के नेता मोतीलाल, डिप्टी नेता मैं और आयंगर, और मंत्री जयकर हों। उन्होंने जयकर से यह बेकार ही कहा कि इंग्लैंड में मोतीलाल के हाथ मजबूत करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। जयकर ने उनके सामने साफ-साफ मेरा नाम लिया और कहा कि पार्टी के नेता होने के नाते बातचीत मुझसे ही की जानी चाहिए। तब पटेल ने मुझे बुलाया और कहा कि वह इसी सप्ताह में दोनों दलों को एक देखना चाहते हैं। मैंने कहा कि इस सप्ताह तो मुझे अपनी पार्टी के लोगों से सलाह करने का समय नहीं है हां, अगले सप्ताह में ऐसा अवश्य कर लूंगा। इस पर वह बोले कि हमारे शिमला छोड़ने से पहले ही यह काम पूरा हो जाना चाहिए। तब मैंने पार्टी की एक बैठक बुलाई, जिसमें सर्वसम्मति से यह तय हुआ कि जबतक मोतीलाल का दृष्टिकोण मालूम न हो जाय, जबतक इस बात की गारंटी न मिले कि ऐसा कोई काम नहीं किया जायेगा, जिससे हमें फिर से कांग्रेस-पार्टी से अलग होने को बाध्य होना पड़े तबतक पटेल की सलाह न मानी जाय।

इस समय तो खुद कांग्रेस-पार्टी ही दलबंदी का शिकार है। जयकर ने तो मुझे बताया कि कांग्रेस-पार्टी के बहुत-से सदस्य हमारी पार्टी में आने को तैयार हैं। साफ जाहिर है कि मालवीयजी ने पटेल को कोई-न-कोई वचन दिया था। इस प्रकार पटेल हमारी पार्टी का अंत करने की चेष्टा कर रहे हैं। पिछले

अधिवेशन मे उन्होने जयकर का विरोध किया और मेरी पीठ थपथपाई। इस अधिवेशन में वह जयकर की पीठ थपथपा रहे हैं, जिससे मुझे नीचा देखना पडे और हमारी पार्टी मे फूट पड जाय।

काग्रेस-पार्टी भी पटेल से बहुत तग आ गई है। जयकर पूरे तौर पर हमारे साथ हैं और पटेल की चाल को समझ गये हैं; पर मालवीयजी नही समझ पाये है। इसके लिए मैं अपने को ही दोषी समझता हूं, क्योकि मैं मालवीयजी से इतनी दूर रहता हू और इस प्रकार उन्हे पटेल के जाल मे फसने का अवसर देता रहा हू। मैं इसी विषय पर तुमसे विस्तार के साथ बातें करना चाहता हू, क्योकि भविष्य मे इसी पर हमारा सारा राजनैतिक कार्यकलाप निर्भर है।

रिजर्व बैंक के मामले मे भी पटेल की चाल यह रही है कि उसकी असफलता की सारी जिम्मेदारी मालवीयजी पर आ पडे। मालवीयजी उनकी इन कुटिल चालो को नही समझ पाये है। पटेल एक ओर तो काग्रेस-पार्टी और उसके नेता मे सरकार के साथ समझौता करने को कहते रहे है, और दूसरी ओर वह सरकार का डटकर विरोध करने के लिए मालवीयजी को उकसाते आ रहे हैं। उनकी सारी चाल यह रही है कि वह (यानी मा०) सरकार और काग्रेस-पार्टी दोनो ही के बुरे न बन जाय।

इन कारणो से मैं चाहता हू कि तुम एक-दो दिन के लिए लाहौर चले आओ और अपने यूरोप के अनुभवो पर लाहौर तथा अमृतसर मे जनता के सामने भाषण दो। तुम्हारे लिए यह बहुत जरूरी है कि सारे देश मे तुम्हारा नाम हो। राजनीति मे हिन्दुओं के भावी नेतृत्व के लिए मेरी आखें तुम पर और जयकर पर लगी हुई हैं और मैं चाहता हू कि तुम सभी प्रातो मे कुछ सार्वजनिक सभाओ मे बोलो। बनारस जाते हुए क्या तुम एक दिन के लिए लाहौर नही आ सकते ? यदि तुम्हारी खातिर दलित जातियो का कोई अधिवेशन कराया जाय तो क्या तुम उनकी अध्यक्षता करने यहा नही आ सकोगे ? एक बार तुम कलकत्ता पहुंच गये तो फिर कुछ दिनो तक तुम्हारा वहा से निकलना मुश्किल हो जायगा।

हिन्दू स्वयसेवक-आन्दोलन के बारे मे हमने जो योजना पेरिस मे ड्यूविले जाते समय बनाई थी, मैं उसे भी हाथ मे लेना चाहता हूं।

इन सब बातो पर सलाह-मशवरा करना जरूरी है। अगर तुम्हारा लाहौर आना सम्भव न हो तो मैं तुमसे दिल्ली मे ही मिल लूगा। जैसा भी हो, तुम्हारे कलकत्ता जाने से पहले ही हमारा मिलना जरूरी है। मेरे लिए बनारस या कलकत्ते तक आना सम्भव नही होगा। अक्तूबर और नवम्बर मे लाहौर मे ही जमकर बैठना और मिस मेयो की पुस्तक का जवाब लिखना चाहता हू। मुझे विश्वास है कि इन उलझनो मे तुम मेरा हाथ बटाओगे।

तुम जयकर से मिलकर उनसे भी इन मामलों पर सलाह-मशवरा कर सकते

हो। इधर मैं एक बंगला अपने लिए और दूसरा मालवीयजी के लिए सुरक्षित करा रहा हूं, जिससे हम दोनों एक-दूसरे के पास रह सकें और मिलने और बातचीत करने मे आसानी हो। तुम्हारी क्या योजनाएं हैं, सो विस्तार के साथ लिखना।

तुम्हारी उस नये बैंकवाली योजना का क्या रहा? मैं समझता हूं कि उसे ठोस रूप देने का यही ठीक समय है। सस्नेह,

तुम्हारा ही
लाजपत राय

किन्तु मैं भारत-व्यापी नेतृत्व की सम्भावित स्थिति से उत्तरोत्तर दूर खिसकता जा रहा था। मेरे ३० सितम्बर के पत्र से, जिसमे मैंने इन सब झगड़ों को शात करने की चेष्टा की थी, लालाजी की नजरो मे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी नही होगी।

मैने लिखा:

"रविवार को मै बनारस जा रहा हू। पार्टी के बारे मे कोई चिन्ता मत करिये। मेरा खयाल है कि जब हमारे दल के सदस्य शिमले के शीतोष्ण वातावरण से मैदान मे लौटेंगे तो अपने को अपेक्षाकृत अधिक शीतल वातावरण मे पायेंगे। मुझे यकीन है कि दिल्ली मे फिर से एकत्र होने से पहले ही हमारी स्थिति बहुत कुछ सुधर जायगी। हमारे दल की सबसे बडी खूबी यह है कि इसमें एक-से-एक बढ़कर विवेकशील व्यक्ति हैं। इसलिए मुझे तो किसी अडचन की आशंका नहीं है।

शिमला मे जो एकता-सम्मेलन हुआ था, उसकी कार्रवाई मैंने पढी। मेरी अपनी राय तो यह है कि हमारे कट्टर हिन्दू भाई मानें या न मानें, हमे धार्मिक स्वतंत्रता स्वीकार करनी ही होगी, अर्थात् एक ओर गोवध की और दूसरी ओर मसजिदो के सामने बाजा बजाने या सूअर मारने की स्वतंत्रता। यदि हमें गौओ की रक्षा करनी है तो हमें दूसरे धर्मवालो की सद्भावना पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि मुसलमानों को अनावश्यक रूप से अपना शत्रु बनाकर हम गोवध मे कमी नही कर सकेंगे। वैसे यदि हमारा भला होता है तो मैं मुसलमानों से मोर्चा लेने मे भी आनाकानी नहीं करूगा।

सम्भव है, खिलाफत कमेटी के सेक्रेटरी ने आपके कथनानुसार भ्रामक वक्तव्य दिया हो; पर मेरी अपनी धारणा तो यह है कि हमारे लिए एक ओर मुसलमानो को उनके धार्मिक रीति-रिवाजो का पालन करने की आजादी न देना और दूसरी ओर मसजिदों के सामने बाजा बजाने की स्वतंत्रता की मांग करना बिलकुल नासमझी का आचरण करना है। बनारस पहुंचकर मैं मालवीयजी से विचार-विनिमय करूगा। उम्मीद है कि नवम्बर या दिसम्बर में दिल्ली आकर

आपसे भी मिलू।

यदि आपने बालचरो की दीक्षा की कोई सविस्तर योजना बनाई हो तो लिखने की कृपा करिये और आपके पास योजना की कोई प्रति हो तो मेरे पास भेज दीजिए।"

इसके उत्तर मे लाला लाजपत राय ने मुझे लिखा कि गोवध के बारे मे सिद्धात रूप मे तो वह मुझसे सहमत हैं, पर जबतक ज़ोर-शोर के साथ प्रचार न किया जाय तबतक पारस्परिक सहिष्णुता की यह भावना व्यावहारिक राजनीति की बात नही मानी जा सकती; क्योकि हिन्दू लोग ऐसी बातो की ओर कान नही देंगे। इस बीच हमे दिल्ली एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव को ही अपने सामने रखना चाहिए।

लालाजी ने अपनी पुस्तको—'यग इडिया' और 'इग्लैड्स डेट टू इडिया' को पुन प्रकाशित करने मे सहायता मागी। ये दोनो पुस्तकें अमरीका मे प्रकाशित हुई थी, पर भारत में उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था और लालाजी मिस मेयो की 'मदर इडिया' का उत्तर लिख रहे थे। इधर यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया था।

लाला लाजपत राय भावुक आदमी थे और उन पर रह-रहकर घोर निराशा के दौरे पड़ा करते थे। उनका अगला पत्र, जो उन्होने २७ अक्तूबर को लाहौर से भेजा, मालवीयजी की आलोचना से भरा हुआ था "मुझे इस बात का अफसोस है कि इस पार्टी को बनाने में मैंने मालवीयजी का साथ दिया।" "सारे अधिवेशन मे पटेल का व्यवहार बडा ही कपटपूर्ण रहा। उन्होने श्रीनिवास आयंगर को तो एक तरह की सलाह दी और मालवीयजी को दूसरी तरह की।' अब वह यही चाहते थे कि मालवीयजी "अपना सारा समय विश्वविद्यालय के कामो मे लगायें, जिसकी दशा बडी दयनीय हो रही है।" उन्होने मुझसे दिल्ली आने का अनुरोध किया और लिखा . "बात यह है कि आजकल मेरा चित्त बडा ही उद्विग्न हो रहा है और मैं कोई ऐसा आदमी चाहता हू, जिसके सामने मैं अपने दिल को खोलकर रख सकू।"

लालाजी के धार्मिक सशयवाद ने उन्हे निराशा के दलदल मे ला पटका था। १२ जुलाई, १९२८ को उन्होने पूना से एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने (स्वय अपने शब्दो मे) "निराशा का लावा" उडेल दिया। यह पत्र टाइप किये हुए पूरे पाच पृष्ठो में है। हृदय को टूकटूक कर देने वाला ऐसा पत्र मैंने शायद ही कभी पढा हो। कुछ वाक्यो मे ही पत्र के दुखद विषय की कुजी मिल जायगी :

"मुझे अब किसी मे आस्था नही है : न अपने मे, न भगवान मे, न इन्सानियत मे, न जीवन मे, न ससार मे। सबकुछ मुझे क्षणभगुर और मनुष्य के मिथ्या गर्व का परिणाम प्रतीत होने लगा है। मैंने सारे जीवन इस प्रकार की धारणा का

सामना किया। सैकड़ो रंगमचों से मैंने गरज-गरज कर कहा कि जो धारणा यह कहती है कि यह संसार असत्य, अनित्य और भ्रान्ति-मात्र है वह स्वयं असत्य है। पर आज यह कहावत कि जीवन ही सत्य है और जीवन मे ही उत्साह है, मुझे अचेत मिथ्या गर्व का चीत्कार-मात्र मालूम देने लगा है। जीवन में ऐसी क्या चीज है, जिसे हम सत्य मानें या जिसे हम लगन के साथ अपनाना चाहे ? मैं उस ईश्वर में कैसे विश्वास करूं, जो न्यायपूर्ण, परोपकारी, सर्वशक्तिमान और सर्वत्र विद्यमान कहलाकर भी इस मूढ़ संसार पर राज्य करता है ?"

अब लालाजी को मित्रता, यहां तक कि कुटुम्बियो के स्नेह से भी कोई लगाव नही रह गया था। अब न वह उनकी चिन्ता करते थे, न वे उनकी।

"संक्षेप में बात यह है कि ईश्वर या धर्म, किसी मे मेरी आस्था नही रही है। मैं जानता हूं कि जरूरत से ज्यादा बाल की खाल निकालना बुरा होता है। यह मार्ग आनन्द की ओर नही ले जाता है। फिर भी अक्सर मुझमें तल-स्पर्शी आलोचना करने की प्रवृत्ति जाग उठती है। मेरे आदर्श की कसौटी पर कोई भी पूरा नही उतरता है। मैं गांधीजी की सराहना करता हूं, मैं मालवीयजी को भी सराहता हूं, पर अक्सर मैं खुद ही उनकी कड़ुई आलोचना करने लग जाता हू। सार्वजनिक जीवन, सार्वजनिक कार्यकलाप, सार्वजनिक भोज-सहभोज, इन सबमें मुझे अब कोई आकर्षण नही दिखाई देता। वे मुझे अपनी ओर नहीं खीच पाते। उनसे मुझे कोई आनन्द नहीं मिलता। फिर भी मैं देखता हू कि मैं उनके बिना रह भी नही सकता। ओह, मैं क्या करू ? मैं बड़ा ही संतप्त हू, अपने को बिलकुल अकेला पाता हूं और बहुत ही दुःखी हू; फिर भी मैं अपने संताप, अपने एकाकीपन, अपने दु.ख से चिपटा हुआ हूं। मैं अपनी मानसिक अवस्था से निस्तार पाना चाहता हूं, पर नही जानता कि कैसे।"

लाला लाजपत राय की संतप्त आत्मा को यदि कही चैन मिलता था तो केवल काम मे। नवम्बर मे उन्होंने मुझे लाहौर से लिखा: "अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूं और उम्मीद करता हूं कि अगले दिसम्बर मे मैं तुमसे मिलने कलकत्ते आ सकूंगा। मैं चाहता हूं कि उस समय मैं समुद्र के रास्ते या मोटर से सैर करूं।"

इसके कुछ दिन बाद ही वह शहीद हो गये। उनका योग राष्ट्र के स्वतंत्रता-संग्राम में जितना महान् था उतना ही सामाजिक सुधारो मे भी था। पर गांधीवाद के आगमन पर उन्होंने शायद अपने को परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुकूल बनाने में कठिनाई का बोध किया। जो हो, अपने तमाम दोषों के बावजूद यह निस्संदेह एक महान् व्यक्ति थे और स्वतंत्रता के आन्दोलन में उन्होंने जो योगदान किया था, उसका मूल्य कभी ठीक-ठीक नहीं आंका जा सकेगा।

३. मेरी लंदन-यात्रा

सोमवार १६ मार्च, १९२७ के अपने पत्र मे गाधीजी ने मेरे लिए जो कार्य-क्रम निश्चित किया वह इस प्रकार था ·

भाई घनश्यामदासजी,

यूरोप मे आरोग्य रहने के लिए इतने नियमो का पालन आवश्यक समझता हूं :

(१) अपरिचित खोराक न लेना।

(२) वे लोग छ सात बार खाते हैं। हम तीन बार से ज्यादा न खाय। बीच मे चाकोलेट इत्यादि खाने की बुरी टेव न रखें।

(३) रात्रि को एक बजे तक भी खा लेते हैं। हम रात्रि को आठ बजे के बाद न खाय। किसी जगह जाने पर चाह इत्यादि लेने के लिए हम मजबूर होते हैं, ऐसा माना जाता है। ऐसा कुछ नही है।

(४) नित्य कम-से-कम ६ मील पैदल घूमने का अभ्यास रखना आवश्यक है। प्रात काल मे और रात्रि को, दोनों समय घूमना चाहिए।

(५) हद के बाहर कपडे पहनने की आवश्यकता न मानी जाय। रहस्य यही है कि शरीर को ठंडी न लगे। घूमने से ठडी चली जाती है।

(६) इग्रेजी कपड़े पहनने की कोई आवश्यकता नही है।

(७) यूरोप के गरीब लोगों का परिचय करने की कोशिश की जाय। इस परिचय के लिए बहुत काम पैदल करना आवश्यक है। जब समय है तब पैदल ही जाना अच्छा है।

(८) यूरोप मे गये तो कुछ न कुछ करना ही है, ऐसा कभी न सोचा जाय। स्वच्छ प्रयत्न से और निश्चिन्तता से जो बन पडे, वह किया जाय।

(९) मेरे ख्याल से आपके जाने का एक परिणाम अवश्य आ सकता है। शरीर वज्रसम बनाया जाय, यह बात बन सकती है।

(१०) ईश्वर आपको मानसिक व्यभिचार से बचा ले। बहुत कम हिन्दी इस दोष से बचते हैं। वहा का रहन-सहन यद्यपि उन लोगों के लिए स्वाभाविक है, हमारे लिए मद्यपान-सा बन जाता है।

(११) गीताजी और रामायण का अभ्यास हो तो हर्गिज न छोड़ा जाय। यदि नहीं है तो अब रखा जाय।

आपने इतनी सूक्ष्म सूचना की तो आशा नही रखी होगी। मैंने दी है, क्योंकि आप सब भाइयों की सज्जनता पर मेरा विश्वास है। आप जैसे जो थोड़े धनिको

मे धन के साथ नम्रता और सज्जनता है, उनकी नम्रता और सज्जनता में मैं बहुत वृद्धि चाहता हूं और उस वस्तु का देश कार्य के लिए उपयोग चाहता हू। "शठं प्रति शाठ्य" के सिद्धात को मैं मानता नही हूं। इसलिए जिस जगह शुद्धता, सत्य, अहिंसा इत्यादि का थोडा-सा भी दर्शन करता हू तो सूम जैसे धन का सग्रह करता है, ठीक उसी तरह मैं ऐसे गुणो का सग्रह करने की चेष्टा कर आनन्दित होता हूं।

और पूछना है तो पूछोगे। २३/२४ बम्बई, २५/२६ कोल्हापुर, २७/४ अप्रैल बेलगाम, ५/१२ मद्रास।

आपका
मोहनदास

इस समय मैं इस बात के लिए बड़ा उत्सुक था कि गांधीजी यूरोप जायं और लोगो से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करें। अपने पत्र की तो कोई नकल मेरे पास नहीं हैं, पर उन्होंने जो उत्तर दिया वह इस प्रकार था :

२७ मार्च, १६२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

योरोप जाने के बारे मे मैं अबतक कुछ निश्चय नही कर सका हू। जाने का दिल नही है। रोमें रोला को मिलने की इच्छा है सही, परन्तु इस बारे मे मैं उनके पत्र की प्रतीक्षा करता हूं। एक पत्र आया है, उससे जाने का निश्चय नही होता है। यदि जाने का हुआ भी तो मई मे होगा और अक्तूबर में वापिस आ जाऊंगा। थोड़े दिन भी यदि मैं आपके साथ मसूरी में रह सकता हूं तो प्रयत्न करूगा। एप्रिल १३ तारीख तक तो यही रहना चाहता हूं। विदेशी कपडो के बहिष्कार के बारे मे मैंने जो कुछ लिखा है उसपर मुझे आपका अभिप्राय भेजें।

आपका
मोहनदास

नंदी दुर्ग, २६-५-२७

भाई घनश्यामदासजी,

दो दिन से जमनालालजी यहा आ गये हैं। उन्होंने आपका सदेशा दिया है। जो कुछ मैंने आपको लिखा है उससे ज्यादा लिखने का कोई खयाल नहीं आता। बादशाह की मुलाकात के बारे में मेरा अभिप्राय यह है कि उस मुलाकात की आप कोशिश न करें। यदि हिन्दी प्रधान या तो मुख्य प्रधान मुलाकात कराने के

लिए चाहें तो उस बात का इन्कार भी न करें। जहां तक मुझे ज्ञान है, मेरा ऐसा मतव्य है कि बादशाह के पास कुछ राज्य-प्रकरण की बातें नहीं की जा सकती हैं। केवल क्षेम-कुशल की ही बात होती है। प्रधानों को अवश्य मिलें और उनके साथ जो कुछ भी दिल चाहे वह बात कर सकते हैं। वहा की जेलो का सूक्ष्म निरीक्षण करें और लडन के गरीब प्रदेश में किसी जानकार मनुष्य के साथ खूब भ्रमण करें और गरीबों की स्थिति का अवलोकन करें। शनीचर की रात्रि को एक या दो बार गरीब और धनिक प्रदेश के शराबखानों के नजदीक खड़े रहकर वहा की भी चेष्टा देखें।

मेरा स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन अच्छा होता जाता है।

पू० मालवीयजी को मैंने बहुत दिनो के पहले खत लिखा। उसके उत्तर की आशा नही रखता हू, क्योंकि पत्रो का उत्तर देना उनका स्वभाव नही है। तारों का उत्तर तार में अवश्य देते हैं।

मैं तो दुबारा भी लिखने वाला हू।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

आपका
मोहनदास

कुछ दिनो बाद उन्होंने फिर हिन्दी मे पत्र लिखा और उसमे अपने और मालवीयजी के स्वास्थ्य की चर्चा करने के साथ-ही-साथ जीवन और मरण पर बडे ही रोचक ढग मे एक दार्शनिक निवन्ध ही लिख डाला। पत्र नीचे दे रहा हूं :

नदी दुर्ग
ता० ३१-५-१९२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। यह खत लिखाते हुए महादेव मुझसे याद दिलाते है कि आपने जमनालालजी मे सूचना दी थी कि मैं आपको अंग्रेजी में खत लिखू। परन्तु ऐसी कोई बात मैं लिखना ही नही चाहता हू जो किसी को बताने की आवश्यकता रहे। इसलिये इस पत्र को मैं हिन्दी मे ही लिखवाता हू।

आपका खत स्टीमर पर से लिखा हुआ मिला है। मैंने दो खत इसके पहले भी लिखे हैं जिनिवा के पते से। वह मिल गये होंगे। मेरा स्वास्थ्य सुधरता जाता है। पू० मालवीयजी से मैं खत लिखता जा रहा हू। मैंने लिखा या वैसे ही उनका इस हफ्ते मे लम्बा तार आ गया। उसमें बताते हैं कि स्वास्थ्य है तो अच्छा लेकिन अशक्ति है। आजकल बम्बई मे हैं। मेरा तो यह खयाल है कि मेरे लिए यह कहना कि मैं स्वास्थ्य की दरकार नही करता हू, यह ठीक नही है। जितना मैं

आवश्यक समझता हूं उतना प्रयत्न स्वास्थ्य रक्षा के लिए ठीक-ठीक कर लेता हूं। पू० मालवीयजी ऐसा नही करते है। ऐसा मैंने बहुत दफे लिखा है और उन्होने आराम लेने की प्रतीज्ञा करने के बाद भी आराम न लिया। वे वैद्यो के उपचार पर बहुत विश्वास करते हैं और मान लेते हैं कि उनकी गोलिया और भस्मादि की पुड़िया लेकर अच्छे रहते है, रह सकते हैं, और उनका आत्मविश्वास इतना जबरदस्त है कि दुर्बल होते हुए भी, बीमार होते हुए भी, कम-से-कम ७५ वर्ष जीने का निश्चय कर लिया है। ईश्वर उस निश्चय को सफल करें। उनको ज्यादा कौन कह सकता है ? मैंने तो विनय के साथ जितनी सख्ती हो सकती है उतनी सख्ती, विनोद करके लिखी है। वस्तु यह है कि प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि कर्मानुसारिणी रहती है। ऐसी बातो में पुरुषार्थ के लिए बहुत ही कम जगह है। प्रयत्न करना कर्त्तव्य है ही और करना चाहिए, परन्तु प्रत्येक मनुष्य के लिए एक समय तो आता ही है जब सब प्रयत्न व्यर्थ बनता है और सद्भाग्य से और पुरुषार्थ की रक्षा के कारण ईश्वर ने इस आखिरी समय का पता किसी को नही दिया है। तब इस अनिवार्य होनारत के लिए हम क्यों चिन्ता करें ? राष्ट्र का कारोबार न मालवीयजी पर निर्भर, न लालाजी पर, न मुझ पर। सब निमित्त-मात्र रहते हैं और मेरा तो यह भी विश्वास है कि सत्पुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ उसके देहान्त के बाद ही होता है। शेक्सपीयर का यह कथन कि मनुष्य का भला कार्य प्राय. उसी के साथ जल जाता है और बुरा कार्य उसके पश्चात् रह जाता है, ठीक नही है। बुराई की कभी इतनी आयु नही रहती है। राम जिन्दा है और उसके नाम से हम पवित्र होते है। रावण चला गया और अपनी बुराइयों को अपने साथ ले चला। कोई दुष्ट मनुष्य भी रावण नाम का स्मरण नही करते हैं। राम के युग में न जाने राम कैसा था। कवि ने इतना तो बता दिया है कि अपने युग में राम पर भी आक्षेप रहा करते थे। परन्तु आज राम की सब अपूर्णता राम के शरीर के साथ भस्म हो गई और उसको अवतारी समझकर हम पूजते हैं और राम का राज्य आज जितना व्यापक है उतना हरगिज राम के शरीरस्थ रहते हुए नहीं था। यह बात मैं बडी तत्वज्ञान की नही लिख रहा हूं, न हमारे लिए शांति रखने के कारण। परन्तु मैं दृढता से यह कहना ही चाहता हूं कि जिसको हम संतपुरुष मानते हैं उनके देहात का कुछ भी दुःख नही मानना चाहिए। और इतना दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि संतपुरुष के कार्य का सच्चा आरम्भ या कहो सच्चा फल उसके देहान्त के बाद ही होता है। अपने युग मे जो उसके बडे-बडे कार्य माने जाते है वह भविष्य मे होने के परिणाम के साथ केवल यत्किञ्चित हैं। हा, हमारा इतना कर्त्तव्य है सही कि हम हमारे ही युग में जिनको हम सत्पुरुष मानें उनकी सब साधुता का यथाशक्ति अनुकरण करें।

आपके स्वास्थ्य के लिए मेरी यह सूचना है कि यदि आपका विश्वास ऐलो-

पेथिक पर नही—और न होना चाहिए—तो आप जर्मनी मे लुई कूने और जुस्ट की संस्था है उसे देखें। वहां खुली हवा और पानी के उपचार होते हैं और उसमे सैंकडों लोगो ने लाभ उठाया है। लडन और मैन्चेस्टर दोनो जगह पर वेजिटेरियन सोसाइटी है उसका भी परिचय करें। उस समाज में हमेशा थोडे अच्छे, गम्भीर, विनयी और मध्यवर्ती मनुष्य रहते हैं। मूर्ख लोग भी और मदान्ध तो देखने मे आयेंगे ही।

आपका
मोहनदास

अगला पत्र एक सप्ताह बाद लिखा गया, जो अंग्रेजी में था :

कुमार पार्क
बंगलोर, ९ जून, १९२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपके बम्बई से रवाना होने के बाद से मैं आपको यह चौथा पत्र लिख रहा हूं। जमनालालजी ने मेरे पास आपका विलायत से भेजा हुआ तार भेजा है, इसी-लिए यह अंग्रेजी का पत्र जाता है। मैं खुद पत्र लिखने की कोशिश नही करूंगा, क्योंकि मुझे अपनी शक्ति बनाये रखनी है, इसलिए मैं अधिकांश पत्र-व्यवहार अंग्रेजी, हिन्दी या गुजराती में बोलकर लिखाता हूं।

मालवीयजी आज मेरे पास ही हैं। वह स्वास्थ्य सुधारने के लिए ऊटी जा रहे हैं। आज सुबह ही आये थे और संध्या को चले जाते, पर मेरे यह कहने पर कि परसो मैसूर के महाराज का जन्मदिन है, इसलिए उन्हें ऊटी के लिए रवाना होने से पहले मैसूर जाकर उन्हे आशीर्वाद देना चाहिए, उन्होने दीवान को तार भेजा है। उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी है और शायद कल को मैसूर के लिए रवाना होंगे। मैं उनके साथ बराबर पत्र-व्यवहार करता आ रहा हू और वह तार द्वारा उत्तर देते आ रहे हैं। काफी दुबले हो गये हैं, पर सारे मामलों मे उनकी आशावादिता ज्यो-की-त्यो बनी हुई है। उन्हे किसी प्रकार की शारीरिक व्याधि नही है। यह सारी दुर्बलता तो लगातार परिश्रम करने के कारण है। महीना-भर आराम लेने का वचन देते हैं। साथ मे डाक्टर मगलसिंह हैं और एक रसोइया तो है ही। गोविन्द बम्बई तक तो उनके साथ ही था, पर उसे इलाहाबाद जाना पडा, क्योंकि उस कौए वाले मामले मे नयी तारीख नही मिल सकी।

याद नही आता कि मैंने आपसे मिस म्यूरियल लेस्टर से मिलने को कहा था या नही। वह लंदन की बस्तियो में काम कर रही हैं। पिछले साल किसी समय यहा भारत में आई थी और आश्रम मे कोई एक माह ठहरी थीं। बड़ी ही उत्साही

और योग्य कार्यकर्त्री हैं। पूर्ण मद्यपान-निषेध के लिए काम कर रही हैं और इसके लिए वहां जनमत जागृत कर रही है। उनका पता है :

मिस म्यूरियल लेस्टर, किंग्सले हाल, पोविस रोड, बो, ई, ३

आशा है आपका स्वास्थ्य सुधरा होगा, लालाजी का भी। मैं पिछले रविवार को ही नदी से नीचे उतरा था। मेरे स्वास्थ्य मे काफी सुधार हुआ है। डाक्टरों का कहना है कि मैं अगले महीने तक थोड़ा-बहुत सफर करने लायक हो जाऊंगा।

आपका
मोहनदास

मैं कुछ समय बाद भारत लौट आया। हमारे पत्र-व्यवहार में अनेक तत्कालीन समस्याओं की चर्चा जारी रही है। पर बापू के पत्रों में अक्सर आत्मीयता से भरी वे बातें रहती थी, जिनके कारण वह सबके इतने प्रिय हो गये थे।

१-१०-२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका खत मिला है।

जमनालालजी के खत से पता चलता है कि आप योरप से स्वास्थ्य बिगाड़ के आये हैं। अब कही आराम पाकर स्वास्थ्य दुरस्त करना आवश्यक समझता हूं। भोजन की पसन्दगी करने में मैं कुछ सहाय अवश्य दे सकता हूं, परन्तु उसके लिए तो कुछ दिनों तक मेरे साथ रहना चाहिए।

आपने अपनी राय इस विषय में भेजी है वह ठीक किया।

असहयोग के कारण दो दल हो गये हैं, ऐसा कुछ नही है। दो दल तो थे ही। जो कुछ हुआ है वह प्राकारान्तर ही है। मेरा विश्वास कायम है कि असहयोग के सिवा हमारी शक्ति बढ़ ही नही सकती है। लोग उसका चमत्कार समझ गये हैं, परन्तु उसको कुछ करने की शक्ति अबतक नहीं आई है। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा उसमें और बाधा डाल रहा है। कौंसिलों की सहाय की चेष्टा मैं नही कर सकता हूं। परन्तु मेम्बर चाहे तो खादी और मद्यपान के विषय मे मदद दे सकते हैं। परन्तु मेम्बर लोग स्वार्थ, अज्ञान और आलस्य के लिए कुछ कर नहीं सकते हैं। खादी इ० का काम मन्द और तेज चल रहा है। मन्द इस कारण कि हम परिणाम नही देख पाते। तेज इस कारण कि जितना हो रहा है, वह स्वच्छ होने से उसका शुभ परिणाम अवश्य होनेवाला है।

धन की भूख तो मुझे हमेशा रहती है। खादी, अछूत और शिक्षा का कार्य करने मे ही मुझे कम-से-कम दो लाख रुपये आवश्यक रहते हैं। दुग्धालय का जो प्रयोग चल रहा है, उसको आज रु० ५०,०००) दरकार है। आश्रम का खर्च तो

है ही। कोई काम रुक नही जाता, परन्तु ईश्वर रोवा-रोवा कर धन देता है। मुझे उससे सतोष है। जिस काम मे आपका विश्वास है और जितना उसके लिए दे सकें, दें।

मेरा भ्रमण इस वर्ष के अन्त तक तो चलता ही रहेगा। जनवरी मास मे आश्रम पहुचने की आशा करता हू।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के बारे मे पू० मालवीयजी को एक पत्र लिखा है। इस बारे मे कुछ-न-कुछ कार्य योग्य रास्ते से बनाना चाहिए। आज जो चल रहा है उसमे मैं धर्म नही देखता हू।

आपका
मोहनदास

बिड़ला हाउस
काशी
११ अक्टूबर, १९२७

परम पूज्य महात्माजी के चरणों में प्रणाम।

मैं यहा पर २० रोज तक केवल विश्राम ही लेता रहूगा। यहां पर मेरे विश्वस्त वैद्य त्र्यंबक शास्त्रीजी हैं, उनकी औषधि मैं खा रहा हूं। मैं जिस तरह वैद्यों की शरण मे जाकर प्राय. स्वस्थ बन जाता हू उसी तरह मुझे अबतक प्राकृतिक इलाज करनेवाला कोई वैद्य नही मिला है, जिसे मैं अपना शरीर सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊ।

पूज्य मालवीयजी यहा नही हैं। मैं ५०,०००) और १,००,०००) के बीच मे सम्भवत. आगामी साल के लिए दे सकूगा।

धन के अभाव मे कही काम रुकता हो तो आप बिना संकोच के मुझे लिख दिया करें। वैसे भी कुछ-कुछ भेजता रहूंगा। मैं आपको अधिक धन भी दे सकता हू, किन्तु मैं भी अपनी कुछ व्यापारी स्कीमों के पीछे लगा हू और उनको पूरा कर देना देशहित के लिए आवश्यक समझता हूं, इसलिए कुछ कजूसी कर रहा हू।

विनीत
घनश्यामदास

बेतिया
सोमवार, १४-१२-२७

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

रु० ८०००) जमनालालजी को भेजे हैं वह चर्खा-संघ के लिए समझता हूं।

शुद्धि के बारे मे मैं खूब विचार कर रहा हूं। जिस ढंग से आज शुद्धि की जाती है वह धार्मिक नही है। जो बलात्कार से या अनजानपन में विधर्मी हो जाते हैं उनकी शुद्धि क्या करनी थी, वे तो शुद्ध ही हैं। केवल हिन्दू धर्मी की उदारता का प्रश्न है। हमारा आन्दोलन ख्रीस्ती, इस्लामी शुद्धि के विरोध मे होना चाहिए। इसमें विचार परिवर्तन की ही आवश्यकता है। यदि हम मानें कि शुद्धि की प्रणाली दोषित है तो हम क्यों उसकी नकल करें ? हम पर आक्रमण हो जाये उसको दूर करने के लिए शुद्ध इलाज ढूढकर हमे उसको ही उपयोग मे लाना चाहिए। शुद्धि के आन्दोलन से हम गन्दगी की वृद्धि करते है और हिन्दू धर्मियो मे जो सुधारणा होनी चाहिए उसको रोकते हैं। आजकल के आन्दोलन मे मैं विचार का अत्यन्त अभाव देख रहा हूं। जब आपको कुछ स्थिरता मिले तब इस बारे मे हम शान्ति से विचार कर सकते है। मैं यह नही चाहता हूं कि मेरे ही कहने से कोई भी कार्य रोक दिया जाय। उससे हमको फायदा नही हो सकता है। जो मैं सोच रहा हू वह स्वतत्रया यथार्थ है तब ही और उतना ही परिवर्तन होना उचित है। इस-लिए मैं धैर्य और खामोशी धारण कर रहा हूं। मेरी सलाह है कि जब आपको धारा-सभा में से फुर्सत मिले तब मेरे भ्रमण मे मेरे साथ चन्द दिनों के लिए हो जायं।

फेब्रेवरी पहली तारीख को मैं गोंदिया जाते हुए कलकत्ते मे हूगा।

आपका
मोहनदास

बिड़ला हाउस, पिलानी
१०-१-१९२८

प्रिय महादेवभाई,

मुझसे जमनालालजी ने पूछा है कि मेरा ७८,००० रु० का ताजा दान किस काम में लगाया जाय। मैंने यह बात महात्माजी के ऊपर छोड दी है। यदि उन्हें रुपये की बहुत अधिक आवश्यकता न पड़ गई हो तो मेरा सुझाव है कि यह रुपया ऐसी योजनाओ मे लगाया जाय, जिनसे स्वराज्य निकटतर आवे। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अस्पृश्योद्धार भी इन्ही मे से हैं और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए इनकी नितान्त आवश्यकता है।-

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

आश्रम
ता० ७-२-२८

प्रिय घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिलने से चिन्ता तो अवश्य होती है। दवा से तो थकान लगना चाहिए। मेरी दृष्टि मे प्रथम उपाय तो सम्पूर्ण उपवास ही है। मुझको इसका कोई डर नहीं है। उपवास से नुकसान हो ही नहीं सकता है, और उपवास एक-दो दिन का ही नही, किन्तु १०-१५ दिन का होना चाहिए। यदि उपवास करना ही है तो आपको यहा रहना ही चाहिए। उपवास का शास्त्र जाननेवाले एक-दो सज्जन हैं, उनको बुला सकते हैं, रहने का प्रबन्ध तो है ही। आजकल यहा की आबोहवा अच्छी है। अगर उपवास-शास्त्रज्ञ को पिलानी मे बुलाना चाहते हैं तो भी प्रबन्ध हो सकता है।

मेरा तो दृढ विश्वास है कि आपको देहली हरगिज जाना नही चाहिए। पूज्य मालवीयजी व लालाजी को मैं आज ही लिख भेजता हूं। हकीमजी अजमलखा के बारे मे जो स्मारक के लिए मैंने य० इ० और न० जी० मे प्रार्थना निकाली है, उसके लिए मैं आपसे और आपके मित्रो से द्रव्य चाहता हू। यदि आप अधिक न देना चाहे और आप अगर सम्मति दे दें तो आपने ७५,०००) दिया है उसी मे से बडी रकम निकाल लू। आपका नाम देना न देना आप पर छोड दू। यदि उसमे से कुछ देने या दिल न चाहे तो बगैर संकोच मुझको लिख भेजें।

मेरे स्वास्थ्य के बारे मे अखबारों मे कुछ पढने से आप न डरें। ऐसी कोई बात चिन्ताजनक नही। डाक्टर लोग अवश्य डराते हैं, परन्तु उसका कुछ प्रभाव मेरे पर नहीं पड़ता है।

आपका
मोहनदास

२-३-२८

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र और रु० २,७००) की हुडी मिली है। मैं चीन के साथ सम्बन्ध तो रखता हूं, परन्तु उन लोगों को तार भेजने का दिल नहीं चाहता। उसमें कुछ अभिमान का अश आता है। यदि आयु है तो चीन जाने का इरादा अवश्य है। कुछ शांति होने के बाद वह लोग मुझको बुलाना चाहते हैं।

आर सब भाइयो के पास से आर्थिक मदद मागने से मुझको हमेशा सकोच रहता है, क्योंकि जो कुछ मांगता हूं आप मुझे दे देते हैं। दक्षिणामूर्ति के बारे में मैं समझता हू। बात यह है कि मुल्क मे अच्छे काम तो बहुत हैं; परन्तु दान देने वाले कुछ कम हैं। अच्छा काम करना नही है, परन्तु नये देनेवाले उत्पन्न नहीं होते

हैं। नये काम तो हमेशा बढ़ते जाते हैं।

ठीक कहते हो, नियमावली की कीमत केवल नियमों के पालन करने वालों पर निर्भर है।

रुपये आस्ट्रिया के मित्रों को भेज दिये हैं।

आपका
मोहनदास

१४-१-२९

भाई घनश्यामदासजी,

आपका तार मिला था। पत्र भी मिला है। लालाजी स्मारक के लिए मैं इस मास के अन्त में सिंध जा रहा हूं। कलकत्ते में आपने कुछ इकट्ठा किया?

दुग्धालय के बारे में एक मद्रासी का नाम मैंने दिया था, उसको पत्र लिखा। यदि वह अनुकूल न लगे तो दूसरा नाम मैं दे सकता हूं। खादी भंडार के बारे में जो उसका उद्देश्य है, उसको मत भूलियेगा। केवल वणिक वृत्ति से न चलना चाहिए। भंडार को पारमार्थिक दृष्टि से चलाना है।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। आजकल मेरा खुराक १५ तोला बादाम का दूध, १४ तोला रोटी भीगी। सब्जी, टमाटर कच्चा, अलसी का तेल ४ तोला, दो तोला आटे की रबडी प्रातःकाल में। यहां फल छोड़ दिये हैं। एक हफ्ते में १॥ रतल वजन बढ़ा है। शक्ति ठीक है।

आपका
मोहनदास

बरेली
२३-६-२९

भाई घनश्यामदासजी,

हरभाई दक्षिणा-मूर्ति भवन में नानाभाई के साथी हैं। नानाभाई बीमार हो गये हैं। वर्धा में इस विद्यालय के बारे में हमारे बीच में बात हुई थी, इस पर से मैं उनको आपके पास भेजता हूं। इस संस्था को क्या मदद देना, वह आप ही सोचने वाले थे। आज तो मैंने नानाभाई को अभय वचन दिया है। वह आप ही के दान के आधार से है। अब आप हरभाई से सब बात सुन लेंगे, संस्था का हिसाब देखेंगे और उचित करेंगे।

आपका
मोहनदास

सन् १६२६ के अन्त मे गांधीजी के गोलमेज-परिषद् मे लदन जाने का सवाल उठा। इस परिषद् को बुलाने का उद्देश्य यह था कि साइमन कमीशन मे सिर्फ ब्रिटिश पार्लमेंट के सदस्यो को रखने से भारतवासियो के मन पर जो बुरा असर पड़ा था वह दूर हो जाय और जिस गवर्नमेंट आफ इडिया बिल का रास्ता साफ करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त किया गया था उसका मसविदा तैयार करने मे भारत के लोग भी हिस्सा ले सकें। मैंने इस बात की कोशिश की कि भारत की ओर से गाधीजी इस परिषद् में जाय। लेकिन उन दिनो वह अपने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दूसरा दौर शुरू करनेवाले थे और उसमे बहुत ही व्यस्त थे। मैंने उन्हे यह पत्र लिखा

पिलानी
११ नवम्बर, १६२६

परम पूज्य महात्माजी के चरणो मे सप्रेम प्रणाम।

मैं पिलानी आया हू। ५-७ दिन के बाद जाऊगा। सामन्त सभा और कामन्स की बहस तो आपने पढ ही ली होगी। मेरी राय मे तो परिस्थिति को देखते हुए वेन की स्पीच अच्छी थी। यदि हम उनकी ईमानदारी मे सन्देह न करें तो कहना होगा कि उनकी कठिनाइयो को देखते हुए वे इससे ज्यादा नही कह सकते थे। बेन ने भावना मे परिवर्तन हुआ है ऐसा तो स्पष्ट ही कहा है। नेताओ के वक्तव्य का प्रतिवाद नही किया, यह भी शुभ चिह्न है। लायड जार्ज के बार-बार पूछने पर भी बेन ने कमोबेश कहने से इन्कार किया और एक प्रकार से 'मौन सम्मति लक्षणम्' के न्याय से हमारी धारणा का पोषण भी किया। मेरी राय मे वाइसराय एव बेन नेकनीयती के साथ हमे सहायता देना चाहते हैं; किन्तु मैं नही मानता कि हमे पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा मिलनेवाला है। यह मैं जरूर मानता हू कि यदि आप वहा पहुच गये तो हमें अधिक-से-अधिक लाभ हो सकेगा। वहा की सरकार आपको असन्तुष्ट करके वापस नही जाने देगी, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है। शायद फौज के रिजर्वेशन के साथ हमे कुछ दे दे। इसके विपरीत आप लोगो के न जाने से मुझे परिस्थिति बिगड़ती दिखाई देती है। इसी चिन्ता से प्रेरित होकर यह पत्र लिख रहा हू और आपको बिना पूछे परामर्श देना चाहता हू कि आप सम्मानपूर्वक परिस्थिति को अवश्य सम्हाल लें। मैं जानता हू कि आपका रुख भी यही है, किन्तु फिर भी लिख देना मैंने उचित समझा है। मैं राजनैतिक मामलो मे आपको कभी सलाह नहीं देता हूं, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए ऐसा करना आवश्यक समझा है। देश की शांति के साथ-साथ इसकी कमजोरी का आपसे अधिक मुझको ज्ञान नही है, किन्तु इसके कारण मैं कभी-कभी बहुत निराश हो जाता हूं, और इसलिए यही सूझता है कि यदि आपके तप का—हमारी शक्तियों

का नहीं—फल हमें मिलना चाहता हो तो हमें उसे ले लेने का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। यदि पूरा औपनिवेशिक दर्जा मिले तब तो आप झटपट ले लेंगे, यह मैं जानता हूं; किन्तु मुझे ऐसी आशा नहीं है। बहुत-से-बहुत, और सो भी आपके सहयोग से, फौज छोड़कर अन्य सब चीजें हमें सम्मानपूर्वक इस समय मिल सकती हैं, मुझे तो इतनी ही आशा है। आप शायद इतना स्वीकार न करें और कान्फ्रेन्स मे जाने से मुह मोड़ लें, इस भय से चिन्तित था और पत्र लिखने का भी यही प्रयोजन है।

आपके जाने से बाद वाइसराय से मैं डिनर पर मिला था। उनकी बातों से इतनी बात मुझ पर स्पष्ट हो गई :

१. कैदी छोड़ने मे आनाकानी करेगा, किन्तु उन्हें छोड़ देगा।
२. कान्फ्रेन्स का सगठन आप लोगों की राय और मशवरे से होगा।
३. शायद १९३० की जुलाई तक कान्फ्रेन्स कर लेंगे।
४. पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा देना कठिन है।

किन्तु इस अन्तिम बात को वह अभी तो कान्फ्रेन्स पर ही छोड़ देंगे। न तो वह यही कहना चाहते हैं कि औपनिवेशिक दर्जे की पूर्णता मे अभी देर है, न यही कहना चाहते हैं कि शीघ्र ही औपनिवेशिक दर्जा स्थापित हो सकेगा। किन्तु मेरी समझ यह है कि पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा हमें अभी नहीं मिलेगा, तो भी हम बहुत कुछ सम्पादन कर सकते हैं और बचा-खुचा भी ५-१० साल तक ले सकते हैं। आज की परिस्थिति में हम इससे अधिक की आशा भी कैसे कर सकते हैं? मेरी राय का निचोड़ यह है कि आपका ब्रिटिश केबिनेट से मिल लेना हमारे लिए बहुत हितकर है और इस मौके को हमें छोड़ना नहीं चाहिए। यदि कान्फ्रेन्स असफल भी हो जाय तो भी हमारा लाभ ही है, क्योंकि इससे गरम दल वालों का प्रभाव बढ़ेगा। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू दीखते हैं। मैंने अपनी राय लिख दी है, बाकी तो आप सोच ही लेंगे।

विनीत
घनश्यामदास

मैं गांधीजी को पहली परिषद् में भाग लेने के लिए राजी कराने मे असफल रहा। गांधीजी तो समझे बैठे थे कि उन्हें जेल जाना पड़ेगा। जब हमारी मुलाकात वर्धा मे हुई तो उन्होंने मुझसे यह साफ तौर पर कह दिया कि उन्हें अंग्रेजों पर घोर अविश्वास है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि अब भारतीय सदस्यों को धारा-सभा मे बिलकुल अलग रहना चाहिए। २८ फरवरी, १९३० को उन्होंने लिखा, 'वे (अर्थात् अंग्रेज लोग) केवल हमारे अज्ञान और भीरुता से लाभ उठाते हैं। असेम्बली से जितनी जल्दी विदा ली जाय, उतना ही अच्छा है। मैं तो मार्च

की समाप्ति तक जेल से बाहर रहने की बहुत कम आशा रखता हूं।"

इस मौके पर स्वराज्य-पार्टी ने उनकी सलाह मान ली और सारे सदस्य असेम्बली को छोड़कर चले आये। पर मुझे तो यह काम अक्लमंदी का नहीं लगा, क्योंकि असेम्बली के द्वारा भारतवासियों को संसदीय कार्यशीलता का बड़ा अच्छा अनुभव मिल रहा था। स्वराज्य-पार्टी की समझ में यह बात अच्छी तरह आ गई। फलत: वह अगले चुनाव में फिर खड़ी हुई और असेम्बली में गई। अगले वर्ष गांधीजी ने वाइसराय लार्ड विलिंग्डन के तर्क मान लिए और मालवीयजी तथा मुझ जैसे मित्रों की प्रार्थना स्वीकार कर वह दूसरी गोलमेज परिषद् में जाने के लिए तैयार हो गये। इस परिषद् के लिए कांग्रेस ने उनको अपना एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त किया। मैं कांग्रेस का सदस्य नहीं था, इसलिए मैंने व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में परिषद् में भाग लेने का सरकारी निमंत्रण स्वीकार कर लिया। गांधीजी की इंग्लैंड-यात्रा के बारे में इतने विस्तार के साथ लिखा जा चुका है कि यहां कुछ लिखना अनावश्यक होगा। लार्ड हैलीफैक्स के वाइसराय के पद पर रहते हुए जब गांधीजी उनसे मिले थे और दोनों ने मिलकर गांधी-अरविन-पैक्ट की रूप-रेखा तय की थी, तभी से लार्ड हैलीफैक्स और गांधीजी, दोनों एक-दूसरे पर अधिकाधिक विश्वास करने लगे थे। किन्तु एक वर्ष पहले की परिषद् के बाद से दृश्य अब बदल चुका था। श्री रैमजे मैक्डॉनल्ड अब भी प्रधान मंत्री थे और बदस्तूर परिषद् की अध्यक्षता कर रहे थे। पर अब वह मजदूर सरकार के नेता न रहकर एक संयुक्त सरकार के नेता थे, जिसमें श्री बाल्डविन और उनके अनुदार साथियों का स्थान प्रमुख था। भारत-मंत्री के पद पर अब श्रीवेजवुड बेन के बदले अनुदार दल के सदस्य सर सेम्युअल होर (बाद में लार्ड टेम्पिलवुड) थे। इसलिए गांधीजी की तरह मुझे भी अंग्रेजों की नीयत पर शक होने लगा था, जैसा कि मेरे नीचे लिखे पत्र से प्रकट होगा :

लंदन
३१ अक्तूबर, १६३१

प्रिय सर तेजबहादुर सप्रू,

जब मैंने संघ-विधायक-समिति (Federal Structure Committee) की रिपोर्ट की १८वीं, १६वीं और २०वीं धाराओं का आपकी सम्मति से भिन्न अर्थ निकाला तो आपको तथा श्री जयकर को मेरा ऐसा करना बड़ा ही मूर्खतापूर्ण लगा होगा। पर मेरा उद्देश्य अपनी आशंकाओं को व्यक्त करना था और यदि मैं उन आशंकाओं द्वारा अनावश्यक रूप से प्रभावित हो गया होऊं तो मैं समझता हूं कि अतीत को देखते हुए मेरा ऐसा करना अनुचित भी नहीं था। यदि मेरा निर्वचन निराधार हो तो अच्छा ही है। पर जो हो, हमें आर्थिक नियंत्रण-सम्बन्धी जो वचन

दिया गया है, यदि उसमें किसी प्रकार का व्याघात उपस्थित करने की कौशलपूर्ण चेष्टा की गई तो मेरा यह पत्र आपको उसके खिलाफ चौकन्ना अवश्य कर देगा। हमें आर्थिक नियंत्रण तो प्राप्त होना ही चाहिए, उसमें किसी प्रकार के प्रतिबंध की गुंजाइश नहीं।

अब मेरा दृष्टिकोण यह है कि हमारे अर्थविभाग-सम्बन्धी नियंत्रण का मापदंड सचमुच की रकम पर हमारा नियंत्रण माना जाना चाहिए। फर्ज करिये, हमें एक प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार मिले और बाकी ६६ प्रतिशत आरक्षण के अधीन रहे तो मैं एक व्यावहारिक व्यापारी के नाते कहूंगा कि हमारा नियंत्रण केवल एक प्रतिशत है। यदि हमें शत-प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार मिले और उसमें से ५० प्रतिशत आरक्षण के बतौर बाद दे दिया जाय तो मैं कहूंगा कि हमें केवल ५० प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार मिला है। अब इस आधार को सामने रखकर हमें देखना चाहिए कि हमें अर्थ-विभाग में किस हद तक नियंत्रण का अधिकार मिला है।

यदि आप १६वीं धारा के पूर्वांश का अवलोकन करेंगे तो ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ परिसीमाएं लगाकर हमें शत-प्रतिशत नियंत्रण का अधिकार दिया गया है। अब हमें देखना चाहिए कि वे परिसीमाएं क्या हैं। मेरी राय में १८, १६ और २०वीं धाराओं में निम्नलिखित परिसीमाएं लगाई गई हैं :

१. रिजर्व बैंक की स्थापना,
२. पत्र-मुद्रा या टंक वर्ग विधान में संशोधन करने से पहले गवर्नर जनरल की स्वीकृति,
३. स्थायी रेलवे बोर्ड की स्थापना,
४. ऋण-व्यय, ऋण-व्यय के लिए शोधन कोश, वेतन और पेंशन और सैनिक विभाग के लिए धन की व्यवस्था करने के हेतु संघनित कोश (Consolidated fund charge) भार का संगठन,
५. जब गवर्नर जनरल समझें कि जो ढंग अपनाये जा रहे हैं उनके कारण भारत की साख को गहरा धक्का लगेगा तो उसे बजट-सम्बन्धी और उधार लेने की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार।

मेरी राय में इन अधिकारों के अन्तर्गत समूचा आर्थिक क्षेत्र आ जाता है। अतएव मेरा कहना है कि इन धाराओं के द्वारा हमें कोई उत्तरदायित्व नहीं मिलता है। मैं यहां अर्थ-विभाग का संक्षिप्त ढांचा देता हूं जिससे आप अनुमान कर सकेंगे कि मैं ठीक बात कहता हूं या गलत। रेलवे बजट को मिलाकर अर्थ-विभाग की आय और व्यय लगभग एक अरब तीस करोड़ है। इसके अलावा अर्थ-विभाग के जिम्मे भारतीय मुद्रा और विनिमय की भी देखभाल करना है। मैं यह मानकर चलता

हू (और यदि मैं अविश्वास का आचरण करूं तो धाराओ के बुरे-से-बुरे अर्थ लगा सकता हू) कि रिजर्व बैंक का सृजन हम नही करेंगे और व्यवस्थापिका सभा का उस पर कोई अधिकार नही रहेगा। मैं स्वय नही चाहता हू कि रिजर्व बैंक के दैनिक कार्यक्रम पर किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव रहे, पर रिजर्व बैंक की नीति निर्धारित करने के मामले मे अतिम अधिकार व्यवस्थापिका सभा को रहे, और मैं समझता हूं, पत्र-मुद्रा विधान मे सशोधन के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करने की शर्त लगाकर हमसे अधिकार छीन लिये गए है, स्थायी रेलवे-बोर्ड की स्थापना के द्वारा, जिसकी रचना मे भी हमारा हाथ बिलकुल नही रहेगा। हमसे और भी चालीस करोड रुपये ले लेने की व्यवस्था की गई है। अब हमारे पास रह गये ९० करोड। इनमे से ४५ करोड सेना के लिए चाहिए, १५ करोड ऋण-व्यय के लिए, और १५ करोड रुपये पेन्शन और अन्य मदो के लिए चाहिए। इस प्रकार ७५ करोड रुपये सघनित कोपभार के लिए चाहिए और इस मद का आय पर पहला दावा रहेगा। इस प्रकार हमारे पास १३० करोड मे से केवल १५ करोड रह गए। जिस किसी को भी १३० करोड़ की आय पर ११५ करोड व्यय का सर्वप्रथम अधिकार रहेगा वह हमारी बजट-सम्बन्धी और उधार लेने की व्यवस्था मे पद-पद पर हस्तक्षेप करना चाहेगा, और यही कारण है कि गवर्नर जनरल को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। अनिश्चित भारतीय ऋतु में बजट मे ५ से १० करोड़ तक उतार-चढ़ाव अवश्यंभावी है, इसलिए कदम-कदम पर गवर्नर जनरल के अर्थ सदस्य के ऊपर चढ दौडने का खतरा बना रहेगा। अतएव अर्थ-सदस्य को गवर्नर जनरल के हाथ की कठपुतली बनने को बाध्य होना पड़ेगा। अत. मेरी राय में इन तीन धाराओ के अन्तर्गत लोकप्रिय अर्थ-मत्री को किसी प्रकार का नियंत्रण-सम्बन्धी अधिकार नही दिया गया है। मेरा कहना है कि ये धाराएं रिजर्व बैंक तक ही सीमित नही हैं, जैसा कि आपका कहना है, बल्कि समूचे क्षेत्र पर व्याप्त हैं।

आप पूछ सकते हैं, तोफिर चारा ही क्या है ? मैंने कल कहा था कि ये धाराएं सघनित कोप-भार के संगठन का स्वाभाविक परिणाम हैं। इसके दो विकल्प हो सकते हैं : या तो सघनित कोपभार को सुझाई गई मात्रा की अपेक्षा अत्यधिक सकुचित कर दिया जाय, और या गवर्नर जनरल को हमारी चूक होने तक हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहे। मेरी राय मे तो हमे इन दोनो विकल्पो की माग करनी चाहिए। संघनित कोप को सेना के लिए निश्चित रकम मे कमी करके और हमारे ऋण-व्यय मे सहायता की माग करके संकुचित किया जा सकता है। बेंथल

ने मुझे बताया है कि इस प्रकार की सहायता की मांग की जा सकती है। उनका कहना है कि अपने ऋणों मे से कुछ के रद्द किये जाने की माग करने के बजाय, जैसा कि काग्रेस कर रही है, हम ब्रिटेन से उन ऋणों को पूजी का रूप देने की मांग कर सकते हैं। जो हो, यदि हमें भारत के लोकोपकारी विभागो के लिए रुपये की व्यवस्था करनी है तो हमें ठोस सहायता के लिए अवश्य झगड़ना चाहिए। यदि सैनिक व्यय घटाकर ३५ करोड़ कर दिया जाय और ब्रिटेन से सहायता मिलने के बाद ऋण-व्यय और अन्य मदो पर किया जाने वाला व्यय २० करोड़ रह जाय तो कुल संघनित कोपभार ५५ करोड़ से अधिक नही रहेगा। यदि रिजर्व बैंक और स्थायी रेलवे बोर्ड की स्थापना सोलह आने हमारे हाथ की बात और उस पर आम नीति के मामले में व्यवस्थापिका सभा का पूरा नियंत्रण रहे तो मैं समझता हूं, अर्थ-सदस्य को काफी स्वच्छदता रहेगी। वैसी अवस्था मे यह उचित तर्क पेश किया जा सकता है कि कुल १३० करोड़ की आय में गवर्नर जनरल का सर्वप्रथम व्यय केवल ५५ करोड़ है। इसलिए उसे बजट-सम्बन्धी और आतरिक उधार-सम्बन्धी व्यवस्था में दखल देने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

मैं समझता हूं, मैंने अपने विचारबिन्दु को पूरी तौर से स्पष्ट कर दिया है। मुझे इसमे तनिक भी संदेह नही है कि मेरी आशका पूर्णतया सकारण है। मैंने इन तीन धाराओ का जो अर्थ निकाला है, मेरी राय मे उनका यही अर्थ सम्भव भी है। मेरी राय मे अंग्रेज इन धाराओं का दूसरा अर्थ नही निकालेंगे, पर यदि आपका अब भी यही विश्वास हो कि ये धाराए रिजर्व बैंक की स्थापना तक ही सीमित है, तो मेरा सुझाव है कि उनके वाक्य-विन्यास मे परिवर्तन कराके आप इस बात को साफ करा लीजिये। मैंने इनका दूसरा अर्थ निकाला है। इसीलिए तो मैंने कहा था कि उनका स्थान प्रस्तावित अर्थ-परिषद् नही ले सकती है। यदि प्रस्तावित अर्थ-परिषद् का गठन हमारे ऊपर छोड़ दिया जाय तब तो वह बिलकुल निर्दोष वस्तु सिद्ध होगी, जबकि इन तीनो धाराओ के द्वारा गवर्नर जनरल को हमारे समूचे आर्थिक ढाचे पर पूरा अधिकार दे दिया है। वास्तव मे आर्थिक विभाग के तथाकथित नियंत्रण को शून्य कर दिया गया है।

आशा है, आप मेरे नोट पर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

भवदीय
जी० डी० बिडला

पुनश्च :

मैंने इतने विस्तार के साथ केवल इसलिए लिखा है, जिससे आपको अपना यह मन्तव्य स्पष्ट कर दू कि यदि फार्मूला को उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया, जिस रूप मे हम लोगो ने १८ पैरे के आधार पर कल विचार किया था, तो जब तक सैनिक-व्यय और ऋण-व्यय की मदों में भारी कमी करने की व्यवस्था नहीं

की जायगी तबतक बजट-सम्बन्धी व्यवस्था में गवर्नर जनरल द्वारा हस्तक्षेप बराबर होता रहेगा। यदि उपरिलिखित सुझाव के अनुसार इन दोनों मदों में कमी कर दी गई तो ब्रिटिश सरकार और व्यापारिक हितों को यह मांग करने का अधिकार नहीं रहेगा कि गवर्नर जनरल बजट-सम्बन्धी व्यवस्था में दखल दें। मैं यह 'पुनश्च' सारी बात थोड़े शब्दों में बताने के लिए दे रहा हूं।

उन दिनों सर तेजबहादुर सप्रू भारत में एक मंत्री-जैसी हैसियत रखते थे। वह साम्राज्य परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व भी कर चुके थे। इसलिए अंग्रेजों के अनोखे तरीकों से वह मेरी अपेक्षा अधिक परिचित थे। मैं जानता था कि अंग्रेज मुंह से कह देता है वह उसकी लिखित प्रतिज्ञा के बराबर होता है। इसलिए एक व्यापारी की हैसियत से मैं अंग्रेजों के शब्दों की ही छानबीन किया करता था, और समझे बैठा था कि वे किसी भी शर्त का अक्षरशः पालन करने में विश्वास रखते हैं। लेकिन ब्रिटिश संविधान की परम्परा ही कुछ ऐसी कृत्रिम है कि जो रुख अंग्रेज लोग व्यापार के मामले में अपनाते हैं ठीक उसका उलटा ऊंचे सरकारी मामलों में दिखलाते हैं। वे कहते एक बात हैं, जबकि उनका अभिप्राय कुछ दूसरा ही होता है। इसका प्रारंभ तब हुआ जब उन्होंने अपने राजा की शक्ति-सामर्थ्य के क्षेत्र को पीडा-रहित ढग से संकुचित करना शुरू किया। अब यह सिलसिला उपनिवेशों और आश्रित प्रदेशों पर पार्लमेण्ट की शक्ति-सामर्थ्य के क्षेत्र को उनके स्वतंत्र होने की घड़ी तक संकुचित करते रहने तक जारी रहता है। इसलिए सोचिये कि मुझे कितना आश्चर्य हुआ होगा जब सर तेज और उनके निकट के साथी श्री जयकर ने मेरे पत्र में कही गई बात मानना तो एक ओर, उलटे मेरे तर्क से असहमति प्रकट की। अतएव मैं नीचे का पत्र लिखने को प्रेरित हुआ :

लंदन
२ दिसम्बर, १६३१

प्रिय डाक्टर जयकर,

कल किंग स्ट्रीट में बातचीत के दौरान में आपने मेरी गोलमेज-परिषद् में दी गई स्पीच को नापसन्द किया था। मैं आपकी सम्मति का आदर करता हूं, इसलिए मुझे बड़ा दुःख हुआ कि आपको मेरे विचारों से असहमत होना पड़ा। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मैंने कोई बात अचानक ही नहीं कह दी है। मैंने गत ३१ अक्तूबर को सर तेजबहादुर सप्रू को जो पत्र लिखा था उसकी एक प्रति आपके पास भी भेज दी थी, और उसके बाद मुझे यह समझाने के लिए कि मैं गलती पर हूं, न आपने ही मुझसे बात की, न सर तेज ने ही, इसलिए मैं इसी नतीजे पर पहुंचा कि १४, १८ और २१ धाराओं का मैंने जो अर्थ निकाला है उससे आप सन्तुष्ट

हैं। वास्तव मे आपने तो मेरे पत्र की पहुंच तक स्वीकार नही की। पर मुझे जिस बात से निराशा हुई वह यह थी कि संघ-विधायक-समिति मे सर तेज ने मेरी आशका को दूर करने के स्थान पर और भी आगे बढ़कर १४, १८ और २१वें पैरो का उनके मूल रूप में समर्थन करने के बाद अभिरक्षणों के सम्बन्ध में सर सेम्युअल होर के वक्तव्य का भी समर्थन ही किया। आर्थिक अभिरक्षणो पर संघ-विधायक-समिति की जो अंतिम रिपोर्ट निकली है, उसमे एक प्रकार से सर सेम्युअल होर के वक्तव्य को ही नये परिच्छेदों मे रख दिया गया है। सर पुरुषोत्तमदास ने तो संघ-विधायक-समिति मे दोष दिखाने की चेष्टा की भी थी, पर उन्हें आपकी ओर से कोई सहायता नही मिली।

अब स्थिति यह है कि १४, १८ और २१वें पैरो मे अभिरक्षणो को जिस रूप में रखा गया है उसका स्थिरिकरण हो गया है, और इसके अलावा यह भी सुझाया गया है कि फिलहाल उन अभिरक्षणो की विस्तृत व्याख्या करना जरूरी नहीं है। मेरी राय में तो अब इस सम्बन्ध मे कोई भी संदेह नही रहना चाहिए कि अभिरक्षणों का क्या मर्म है। उनकी उपलक्षणाएं अब मेरे लिए बिलकुल स्पष्ट है, और मैंने ३१ अक्तूबर की सर तेज के नाम अपनी चिट्ठी में जो विचार व्यक्त किये थे, अब उनकी पुष्टि हो गई है।

मुझे यह कहते हुए बड़ा खेद होता है कि जब सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने संघ-विधायक-समिति मे स्थायी रेलवे बोर्ड का प्रश्न उठाया, तब भी उनका वैसा ही अनुभव रहा। प्रबन्ध-सम्बन्धी मामलो में विवेचना से काम लेने के प्रश्न तक पर तेजबहादुर सप्रू ने इस विचार का समर्थन किया कि इसका निर्णय सुप्रीम कोर्ट के द्वारा किया जाय। इस मामले में भी सर पुरुषोत्तमदास पर वैसी ही बीती। मेरी राय में इस प्रकार एक बड़े ही खतरनाक सिद्धात को जन्म देने की बात सोची जा रही है। यह सचमुच बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि जिन मामलो के विषय मे हम अंतरंग ज्ञान रखने का दावा कर सकते हैं उनमें भी हमे आपका और सर तेज का समर्थन प्राप्त नही हो सका।

मैं आपसे इस मामले में सहमत नही हूं कि १४, १८ और २१वें पैरो को दुहराने के प्रश्न पर अब भी विचार-विमर्श की गुंजाइश है। पर मुझे यह देखकर दुःख होता है कि हम उन्हे यहां दुहराने का अवसर मिलने पर भी ऐसा नहीं कर सके। आपने कल महात्माजी से कहा था कि प्रधान मंत्री के भाषण के द्वारा अब सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने की गुंजाइश पैदा हो गई है। मुझे ताज्जुब है कि आपने इस स्पीच का यह अर्थ कैसे निकाला है। भावी ढाचे का निर्माण उन रिपोर्टों के आधार पर ही किया जा सकता है, जो मैंने पेश की हैं और जिन पर आप अभी तक दृढ़ है, और जिनके द्वारा जहा तक अर्थ-विभाग का सम्बन्ध है, हमें

रत्ती बराबर भी नियन्त्रण नहीं मिलता है—सेना और विदेश-विभागों की तो *बात ही जुदा है।*

जो-कुछ किया जा चुका है, जो-कुछ तय हो चुका है, गोलमेज-परिषद् की कार्यकारिणी समिति उसमें कोई परिवर्तन नही कर सकती है। वह तो केवल उन्ही मामलों को आगे बढ़ा सकती है, जिन पर निश्चय किया जा चुका है; पर अभी न उसकी कार्य-सीमा ही निर्धारित की गई है, न यही तय किया गया है कि उसके जिम्मे क्या-कुछ सौंपा गया है।

मैं आपको आश्वासन देता हूं कि मैं बात समझने के लिए तैयार हू, और यदि मेरी समझ मे आ जाय कि मैं ही गलती पर हू तो मेरी चिन्ता दूर हो जायगी; पर मुझे कहना पड़ता है कि आपने हमें यह बताये बिना कि हमारी आशकाए निर्मूल हैं, कुछ विशेष निष्कर्ष को स्वीकार कर इस दिशा मे मेरी सहायता नही की। जो हो, यह तो मैं व्यक्तिगत विचार व्यक्त करने के लिए लिख रहा हूं। मुझे आशा करनी चाहिए कि आप ठीक मार्ग पर हैं। *क्या मैं व्यवस्थापिका सभा की पुरानी* नेशननिस्ट पार्टी के एक पुराने सहयोगी के नाते यह सुझाव रख सकता हू कि आप यह स्पष्ट कर दें कि गोलमेज-परिषद् मे बहुमत से जो आर्थिक अभिरक्षण पास किये हैं वे आपको स्वीकार नही हैं, और आप इस प्रश्न पर और ऊपर कहे अन्य प्रश्नों पर दुबारा विचार किये जाने की माग करेंगे ? मुझे हृदय से विश्वास है कि आप अब भी ऐसा करने मे समर्थ होगे।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

सन् १९३७ मे भारतीय शासन-विधान लागू हुआ। गवर्नर जनरल और प्रांतों के गवर्नरों ने काग्रेसी प्रधान मन्त्रियों तथा उनकी सरकारो के काम मे दखल देने की कोई कोशिश नही की और जब अत मे गाधीजी ने ब्रिटिश सरकार को इस बात का पूरा विश्वास दिला दिया कि भारत एक राष्ट्र है तब उन्होने बड़ी अच्छी तरह से अपने को हटा लिया। आज हमने रिजर्व बैंक और रेलवे बोर्ड को जो बनाये रखा है, या गणतन्त्र होकर भी जो हम अभी तक राष्ट्रसमूह ही बने हुए हैं सो सब स्वेच्छा से। इन सब बातो से *प्रमाणित होता है कि एक-दूसरे के तौर-*तरीकों को समझने-बूझने का कितना महत्त्व है। शुरू-शुरू मे तो ब्रिटेन ने हम लोगों को समझने की चेष्टा नही की थी, पर जब दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को समझ लिया तो उसका परिणाम बड़ा ही सुन्दर रहा।

४. वैधानिक संरक्षण

मैं तो यहां तक आगे बढ़ गया था कि मैंने आर्थिक संरक्षणों पर विचार करने के लिए एक विशेष समिति के नियुक्त किये जाने पर जोर दिया। जब परिषद् भंग हो गई और मैं भारत लौट आया तो मुझे सर सेम्युअल होर का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने मेरे सुझाव को मानने से इन्कार कर मुझे एक दूसरे ही प्रकार की समिति में शामिल होने का निमंत्रण दिया :

इंडिया आफिस

व्यक्तिगत ह्वाइट हॉल

२७ जनवरी, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला,

मैंने आपको वचन दिया था कि मैं आपको आपके इस सुझाव के सम्बन्ध में अपनी राय बताऊंगा कि आर्थिक अभिरक्षण का प्रश्न एक ऐसी समिति के सिपुर्द कर दिया जाय, जिसमें ऐसे लोगों को भी शामिल किया जाय, जिन्हें आर्थिक मामलों की जानकारी हो, पर जो गोलमेज-परिषद् की परामर्शदायिनी समिति के सदस्य न हों। मैं कुल मिलाकर इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अब, जबकि हमने एक ऐसी परामर्शदायिनी समिति का गठन कर लिया है, जिसका काम गोलमेज-परिषद् द्वारा बताई गई आम नीति का अनुसरण करना होगा, उस पर ऐसी व्यवस्था लादना, जिसके अंतर्गत ऐसी समितियां स्थापित करना हो, जिनके सदस्य बाहर से लिये जाय, अनुचित होगा। मेरी धारणा है कि ऐसी व्यवस्था में से अस्त-व्यस्त करनेवाली शाखाएं फूट निकलेंगी। मैं समझता हूं, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास परामर्शदायिनी समिति में भाग लेने में असमर्थ हैं। आपको उसमें अपने लिए स्थान की मांग करने की स्वतंत्रता है, और यदि आप ऐसा करेंगे तो आप उसके सदस्य नामजद हो ही जायगे।

भवदीय

सेम्युअल होर

इधर गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर से शुरू कर दिया था। मैं भारतीय वाणिज्य-उद्योग संघ का एक भूतपूर्व अध्यक्ष था ही। उसने भी गोलमेज-परिषद् से नाता तोड़ लिया था। मैंने नई दिल्ली से १४ फरवरी, १९३२ को सर सेम्युअल होर को पत्र लिखा और उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा :

बिड़ला हाउस
अलबूकर्क रोड,
नई दिल्ली
१४ फरवरी, १६३२

प्रिय सर सेम्युअल,

आपके गत मास की २७ तारीख के पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे यह देखकर खेद हुआ कि आपको मेरा यह सुझाव कि सारे आर्थिक मामलो पर विचार करने के लिए एक उपसमिति अलग बनाई जाय, ग्राह्य नही है। मैं तो आपसे अब भी इस सुझाव पर दुबारा विचार करने का अनुरोध करूगा, क्योकि आर्थिक समस्याओ का विवेकपूर्ण विचार इस विषय को समझनेवाले व्यक्तियो की अनुपस्थिति में सम्भव नही है।

आपने यह सुझाकर कि यदि मैं समिति मे शामिल होना चाहू तो मुझे नामजद किया जा सकता है, बड़ी कृपा की। पर मेरी राय मे मेरे लिए ऐसा रुख अपनाना ठीक नही रहेगा। वैसी अवस्था मे मैं सघ के प्रति वफादारी का सबूत नही दूगा और अपने-आपको कोई अच्छा कार्य-सम्पादन करने के अयोग्य प्रमाणित करूंगा। मैं अपने देश और सहयोग के हित मे जो सबसे अच्छी सेवा कर सकता हूं वह यही है कि सघ को बाकायदा सहयोग प्रदान करने के लिए राजी करू। मैं जानता हू कि कार्यकारिणी के कार्यकलाप मे हमारे भाग लेने के सम्बन्ध में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास का भी वही मत है, जो मेरा है। इसके अलावा भारतीय व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि की हैसियत से वह मुझसे कई बातों मे अच्छे हैं। उनमे अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार-कुशलता, अधिक योग्यता और अधिक अनुभव है। यदि हम दोनो सघ से अपने रुख मे संशोधन कराने में समर्थ हुए तो मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है कि भारतीय व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए वह सबसे योग्य व्यक्ति हैं।

एकमात्र इसी प्रश्न पर विचार करने के हेतु सघ की बैठक बुलाई जा रही है। उसके बाद मे मैं आपको फिर लिखूगा। मैं यह भी चाहूगा कि हमारे बीच में जो कुछ विचार-विनिमय हुआ है उसकी खबर वाइसराय महोदय को भी रहे, जिससे आवश्यकता पडने पर हम आपको कष्ट दिये बगैर ही उनसे बातचीत कर सकें।

मैं सघ के प्रमुख सदस्यो के साथ इस समस्या की चर्चा करने दिल्ली आया था और अब फिर कलकत्ते के लिए रवाना हो रहा हू। वहां मैं श्री बेंथल और अन्य व्यक्तियो के साथ व्यवसाय और वाणिज्य मे दिलचस्पी रखनेवाले दोनों वर्गों के अपेक्षाकृत निकटतर सहयोग के प्रश्न पर बातचीत करूंगा।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

अपने अगले पत्र मे सर सेम्युअल ने एक नया प्रश्न उठाया, वह था साम्राज्य अधिमान, (इम्पीरियल प्रेफरेन्स), के बारे मे ओटावा मे होनेवाली परिषद् का प्रश्न, जिसका उस समय अपना निजी महत्त्व था :

इंडिया आफिस
ह्वाइट हाल
२५ फरवरी, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला,

आपके १४ फरवरी के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। मुझे यह जानकर सचमुच प्रसन्नता हुई कि आप और सर पुरुषोत्तमदास वैधानिक विचार-विमर्श मे सहयोग प्रदान करने के मामले में संघ को उसके रवैये में सशोधन करने को राजी करने की चेष्टा कर रहे हैं। मैं आपके इस कार्य में सफलता की कामना करता हूं। संघ की बैठक की समाप्ति पर आपके पत्र की प्रतीक्षा करूंगा। मुझे यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि आप व्यवसाय और वाणिज्य के मामले में दोनों वर्गों के निकटतर सहयोग के लिए श्री बेंथल से बातचीत कर रहे हैं।

एक और अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसकी ओर आपका और सर पुरुषोत्तमदास का ध्यान दिलाना आवश्यक है। वह प्रश्न है ओटावा-परिषद् का। जैसा कि आपको मालूम ही है, यह परिषद् आगामी ग्रीष्म ऋतु मे होनेवाली है। जहां तक भारत का सम्बन्ध है, साम्राज्य के विभिन्न उपनिवेशो के चुंगी-सम्बन्धी पारस्परिक सम्बन्ध का अबतक का इतिहास मुझे मालूम है; पर मुझे आशा है कि आप समझ लेंगे कि सम्राट की सरकार की नई नीति इस प्रश्न को एक बिलकुल नये आधार पर रखने की है—ऐसे आधार पर, जिसमें भावुकता और राजनीति को गौण और आर्थिक हितों को मुख्य स्थान दिया जायेगा। यदि ओटावा-परिषद् मे भारत का प्रतिनिधित्व उस मनोभाव के साथ नही हुआ, जिसके द्वारा दोनो देशो के लिए एक-समान लाभदायक व्यवसाय और वाणिज्य-सम्बन्धी वार्तालाप सम्भव हो सके, तो मुझे बड़ी निराशा होगी।

भवदीय
सेम्युअल होर

मैने संघ-समिति के सदस्यो से परामर्श करके नीचे लिखा जवाब दिया :

बिड़ला हाउस
नई दिल्ली
१४ मार्च, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

आपके २५ फरवरी के पत्र के लिए धन्यवाद। हमारी समिति की बैठक हो

गई। इस पत्र के साथ पास किये गये प्रस्ताव की एक प्रति भेजता हूं। जैसा कि आप स्वय देखेंगे, प्रस्ताव के द्वारा समस्या का तुरंत हल तो उतना नही होता है, पर उसके द्वारा सहयोग की नीति अपनाने की बात निश्चित रूप से तय कर दी गई है। प्रस्ताव के पहले भाग मे हमने सरकार से दमन की वर्तमान नीति मे परिवर्तन करने का अनुरोध किया है; दूसरे भाग में हमने उस अर्थ का खडन किया है, जो सर जार्ज रैनी ने हमारे पहले प्रस्ताव का लगाया था, और तीसरे भाग में हम उस समिति को अपना सहयोग निश्चित रूप से प्रदान करते हैं, जिसकी नियुक्ति हमारे सुझाव के अनुरूप सारे आर्थिक मामलो पर विचार करने और उसका सर्व-सम्मत हल खोज निकालने के लिए होनी चाहिए। हमने इस मामले पर विशद रूप से विचार-विमर्श किया और बैठक मे यह स्पष्ट रूप से तय कर लिया गया कि यदि सरकार ने हमारे सुझाव को अपना लिया और हमारे अनुरोध के अनुसार एक समिति की नियुक्ति की तो सघ उस नई समिति मे भाग लेने को तो तैयार होगा ही, साथ ही वह परामर्शदायिनी समिति मे भी भाग लेगा।

इससे आगे बढना सम्भव नही था। संघ की सदस्य-सस्थाओ से जो सम्मतिया प्राप्त हुईं, वे अत्यधिक बहुमत से भाग न लेने के पक्ष मे थी। पर समिति ने इस मामले मे पथप्रदर्शन करने का जिम्मा अपने ऊपर लेकर इन अनेक मण्डलो के दृष्टिकोण के बावजूद सहयोग प्रदान करने का निश्चय किया—हा, कुछ शर्तों के साथ। वार्षिक अधिवेशन २६ और २७ मार्च को होगा। उस समय इस प्रस्ताव की पुष्टि करानी होगी। यह पुष्टि आवश्यक है, क्योंकि हमने अपने मण्डलो की आम राय के खिलाफ आचरण किया है। पर समिति ने एकमत से इस प्रस्ताव पर अपने अस्तित्व की बाजी लगा दी है, और यदि यह प्रस्ताव पास नहीं हुआ तो सबने मिलकर इस्तीफा देने का निश्चय कर लिया है। उन्होंने सब प्रकार से भारी साहस का परिचय दिया है और मुझे आशा है कि प्रस्ताव अपने वर्तमान रूप मे पारित हो जायगा। वैसी अवस्था मे, मैं समझता हू, मुझे आपपर अपने मूल सुझाव के स्वीकार किये जाने का जोर डालना चाहिए, क्योंकि अब यह सुझाव सघ ने वर्तमान प्रस्ताव के रूप मे अपना लिया है।

आपको पिछली बार लिखने के बाद मैंने लार्ड लोदियन और सर जार्ज शुस्टर से बात की और उन्हे बताया कि जो लोग आर्थिक मामलो को समझते ही नही हैं, उनसे आर्थिक अभिरक्षणो की चर्चा करना व्यर्थ समय नष्ट करना है। मैंने उन्हें यह बात सुझाई कि ऐसे मामलों का व्यावहारिक हल तलाश करने का एक-मात्र मार्ग यही है कि दोनो पक्षो के अनुभवी व्यापारी एकसाथ बैठें और सर्व-सम्मत हल ढूढ निकालें। लार्ड लोदियन और सर जार्ज शुस्टर, दोनों को मेरा सुझाव बहुत ही पसन्द आया और उन्होंने आपको पत्र लिखने का वचन दिया।

आशा है, उन्होंने लिखा होगा। मैं दो-एक दिन में शुस्टर से मिलूंगा और १७ तारीख को वाइसराय से भी मिल रहा हूं, पर मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप अपने रुख पर दुबारा विचार करिये। यदि आप ऐसी समिति नियुक्त कर सकें, चाहे वह परामर्शदायिनी समिति के तत्त्वाधान में ही क्यों न हो, जिसमें एक ओर लार्ड रीडिंग और सर बैसिल ब्लेकेट-जैसे आदमी हों और दूसरी ओर हमारे पक्ष के भी उतने ही व्यक्ति हों, और सब मिलकर सारे आर्थिक मामलों पर चर्चा करें, तो मुझे यकीन है कि उसका फल बहुत अच्छा निकलेगा।

शायद एक उन्मूलनवादी भारत और एक अत्यन्त अनुदार पार्लामेंट में इस समय समझौता सम्भव न हो, पर मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान पार्लामेंट तथा कांग्रेस से असम्बद्ध प्रगतिशील भारतीय लोकमत के बीच समझौता अवश्य सम्भव है। बस, मैं इसी दिशा में आपकी सहायता और पथप्रदर्शन चाहता हूं। मैं चाहता हू कि आप यह बात समझें कि यदि विधान को कांग्रेस की तो बात ही क्या, प्रगतिशील वर्ग तक की सहमति के बगैर अमल में लाया जायगा तो उसके निष्कंटक रूप से चलने की बात निश्चित रूप से नही कही जा सकती है। इसके विपरीत, यदि आप हमें ऐसा शासन-विधान प्रदान करेंगे, जो प्रगतिशील वर्ग को रुचिकर होगा, तो उसे गांधीजी तक का आशीर्वाद प्राप्त हो जायगा। मैं गाधीजी और कांग्रेस में हमेशा से भेद करता आया हूं, और मेरा आपसे कहना यही है कि आपके लिए हमे ऐसा विधान प्रदान करना सम्भव है, जो कांग्रेस को ग्राह्य न होते हुए भी गाधीजी द्वारा नामंजूर नही किया जाय और जिसका भविष्य मे निष्कंटक रूप में अमल मे आना सम्भव हो। यदि विधान के जारी किये जाने के दूसरे ही दिन उसका विध्वंस करने के लिए कोई आन्दोलन खड़ा कर दिया गया तो शान्ति असम्भव हो जायगी, और मैं चाहता हूं दोनों देशों मे स्थायी शान्ति। अतएव हमने जो प्रस्ताव पास किया है, मेरा अनुरोध है कि आप उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें और यह देखें कि हम जो प्रगतिशील लोकमत को अपने निकटतर लाना चाहते हैं, उसके निमित्त हमारी सेवाओ को काम में लाना आपके लिए सम्भव होगा या नही। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप हमें शान्ति के निमित्त कार्य करने का अवसर दें। मेरी आपसे अनुनय है कि आप हमारे सुझाव पर विचार करें।

रही दोनों वर्गों के निकटतर सहयोग की बात, सो मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि मुझे श्री बैंथल से विशेष प्रोत्साहन नही मिला। लंदन मे हमने प्रगाढ मैत्री का आचरण किया और हरेक ने दूसरे के दृष्टिकोण को देखने और समझने की चेष्टा की, और मुझे आशा थी कि यह सिलसिला भारत मे भी जारी रहेगा। पर अब तो वह बिलकुल बदल गये दिखाई देते है, और उनकी एक स्पीच की रिपोर्ट ने तो मुझे सचमुच अचम्भे मे डाल दिया है। उस स्पीच की एक प्रति इस पत्र के साथ भेजता हूं। मेरी तो समझ मे नही आता कि लंदन मे अत्यत मैत्रीपूर्ण

सहयोग के बाद वह हम लोगों को "कभी न मनाये जा सकने वाले" कैसे कह सके और गाधीजी की खिल्ली कैसे उड़ा सके ! इससे खुद उनकी भी बड़ाई नहीं होती है और इसका भारतीय व्यापारी वर्ग के मन पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। इतने पर भी जहा तक मेरा सम्बन्ध है, हम लोग अपने मण्डलों को गलत मार्ग पर नहीं ले जाना चाहते, इसलिए मेरा ठीक दिशा में शुरू किया गया प्रयत्न जारी रहेगा।

किन्तु रचनात्मक कार्य के लिए विश्वास और मैत्री के वातावरण की दरकार है, और फिलहाल दुर्भाग्यवश भारत में इसका अभाव है। वास्तव में इस क्षोभकारी स्थिति में आपके पत्रों से चैन मिलता है। यह स्पष्ट ही है कि आप सहज ही विश्वास कर लेते हैं, अतएव मेरी जिम्मेदारी भी बढ गई है। इसलिए मैं चाहूंगा कि मैं जैसा कुछ हू, आप मुझे जान जाय। मेरे लिए यह कहना अनावश्यक है कि मैं गाधीजी का बहुत बड़ा प्रशसक हू। वास्तव में, यदि मैं यह कहू कि मैं उनका एक लाडला बालक हूं, तो अनुचित न होगा। मैंने उनके खद्दर और अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी कार्यकलाप मे हाथ खोलकर धन दिया है। मेरा यह भी अचल विश्वास है कि भारतीय जनता के लिए अतिरिक्त धधे के रूप मे खद्दर अच्छा काम करता है। मैंने न तो कभी सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भाग ही लिया है और न उसमे कभी रुपया ही दिया है। पर मैं सरकार की आर्थिक नीति का कड़ा आलोचक रहा हू, इसलिए मैं अधिकारी वर्ग को कभी अच्छा नही लगा हू। इस समय भी मैं सरकारी नीति से सहमत नहीं हूं। काश, मैं अधिकारियों को यह विश्वास दिला सकता कि गाधीजी और उनके जैसे व्यक्ति अकेले भारत के ही नही, ब्रिटेन के भी मित्र है, और कि गाधीजी शांति और व्यवस्था मे विश्वास रखने वाले पक्ष के सबसे बड़े समर्थक है। अकेले वही भारत के वामपथियो को काबू मे रखे हुए हैं। अतएव मेरी राय में उनके हाथ मजबूत करना दोनो देशों की मैत्री के पास को मजबूत करना है। पर मुझे आशका है कि वर्तमान वातावरण मे गाधीजी के सम्बन्ध मे समझाना एक कठिन कार्य है। शायद इस मिशन मे सफलता प्राप्त करने का सबसे अच्छा मार्ग है, जहा तक सम्भव हो, आपको सहयोग प्रदान करना, और मेरी त्रुटियो के बावजूद यदि आप समझते हैं कि मै दोनों देशों में मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित करने मे उपयोगी सिद्ध हो सकता हू तो आप मेरी तुच्छ सेवाओ पर हमेशा निर्भर कर सकते हैं।

ओटावा-परिषद् के सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि यदि आपकी यह अभिलाषा है कि उसमे भारतीय व्यवसाय और वाणिज्य का भी प्रतिनिधित्व रहे, जैसा कि मैं आपके पत्र से समझा हू, तो जब कभी सर पुरुषोत्तमदास को निमत्रण दिया जावेगा, वह खुशी-खुशी स्वीकार कर लेंगे। मैं यह उनकी पूरी रजामन्दी से लिख रहा हू। सघ की समिति इस योजना के खिलाफ नही होगी। हम लोग

इस परिषद् की महत्ता को समझते हैं और, आप निश्चिन्त रहिये, ठीक दिशा में हमारा समर्थन मौजूद रहेगा।

क्या मैं इस सम्बन्ध में एक और सुझाव दे सकता हूं? ओटावा में जो कुछभी निर्णय हो, उसपर उस समय तक व्यवस्थापिका सभा द्वारा हस्ताक्षर न हों, जब-तक नया विधान अमल में न आ जाय, और मेरी विनम्र सम्मति में समझौता उस समय तक अमल में न आवे जबतक उसपर नई सरकार हस्ताक्षर न कर दे। हम सब आर्थिक मामलों में प्रतिव्यवहार के कायल हैं। हां, यह अवश्य है कि व्यवस्था ऐसी हो कि वह लोकमत के अनुकूल हो। पर ऐसी योजना कोई कठिन कार्य नहीं है।

मुझे आपकी यह बात बड़ी अच्छी लगी कि आप इतिहास को बातों की ओर से उदासीन नहीं हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, आप हमें भावुकता और राज-नीति को छोड़कर आर्थिक हितों के लिए काम करने को सदैव तत्पर पायंगे।

मैं यहां एक पखवाड़े रहूंगा और उसके बाद कलकत्ता वापस चला जाऊंगा।

भवदीय

जी० डी० बिड़ला

बाद को प्रस्ताव के तीसरे पैरे में थोड़ा-सा संशोधन कर दिया गया। मैंने फिर लिखा:

बिड़ला हाउस

नई दिल्ली

२८ मार्च, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

संघ का वार्षिक अधिवेशन कल समाप्त हो गया और हम लोगों ने गर्मा-गर्म बहस के बाद प्रस्ताव पास कर ही लिया। इस पत्र के साथ उसकी एक प्रति भेजी जाती है। जैसा कि आप स्वयं देखेंगे, मूल प्रस्ताव के तीसरे पैरे में कुछ रद्दोबदल किया गया है, पर सार वही है। कई लिहाज से यह प्रस्ताव समिति द्वारा पास किये गए प्रस्ताव से अच्छा है, क्योंकि यह गोलमटोल बात न कहकर कुछ शर्तों के साथ निश्चित रूप से सहयोग प्रदान करता है।

मैंने अपने अंतिम पत्र में जो कुछ कहा है, मुझे उससे अधिक कुछ नहीं कहना है। मैंने लंदन में आपके साथ बातचीत के दौरान जो विचार रखे थे, मुझे यह कहते हुए संतोष होता है कि मैं संघ को उन्हें अपनाने को राजी करने में समर्थ हुआ हूं। अतएव आप जब कभी समझें कि हम भारत में शांति और प्रगति के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे, हम सहर्ष सहायता करने को तत्पर रहेंगे। मेरा तो आपसे यही

अनुरोध है कि आप दूरदर्शिता से काम लें। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं कि भारत का अधिकारी वर्ग दिन-प्रतिदिन की नीति बरत रहा है और अपने पथप्रदर्शन के लिए अनिश्चित और अज्ञात बातों पर निर्भर करता है। यह नीति राजनेताओं की नही है। मैं भारतीय स्थिति के इस पहलू पर और अधिक टिप्पणी करना नही चाहता हूं, पर मेरी बडी अभिलाषा है कि सरकार दोनो देशो के कामचलाऊ शांति के स्थान पर स्थायी शाति की चेष्टा करे। मैं तो समझता हूं, ऐसा वर्तमान अनुदार पार्लामेंट के होते हुए भी सम्भव है। बीच-बीच में आपका समय लेता रहता हूं, क्षमा करियेगा।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

८ अप्रैल को सर सेम्युअल होर ने उत्तर दिया कि वह मेरे द्वारा उठाये गये मुख्य-मुख्य प्रश्नो पर सावधानी के साथ विचार कर रहे हैं। उन्होंने बाद मे इस विषय पर लिखने का वचन दिया। मेरी डायरी मे लिखा मिलता है ·

"मैं बगाल के गवर्नर से १० अप्रैल, १९३२ के साढे दस बजे प्रात.काल मिला। बडे चतुर और बुद्धिमान प्रतीत हुए। बहुत कम बोलते हैं और आर्थिक समस्याओ को अच्छी तरह समझते मालूम होते हैं। मैंने मौसम को लेकर बातचीत आरम्भ की और पूछा कि उन्हें गर्मी के कारण कुछ असुविधा तो नही होती है। इसके बाद ही हम अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नो की चर्चा मे लग गये। मैंने आशा प्रकट की कि उनकी शिमला-यात्रा का परिणाम अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होगा। उन्होने पूछा कि क्या मेरा अभिप्राय आर्थिक मामलो से है। मैंने कहा कि मैं आर्थिक मामलो मे किसी प्रकार के सुधार की आशा नही रखता, मेरा अभिप्राय तो राजनैतिक मामलो से है। आर्थिक सुधार असम्भव कल्पना है। ससार दोषपूर्ण मौद्रिक व्यवस्था से पीडित है, और जबतक इस व्यवस्था में परिवर्तन न होगा उसमें स्वाभाविक समायोजन (Natural adjustment) को छोड़कर और किसी प्रकार सुधार होना संभव नही है, और इसमे काफी समय लगेगा। सभव है, इसके कारण समाज के ढाचे मे असाधारण अव्यवस्था उत्पन्न हो जाय। वह मुझसे इस बारे में सहमत हुए कि मूल्यों के स्तर मे स्थिरता अधिक उत्तम है, पर बोले कि प्रबंधित चलार्थ (Managed Currency) का प्रबन्ध न करने का जटिल काम किसके सुपुर्द किया जाय? मैंने कहा कि यह तो कोई मुश्किल काम नही है। यदि हम रुपये के एवज मे अमुक मात्रा मे सोना लेने को तैयार हैं, तो हम रुपये के एवज मे १०० दशनाक क्यों नही दे सकते हैं? उन्होने कहा कि दशनाक एक जटिल काम है। मैं सहमत तो हुआ, पर बोला कि ससार मे कोई वस्तु पूर्ण नही है। उन्होने कहा, सट्टेबाजी का बाजार

गर्म होगा। मैंने बताया कि सोने को छोड़कर और सारी चीजों में सट्टेबाजी कम होगी। उन्हें मेरा सुझाव पसन्द तो आया, पर साथ ही उन्होंने इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने के मामले में घबराहट जाहिर की। मैंने कहा कि यह कार्य केवल तानाशाही के लिए ही सम्भव है। ससार मूर्ख प्रजातन्त्र से पीड़ित है। हमें प्रजातंत्रीय तानाशाहों की दरकार है। बात में विरोधाभास-सा दिखाई अवश्य पड़ा, पर मेरा आशय उनकी समझ में आ गया। मैंने बताया कि १५ प्रतिशत राजनैतिक व्याधियों का कारण दोषपूर्ण आर्थिक व्यवस्था है। भारत मूल्यों के नीचे स्तर से पीड़ित है। इस स्तर को ५० प्रतिशत ऊपर उठा देना चाहिए। उन्होंने पूछा कि क्या मूल्यों का स्तर इतना ऊंचा उठाना आवश्यक है। मैं बोला, हां, सर बेसिल ब्लेकेट की भी यही राय है। मैंने उन्हें समूचे प्रश्न का अध्ययन करने की सलाह दी। १९२१ में किसानों में कोई हलचल नहीं थी। सारी राजनैतिक अशांति मजदूरों तक सीमित थी। अब यह क्या बात है कि मजदूर खामोश है और देहाती जनता में इतना असंतोष फैला हुआ है? वह सहमत हुए और बोले कि कांग्रेस ने मजदूरों में अशांति फैलाने की चेष्टा तो की थी, पर वह असफल रही। मैंने बताया कि मैंने इस प्रश्न का अध्ययन किया है, और देखा है कि कपड़े की खपत को छोड़कर किसान ने अन्य दिशाओं में बचत की है। इस वर्ष उसने सोना बेचकर, आंशिक लगान भुगताकर और सूद अदा न करके अपना गुजारा किया है। अगले वर्ष बेचने के लिए उसके पास सोना नहीं बचा है, इसलिए वह लगान और कर नहीं देगा। मैंने बताया कि मैं छोटा नागपुर में केवल ५ प्रतिशत लगान वसूल कर सका, पर वास्तव में अवस्था उतनी बुरी नहीं है। भारत में और चाहे जो हो, आगामी १५ वर्षों में उस समय तक शांति नहीं होगी जबतक मूल्यों का स्तर ऊंचा नहीं किया जायगा। परन्तु यदि राजनैतिक अशांति को दूर कर दिया जाय तो इस अशांति की स्थिति पर बहुत ही साधारण-सा प्रभाव पड़कर रह जायगा। मैंने उन्हें बताया कि मुझे यह सारा व्यापार बड़ा परेशान करने वाला भी लगता है और बड़ा सहज भी—सहज इसलिए कि हमारा ध्येय एक समान है। फिलहाल आरक्षणों और अभिरक्षणों सहित औपनिवेशिक स्वराज्य ही हम दोनों का लक्ष्य है। गांधीजी अभिरक्षणों के सम्बन्ध में चर्चा करना चाहते थे। इस विषय की चर्चा क्यों नहीं की गई और गांधीजी को अनेक मामलों पर विचार-विमर्श का अवसर क्यों नहीं दिया गया?

वह खामोश रहे। मैंने उन्हें बताने की चेष्टा की कि गांधीजी मुनासिब बात मानने को तैयार रहते हैं, और उन्हें यह भी बताया कि गांधीजी के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है। मैंने उन्हें बताया कि मैं गांधीजी को १९१६ से जानता हूं, १९२१ से उनका पक्का प्रशंसक रहा हूं और उनके साथ गोलमेज परिषद् में काम कर चुका हूं। मैंने यह भी कहा कि राजनैतिक और आर्थिक मामलों में मैं सरकार

का कड़ा आलोचक रहा हूं। यद्यपि मैंने सविनय अवज्ञा आदोलन में भाग नही लिया है और न उसमे रुपया ही लगाया है, तथापि मैंने भी सरकार को अस्त-व्यस्त करने की भरसक चेष्टा की है और गाधीजी के रचनात्मक कार्यों में हाथ खोलकर रुपया दिया है। अतएव मैं गाधीजी के मन की बात जानने का दावा करूं तो बेजा नहीं होगा। गाधीजी बड़े ही विवेकशील और बड़े ही विनयशील आदमी हैं। मैं मानता हूं कि काग्रेस की माग को पूरे तौर से स्वीकार करना सम्भव नही है, पर साथ ही ऐसा शासन-विधान अमल मे लाना सम्भव है, जिसे गांधीजी अस्वीकार न करें। ऐसा विधान अमल मे लाने से लाभ ही क्या, जो स्वीकार्य न हो ? वह मुझसे सहमत हुए और बोले कि कुछ भी सही, शासन-विधान तो आ ही रहा है। कहा, यदि शासन-विधान को निष्क्रिय रूप से भी मजूर न किया गया तो उसे अमल मे लाना ही बेकार है। मैंने कहा कि वह बहुत कुछ कर सकते हैं। मैंने गांधीजी का जो वर्णन किया था, उससे वह सहमत हुए। फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने उनसे गांधीजी की भूरि-भूरि प्रशसा की थी। उन्होंने बताया कि किस प्रकार उन्होंने आशका प्रकट की थी कि सम्भव है, गाधीजी से जल्दबाजी मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ करा दिया जाय, पर किस प्रकार फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने कहा कि ससार मे ऐसा कोई प्राणी नही है, जो गाधीजी से उनकी मर्जी के खिलाफ जल्दबाजी करा सके, पर यह अवश्य दुर्भाग्य की बात है कि अपने सहकारी लोगो के कारण उन्हें उलझन मे फसना पड़ता है। मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि उन्होंने वस्तुस्थिति को गलत समझा। गाधीजी को जल्दबाजी से काम लेने को बाध्य किया लार्ड विलिग्डन ने। भारत मे कोई विवेक-बुद्धिवाला आदमी मौजूद ही नही था। अब हेली विवेकशील आदमी हैं। वह स्वय (अर्थात् एण्डरसन) विवेकशील आदमी हैं। लार्ड विलिग्डन को गांधीजी से कोई सहानुभूति नही है। वह उन्हें जानते नही, उन्हे समझते नही। गवर्नर ने पूछा कि क्या गांधीजी व्यावहारिक व्यक्ति हैं ? मैंने उत्तर दिया, बेहद। उन्होने कहा कि उन्हे फिन्डलेटर स्टूआर्ट ने बताया है कि वह अधिक व्यावहारिक नही हैं। मैंने कहा कि एक पाश्चात्य मस्तिष्क के लिए गाधीजी-जैसे दार्शनिक मस्तिष्कवाले व्यक्ति का समझना कुछ कठिन है। उन्होने जानना चाहा कि क्या गाधीजी आरक्षण और अभिरक्षण स्वीकार करेंगे। सेना के सम्बन्ध मे मैंने उन्हें बताया कि हम जानते हैं कि हमें तुरन्त ही पूरा अधिकार नही मिलेगा, पर इस सम्बन्ध मे गाधीजी ऐसा फार्मूला रखेंगे, जो सबके लिए ग्राह्य होगा। आर्थिक मामलो मे हम एक ऐसे फैक्टरी के स्वामी जैसा आचरण करने को तैयार हैं, जिसने अपने डिबेन्चर बधक रख दिये हो। डिबेन्चर होल्डर को उस समय तक फैक्टरी के दैनिक कार्यकलाप मे टाग नहीं अडानी चाहिए जबतक उसे उसका रुपया नियमित रूप से मिलता रहे। मैं एक कदम और भी आगे बढा और भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ ठोस सुझाव

पेश किये। यदि गांधीजी को रिहा कर दिया जाय और आतंकवादी आन्दोलन की समस्या के सम्बन्ध में कोई संतोषजनक हल निकल आवे तो खिचाव दूर हो सकता है और गांधीजी के लिए सहयोग करना सम्भव हो सकता है। उन्होंने सारी बातों को बड़े ध्यान के साथ सुना और कहा, "आपको भारत के अनेक व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक जानकारी है।" उन्होंने दार्जिलिंग से लौटने पर मुझसे और भी बातचीत करने की इच्छा प्रकट की और कहा, "आप भी दार्जिलिंग चलें तो क्या बुराई है?" मैंने जाने का वचन दिया।

५. लार्ड लोदियन का भारत आगमन

सन् १९३२ में लार्ड लोदियन भारतीय मताधिकार समिति के अध्यक्ष बनकर भारत आये। वह इंडिया आफिस में पार्लामेंटरी उपसचिव थे और भारत में उन्हें बड़ी सहानुभूति थी। मेरी उनकी खुलकर बातचीत हुई और समिति की रिपोर्ट प्रकाशित होने से पहले मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। मेरी चेष्टा थी कि गांधीजी, जो उन दिनों जेल में थे, व्यावहारिक दृष्टि से विजयी सिद्ध हों, जिससे भविष्य में असहयोग-आंदोलन चलाने की आवश्यकता ही न रह जाय। किन्तु मेरी यह चेष्टा सफल न हो सकी। पत्र इस प्रकार था :

कलकत्ता
४ मई, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन,

समाचार-पत्रों में छपा है कि आपका मिशन पूरा हो गया और अब आप ११ तारीख को इंग्लैंड हवाई जहाज द्वारा वापस जा रहे हैं। आपकी समिति की रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी और मैंने जो कुछ सुना है उसके आधार पर मुझे आशा होती है कि वह संतोषप्रद सिद्ध होगी। आप भारत में अपने प्रति मैत्री की भावना उत्पन्न कर सके, यह भी कोई कम लाभ की बात नहीं है। ईश्वर से प्रार्थना है कि भारत के साथ आपके सम्पर्क के फलस्वरूप दोनों देशों का सम्बन्ध मधुर हो।

मैं अभी आपको वर्तमान अवस्था के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखना चाहता हूं। अपनी अवलोकन सम्बन्धी असाधारण क्षमता और मैत्रीपूर्ण अवबोध (appreciation) के फलस्वरूप आप भी हालत को उतना ही समझने लग गये हैं जितना

एक भारतीय के लिए सम्भव है। मैं आपको केवल इसलिए लिख रहा हूं कि इस नाजुक अवसर पर, जबकि अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का निपटारा होनेवाला है, इस तथाकथित दुहरी नीति की सफलता के सम्बन्ध में अपना संदेह प्रकट कर सकूं। जब हमने इस विषय की चर्चा कलकत्ता क्लब में की थी तो आपने विश्वास-पूर्वक कहा था कि भारत की सहायता करने का सबसे अच्छा मार्ग यही है कि सुधार जल्दी-से-जल्दी अमल में लाये जाय। मैंने यह बात उठाई थी कि ऐसे सुधारों से क्या लाभ, जब राष्ट्रवादी उनसे अलग रहेंगे ? बस, मेरे दिमाग में यही बात बार-बार उठ रही है। मैं एक प्रकार से निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि जबतक सुधारों को भारत के प्रगतिशील लोकमत का समर्थन प्राप्त नहीं होगा तबतक वे चाहे जैसे भी हों, सफल नहीं होंगे। मैं स्वीकार करता हूं कि फिलहाल एक उन्मूलक भारत और एक प्रतिक्रियावादी पार्लामेंट में समझौता शायद सम्भव न हो, पर अच्छी तरह विचार करने के बाद मुझे बोध होता है कि ऐसा शासन-विधान अमल में लाना असम्भव नहीं है, जिसे गांधीजी और उनके जैसे विचारों वाले व्यक्तियों की मूक सहमति प्राप्त हो। इससे कम-से-कम भारत को कुछ शांति तो मिलेगी, और यह विश्वास करने को मेरा जी नहीं करता कि कम-से-कम इस लक्ष्य की सिद्धि का कोई उपाय ढूंढ निकालना सम्भव नहीं है। मैं समझता हूं, इस उद्देश्य की सिद्धि दो प्रकार से हो सकती है : या तो गांधीजी का प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करके, या उनके अप्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा। गांधीजी और सर सेम्युअल होर में जो पत्र-व्यवहार चल रहा है उससे मुझे अधिक आशापूर्ण दृष्टिकोण अपनाने का प्रोत्साहन मिलता है। १९३० को असुविधा यह थी कि गांधीजी का शासकों से कोई सम्पर्क नहीं था। सौभाग्य से अब यह असुविधा दूर हो गई, अतएव यदि दोनों पक्षों में सद्भावना मौजूद हो तो रास्ता निकल सकता है।

अब हमें दोनों विकल्पों का विश्लेषण करना चाहिए। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि क्या उनका प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करना सम्भव है ? मैं तो इसे उतना कठिन नहीं समझता। फर्ज करिये, आर्डिनेंसों को पुनः जीवित नहीं किया जाय। वैसी अवस्था में गांधीजी की क्या स्थिति होगी ? कार्यकारिणी का अन्तिम प्रस्ताव था कि यदि आर्डिनेंसों के मामले में ठोस राहत न मिले तो सविनय अवज्ञा की जाय। यदि आर्डिनेंस दुबारा जारी नहीं किये जायेंगे तो अवस्था में आमूल परिवर्तन हो जायगा। फिर केवल सीमा प्रान्त और बंगाल की समस्याओं का हल बाकी रह जायगा। युक्तप्रान्त में जवाहरलालजी ने लगान में जितनी छूट की मांग की थी, मेरी समझ से उससे भी अधिक छूट दे दी गई है, इसलिए वहां नई कठिनाइयां उत्पन्न नहीं होंगी। अतएव यदि आर्डिनेंसों की अवधि न बढाई गई और गांधीजी को रिहा कर दिया गया, उन्हें वाइसराय से भेंट करने दी गई, बंगाल और सीमाप्रान्त में आर्डिनेंसों से उत्पन्न अवस्था पर विचार-विमर्श किया

गया, और इन दोनो स्थानो मे गुत्थी सुलझ गई तो उसके बाद विधान-रचना-कार्य में सहयोग और राजनैतिक बंदियो की रिहाई तो आनन-फानन मे हो जायगी। इस दिशा में मुझे एकमात्र कठिनाई यही दिखाई पड़ रही है कि भारतीय लोकमत गत वर्ष के मार्च मास की अपेक्षा कही अधिक कडवा है। सम्भव है, गाधीजी के लिए केवल आर्डिनेंसों की मियाद न बढाये जाने मात्र से कांग्रेस को सहयोग के लिए राजी करना कठिन हो। जनसाधारण का यह प्रश्न करना सम्भव है : "भारत को क्या मिला, जो हम सरकार के साथ शान्ति की बात करें ?" इसमें सदेह नही कि गाधीजी कांग्रेस को अपने पक्ष मे कर लेंगे, पर उसके लिए उन्हें कठोर प्रयास करना पड़ेगा।

दूसरा मार्ग अपेक्षाकृत अधिक आसान है। फर्ज करिये, आर्डिनेंसो की मियाद नही बढाई गई, वैसी अवस्था मे क्या यह सम्भव नही है कि कोई गाधीजी के मैत्रीपूर्ण पथप्रदर्शन के अनुसार विधान-रचना-कार्य में भाग ले ? इस प्रकार जो समझौता होगा उसे गाधीजी का अप्रत्यक्ष आशीर्वाद तो प्राप्त होगा ही। कह नही सकता, गाधीजी को यह तरीका कितना रुचेगा, पर मैं समझता हू, इसकी व्यावहारिकता की खोज करना ठीक ही होगा। कुछ भी कहिये, गाधीजी एकमात्र यही चाहते हैं कि अच्छा शासन-विधान प्राप्त हो, और यदि ऐसा विधान मिल सके, जो गाधीजी को नापसन्द न हो, तो विधान के निष्कंटक रूप से अमल मे आने की सम्भावना बहुत बढ जायगी।

मैं ये सारी बातें आपके विचारार्थ लिख रहा हू, क्योंकि मेरी प्रबल धारणा है कि यदि सरकार मुसलमानो, अस्पृश्यो और नरेशो पर निर्भर करके विधान अमल मे लाई और उसे राष्ट्रवादी भारत की सहमति प्रदान न हुई तो वह बहुत भारी भूल करेगी। वैसी परिस्थिति मे कशमकश जारी रहेगी और भारत को बहुत दिनो तक शाति नही मिलेगी। सरकार को केवल उसी हालत मे कांग्रेस की उपेक्षा करनी चाहिए, यदि उसका यह इरादा हो कि कोई ठोस प्रगति नही करनी है और इस दुहरी नीति को देखकर जनसाधारण को स्वभावतया ही सरकार की नीयत पर संदेह होता है, और उसे जिज्ञासा होती है कि कांग्रेस के सहयोग की उपेक्षा करने का और क्या कारण हो सकता है ? कलकत्ते में जो धारणा व्याप्त है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि गैर-सरकारी यूरोपियन तक यह प्रश्न उठा रहे हैं कि सुधारों को अमल मे कौन लायगा ? परसों के 'इंग्लिशमैन' में जो अग्रलेख निकला उसमे भी यही भाव व्यक्त किये गये हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि सरकार ऐसी कोई भूल न करे, और कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए सभी उपायो को खोज निकाला जाय।

आपकी सकुशल समुद्र-यात्रा की कामना करता हूं और आपकी रिपोर्ट प्रकाशित होने पर आपको बधाई भेजने की आशा करता हूं।

मैं १० तारीख को सर जान एंडरसन से मिल रहा हूँ। आपको जो कुछ लिखा है, उन्हें भी बताने का इरादा है।

भवदीय
घ० दा० बिड़ला

लार्ड लोदियन ने मुझसे वचन दिया कि भारत-सचिव के इंग्लैंड लौटते ही वह इन विषयों को लेकर उनसे बातचीत करेंगे।

१८ मई, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन,

आपके १८ तारीख के पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। आशा है, आपकी यात्रा बड़ी सुन्दर और आनन्ददायक सिद्ध हुई होगी। क्या आपको यह यात्रा समुद्र-यात्रा की अपेक्षा अधिक अच्छी लगी? कम-से-कम मुझे तो हवाई जहाज से यात्रा करना अच्छा नहीं लगता।

कांग्रेस के आत्मत्याग के सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा, बड़ा ही सुन्दर रहा। ऐसे उद्‌गारों का जो अच्छा प्रभाव पड़ता है, उसका ठीक-ठीक अन्दाजा लगाना सम्भव नहीं है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैंने अपने पत्र में जिन बातों को उठाया है उनकी चर्चा आप भारत-सचिव के साथ करेंगे। मुझे ऐसा लगता है कि यहां रवैया में परिवर्तन होनेवाला है, पर सम्भव है, यह मेरा ख्याली पुलाव-मात्र हो। मैंने अपने पिछले पत्र में जो कुछ कहा है उसकी पुष्टि में मुझे इतना और कहना है कि नेताओं की रिहाई के बगैर साम्प्रदायिक प्रश्न तक के निपटारे की सम्भावना नहीं है। यह प्रसन्नता की बात है कि अभी तक सरकार ने हस्तक्षेप नहीं किया है, और मेरी समझ में श्री जयकर, डा० मुंजे या पंडित मालवीय जैसे हिन्दू-सभाई नेताओं के लिए मुसलमानों की मांगों के स्वीकार किये जाने के लिए आवश्यक बुनियादी तैयारी करना सम्भव नहीं है। यह अकेले गांधीजी के बूते की बात है, और जबतक गांधीजी और अधिकांश नेता जेल में बन्द हैं तबतक सरकार का भारतीयों को इस मामले का निपटारा करने में असमर्थ रहने के लिए दोष देना बेकार है। आप पूछ सकते हैं कि गांधीजी के लंदन के लिए रवाना होने से पहले ही भारत में इस प्रश्न का निपटारा क्यों नहीं कर लिया गया? मैं इस अभियोग को आंशिक रूप में स्वीकार करता हूं, पर मेरा कहना है कि भारतीयों ने सांप्रदायिक फूट को दूर करने की आवश्यकता को जितना अब समझा है, उतना पहले कभी नहीं समझा था। मेरी समझ में यदि नेताओं को रिहा कर दिया जाय और सारे महत्वपूर्ण मामलों पर शांत भाव से विचार करने योग्य वातावरण तैयार कर

दिया जाय तो साम्प्रदायिक समझौते की सम्भावना बहुत बढ जायगी और साम्प्रदायिक मामले के निपटारे के बाद यदि सर सेम्युअल होर गांधीजी को आगामी सितम्बर मास में लदन बुला लें और उनसे अर्विन-प्रणाली के अनुरूप बरताव करें तो मैं समझता हूं कि हम लोग बहुत-कुछ प्रगति कर सकेंगे।

एक और ऐसी समस्या है, जिसकी ओर गम्भीर भाव से ध्यान देना आवश्यक है : वह है आर्थिक मंदी। मुझे आशंका है कि इग्लैड मे इस बात को अच्छी तरह नहीं समझा जा रहा है कि भारत में कैसी नाजुक अवस्था उत्पन्न हो गई है। यदि मूल्यों का स्तर अच्छी तरह ऊंचा नही उठा तो मुझे भय है कि अगले वर्ष मे परले दर्जे की अव्यवस्था हुई रखी है। मैंने इसकी चर्चा सर जान एडरसन से भी की थी और मैं समझता हूं उन्होंने अवस्था की गुरुता को समझा भी।

ओटावा-परिषद् तो आरम्भ से ही एक प्रकार से स्मशान-भूमि के सुपुर्द हो गई। सरकार को अपने ही ढंग से काम करने की टेव-सी है। १६३० मे रेनी रुई की चुगी के मामले मे ब्रिटेन के पक्ष मे अधिमान देना चाहते थे, यद्यपि भारत का समूचा व्यापारी-समुदाय इसके खिलाफ था। परिणाम जो हुआ, हम सब जानते ही हैं। इस बार भी ओटावा-परिषद् में भारतीय व्यापारी वर्ग के मनोभावो के विपरीत कुछ करने की बात सोची जा रही है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि ओटावा-परिषद् के खिलाफ लोकमत इतना प्रबल हो उठा है कि सम्बद्ध विषयो पर उन्ही के गुण-दोषों के अनुरूप शातभाव मे विचार करना असम्भव हो गया है। मैत्रीपूर्ण समझौते के द्वारा क्या कुछ प्राप्त करना सम्भव था, इसका अदाजा तो मैनचेस्टर में अधिमान के पक्ष मे गांधीजी के उद्‌गारो से ही लग सकता था, पर भारत में सरकार उचित मनोवृत्ति के साथ काम करना तो चाहती ही नही। वह तो चीज लादना चाहती है। यह सब मैं आपको यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि किस प्रकार भारत मे यदाकदा व्यवहार-कुशलता के अभाव के कारण उपद्रव हुआ करते हैं।

मुझे आपके इन मनोभावो से बड़ा ही आह्लाद हुआ कि नवीन विधान के द्वारा विधान के मुख्य अंगों को समान रूप से अधिकार मिलने चाहिए।

आपने पूछा है कि क्या मेरा इन गर्मियों मे लंदन में आपसे मिलना सम्भव है ? मैं यही प्रश्न तो आपसे करना चाहता हूं। आप गांधीजी को बुलाइये, हम सब भी साथ हो लेंगे।

आशा है, आप सानन्द हैं।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

उसी साल १६ जुलाई को मैंने सर जॉन एन्डरसन से मुलाकात करके उनकी

और गांधीजी की भेंट कराने की चेष्टा की। सर जॉन इस बात के लिए बड़े उत्सुक थे कि अपने कार्यकाल मे वह गाधीजी से मिल लें। सच पूछिये तो प्रायः सभी ब्रिटिश गवर्नर ऐसा ही चाहते थे, यद्यपि उनमे से कुछ सिर्फ कौतूहलवश ऐसा करना चाहते थे। वे यह नही चाहते थे कि उन्हे अपने देश लौटकर यह कहना पड़े कि भारत के सबसे महान् व्यक्ति से उनकी मुलाकात नही हुई; पर जहा तक सर जॉन एन्डरसन का सम्बन्ध था, उनमे सिर्फ कौतूहल की भावना नही थी, वह तो कई गम्भीर कारणो से गांधी से मिलने के इच्छुक थे। किन्तु वाइसराय लार्ड विलिंग्डन प्रान्तीय गवर्नरो के गांधीजी से मिलने पर राजनैतिक दृष्टिकोण से आपत्ति किया करते थे। फिर भी मुझे यह कहते खुशी होती है कि सर जॉन और गांधीजी के बीच मुलाकात हुई, यद्यपि वह बड़ी ही कठिनाइयो और परेशानियो के बाद सम्भव हो पाई। इन कठिनाइयो और परेशानियो से आसानी के साथ बचा जा सकता था। मैंने उनसे प्रस्ताव किया था कि मुझे गाधीजी से जेल मे मिलने दिया जाय। इन दिनो की मेरी डायरी मे, जो कभी लिखी गई और कभी नही लिखी गई, सर जॉन से की गई मेरी बातचीत के बारे मे यह संक्षिप्त नोट दर्ज है :

"१६ जुलाई, १६३२ को जॉन एन्डरसन के साथ मुलाकात...उन्होने बताया कि वह वाइसराय से दो बार बात कर चुके हैं...वाइसराय को आपत्ति नही है...जॉन एन्डरसन लिखेंगे...मैंने कहा, गाधीजी अनुमति बगैर राजनीति की चर्चा नही करेंगे...जॉन एन्डरसन ने उत्तर दिया कि मैं वाइसराय के नाम चिट्ठी और उनका उत्तर दिखा सकता हू।...मैं स्वय अपने पथप्रदर्शन के लिए जाता हू...यह स्पष्ट हो ही जायगा...उन्होने मेरे भाषण की चर्चा की...मैंने उत्तर दिया कि वास्तव मे वह मुलाकात थी...उन्होंने मेरी स्थिति को समझा...मैंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि हमारा भाग लेना गाधीजी पर निर्भर करता है...हम लोग खुद कुछ नही कर सकते...मैंने सुझाया कि आर्डिनेंस के बावजूद गाधीजी को आमन्त्रित क्यो न किया जाय...उन्होंने कहा, अनुदार दलवाले अड़चन पैदा करेंगे...मैंने कहा, इसकी समाप्ति कैसे होगी...वह सहमत हुए...आर्थिक मामलो की चर्चा हुई...उन्होंने कहा, आबकारी की चुगी पर बातचीत की जा रही है।

इसके बाद गाधीजी का आमरण अनशन आरम्भ हुआ।

इस समय मेरी मुख्य चिन्ता यह थी कि गाधीजी को जेल से छुड़ा लिया जाय। उन्होंने जेल मे हरिजनों के मताधिकार के प्रश्न पर अनशन शुरू कर दिया था। मैंने सर तेज बहादुर सप्रू, सर सेम्युअल होर और लार्ड लोदियन को निम्नलिखित तार भेजे :

जरूरी तार

सर तेज बहादुर सप्रू, इलाहाबाद

अनुरोध करता हूं, आप गांधीजी की रिहाई के लिए चेष्टा करिये। मैं समझता हूं अस्पृश्यों के साथ समझौता करने से संकट टल सकता है, पर यह केवल गांधीजी के व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त उनकी रिहाई से अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की भी सिद्धि होगी। इसलिए आशा है, आप सभी आवश्यक कार्रवाई करेंगे।

घनश्यामदास बिडला

समुद्री तार

सर सेम्युअल होर

इडिया आफिस, लंदन

सकट इतना गभीर है कि आपको यह तार भेजना कर्त्तव्य समझता हूं। मेरी विनम्र सम्मति मे यदि सरकार सचमुच सहायता करे तो समस्या हल हो सकती है। सबसे पहले गाधीजी को अन्य प्रमुख नेताओ के साथ तुरन्त रिहा कर देना चाहिए। गांधीजी की उपस्थिति अस्पृश्यों के साथ समझौता करने में बड़ी सहायक होगी। बाद को सरकार को इस समझौते की पुष्टि करनी चाहिए। इससे अन्य महत्त्वपूर्ण समस्याओ के हल का मार्ग भी खुल जायगा। अतएव अनुनय है कि गाधीजी की रिहाई मे विलम्ब न किया जाय। कहना अनावश्यक है, उनकी मृत्यु भारत के लिए ही नही, समूचे साम्राज्य के लिए दुर्भाग्य की बात होगी। व्यक्तिगत रूप से विश्वासपूर्वक कह सकता हू और आशा है, आपका भी यही विश्वास है कि वह ब्रिटेन के भी उतने ही बड़े मित्र हैं, जितने भारत के।

जी० डी० बिड़ला

८, रायल एक्सचेंज प्लेस

१३.९.३२

इस अंतिम तार के उत्तर मे मुझे इंडिया आफिस से यह पत्र मिला :

इडिया आफिस

ह्वाइट हॉल

१४ सितम्बर, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला,

मैं आपको यह पत्र यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि सर सेम्युअल होर के नाम आपका १३ सितम्बर का तार मिल गया है। इस समय सर सेम्युअल

वालमोरल केसल गये हुए हैं, वही आपका तार भेज रहा हू।

भवदीय
डब्ल्यू० डी० क्रोपट

मैंने लार्ड लोदियन को जो तार भेजे थे उनकी शायद कोई नकल मैंने नही रखी है; पर मुझे उनकी पहुंच की निम्नलिखित सूचना मिली। वाद मे मैंने उन्हे नीचे लिखा पत्र भेजा .

इंडिया आफिस
ह्वाइट हॉल
१४ सितम्बर, १९३२

प्रिय श्री बिड़ला,

लार्ड लोदियन ने मुझे आपके १३ सितम्बर के तार की, जिसमे आपने बताया है कि गाधीजी का अनशन करने का विचार है, पहुच स्वीकार करने की आज्ञा दी है। उन्होने आपके तार की नकल लार्ड अरविन के पास भेज दी है।

१६ सितम्बर, १९३२

प्रिय लार्ड लोदियन,

मैंने आपके पास गाधीजी की रिहाई के सम्बन्ध मे एक तार भेजा था और मैं समझता हू, आपके पास ऐसे ही और बहुत सारे तार पहुचे होगे। मैंने सर सेम्युअल के पास भी ऐसा ही तार भेजा था, और आज सुबह के पत्रों में देखता हूं कि गाधी-जी को कुछ शर्तों पर रिहा किया जायगा। ये शर्तें उनके अनशन आरम्भ करने के वाद लागू होगी। यह कुछ हद तक ठीक ही हुआ, पर मुझे कहना पडता है कि इस मामले मे भी काम भौंड़े ढग से किया गया। यदि सरकार उन्हे तुरन्त और वगैर किसी शर्त के रिहा कर देती तो उसका कुछ बिगड़ता नही। यदि सरकार उनके कुछ प्रमुख सहयोगियो को भी रिहा कर देती तो और भी अच्छा रहता, क्योकि इस सकट के अवसर पर सभी को उनकी सहायता की जरूरत पडेगी। प्रधान मंत्री की तर्कशैली समझ मे नही आई। वह सर्वसम्मत समझौता चाहते हैं; पर इस वृद्ध को वम्बई तट पर पांव रखते ही जेल मे ठूस देते हैं और मरणासन्न अवस्था मे रिहा करते हैं। ऐसी अवस्था मे सर्वसम्मत समझौता क्योकर सम्भव है, यह साधारण कोटि के मनुष्यो की समझ के बाहर की बात है। इस गर्मी के लिए क्षमा करियेगा, पर जब हम देखते हैं कि इस सकट के अवसर पर अच्छे ढंग से पेश आने के बजाय सरकार स्थिति को और भी कठिन बना रही है, तो हमारे चित्त की अवस्था का आप खुद अन्दाजा लगा सकते हैं।

आप जैसी भी सहायता कर सकते हैं, अवश्य करिये। हमें सलाह भी दीजिये। मैं कुछ हफ्ते गांधीजी के पास रहूंगा और बम्बई में मेरा पता "बिड़ला हाउस, मलाबार हिल, बम्बई" रहेगा। आप मन्त्री अवश्य हैं, पर मुझे आशा है कि आप सरकारी कायदे-कानून की परवा न कर यथासम्भव हमारी सहायता करेंगे।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

अम्बेदकर के साथ किये गए समझौते के इतिहास का ब्योरा यहां देने की आवश्यकता नहीं है। उसे सम्पन्न कराने में मेरा काफी हाथ था।

६. फिर संरक्षण

सर सेम्युअल होर के इस समय के रुख से मुझे बड़ी निराशा हुई। जब गाधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के लिए लंदन गये थे तब तो ऐसा लगा था कि उनके महत्त्व को सर सेम्युअल कुछ-कुछ समझते हैं; पर अब ऐसा मालूम दे रहा था जैसे वह इस बात को समझ ही नहीं पा रहे हैं कि ब्रिटिश सरकार की कोई भी योजना, या भारत के लिए विधान बनाने का कोई भी वचन, उस समय तक सफल नहीं हो सकता, जबतक वह गाधीजी को पसन्द न हो। इसलिए मैंने सर सेम्युअल को एक पत्र लिखा, जिसमें मैंने अपनी निराशा की भावना साफ-साफ व्यक्त कर दी। पत्र लिखने का तात्कालिक कारण वह निमन्त्रण था, जो सर सेम्युअल ने गोलमेज-परिषद् की आर्थिक और व्यावसायिक संरक्षणों की विशेष समिति मे भाग लेने के लिए मुझे भेजा था। मैंने अपने पत्र में लिखा :

बिड़ला हाउस, नई दिल्ली
२ नवम्बर, १९३२

प्रिय सर सेम्युअल,

आज मुझे बंगाल के गवर्नर महोदय के पास से तार मिला है, जिसमे उन्होंने मुझे आपकी ओर से उस विशेष उपसमिति मे भाग लेने को आमन्त्रित किया है, जो आर्थिक और व्यापारिक अभिरक्षणों पर विचार करने के लिए नियुक्त की जाने वाली है। मैं इस निमन्त्रण के लिए आभारी हूं, और इस विचार-विमर्श मे भाग लेने में मुझे प्रसन्नता होती; पर कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं, जिनके कारण मेरा भाग

लेना कठिन हो गया है। उन कठिनाइयों को कुछ विस्तार के साथ दे रहा हूं। आशा है, आप इसे ठीक ही समझेंगे।

मैंने जो गत मार्च मास मे अपने प्रभाव से काम लेकर भारतीय वाणिज्य-उद्योग-सघ को एक निर्दिष्ट पथ अपनाने को राजी किया था सो एक निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर ही किया था। बहुत सम्भव है, वह उद्देश्य कुछ स्वार्थपूर्ण रहा हो; पर वह मौजूद अवश्य था, और मैंने सोचा था कि आपको अपने लोगों का सहयोग प्रदान करके—वह सहयोग चाहे कितना ही मर्यादित क्यो न हो—मैं आपको विश्वास दिला दूगा कि हम लोग सच्चे मित्र हैं और दोनो देशों मे स्थायी मैत्री स्थापित करने को हृदय से उत्सुक हैं। मैंने समझा था कि जहा एक बार आपका हमारे ऊपर विश्वास जमा कि हमारे लिए आपको यह दिलजमई करना कठिन नही होगा कि हमारी सलाह कितनी विवेकपूर्ण है। इस उद्देश्य मे मैं पूर्णतया असफल रहा।

मेरे १४ और १८ मार्च, १९३२ के पत्रो के उत्तर मे आपने अपने ८ अप्रैल, १९३२ के पत्र में लिखा था कि आप मुझे फिर लिखेंगे, पर मुझे उसके बाद कोई पत्र नही मिला। आपने ओटावा-परिषद् और भारतीय व्यापारियों के सहयोग के प्रश्न पर मुझसे सलाह लेने की अनुकम्पा दिखाई, और मैंने सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास को ओटावा जाने को राजी किया, पर जिस ढंग से पत्र-व्यवहार अचानक बन्द कर दिया गया और भारत सरकार ने जो रवैया अख्तियार किया, उससे मेरी स्पष्ट धारणा हो गई कि हमारा मैत्री का आश्वासन स्वीकार नही किया गया है। ओटावा के सम्बन्ध मे भारतीय वाणिज्य-उद्योग-सघ की बिलकुल उपेक्षा की गई, और जब आपने विधान-विषयक कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध मे वक्तव्य दिया और कहा कि आर्थिक अभिरक्षणो की चर्चा विशेषज्ञों की समिति करेगी, तब भी मुझे पता तक नही था कि आप क्या कार्य-प्रणाली अपनाने जा रहे हैं। मुझे तो अब भी विशेष उपसमिति के गठन और अधिकारियो के सम्बन्ध में कुछ पता नही है। और, किसी बात का पता न होते हुए भी मुझसे वक्त-बे-वक्त कहा जा रहा है कि लदन को रवाना हो जाऊ, जबकि भारतीय व्यापारी-वर्ग की पूर्ण उपेक्षा की गई है और सब चिढे हुए हैं। मैंने वह प्रस्ताव अपने मण्डल मे स्वय संयोजित किया था, इसलिए जबतक मुझे यह विश्वास न हो जाय कि स्वतत्र रूप से आचरण करने से मैं प्रस्ताव की आत्मा के विरुद्ध नही जा रहा हूं, तबतक मेरे लिए वैसा करना ईमानदारी का काम नही होगा। यदि मैं प्रस्ताव की आत्मा के प्रति बलात्कार करूगा तो स्वयं अपनी दृष्टि मे गिर जाऊगा। मुझे आशा है कि आप इस बात को और सबसे पहले समझ लेंगे।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं किसी प्रकार की शिकायत नही कर रहा हूं। मैं तो इस बात का क्षण-भर के लिए भी दावा नही कर सकता कि भारत-

सचिव मुझे भेद की बातें बता दें। सम्भव है, आपको यह बताया गया हो कि भारत-सचिव को मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के साथ पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिए, और इसी कारण पत्र-व्यवहार का अन्त हो गया हो। खुद मुझे भी आपको सीधे लिखने का साहस नहीं होता; पर आपने लंदन में मुझे निश्चिन्त करने की ओर यह सुझाने की कृपा की थी कि मुझे जब कभी कोई उपयोगी बात कहनी हो, मैं आपको पत्र लिख सकता हूं। अतएव मैं किसी तरह की शिकायत नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल यही बताना चाहता हूं कि दूसरी ओर से उत्तर न मिलने पर किसी आदमी के लिए किसी प्रकार का उपयोगी कार्य करना कितना कठिन हो जाता है। इसलिए जबतक हम लोगों को मित्र के रूप में ग्रहण नहीं किया जायगा और वास्तविक शांति-प्रस्थापन की दिशा में उपयोगी कार्य करने के लिए हमें कुछ ढील न दी जायगी तबतक मेरे या सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के लंदन जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

यहां मैं यह बता दूं कि 'ढील' से मेरा क्या अभिप्राय है। मैं आपका ध्यान संघ के तीसरे प्रस्ताव के 'अ' पैरे की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जिसका आरम्भ 'कोई वास्तविक इच्छा नहीं है' से होता है। मैंने इन शब्दों का हमेशा अपना ही अर्थ लगाया है। मेरी धारणा है कि हम व्यापारियों का प्रभाव सीमित है; पर यदि उसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो उससे काफी सहायता मिल सकती है। अतएव मैंने वास्तविक इच्छा का यही अर्थ लगाया है कि जब कभी सरकार हमारे प्रभाव का ठीक-ठीक उपयोग करना चाहेगी उसका मतलब यही लिया जायगा कि भारत के प्रगतिशील लोकमत के साथ समझौता करने की उसकी वास्तविक इच्छा है, और मेरा निवेदन है कि आर्थिक चर्चा में भाग लेने देना मात्र हमारे प्रभाव का ठीक-ठीक उपयोग करना नहीं है। यदि हमें समर्थन प्राप्त नहीं होगा तो मैं या सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास इंग्लैंड में क्या करेंगे? भारतीय व्यापारी समाज हमारा समर्थन नहीं करेगा। मेरे मित्र सर पुरुषोत्तमदास की आलोचना आरम्भ हो ही गई है, और चूंकि हम लोग राजनीतिज्ञ नहीं हैं, इसलिए हम राष्ट्रवादी वर्ग के समर्थन का दावा नहीं कर सकते। अतएव यदि हम लंदन में कुछ अभिरक्षणों को स्वीकार करने का निश्चय कर लें तो भी जहां तक, भारतीय लोकमत का सम्बन्ध है, वह निश्चय किसी पर लागू नहीं होता। अतः यदि हम किसी प्रकार के समर्थन के बगैर काम करेंगे तो अवस्था और भी बिगाड़ देंगे। हम लोग उचित समर्थन-सहित बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे, और उसके बगैर, बिलकुल बेकार। हम केवल इसी तरह उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं कि इस अभिरक्षण-सम्बन्धी चर्चा में भाग लेने से पहले हमें इस मामले में ढील दी जाय कि हम गांधीजी को नये विधान में साथ देने को राजी करने में अपने प्रभाव से काम लें, बशर्ते कि हम उससे संतुष्ट हों, और मेरा निवेदन है कि वैसी परिस्थिति उत्पन्न करने

में हमारी सेवाए बडी उपयोगी सिद्ध होगी। मैं मानता हू कि मंत्रिमडल के लिए गाधीजी की माग पूरी तौर से स्वीकार करना शायद संभव नहीं होगा, पर मेरा कहना यह है, और मैंने अपने अन्तिम पत्र मे भी यही बात कही थी कि वर्तमान अनुदार पार्लमिट तक के लिए ऐसा विधान देना तो सम्भव है ही कि वह काग्रेस को ग्राह्य न होने पर भी गाधीजी द्वारा रद्द न किया जाय। मुझे आशा है, आप ऐसी स्थिति की कल्पना स्वय कर लेंगे, जिसमे उन्ही लोगो की सदाकाक्षा अथवा सहयोग के बगैर विधान अमल मे लाया जाय, जो श्री चर्चिल के हाल मे व्यक्त किये शब्दों मे "राजनैतिक भावनाओ को शात अथवा उद्दीप्त करने में समर्थ हैं।" मैं यह बात आत्मविश्वास के साथ लिख रहा हू, क्योंकि मैं गांधीजी को हमेशा समझौते मे विश्वास रखने वाला जानता आ रहा हू। आप उनके घनिष्ठ मित्र हैं ही, इसलिए आप यह बात समझ ही लेंगे।

उनके उपवास आरम्भ करने से पहले मैंने उनसे मिलकर स्थिति के सम्बन्ध मे बातचीत करने की अनुमति प्राप्त करने की चेष्टा की थी, और सर जॉन एंडरसन ने मेरी सहायता भी की थी। पर मैं सरकार की अनुमति प्राप्त नही कर सका। इसके बाद उनके उपवास के आरम्भ करने के थोडे ही पहले मुझे उनसे बात करने का अवसर मिला; पर उस समय तक अन्य बाते अपेक्षाकृत कही अधिक महत्त्व धारण कर चुकी थी, इसलिए मैंने रुकना मुनासिब समझा। उपवास के दौरान वह अत्यन्त दुर्बल हो गये थे, इसलिए मैंने उनकी शक्ति पर भार डालना ठीक नही समझा। उपवास के बाद सारी मुलाकातें बन्द कर दी गईं, पर मुझे अस्पृश्यता निवारण-कार्य के सिलसिले मे उनसे मिलने की इजाजत मिल गई। मैंने उनसे चार घटे तक बातचीत की, पर किसी प्रकार की सविस्तर राजनैतिक चर्चा मे उन्होंने दिलचस्पी नही ली। उन्होंने कहा, और ठीक ही कहा कि मुझे इन बातो की चर्चा नही करनी चाहिए। परन्तु उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से इगित कर दी कि वह शांति-प्रस्थापन के लिए अत्यन्त उत्सुक है, और उन्होंने वचन दिया कि यदि मैं इन विषयो की चर्चा करने की अनुमति प्राप्त कर लूगा तो वह मुझे कुछ लिखकर देंगे। मैंने एक बार फिर हिज़ एक्सोलेंसी सर जान एण्डरसन से सहायता की याचना की, और उन्होंने एक बार फिर शिमला को लिखने का वचन दिया। उन्होंने ऐसा किया भी होगा, पर उसका कोई फल नही निकला। इस समय स्थिति यह है कि अस्पृश्यता-निवारण-विषयक कार्य से सम्बन्ध रखने वाले पत्र-व्यवहार तक पर बन्दिश लगा दी गई है। आशा है, यह प्रतिबन्ध उठा लिया जायगा। मैंने एक पखवाड़े पहले एक पत्र लिखा था, जिसमें अस्पृश्यता-सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नो की चर्चा की गई थी, पर वह यरवदा मे अभी वैसे ही पडा है। आप शायद जानते ही होंगे, मैं अस्पृश्यता-निवारक सघ का प्रधान नियुक्त हुआ हू और हमे देश के कोने-कोने मे आश्चर्यजनक सफलता मिल रही है। परन्तु इस विशुद्ध

रचनात्मक और सामाजिक कार्य तक में सरकार हमारे साथ 'अस्पृश्यों' जैसा व्यवहार कर रही है। जब ऐसा वातावरण फैला हुआ है तो आप एक व्यावहारिक आदमी के नाते यह आशा कैसे कर सकते हैं कि सुधारों से कुछ भलाई होगी ? विधान अमल में लाने से पहले विश्वास के वातावरण की दरकार है।

मैंने कुछ विस्तार के साथ लिखा है, और ऐसा करने का मुझे साहस इसलिए हुआ कि मेरा विश्वास है कि अड़चन व्हाइट हॉल ने नहीं, शिमला ने पैदा की है। मैं आपकी कठिनाइयों को अच्छी तरह समझता हूं, पर मेरा कहना यही है कि पारस्परिक सहयोग के द्वारा उनपर काबू पाया जा सकता है। यह स्पष्ट ही है कि आप सचमुच ठोस काम चाहते हैं, अन्यथा आप आर्थिक अभिरक्षणों की चर्चा के लिए समिति नियुक्त नहीं करते। पर मैं एक ऐसे आदमी के नाते, जो आपका बड़ा आदर करता है, यही सलाह दूंगा कि आप सुधार जारी करने से पहले गांधी-जी का वचन प्राप्त करें, और इस क्षेत्र में मैं दिलोजान से आपके साथ काम करने को तैयार हूं। बाद को मैं आर्थिक अभिरक्षणों के मामले में भी सहायता करूंगा। यदि मुझे अनुमति मिल गई तो मैं गांधीजी से इन विषयों की इस प्रकार चर्चा करूंगा कि किसी को कानोंकान खबर न हो, और न अटकलबाजी का बाजार ही गर्म हो। उनका सहयोग किस प्रकार प्राप्त किया जाय, इस निमित्त चर्चा करने के लिए मैं लंदन तक आने को तैयार हूं। पर मैं उस आदमी-जैसा ढोंग नहीं रखना चाहता, जो कुछ सामर्थ्य न रहते हुए भी वैसा भाव जतावे।

आशा है, मैंने स्थिति अच्छी तरह स्पष्ट कर दी है। आशा है, यह पत्र जिन मनोभावों से प्रेरित होकर लिखा गया है उन्हीं के साथ इसे ग्रहण किया जायेगा।

मैंने आपका निमंत्रण और यह पत्र दोनों गुप्त रखे हैं।

संघ के प्रस्ताव की एक प्रति भी साथ भेज रहा हूं, जिससे आपको हवाले के लिए कष्ट न उठाना पड़े।

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

७. हरिजनोत्थान-कार्य

गांधीजी यरवदा जेल में ही हरिजनों के काम में लग गये थे। इस समय हम लोग 'अखिल भारत हरिजन-सेवक संघ' की स्थापना कर रहे थे। मैं उसका अध्यक्ष

वना और इस हैसियत से मैंने डाक्टर विधानचंद्र राय को संघ की बंगाल-शाखा का अध्यक्ष बनने को कहा। डाक्टर विधानचंद्र राय, जो कि इस समय पश्चिमी बगाल के मुख्य मत्री हैं, इस पद के लिए मुझे बहुत ही उपयुक्त मालूम हुए, क्योंकि वह हरिजनों के उद्धार के प्रबल समर्थक तो थे ही, साथ ही गाधीजी के पक्के अनुयायी और उनके सलाहकार-चिकित्सक भी थे। कुछ लोगों की राय थी कि डाक्टर राय राजनीति मे भाग लेते है, इसलिए उन्हे संघ का अध्यक्ष चुनने से इस विशुद्ध सामाजिक और मानवीय आन्दोलन मे अवाछनीय राजनैतिक पुट आ जायगा। गाधीजी ने पहले तो डाक्टर राय के अध्यक्ष चुने जाने का समर्थन किया; पर बाद मे आलोचकों की टीका-टिप्पणी सुनकर अपना विचार बदल दिया और डाक्टर राय को एक पत्र लिखकर उनसे अध्यक्ष-पद से हट जाने को कहा। डाक्टर राय ने जो उत्तर दिया, उसमे क्रोध की मात्रा कम, क्षोभ की अधिक थी, और उनके विरोध का ढग भी इतना मर्यादापूर्ण था कि उससे गाधीजी के विचारों में फौरन परिवर्तन आ गया। उन्होंने जो-कुछ लिखा था, उसे उन्होंने बिना किसी शर्त के वापस ले लिया और डाक्टर राय से अपने पद पर बने रहने का अनुरोध किया। आज शायद इस सारी घटना का कोई बड़ा महत्त्व नही है, फिर भी इसका उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि इससे न केवल गाधीजी की भावुकता का ही, अपितु उनके उदार स्वभाव का भी एक दृष्टात मिलता है, और यह भी पता चलता है कि हम सब किस प्रकार उनके प्रेम की डोर मे बधे हुए थे। मित्रो की बातें सुनते समय जहा वह सहृदयतापूर्ण भावुकता व्यक्त किया करते थे, वहा बडी समस्याओ और सिद्धान्तो की बात आने पर अपनी इस्पात-जैसी न झुकनेवाली आत्मशक्ति का भी परिचय देते थे।

नवम्बर महीने के अत मे जेल से लिखे गये गांधीजी के पत्र से प्रकट होगा कि हमारी सस्था का नाम उन्होंने ही चुना था ·

यरवडा मन्दिर
२८-११-३२

भाई घनश्यामदास,

शिंदेजी की बड़ी शिकायत है कि हमने उनकी सस्था का नाम चुरा लिया। यह शिकायत ठीक मालूम होती है। हमको काम के साथ काम है, नाम के साथ नही, इसलिए मेरी सूचना है कि हम अखिल भारत हरिजन-सेवा-सघ नाम रखें और अंग्रेजी और देशी भाषा मे यही नाम रखें। तुम आ तो रहे हो लेकिन शायद यह तुम्हें वक्त पर मिल जायगा।

बापू के आशीर्वाद

यह पत्र मुझे और डाक्टर राय को आगे बढ़ने के लिए हरी झंडी स्वरूप था। पर टीका-टिप्पणी करनेवाले कब चुप बैठनेवाले थे? जल्दी ही गाधीजी ने डाक्टर राय को यह पत्र लिखा :

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
७ दिसम्बर, १६३२

प्रिय डाक्टर विधान,

मैंने बंगाल के अस्पृश्यता-निवारक बोर्ड के सम्बन्ध मे श्री घनश्यामदास बिड़ला और सतीशबाबू से देर तक बात की। मेरे पास बंगाल से कई पत्र भी आये हैं, जिनमे बोर्ड के गठन के सम्बन्ध मे शिकायत की गई है। बोर्ड के गठन से पहले घनश्यामदास ने मुझे बताया था कि वह इसके लिए आपसे कहेंगे, मैंने भी बात पर पूरी तौर से विचार किये बगैर उनके सुझाव का अनुमोदन कर दिया था। पर अब देखता हूं कि बगाल मे यह विचार नही रुचा, खासतौर से सतीशबाबू और डाक्टर सुरेश को। उनकी धारणा है कि बोर्ड दलबन्दी से मुक्त नही रह सकता है। नही जानता कि उनकी यह आशंका कहां तक ठीक है, पर मैं इतना तो अवश्य जानता हूं कि अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में किसी भी प्रकार की दलबन्दी को प्रश्रय नही मिलना चाहिए। हम तो यही चाहते हैं कि जो कोई भी संस्था बने, सुधार की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को उसके साथ हृदय से और स्वतंत्रतापूर्वक सहयोग करना चाहिए। इसलिए मेरा यह सुझाव है कि आप विभिन्न दलों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कार्यकर्त्ताओ की एक बैठक बुलावें, अपनी सेवाएं उनके अर्पण करें, और वे जिसे भी सभापति चुनें या जैसा भी बोर्ड बनावें, उन्हें हृदय से सहायता प्रदान करें। मैं जानता हूं कि इसके लिए आत्मत्याग की आवश्यकता है। यदि मैं आपको अच्छी तरह जान सका हू तो मैं यह भी जानता हूं कि ऐसा करना आपके लिए सम्भव है। पर यदि आप समझें कि इन शिकायतों में कोई तथ्य नही है और आप सारी कठिनाइयों को दूर करने मे और सभी दलों को साथ लेने में समर्थ होंगे तो मुझे कुछ नही कहना है। मैंने जो सुझाव पेश किया है वह यह समझकर ही किया है कि इस समय बोर्ड जैसा-कुछ गठित हुआ है, उसके साथ सारे दलो के लिए सहयोग करना सम्भव नही है। मैंने सारी बात आपके सामने रख दी है, अब आप देशहित के लिए जैसा ठीक समझें, करें।

श्री खेतान ने बासन्ती देवी के सम्बन्ध में मुझे आपका सन्देश दिया। [illegible] उनसे कह दिया है कि यह तो वह स्वयं तय करेंगी कि क्या करना उन[illegible] पर मैं तो यही चाहूगा कि वह अस्पृश्यता-निवारण-कार्य मे लगन से [illegible]

जावें। वह कोई सार्वजनिक पद ग्रहण करें, मैं यह आवश्यक नही समझता हूं। जब मैं देशबन्धु-स्मारक-कोष के लिए रुपया इकट्ठा करने के सिलसिले मे वहा उनके पास था, तो उन्होने मुझे बताया था कि वह किसी सस्था का सचालन करना नही चाहती हैं, वह तो इच्छा होने पर कार्य करना-भर चाहती हैं। कृपया डा० आलम के सम्बन्ध मे समाचार दीजिये।

आपका
मो० क० गांधी

डाक्टर राय का उत्तर इस प्रकार था :

२६, वेलिंगटन स्ट्रीट
कलकत्ता
१२-१२-१६३२

प्रिय महात्माजी,

आपका पत्र मुझे कल मिला। बगाल अस्पृश्यता-निवारक-बोर्ड के सम्बन्ध मे आपने श्री खेतान से जो बातचीत की थी, मुझे उनसे उसका समाचार मिल गया था। आपने उनसे कहा था कि मुझे पत्र लिखेंगे। श्री खेतान से बात करने के बाद मैं आपसे ऐसा पत्र पाने के लिए जैसा आपने मुझे भेजा है, तैयार था। सबसे पहले मैं यह कहने की अनुमति चाहता हू कि बगाल बोर्ड के सभापतित्व के पद की मैंने आकाक्षा नही की थी और अब मुझे पता चला है कि श्रीबिडला ने आपसे मशवरा करके आपकी रजामदी से मुझे सभापति चुना था। जब मुझसे पद ग्रहण करने को कहा गया तो अपनी अयोग्यता और अन्य कार्यों के बावजूद मैंने आह्वान स्वीकार कर लिया। मै यह बात नही भूला हू कि इसका श्रीगणेश आपके और उन मित्रो के द्वारा किया गया, जो पूना मे एकत्र हुए थे। अतएव जब इन सबने मुझसे यह पद ग्रहण करने का अनुरोध किया तो मैंने उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। आप चाहते थे कि मैं सभापतित्व ग्रहण करू, क्योकि आपका विश्वास था कि मैं काम कर सकता हूं। अब आपकी धारणा दूसरी है और आप चाहते हैं कि मैं हट जाऊ तो मैं प्रसन्नतापूर्वक हट रहा हू। मैं आज ही श्री बिडला को पत्र लिखकर इस्तीफा दे रहा हू। यह कोई आत्मत्याग की बात भी नही है, क्योकि मैंने अपने जीवन मे ऐसा कोई पद या स्थान ग्रहण नही किया, जिसके सम्बन्ध मे मुझे मालूम होने लगा हो कि जिनके हाथ में वह पद या स्थान देने की सामर्थ्य है वे मेरा बने रहना नही चाहते हैं।

आपने अपने पत्र में सुझाया है कि विभिन्न वर्गों और दलो के सारे कार्यकर्त्ताओं को बुलाऊ, जिससे वे जिसे चाहें सभापति चुन सकें। मैं यह बताना

चाहता हूं कि लीग के व्यवस्था-विधान के अन्तर्गत केन्द्रीय बोर्ड का सभापति ही प्रान्तीय बोर्डों के सभापति नामजद करता है, और ये प्रान्तीय सभापति प्रान्तीय बोर्डों के सदस्य नामजद करते हैं। बंगाल में बने हुए बोर्ड को तोड़ना मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। अतएव यदि मैं चाहूं तो भी आपकी आज्ञा-पालन करना मेरी सामर्थ्य में नहीं है। पर मैं सारा मामला श्री बिड़ला के पास भेज रहा हूं। वह अखिल भारत बोर्ड के सभापति हैं, और वह जो कारंवाई उचित समझेंगे, करेंगे।

आप अपने पत्र में कहते हैं, "परन्तु मैं देखता हूं कि बंगाल में यह विचार नहीं रुचा।" आपको यह सूचना देना मेरा कर्त्तव्य है कि बंगाल में श्री सतीश दासगुप्त और डाक्टर सुरेश बनर्जी के नेतृत्व में रहने वाले दल के अलावा और अनेक दल और वर्ग हैं। श्री सतीश दासगुप्त और डा० सुरेश बनर्जी, दोनों ही अस्पृश्यता-निवारण-कार्य में दिलचस्पी रखते हैं और इस समय बहुमूल्य काम कर रहे हैं। हमने बंगाल बोर्ड का गठन बड़ी समझदारी के साथ किया था, और जैसा कि आपको श्री देवीप्रसाद खेतान ने बताया ही होगा, बोर्ड में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि मौजूद थे। अनेक जिला संस्थाओं ने हमें लिखकर बोर्ड के साथ सहयोग करने की तत्परता प्रकट की थी। वास्तव में, जैसा कि श्री खेतान ने आपको बताया ही होगा, श्री दासगुप्त और डा० बनर्जी को छोड़ और किसी ने सहयोग प्रदान करने से इन्कार नहीं किया, और सो भी अलग कारणों से, परन्तु आपकी यह धारणा प्रतीत होती है कि बंगाल में उस समय तक कोई बोर्ड काम नहीं कर सकता जबतक उसे श्री दासगुप्त और डा० बनर्जी का सहयोग प्राप्त न हो, और उन्होंने यह सहयोग प्रदान करने से इन्कार कर ही दिया है, इसलिए बोर्ड को भंग करने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

बंगाल में लीग का काम आरम्भ हो गया है। इसलिए यदि आप मुझे इस पत्र को और अपने पत्र के पहले पैरे को प्रेस में देने की अनुमति नहीं देंगे तो मेरे और बोर्ड के सदस्यों के लिए स्थिति समझाना कठिन हो जायगा। आशा है, आपको कोई आपत्ति नहीं होगी।

आपका
विधानचंद्र राय

गांधीजी को क्षोभ हुआ। उन्होंने तुरन्त यह पत्र भेजा :

यरवडा केन्द्रीय जेल
१५ दिसम्बर, १९३२

प्रिय डा० विधान,

आपके पत्र से मैं तो अवमन्न रह गया। उसे पढ़ने के तुरन्त बाद ही मैंने

आपको तार भेजा। मैं तो समझता था कि हम दोनो एक-दूसरे के इतने निकट हैं कि मेरे मैत्रीपूर्ण पत्र के आप कभी गलत मानी नही लगायगे। पर अब देखता हूं कि मैंने भारी भूल कर डाली। मुझे आपको वह पत्र नही लिखना चाहिए था। अत मैंने उसे पूर्णतया और बगैर किसी शर्त के वापस ले लिया है। अब जबकि वह पत्र वापस ले लिया गया है, आपको उनमे से कोई भी काम नही करना है, जिनका आपने उल्लेख किया है। कृपया बोर्ड वाला काम बदस्तूर जारी रखिये, मानो मैंने आपको कोई पत्र लिखा ही न हो। आपके दिल को जो चोट पहुंची है उसे आप उदारहृदयता के साथ भूल जायगे। पर आपको मैंने वह पत्र लिखा, इसके लिए मैं अपने-आपको आसानी से क्षमा नही कर सकूगा। किसी ने, याद नही किसने, कहा था कि मेरे पत्र के आप गलत मानी लगायेंगे, पर मैंने मूर्खतावश कहा कि मैं कुछ भी लिखू, आप उसके गलत मानी कभी नही लगायेंगे। विनाश का पूर्वाभास गर्व से और पतन का पूर्वाभास मिथ्या-गर्व से होता है। इतना सब कहने के बाद, अब तो मैं नहीं समझता कि आप हमारे पत्र-व्यवहार को प्रकाशित करना जरूरी समझेंगे। परन्तु यदि आप सार्वजनिक हित के लिए उसका प्रकाशन आवश्यक समझते हो तो जहा तक प्रकाशित करना आवश्यक हो, आप अवश्य प्रकाशित कर सकते हैं।

कृपया लिखिये, कमला[1] और आलम[2] का स्वास्थ्य कैसा है, और कमला से कहिये, मुझे पत्र लिखे।

आपका
मो० क० गाधी

उसी दिन उन्होंने मुझे भी लिखा :

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
१५/१२/३२

भाई घनश्यामदास,

आज मैंने तुम्हारे पास एक तार लीग के नाम के सम्बन्ध मे भेजा है। एक दूसरा तार कल को बगाल प्रान्तीय सस्था के सम्बन्ध मे जायेगा।

सबसे पहले नाम की बात को लो। राजाजी का पत्र भेजता हू। मैं समझता

---

१. प० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी कमला नेहरू, और २ पजाब के महान् राष्ट्रीय कार्यकर्ता, गाधीजी के मित्र और काग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य डा० आलम। ये दोनो ही कलकत्ता मे डा० विधानचद्र राय की चिकित्सा मे थे।

हूं कि उनके तर्क के बाद कोई बात बाकी नही रह जाती है, इसलिए उनका सुझाव अपनाना तनिक भी सम्भव हो तो तुम नाम मे तदनुसार परिवर्तन कर लेना। मैं सेवा के भाव मे इतना तन्मय हो गया था कि जिस अर्थ की ओर राजाजी ने मेरा ध्यान दिलाया है उसकी मैंने बात तक नही सोची थी।

अब बंगाल प्रान्तीय संस्था की बात लो। मैंने भूल की। मैंने डा० विधान के ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाजा लगाया। मैंने उन्हें पीड़ा पहुंचाई, इसका मुझे दु.ख है। मैंने तुम्हें ऐसी भौंड़ी स्थिति मे डाल दिया, इसका भी मुझे दुःख है। वह अपनी पीड़ा से निस्तार पा जायंगे, तुम भी अपनी भौंड़ी स्थिति पर काबू पा जाओगे, पर मैं अपनी मूर्खता की बात आसानी से नही भूल सकूंगा।

मैंने डा० राय के पास निम्नलिखित तार भेजा है:

"आपका हस्ताक्षर-शून्य पत्र आज मिला। पत्र-व्यवहार प्रकाशन के लिए नही है। आपको मैंने स्पष्टतया बता दिया है कि यदि आपको अपने ऊपर भरोसा हो तो आरम्भ किये हुए कार्य को जारी रखिये। मैं अब समझता हूं कि मैंने हस्त-क्षेप की अनधिकार चेष्टा की। क्षमा करिये। वैसे मैंने यह सुझाव मित्रता के नाते दिया था। अपना पत्र वापस लेता हूं।—गाधी।"

उनके पास मैंने जो पत्र भेजा उसकी भी एक प्रति भेजता हूं। कुछ अधिक कहना अनावश्यक समझता हू और आशा करता हूं कि अब इस मामले का अन्त हुआ समझा जायेगा और तुम्हें और अधिक परेशानी नही होगी। डा० विधान के उत्तर की नकल भी भेजता हूं।

तुम्हारा १२ दिसम्बर का पत्र भी मिला। ठक्कर बापा ने तुम्हारे पास जो परिभाषा भेजी थी मैंने उसमे और भी परिवर्तन कर दिया है। इस सशोधित परिभाषा की नकल भेजता हू। ठक्कर बापा ने तुम्हारे पास जो परिभाषा भेजी थी उसे मेरे पास पंडित कुंजरू ने भेजा था। मैंने उसमे परिवर्तन करके सशोधित प्रति उनके पास भेज दी है। देखता हूं कि जब ठक्कर बापा ने आपको लिखा था उस समय तक उन्हें वह संशोधित प्रति नही मिली थी।

आज डा० अम्बेदकर के लगभग सात मित्र और अनुकरण करने वाले आये। वे शिकायत कर रहे थे या बता रहे थे (उन्होंने कहा कि वह शिकायत करने नही आये हैं, सिर्फ बताना चाहते हैं) कि डा० अम्बेदकर ने स्टीमर पर ठक्कर बापा के नाम एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें उन्होंने कई सुझाव पेश किये थे। पर सघ की पूना वाली बैठक मे उसका जिक्र तक नही किया गया। मैंने उनसे कहा कि उसका जिक्र किया गया हो या न किया गया हो, संघ ने उस पर विचार अवश्य किया होगा, उसकी उपेक्षा न की होगी। तुम उन्हें या मुझे लिख देना कि उस पत्र के सम्बन्ध मे क्या कार्रवाई की गई है।

इन मित्रों ने यह भी बताया कि हमारी संस्थाए हरिजनों में पड़ी हुई फूट को

कायम रखती हैं और जहा कही सम्भव होता है राव बहादुर राजा के दल का पक्ष लेती हैं। मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि संघ का यह इरादा कभी नही हो सकता है, बोर्ड दलबन्दियों से दूर रहेगा और बोर्ड और उनकी समस्त शाखाओं की यही चेष्टा रहेगी कि दोनों दलों का मन-मुटाव दूर हो जाय, क्योंकि राजनैतिक प्रश्न हल हो जाने के बाद अब दो दलो की कोई आवश्यकता नही रह गई है।

मेरे पास श्री छगनलाल जोशी आ गये हैं और एक अच्छा-सा स्टेनोग्राफर भी मिल गया है। पर इतनी सहायता प्राप्त होने पर भी मुझे चैन नही मिल रहा है। वास्तव में इस आवश्यक सहायता की बदौलत ही मैं बढते हुए काम को निवटाने मे समर्थ हो रहा हूं। मुलाकातो मे काफी समय निकल जाता है, पर वे जरूरी हैं, इसलिए मुझे कोई शिकायत नही है।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे। तुम्हें नींद लाने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिए। औषधियां ठीक नही हैं, प्राकृतिक उपाय बरतने चाहिए और भोजन-सम्बन्धी परिवर्तन करना चाहिए। मैंने जिस ढंग से बताया उस ढंग से तुम प्राणायाम कर रहे हो ? कुछ आसानी से किये जाने वाले आसनो से और गहरा सांस लेने मे पाचन-शक्ति को सहायता मिलती है और नींद भी आती है।

तुम्हारा
बापू

पुनश्च :

उपरिलिखित पत्र लिखाने के बाद मुझे अब डा० विधान का यह तार मिला है : "तार के लिए धन्यवाद। सादर निवेदन है कि मैं नही समझा कि अपने पर भरोसे से आपका क्या अभिप्राय है। पत्र मे लिख ही चुका हूं कि बगाल मे जैसा उत्साह है उसके फलस्वरूप कोई भी प्रधान और बोर्ड अस्पृश्यता-निवारण-कार्य कर सकता है। यदि आपका अभिप्राय ऐसे लोगों का सहयोग प्राप्त करने के मामले मे भरोसा रखने से हो जो सहयोग प्रदान करने के लिए तैयार न हों तो उसे कोई प्राप्त नही कर सकता है। कितनी सफलता होती है, यह धन-सग्रह और उसके उचित उपयोग पर निर्भर है। कृपया तार दीजिये कि यदि हम लोग काम करना जारी रखें तो मुझे और बोर्ड को आपका समर्थन मिलेगा।—विधान राय।"

उसका मैंने निम्नलिखित उत्तर दिया है·

१६/१२/३२

तार के लिए धन्यवाद। भरोसे से मेरा मतलब आत्मविश्वास से है। मेरी सामर्थ्य मे जितनी सहायता देना है आप उस पर निर्भर कर सकते हैं।—गाधी

लगभग इन्ही दिनों राजाजी ने संस्था के नाम के बारे में अपनी विशेषताओं से भरा कालीकट से एक पत्र भेजा, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है :

"लीग के नाम मे परिवर्तन करने के मामले मे मैं आपसे सहमत नही हूं। अस्पृश्य सेवक-संघ नाम अच्छा खासा है, पर इसका अर्थ यही है कि हम अस्पृश्यों के अस्पृश्य बने रहने की बात स्वीकार करते हैं। भारत सेवक, भील सेवक, या ईश्वर सेवक सब ठीक हैं, क्योंकि भारत रहेगा ही, भील एक नस्ल का नाम है और हीनता-द्योतक नाम नहीं है, और ईश्वर तो हमेशा मौजूद रहेगा ही। पर यदि हम अस्पृश्यता या दासता का मूलोच्छेदन करना चाहते हैं तो अस्पृश्य सेवक या दास सेवक नाम ठीक नहीं रहेगा। हो सकता है कि दासता अथवा अस्पृश्यता का निवारण होते ही संघ बन्द कर दिया जाय, पर यह तर्क ठीक नही ठहरता है, क्योंकि जो बात तत्काल आवश्यक है वह है मनुष्य की मनोवृत्ति मे परिवर्तन। आपको तथाकथित अस्पृश्य सेवक कहना होगा, पर नाम भौंडा हो जायगा, और उसके विरुद्ध आपत्ति वैसी ही बनी रहेगी। मैं अस्पृश्यता-निवारक लीग या संघ नाम पसन्द करता। अस्पृश्यता-विरोधी वाक्य मुझे अच्छा नही लगता, मुझे उसमे बर्बरता की गंध आती है। अस्पृश्यता-निवारक संघ हिन्दी, गुजराती तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रचलित नामों का शब्दशः अनुवाद होगा, और इसमे कोई आपत्तिजनक बात भी नही होगी। वास्तव में दासत्व के दर्जे का मूलोच्छेदन अभीष्ट और निवारण शब्द से वाक्य को बल भी प्राप्त होगा, ठीक जिस प्रकार मद्यपान और मादक द्रव्य-सेवन के सम्बन्ध मे निषेध शब्द लोकप्रसिद्ध हो गया है। यदि हम अच्छी तरह सोचें तो मनुष्य के एक वर्ग की सेवा अभीष्ट है। ऐसे विचारों के लोग भी हैं जो यह चाहेंगे कि किसी विशिष्ट वर्ग को अलग रखा जाय, पर उन्हें अच्छी तरह खाने को दिया जाय। पर हमें केवल इतना ही तो नही करना है।"

कालीकट
१२ अक्तूबर, १६३२

मैंने पत्र-व्यवहार जारी रखा और लिखा .

२१ दिसम्बर, १६३२

परम पूज्य बापू,

आपका टाइप किया हुआ पत्र और उसके साथ भेजे कागज मिले। डा० राय ने जो आपको चिट्ठी लिखी है उसकी नकल उन्होंने पहले ही मेरे पास भेज दी थी। उसका आपने जो उत्तर दिया है उसकी नकल भी मुझे मिल गई है। इस प्रकार अब मेरे पास पूरा पत्र-व्यवहार मौजूद है। मैं इस मामले को लेकर आपका और

अधिक समय नष्ट करना नही चाहता, पर साथ ही आपको यह लिखने का लोभ भी सवरण नही कर सकता कि आपने अपनी भूल को जिस ढंग से समझा, वास्तव मे वह उससे बिलकुल दूसरे ही ढग की है। मुझे भौंडी स्थिति मे पटकने का प्रश्न ही नही उठता है, आप मुझे इससे कही अधिक भौंडी स्थिति मे पटकना चाहें तो खुशी से पटक सकते हैं, परन्तु मैं इस बात मे अब भी आपसे सहमत नही हूं कि आपकी भूल डा० राय के ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाज लगाने तक ही सीमित थी। यदि डा० राय के साथ न्याय किया जाय तो कहना होगा कि उनका बुरा मानना स्वाभाविक था। मेरी समझ में भूल इसी बात मे हुई कि आपने सुरेशबाबू और सतीशबाबू का, जो आपके इतने निकट है, सहयोग प्राप्त करने मे डा० राय की सहायता करने के बजाय डा० राय से केवल इस कारण इस्तीफा देने को कहा कि सुरेशबाबू और सतीशबाबू ने उन्हे सहयोग प्रदान नही किया। मैं मानता हू कि सुरेशबाबू और सतीशबाबू ने जो उन्हें सहयोग प्रदान नही किया उसका कारण था, पर तो भी आपको बलिदान के लिए डा० राय को नही छाटना चाहिए था। मेरी राय में आपने यही भूल की। जब मैंने डा० राय के नाम आपका पहला पत्र देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ, क्योकि इस प्रकार की भूलें करना आपके लिए असम्भव-सा है। हम आपके देवोपम व्यक्तित्व से इतने चकाचौंध हैं कि हमने अपने भीतर विश्वास खो-सा दिया है। इसके परिणामस्वरूप मुझे जब कभी किसी बात मे शका होती है तो मैं यह कहकर अपने-आपको समझा लेता हूं कि दोष मेरी बुद्धि का है, जो मैं आपके निश्चय के मर्म को नही समझ सका। इस मामले मे भी यही हुआ। मेरी अब भी यही धारणा है कि आपको अपने अन्तिम पत्र में डा० विधान को आपके पत्र के गलत अर्थ निकालने के लिए डाटना नही चाहिए था। आशा है, मैं आपका समय नष्ट नही कर रहा हूं। यह सब मैं आत्म-संतोष के लिए लिख रहा हू। यदि आप लिखने की आवश्यकता समझें तो जरूर लिखें।

परिभाषा के सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि आप जानते ही हैं, मैं ऐसी बातों को लेकर बहुत ही कम माथापच्ची करता हूं। पर आपकी ताजी परिभाषा उन सारी परिभाषाओं से अच्छी रही, जिन पर चर्चा हो चुकी है।

डा० अम्बेदकर के मित्रो की इस शिकायत के सम्बन्ध मे कि हमने डा० के पत्र पर अच्छी तरह विचार नही किया, मेरा कहना यही है कि उन्हे कुछ गलतफहमी हो गई है। डा० अम्बेदकर के सुझावो के अलावा और भी अनेक सुझाव थे, जिन पर विचार करना था और जिन्हें नीली पुस्तिका मे देना था। पर हमने इतनी बडी बैठक मे इस पुस्तिका की चर्चा न उठाना ही ठीक समझा। अतएव हमने एक छोटी-सी समिति का गठन किया, जिसके जिम्मे डा० अम्बेदकर के सुझावो के अलावा प्रान्तीय बोर्डों से आये सुझावों को भी ध्यान मे रखकर नीली पुस्तिका की पुनरावृत्ति करने का काम किया गया है। परन्तु मुझे कहना पड़ता है कि हमारे

कर्मचारी उतने दक्ष नही हैं। बेचारे बुड्ढे ठक्कर बापा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं, और उनकी अनुपस्थिति मे आफिस मे किसी योग्य सेक्रेटरी का रहना आवश्यक है। इस सघ का श्रीगणेश होने से पहले देवदास ने मुझे सहायता देने का वचन दिया था, परन्तु वह और कामो मे लगे हुए हैं। कल जब वह मिले तो मैंने उनसे इसकी शिकायत भी की थी। उन्होने एक अच्छा-सा आदमी देने का वादा किया है। मैंने उनसे कह दिया है कि वरना काम का हर्जा होगा। मुझे अच्छा आदमी मिल सकता है, पर मेरे अच्छा आदमी पाने का अर्थ होगा अधिक पैसा देना। मुझे तो अच्छा आदमी बाजार-भाव पर ही मिलेगा। इस ढंग की सस्थाओं मे तो ऐसा आदमी चाहिए, जो स्वार्थ-त्याग करना चाहे। पता नही, आप इस मामले में मेरी सहायता कर सकेंगे या नही। यदि देवदास इस काम को अपने हाथ मे ले लें तो बडा काम कर डालें, पर दुर्भाग्य से वह आने को तैयार नही हैं।

हम पत्र जनवरी के आरम्भ में निकाल रहे हैं। आपके लेख की बाट जोह रहा हू। मुझे लेख अभी मिला है। वियोगी हरि को हिन्दी के पत्र का सम्पादन करने के लिए कोई योग्य आदमी अभी तक नही मिला है, इसलिए मैं आफिस के आदमियो से ही काम ले रहा हूं। पर, जैसा कि आप स्वय जानते हैं, इसके लिए एक अच्छे आफिस सेक्रेटरी की दरकार है।

सघ का नाम तीसरी बार बदलना उपहासास्पद होगा। राजाजी के पत्र का आपके ऊपर इतना गहरा प्रभाव पडा, पर मेरे ऊपर तो नही पड़ा। इसका कारण यह भी हो सकता है कि ऐसी बातो की ओर से मैं उदासीन-सा रहता हूं।

आशा है, आप बिलकुल स्वस्थ हैं। कृपया मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता मत करिये। मैं अच्छा-खासा हूं। अभी मैंने बेरों का व्यवहार नहीं किया है, पर करूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

जैसा कि ऊपर के पत्र से पता लगेगा, उस समय हम साप्ताहिक 'हरिजन' का श्रीगणेश कर रहे थे। उसका सम्पादन गाधीजी ने स्वय किया और उसे लोकप्रिय बना दिया। पर उसके प्रारम्भ करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिससे उसके प्रकाशन मे देर लग गई।

२७ दिसम्बर, १६३२

परम पूज्य बापू

आपके दोनों लेख मिले। दुर्भाग्यवश पहला अंक निकालने मे अभी थोड़ी कठिनाई होगी, क्योकि अभी हमें सरकार से अनुमति प्राप्त नहीं हुई है। कायदे-

कानून की पाबन्दी के सिलसिले मे भी अभी कई बातें करना बाकी है और अधिकारी पूछताछ कर रहे हैं। पर, आशा है, एक सप्ताह से अधिक देर नही लगेगी।

आपके उपवास के सम्बन्ध मे मेरा कहना है कि जबतक सरकार से निश्चित रूप से मालूम न हो जाय तबतक वह विचार स्थगित रखा जाय। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि सरकार स्वीकृति दे देगी। पर सरकार अपने निश्चय की घोषणा २ जनवरी को करेगी या उसके बाद, यह बताना कठिन है। परन्तु आप सरकार से सीधे पूछ सकते है और वह आपको बता देगी। एक बार सरकार ने बिल के पेश किये जाने की अनुमति दी कि बाकी सारे काम आसान हो जायगे। मैंने अभी बिल को देखा नही है। यदि बिल मे अनुमति मात्र देने की व्यवस्था होगी तो वह काफी नही होगा, क्योकि बात फिर जमोरिन की इच्छा के ऊपर निर्भर करेगी। इसलिए कुछ करना आवश्यक होगा।

मैंने राजाजी से मित्रो सहित आपसे मिलने का आग्रह किया है, और संभवतः वह आपसे शीघ्र ही मिलेंगे।

विनीत

घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल

२६ दिसम्बर, १६३२

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। अपने व्यक्तित्व की चकाचौंध तुम्हारे जैसे मित्रों की अपेक्षा खुद मुझे अधिक परेशान करनेवाली है, क्योकि मैं चाहता हू कि सब समान भाव से मिल-जुलकर काम करें और विचार-विनिमय करें। मुझे यह बिल्कुल अच्छा नही लगता है कि मैं कोई बात कहू तो उसके लिए मुझे वैसी ही बात कहने वाले किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाय। इस भूमिका के बाद मेरा कहना यह है कि व्याधि का जो निदान तुमने किया है, मैं उससे बिलकुल सहमत नही हू। यदि मैं वैसा ही पत्र, फर्ज करो, तुम्हें लिखता तो तुम शायद बुरा न मानते। दूसरे शब्दो मे मैं तुम्हारे ऊपर अपने प्रभाव का गलत अन्दाजा नही लगाता। जब मै जानता था कि सतीशबाबू और सुरेशबाबू के लिए डा० राय को सहयोग प्रदान करना असम्भव है तो मैं उनके लिए वह सहयोग उनसे कैसे प्राप्त कर सकता था? हा, यदि उन्हे सहयोग करने को बाध्य करता तो बात दूसरी थी, और मैं वैसे सहयोग की बात सुरेशबाबू और सतीशबाबू तक के बीच मे नही सोच सकता हू। आश्रम में मेरा प्रभाव सब पर एक समान समझा जाता है, पर वहा भी भिन्न-भिन्न प्रवृतियों के व्यक्ति रहते हैं, और उनके बीच सहयोग स्थापित करने की बात तक सोचना

मेरे लिए असंभव-सा है। मैंने सोचा था कि सुरेशबाबू और सतीशबाबू मैदान में काम करने वाले आदमी हैं, इसलिए यह काम उनके हाथों अधिक अच्छी तरह होगा और मेरी धारणा थी कि डा० राय को भी मेरा सुझाव रुचेगा। यदि किसी के कंधों से भार उठाकर भाव-वहन करने मे अधिक समर्थ समझे जाने वाले व्यक्ति के कधो पर रखा जाय तो इसमे बुरा मानने की क्या बात है ? और, जैसा कि अब प्रकट है, मैंने यह गलत धारणा की कि डा० विधान मेरे पत्र के गलत मानी नही लगायगे, उसमे कही हुई बात का खण्डन करना चाहेंगे तो करेंगे, पर बुरा कभी न मानेंगे। और तुम यह कैसे कहते हो कि मैंने डा० राय को दूसरे पत्र मे डाटा है ? मैंने तो सिर्फ वस्तुस्थिति को सामने रखा है। यदि तुम पत्र को ठीक तरह से नही समझे तो उसे फिर पढ़ो। मैं चाहता हू कि दूसरे पत्र की नीयत को समझो। मैं तुम्हारे लिए किसी ऐसे सेक्रेटरी की तलाश करूंगा, जो काम की खातिर काम करे।

जबतक अंग्रेजी पत्र अच्छी तरह न निकल सके, उसमे पढने लायक अंग्रेजी न हो, और उसमें दिया जाने वाला अनुवाद ठीक न हो, तबतक केवल हिन्दी संस्करण से ही सतोष कर लेना ठीक होगा।

मैं जानता हूं कि पक्षपात का कोई प्रश्न नही है, पर यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि हम जो कुछ करते हैं उनके सबंध में डा० अंबेदकर के दल-वालो की क्या धारणा है।

तुम्हारा
बापू

इसके बाद ही मन्दिर-प्रवेश बिल उपस्थित हुआ।

यरवडा केन्द्रीय जेल
१ जनवरी, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा २७ तारीख का पत्र मिला। मैंने बिल देखा था। बिल मन्दिर-प्रवेश की अनुमति देने वाला इन अर्थों में कहा जा सकता है कि वह सारे मन्दिरों को अस्पृश्यो के लिए खोलने की घोषणा नहीं करता है, पर मन्दिर उपासकों के बहुमत से खोले जा सकते हैं, ट्रस्टियों की मर्जी पर नही।

बिल पेश करने की अनुमति सरकार से मिलने के बारे में तुम्हें जो भरोसा है, आशा है, वह ठीक निकलेगा। राजाजी यहां तीन दिन तक रहे, और हमने बिल और गुरुवायूर मन्दिर की अवस्था के सबन्ध में आमतौर से बातचीत की।

आशा है, साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन के सबध में आवश्यक कानूनी कार्रवाई पूरी हो गई होगी।

तुम्हारा
बापू

२ जनवरी, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपके २७ और २८ के पत्र एक ही लिफाफे में मिले। आपका तर्क मेरी समझ में नहीं आया, पर आप जो कहते हैं, उसमें कुछ तथ्य अवश्य है। मैं आपका समय नष्ट करना नही चाहता हू। जब मिलूगा तो बातें होगी। वास्तव में जब मैं पिछली बार पूना गया था तो आपसे कई बातो की आत्मसतोष के लिए चर्चा करना चाहता था, पर मैंने आपको बेतरह कार्य-व्यस्त देखा तो इरादा छोड़ दिया। आपने अपने पत्र में डा० विधान को लिखे पत्र की नकल भेजने की बात लिखी है, पर मुझे वह नही मिली।

अग्रेजी सस्करण के सबध मे आपने जो कहा सो जाना। मैं आदमी को चुनने मे इस बात का ध्यान रखूंगा।

आपके उपवास के स्थगित होने की बात से मेरी चिन्ता दूर-सी हो गई, पर इसका अर्थ यह नही है कि हम अपनी चेष्टाए शिथिल कर देंगे। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है कि १५ तारीख से पहले-पहले वाइसराय की स्वीकृति मिल जायगी। मुझे आशा है कि बिल जिस रूप मे पेश किया जा रहा है उससे आप सतुष्ट है। पूना मे जैसी बात हुई थी, क्या काशी के विश्वनाथ के मन्दिर का प्रश्न उठाया जाय? मन्दिर निकट भविष्य मे खोल दिया जायगा, ऐसी सम्भावना तो नही है, पर उस क्षेत्र मे प्रचार तो आरभ कर ही दिया जाय। आशा है, आप सहमत होंगे।

विनीत
घनश्यामदास

४ जनवरी, १९३३

परम पूज्य बापू,

हिन्दी पत्र तो जल्दी ही निकल आयगा, पर अग्रेजी संस्करण निकलने मे देर लगेगी।

मैं यही सोच रहा हू कि अग्रेजी पत्र का क्या नाम रखा जाय, पर कोई अच्छा-सा नाम ध्यान मे नहीं आ रहा है। 'प्रायश्चित्त' नाम के सबध मे आपका

क्या विचार है ? इस नाम से हमारे उद्देश्य का भी पता लगता है, इसलिए मैंने सोचा कि आपको यह नाम शायद पसन्द आवे।

कृपया तार के जरिये सूचित करिये कि आपको यह नाम पसन्द है या नही। यदि नही तो कोई दूसरा नाम सुझाइयेगा।

विनीत
घनश्यामदास

६ जनवरी, १६३३

परम पूज्य बापू,

इस पत्र के साथ एक पत्र भेजता हूं, जिसका विषय स्पष्ट ही है। क्या आप इस पत्र के लेखक को थोड़ा-बहुत जानते हैं ? इसे किस काम में लिया जाय, सो मैं नही जानता। पर सम्भवतः आप यह पत्र-लेखक को स्वय बता देंगे।

कस्तूरभाई ने ५,०००) रुपये भेजे हैं। मैंने चीनूभाई को भी इतनी ही रकम देने को लिखा है। अभी तक कोई आर्थिक कठिनाई सामने नही आई है। हम प्रातो को तभी देंगे जब वे अपने हिस्से का व्यय स्वयं एकत्र कर लेंगे। प्रांतो ने इस मामले में ढील दिखाई है, इसलिए हमने भी अपने पास से भेजी जाने वाली रकम मे कमी कर दी है। पर इसका मतलब यह नही है कि काम मे किसी प्रकार की शिथिलता आ गई है। आपका जादू देश के कोने-कोने में काम कर रहा है और काम को आगे बढाने मे हमें कोई खास चेष्टा नही करनी पड रही है। मुझे तो इसी बात का सन्तोष है कि मेरा इस कार्य के साथ सम्बन्ध है।

विनीत
घनश्यामदास

७ जनवरी, १६३३

परम पूज्य बापू'

आपका ३ तारीख का पत्र मिला। पत्र के साथ भेजे दो अन्य पत्र भी—एक रामानन्द सन्यासी का, और दूसरा गणेशीलाल मिस्तरी का—मिले। गणेशीलाल मिस्तरी के सम्बन्ध मे अच्छी तरह पूछताछ करके आपको फिर लिखूगा, पर संक्षेप मे इतना तो कह दूं कि दिल्ली मे दलबंदी का बड़ा जोर है, इसीलिए ये सारी परेशानियां हैं।

रामानन्द सन्यासी वाली बात को ही लीजिये। यह बात सच्ची है कि रंगूमल चैरिटी ट्रस्ट ने उनकी संस्था को मासिक सहायता देना बन्द कर दिया है। वैसे भी उसे यह सहायता देते हुए, यदि मुझे ठीक याद है तो, १८ महीने हो गये थे, इसलिए वह बन्द तो होती ही। पर यदि सहायता बन्द न की जाती तो

भी उनकी सस्था के कार्यकलाप के सबध मे कुछ अधिक छानबीन की जरूरत है।

दिल्ली मे आर्यसमाजियों के दो दल हैं और दोनो निहायत ही शर्मनाक ढग से आपस मे लड रहे हैं। हाल ही मे रामानन्द सन्यासी की सस्था के ऊपर एक दल ने अधिकार कर लिया है। यह छीछालेदर इसीलिए हो रही है। अतएव इस अवस्था मे इन सस्थाओ को आर्थिक सहायता देने मे मुझे तो हिचकिचाहट-सी होती है। जब रामानन्द सन्यासी जेल से छूटेंगे तो मैं उनसे बात करूगा।

जब मैंने यहा बोर्ड की स्थापना की थी तो लाला श्रीराम, देशबन्धु और पडित इन्द्र से बातचीत की थी। अछूतों ने बोर्ड मे इतनी बड़ी सख्या मे घुसने की चेष्टा की कि यद्यपि हमने अछूतो के दोनो दलों मे से कई आदमी लिये, तथापि एक दल असन्तुष्ट ही रहा, और एक बार तो हमे इस्तीफा देने की धमकी दी गई। बाद मे शायद इस्तीफे वापस ले लिये गये। सवर्ण हिन्दुओं ने भी बोर्ड मे घुसने मे ऐसी ही उतावली दिखाई। फलत इस समय बोर्ड मे पचास सदस्य है। आर्यसमाज की तरह दलितो मे भी दलबन्दी है। दिल्ली मे राजा-पार्टी या अम्बेदकर-पार्टी जैसी कोई चीज नही है। यहा तो पहले आपसी ईर्ष्या-द्वेष के फलस्वरूप दल का जन्म होता है, उसके बाद नेता चुना जाता है। इसलिए सतोषजनक प्रबन्ध करना असम्भव-सा है। प० इन्द्र स्थानिक अवस्था से अधिक अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिए मैंने उनसे अनुरोध किया है कि वह आपको यह सारा व्यापार पूरी तरह समझा दें।

हाल ही मे यहा जूता बनाने के धधे को प्रोत्साहन देने के लिए कोआपरेटिव सोसाइटी बनाई गई है। सरकारी अफसर भी इसमे दिलचस्पी ले रहे हैं। मुझे इस धधे मे सहायता देने की सचमुच की चेष्टा दिखाई दी, इसलिए मैंने नाममात्र के व्याज पर ५,०००) रुपये कर्ज देने का वचन दे दिया। पर अब मुझे पता चला है कि कोआपरेटिव बैंक भी एक ही दल का है, और चूंकि दूसरा दल इससे सन्तुष्ट नही है, इसलिए इस दूसरे दल के लाभ के लिए एक और कोआपरेटिव बैंक खोलने की बात हो रही है। बस, काम इसी गन्दे वातावरण मे हो रहा है।

परन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हू, इस मामले मे प० इन्द्र आपको अधिक विस्तृत रूप से लिखेंगे।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
८-१-३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारे ४ तारीख के पत्र के उत्तर मे मैंने कल एक तार भेजा था। मैंने अपने इस पुराने सुझाव को अब फिर दुहराया है कि कम-से-कम अंग्रेजी 'हरिजन' पूना से निकले, और हिन्दी और अग्रेजी सस्करणों का एक ही दिन निकलना जरूरी नही है। यदि हिन्दी का शुक्रवार को निकले तो अंग्रेजी का सोमवार को निकाला जाय। अग्रेजी 'हरिजन' मेरी देखरेख में निकलेगा और जितना आवश्यक होगा हिन्दी से लेगा। खबरें, आकड़े, रिपोर्ट आदि हिन्दी से ली जायगी और उसमें मौलिक सामग्री भी रहेगी। ऐसी अवस्था मे यदि वहा से कोई आदमी भेजने के लिए नही हो तो किसी को मत भेजना। मैं यहा किसी-न-किसी आदमी का इतजाम कर लूंगा।

मैंने कल इस बारे मे श्री ठक्कर बापा से बात की और उन्हे विचार पसन्द आया। मैंने उनसे कहा कि वह तुमसे भी बात कर लें, पर उन्होंने उत्तर दिया कि इससे व्यर्थ की देर होगी, इसलिए अपने विचार तुम्हारे पास डाक के जरिये ही भेज दिये जाय। यदि तुम इस विचार का हृदय से समर्थन करते हो तो काम को आगे बढाओ और जरूरी समझो तो आकर मुझसे बातचीत कर जाओ। पर इसकी खातिर हिन्दी सस्करण निकालने मे देर नहीं करनी चाहिए। अग्रेजी सस्करण दो-एक हफ्ते बाद निकल जायगा।

इस पत्र के साथ लाला श्यामलाल का तार और पत्र भेजता हू। अपने उत्तर की नकल भी भेजता हूं।

तुम्हारा
बापू

ग्वालियर
१० जनवरी, १९३३

परम पूज्य बापू,

जैसा कि आपको इस पत्र से मालूम हो गया होगा, मैं ग्वालियर काम के सिलसिले मे आया हू और यहा कोई एक पखवाड़े ठहरूगा। दिल्ली से रवाना होने से पहले मैंने पण्डित इन्द्र के पास कहला भेजा था कि वह आपको गणेशीलाल के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप से लिखें। आपको अब इसी तरह की शिकायतें मिला करेंगी। इसका कारण यही है कि शिक्षित हरिजनो मे इस प्रकार की आशाए विशेष रूप से उत्पन्न हो गई है कि हमारा यह सघ एक नवीन युग ला उपस्थित करेगा। बेकार हमसे नौकरी पाने की आशा करता है, कष्ट मे फसा व्यापारी यह

उम्मीद करता है कि उसकी परेशानियों को हम दूर करेंगे। जब मैं पूना में था तो हरिजन विद्यार्थियों का एक दल मुझसे मिलने आया। मैंने उन्हें बता दिया कि उन्हें हम लोगो से यह उम्मीद नही करनी चाहिए कि हम आसमान के तारे तोडकर ला देंगे। मैंने उन्हे बताया कि यदि हम छह लाख रुपये साल संग्रह करने मे सफल हों और उनके ऊपर वह सारी रकम खर्च कर दें तो भी फी हरिजन एक रुपया वार्षिक का औसत आयेगा। हमारे साधन सीमित है और उन्हे इस बात को समझ लेना चाहिए। पर दुर्भाग्य से वे इसे नही समझेंगे और इसका एकमात्र परिणाम यही होगा कि क्षोभ उत्पन्न होगा और ढेर-की-ढेर शिकायतें आने लगेंगी।

परन्तु जहा तक हृदयों के परिवर्तन का सवाल है, हमे इस दिशा मे बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। वातावरण मे जो इतना परिवर्तन दिखाई देता है, इसका श्रेय एकमात्र आपको है।

यदि पत्र का अंग्रेजी सस्करण भी दिल्ली से ही निकले तो नाम मे कुछ परिवर्तन होना आवश्यक है, नही तो प्रबन्ध-सम्बन्धी असुविधाए उत्पन्न होगी। पर यदि अग्रेजी सस्करण पूना मे निकले तो यह कठिनाई उपस्थित नही होगी। मुझे अभी तक अंग्रेजी सस्करण का सम्पादन करने के लिए अच्छा-सा आदमी नही मिला है। यदि आप इसका प्रबन्ध पूना मे ही कर लें तो इस उत्तरदायित्व से छुटकारा पा जाऊगा। साथ ही मैं यह भी नही चाहता हू कि आप अपने ऊपर एक नया बोझ लाद लें। परन्तु यदि आप समझें कि पूना से निकलना ज्यादा अच्छा रहेगा तो मुझे कोई आपत्ति नही होगी। इसका फैसला एकमात्र आपके ही हाथ मे है। परन्तु यदि मैं पूना मे आपके किसी काम आ सकू तो आप मेरी सेवाओ का पूरी तरह उपयोग करें।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
११-१-३३

प्रिय घनश्यामदास,

तुम्हारा ७ जनवरी का दुःख की कहानी-भरा पत्र मिला। पर हताश या भग्नोत्साह होने की कोई बात नही है। तुमने जो कुछ लिखा है सो अधिकाश सस्थाओ पर ऐसी ही बीतती है। जब ऐसी सस्थाओ का पूरा उत्तरदायित्व सिर पर आता है तभी सबसे अच्छे और सबसे बुरे आदमी की परीक्षा होती है। कोई

सबसे अच्छा आदमी तभी साबित होता है जब वह निर्लेप होकर काम करे।

तुम्हारा
बापू

८. हरिजन का जन्म

१४ जनवरी, १६३३

परम पूज्य बापू,

अंग्रेजी 'हरिजन' के सम्बन्ध मे लिख ही चुका हू। मुझे इस सम्बन्ध में और कुछ नही कहना है। आशा है, आप पत्र को पूना से निकालने का प्रबन्ध कर रहे हैं। यदि आप चाहें तो श्यामलाल को वहा भेज दिया जाय, नही तो उनसे दिल्ली मे ही काम लिया जायगा।

आपके और ला० श्यामलाल के बीच मे, जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसके सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि आपको लिखने से पहले ही ठाकुरदास भार्गव मेरे पास संघ से दान मागने के लिए आ चुके थे। मैंने उन्हें बताया कि उनका कार्य मुख्यतः हरिजनो के लिए नही है, इसलिए मैं संघ से रुपया देने मे असमर्थ हूं। पर मैंने उन्हे अपनी जेब से १, १००) रुपये अवश्य दे दिये। मैंने उनसे यह भी कह दिया कि यदि हरिजनो के लिए खासतौर से कुछ करने की बात होगी तो उन्हे प्रान्तीय बोर्ड के पास पहुचना होगा और हम प्रान्तीय बोर्ड को उस कार्य के लिये रुपये दे देंगे। मेरी धारणा है कि यह कार्य मुख्यतः हरिजनो के लाभ के लिए नही है; हरिजन नाम का व्यर्थ ही उपयोग किया जा रहा है। हां, उसका उपयोग अच्छे काम मे अवश्य किया जा रहा है। किन्तु अच्छे काम मे भी मनुष्य को सीमा का उल्लंघन नही करना चाहिए। अतएव आपका उत्तर बिलकुल ठीक रहा।

विनीत
घनश्यामदास

१७ जनवरी, १६३३

परम पूज्य बापू,

इधर कुछ दिनो से बंगाल मे अपना मतलब सिद्ध करने के लिए कुछ आदमियो

ने पूना पैक्ट के खिलाफ आन्दोलन खडा किया है। मैं यह बात पूरे निश्चय के साथ कह सकता हू कि ये लोग बगाली सवर्ण हिन्दुओ की भावना को व्यक्त नही कर रहे हैं। अधिकाश काग्रेस इस आन्दोलन मे अलग हैं। आपको याद होगा कि आपके अनशन आरम्भ करने से कुछ ही पहले डा० मुजे ने कहा था कि यदि ऐसी ही बात है तो हिन्दू दलित जातियों की खातिर अपने हिस्से मे आई सारी सीटें अर्पण कर देंगे। डा० मुजे ने यह बात मेरे कहने से कही थी, और श्री रामानन्द चटर्जी के साथ परामर्श करने के बाद ही ऐसा कहा गया था। इसलिए यह कहना ठीक नही है कि इस मामले में किसी प्रमुख बगाली की सलाह नही ली गई। अब रामानन्द बाबू को पूना-पैक्ट के खिलाफ शिकायत है। उस अवसर पर पडित मालवीयजी ने बगाल के सभी प्रमुख व्यक्तियो को बुलाया था। पर किसी को आने तक की फुर्सत नही थी।

मेरा इस वाद-विवाद मे पडना शायद ठीक नही रहेगा। यह मामला नाजुक है, इसलिए एक गैर-बगाली का अलग रहना ही ठीक है। परन्तु क्या आप डा० राय और श्री जे० सी० गुप्त को कुछ लिखना ठीक नही समझते हैं? और क्या मुझे सार्वजनिक रूप से कुछ कहने की सलाह देते हैं? मैं डा० राय को लिख ही चुका हू।

मुझे आपका ११ जनवरी का पत्र, जिसमे आपने नीली पुस्तिका के सम्बन्ध मे जमनालालजी के विचारो को चर्चा की है, अभी मिला है। जी हा, प्रस्ताव पूरा नहीं है। इस ओर मेरा ध्यान सबसे पहले देवदास ने आकर्षित किया। वस्तुत पुस्तिका का यह अश स्वय मेरे द्वारा लिखा गया था और मैंने श्री ठक्कर बापा से सम्बद्ध प्रस्ताव जोडने को कहा था। यद्यपि यह भूल उनकी थी, तथापि इस गलती के लिए मैं भी उतना ही उत्तरदायी हू। मुझे बाध्य होकर कार्यालय के निकम्मेपन की फिर शिकायत करनी पड़ रही है। किसी हद तक यह भूल स्वाभाविक भी थी, क्योंकि अधिकाश पत्रों ने प्रस्ताव के इस अश को नहीं दिया था। मैंने और देवदास ने इस सम्बन्ध मे पूना मे बात की थी और हम दोनों को ताज्जुब हुआ था कि बम्बई के पत्रों ने यही अश क्यों नहीं दिया। मेरे लिए तो यह बराबर रहस्य ही बना रहा। पर हमने यह निश्चय कर लिया था कि पुस्तिका की पुनरावृत्ति के समय यह त्रुटि दूर कर दी जायगी।

जमनालालजी ने दूसरी बातें उठाई हैं, उन्हे हम पुस्तिका की पुनरावृत्ति के समय ध्यान में रखेंगे। मैं उनसे इस बात में सहमत हू कि लीग को अपना नाम बदल डालने का अधिकार देनेवाले प्रस्ताव मे कोई सृजनात्मक बात नहीं है, पर मैं नहीं समझता कि इन साधारण-सी कायदे-कानून वाली बातों को इतना महत्त्व देने की क्या जरूरत है। प्रस्ताव व्यापक नहीं था, और हमने बहुत-से ऐसे अधिकारो को स्वय जन्म दिया है, जिनके लिए पहले से कोई स्वीकृति नहीं ली गई थी,

पर जो वर्तमान परिस्थिति मे आवश्यक है। हम संस्था की रजिस्ट्री तो करा ही रहे हैं।

मैंने अपनी मिल के मैनेजर को सघ का खजाची नियुक्त किया है। सघ का कार्यालय मिल मे होने के कारण मेरी अनुपस्थिति मे अब बैंक से चेक भुनाने मे अधिक सुविधा रहेगी।

श्री पुणताम्बेकर के सम्बन्ध मे जमनालालजी ने जो सुझाव दिया है, उसके सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि हिन्दू विश्वविद्यालय मे उन्हें अच्छा वेतन मिल रहा है। इसलिए वह सघ मे काम करने शायद ही जावे। मुझे स्वय एक अच्छे दफ्तर का अभाव खल रहा है, और मैं इस सम्बन्ध मे आपको लिख भी चुका हू। यदि आपकी निगाह मे कोई अच्छा आदमी न हो तो मैं ही अपनी पसन्द के किमी आदमी को नियुक्त कर लूगा। आप जानते ही होंगे कि मैं इस काम की ओर पूरा ध्यान नही दे रहा हूं जो कि वर्तमान अवस्था मे स्वाभाविक ही है। मैं अभी व्यापार मे ही हूं और इस ओर अपना काफी समय देता हूं। आजकल कुछ अधिक समय दे रहा हूं, क्योंकि मिल मे माल का पहाड लग पडा है। जब मिल कमा रही थी तो मैं इतना समय नही देता था। पर अब उसे घाटा हो रहा है,इसलिए मुझे स्वभावतया ही अपने समय का अधिकाश उसे देना पडता है। मैंने यह सब तो आपको वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लिखा है। पर वैसे भी एक अच्छे सेक्रेटरी की नितान्त आवश्यकता है। मैं खुद सघ के काम मे अधिक समय लगाना चाहता, पर परिस्थिति ऐसी है कि मैं पूरे मनोयोग के साथ संघ का काम नही देख सकता। हा, अपने काम के बाद मैं संघ के काम मे संतोषजनक मात्रा में भाग ले रहा हूं। मंदिर और कुए खोले जाने के पूरे समाचार प्रान्तीय बोर्ड से नहीं मिलते हैं, पर हरएक प्रान्त से पाक्षिक आकडे अवश्य मिलते हैं। वे जितनी सूचना दे सकते हैं, देते ही हैं।

विनीत
घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
१७ जनवरी, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा १० तारीख का ग्वालियर से लिखा पत्र मिला। मैं अंग्रेजी संस्करण के सम्बन्ध मे कल बुधवार को श्री देवधर और श्री वझे से बात कर रहा हूं। वैसे तुम्हारा पत्र मिलने के बाद मैं वझे से प्रारम्भिक बातचीत कर भी चुका हू। ऐसा मालूम पड़ता है कि यहां से पत्र निकालने मे कोई अडचन नही होगी, पर मैं कोई

काम उतावली मे नही करूगा। काम को सचमुच हाथ लगाने से पहले मैं तुम्हें पूरी सूचना दे दूगा।

बगाल मे यह यरवडा पैक्ट का कैसा विरोध हो रहा है। मैं डा० विधान को भी लिखकर पूछ रहा हू।

वेरो के असर के सम्बन्ध मे जो लिखा सो जाना। क्या कभी तुमने व्यवहार किया है?

तुम्हारा
बापू

यरवडा केन्द्रीय जेल
१६ जनवरी, १६३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा १४ तारीख का पत्र मिला। कल मैंने अग्रेजी सस्करण के बारे में श्री देवधर और श्री वझे से देर तक बात की और इस बातचीत के फलस्वरूप मैंने अमृतलाल ठक्कर को तार दे दिया है कि यदि शास्त्री को छोड सकें तो तुरत भेज दें। वझे का कहना है कि सपादकीय कार्य के लिए शास्त्री सबसे ठीक रहेगा। वझे ने सहायता देने का वचन दिया है, पर वह पूर्णतया पत्र के साथ नही हो सकेंगे। पर दोनों ने यह कहा कि यद्यपि शास्त्री ने भारत सेवक सघ मे लिये जाने का प्रार्थना-पत्र दिया है, तथापि यदि वह सपादकीय भार ग्रहण करेगा तो उसे (अर्थात् भारत सेवक सघ को) कोई आपत्ति नही होगी। जहा तक महादेव को और मुझे समय मिलेगा, पत्र के स्तम्भ हम भरेंगे और शास्त्री हिदायत के मुताबिक काम करेगा। धीरे-धीरे वह स्वय मौलिक लेख लिखने लगेगा।

हिन्दी सस्करण कौन जाने कब निकलेगा?

तुम्हारा
बापू

यरवडा केन्द्रीय जेल
पूना
२१ जनवरी, १६३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र मिला। बंगाल के प्रश्न पर तुम कोई सार्वजनिक वक्तव्य दो, यह मैं नही चाहता। तुम देख ही रहे हो कि मैंने खुद कोई वक्तव्य नही दिया है। मैं भी यह खयाल करके कि तुम भी उनको लिखोगे, तुम्हारा अनुकरण कर रहा हू

और तुमसे पहले ही डा० विधान और रामानन्दबाबू को लिख रहा हूं। मैंने श्री जे० सी० गुप्त को पत्र नही लिखा है, और न लिखना जरूरी ही समझता हू। मैं उनसे मिल भी लेता, पर मैं नही कह सकता कि उनके साथ मेरा पहला परिचय है भी या नही।

जो प्रतिया रह गई हैं उनकी समाप्ति तक पुस्तिका की पुनरावृत्ति स्थगित करना ठीक नहीं है। तुम दो मे से एक काम कर सकते हो। या तो पुरानी पुस्तिका को रद्द करते हुए नई पुस्तिका जारी करो, जो प्रतिया रह गई हैं, उनमे अपूर्ण प्रस्ताव के ऊपर पूरा प्रस्ताव चिपका दो, और सरकूलर भेज दो कि भूल से पुस्तिका मे अपूर्ण प्रस्ताव छप गया। उस सरकूलर में भी वह पूरा प्रस्ताव दे दो।

मैं अच्छी तरह समझता हू कि तुम्हें अपना कामकाज भी देखना है, खास तौर से इन दिनों।

'हरिजन सेवक' निकालने मे क्या कठिनाई है ?

तुम्हारे स्वास्थ्य-सबंधी समाचार चिन्ता उत्पन्न करते हैं। यदि कोई विश्वसनीय डाक्टर आपरेशन की सलाह देता है तो क्यों नही करा डालते ? मुझे अनुभव ने सिखाया है कि नपी-तुली खुराक और उपवास की उपयोगिता भी सीमित ही है। उनसे सदैव ही इच्छित फल प्राप्त नही होता है। और जितने आराम की जरूरत हो, लो। ऐसे मामलों में टालमटोल करना पाप है।

तुम्हारा
बापू

२४ जनवरी, १६३३

परम पूज्य बापू,

सरकार के निश्चय पर मुझे बडा आश्चर्य होता है, पर इधर मैं कई सवाद-एजेंसियों की बुद्धिमत्तापूर्ण भविष्यवाणियो को ध्यान से पढता आ रहा था, इसलिए जो कुछ हुआ है, उसके लिए पहले से ही तैयार-सा हो गया था। मुझे सरकारी निश्चय में न तर्क दिखाई देता है, न न्याय-बुद्धि। अब मैं इस प्रतीक्षा मे हूं कि इस परिस्थिति के सम्बन्ध मे आपका क्या दृष्टिकोण है।

इस समय व्यवस्थापिका सभा का जैसा कुछ ढंग-ढाचा है, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि वह अनेक अच्छी चीजें रद्द करने और बुरी चीजें पास करने मे समर्थ है। पहली बात तो यह है कि सरकार की विलम्ब करने की नीति के फलस्वरूप, सम्भव है, यह बिल व्यवस्थापिका सभा मे पेश ही न हो सके, और यदि पेश हो भी जाय तो बहुत सम्भव है, वह पास न हो। इसलिए श्री रगा अय्यर के बिल के ऊपर अधिक निर्भर करना ठीक नही होगा। हमें तो आपसी चेष्टाओं

का ही महारा लेना चाहिए। परन्तु गुरुवायूर मन्दिर के मामले मे तो आपसी चेप्टाओ का अधिक मूल्य नही है। इसलिए मैं यह जानना चाहूंगा कि आप हमे क्या करने को कहते हैं।

यदि आपको भी रगा अय्यर का बिल पसन्द हो तो उसकी भाषा मे फेरफार करना आवश्यक होगा, क्योकि इस समय वह जैसा कुछ है, आज की अवस्था के लिए अपर्याप्त सिद्ध होगा। भाषा बडी अस्पष्ट है, और कानूनी पहलू से उसका शब्द-गठन ठीक नही हुआ है। यदि आप इसके पेश किये जाने के पक्ष मे हों तो आपकी सलाह से इसकी भाषा का परिमार्जन करना आवश्यक होगा। इसीलिए मैंने आपके पास एक तार भेजा है। आपके पास से कल तक उत्तर मिलने की आशा है। यदि आप चाहे कि मैं पूना आऊ तो मैं वहां के लिए तुरत चल पडूगा। वैसे तो मैं परसो दिल्ली जा रहा हू।

विनीत

घनश्यामदास

यरवडा केन्द्रीय जेल

पूना

२५-१-१९३३

भाई घनश्यामदास,

'हरिजन सेवक' के अग्रेजी सस्करण की आय-व्यय का अनुमान यह रहा। तुम देखोगे कि रकम मामूली-सी है। क्लर्को को भी कुछ दिया जायगा और शास्त्री का शुल्क भी जोडना होगा। शास्त्री पत्र का सम्पादन करने को राजी हो गया है।

मेरा १०,००० प्रतिया निकालने का इरादा है। यदि इतनी प्रतियों की माग नही हुई तो कम कर दी जायगी। तुम जानते ही हो कि मैं या तो पत्र को हाथ नही लगाऊगा और यदि लगाऊगा तो उसे स्वावलंबी बनाने के लिए। यदि पत्र अपना खर्च स्वय न निकाल सका तो मैं समझूगा कि प्रबन्ध या सम्पादन का दोप है, या जनता मे ऐसे पत्र की माग नही है। इनमे से किसी भी दशा मे यदि दोप दूर न किया जा सकेगा तो पत्र को बन्द कर दिया जायगा। मैं पत्र को तीन महीने तक चलाकर देखूगा। इसी बीच मे उसे आत्म-निर्भर बनाना है।

अतएव मैं चाहूगा कि तुम ठक्कर बापा और जिन किन्ही से परामर्श करना चाहो उनसे परामर्श करके मुझे तार द्वारा सूचना दो कि अधिक-से-अधिक कितनी रकम तक के खर्च की मजूरी दे सकते हो। जो अनुमान की हुई रकम है उसमे डाक-खर्च और तार-खर्च के अलावा २००) रुपये और जोड लेना ठीक रहेगा। मैं अधिक पक्के आकडे शास्त्री के मिलने के बाद दूगा। यदि तुम बजट पास कर सको तो क्या मैं पत्र निकालने का काम, इस बात का खयाल किये बगैर कि हिन्दी पत्र

निकलेगा या नही, शुरू कर सकता हू ? मैं समझता हूं, पत्र निकालने मे यहा कोई असुविधा नही होगी।

अस्पृश्यता-निवारक बिलों के सम्बन्ध मे सरकार के निर्णयवाला तुम्हारा तार ग्वालियर से मिल गया। आशा है, तुम्हें मेरा उत्तर मिल गया होगा और तुमने मेरा सविस्तार वक्तव्य भी पढ़ लिया होगा। मुझे उस वक्तव्य से अधिक और कुछ नही कहना है।

संघ को सरकारी सहायता की याचना करना या उसे ग्रहण करना चाहिए या नही, इस सम्बन्ध मे मुझे और अधिक कुछ नही कहना है। पत्र स्वयं ही स्पष्ट है।

आशा है, तुम अब पहले से अच्छे होगे। अपने स्वास्थ्य के साथ भी तुम्हें ऐसा ही बरताव करना चाहिए जैसा अपने अन्य धंधों के साथ करते हो। उसकी उपेक्षा करने से काम नही चलेगा।

तुम्हारा
बापू

९ फरवरी, १९३३

परम पूज्य बापू,

स्थिति का अध्ययन करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुचा हू कि यदि सरकार सहायता करे तो बिल इसी अधिवेशन मे पेश हो सकता है और शिमला के अधिवेशन मे पास हो सकता है। निर्वाचन-समिति की नियुक्ति भी इसी अधिवेशन के दौरान हो सकती है। यदि सरकार सहायता नही करेगी तो शायद बिल इस अधिवेशन मे पेश न हो सके। पर लक्षणो से ऐसा लगता है कि सरकार बिल के पेश किये जाने में सहायता तो करेगी, पर इससे आगे बढ़ने को तैयार नहीं होगी। सरकार हठ पकड़ेगी कि सदस्यो की राय लेने के लिए बिल की प्रतियां बांटी जायं। वैसे तो सदस्यों में घुमाये जाने के बाद भी बिल का शिमला-अधिवेशन में पास किया जाना सम्भव है, पर उसके लिए यह आवश्यक है कि सरकार हर तरह की सुविधाएं दे। यदि सरकार की सहायता नही मिली तो बिल खटाई मे पड़ा रहेगा।

मैं जब से यहां आया हूं, हम लोगों ने कई बैठकें बुलाईं, जिनमे से कल रात की बैठक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रही। उसमे यह तय हुआ कि व्यवस्थापिका सभा के प्रमुख सदस्य सरकार से बिल पर चर्चा करने के लिए विशेष सुविधाएं देने का अनुरोध करें। एक पत्र तैयार किया गया, जिस पर कई प्रमुख सदस्यो ने हस्ताक्षर किये। आज और भी अधिक हस्ताक्षर हुए होंगे, और मैं समझता हूं, अब तक पत्र लीडर आफ दी हाउस के हाथ मे पहुंच गया होगा। परन्तु मुझे विशेष

आशा नही है कि सरकार विशेष सुविधाए देगी। स्वयं सदस्य यह नही चाहते है कि बिल की कारंवाई वर्तमान अधिवेशन के दौरान झटपट पूरी कर दी जाय। इनमें मे अधिकाश इस मामले मे एकमत हैं कि बिल को सदस्यो मे घुमाना जरूरी है, पर साथ ही वे यह भी नही चाहते हैं कि उसे पास करने के मामले मे उतावली से काम लिया जाय। मैं आपको व्यवस्थापिका सभा की प्रणाली को विस्तार के साथ बताना जरूरी नही समझता हू, क्योकि मेरा विश्वास है कि आप स्वयं अच्छी तरह जानते होगे। पर मैं तो इतना तो कह ही दू कि यदि सरकार बिल को गजट मे प्रकाशित कर दे तो उसे औपचारिक रूप से पेश करने की झझट मिट जाय। इस प्रकार यदि सरकार चाहे तो हमारे मार्ग से एक रुकावट दूर हो जाय; पर शायद सरकार हमारी मदद करने को यहा तक आगे नही बढेगी।

आज फिर एक बैठक है, जिसमे प्रमुख सदस्य भाग लेंगे। उनमे से कुछ को हम उनके नाम मे खड़े हुए बिल वापस लेने के लिए राजी करने की चेष्टा करेंगे, जिससे श्री रगा अय्यर के बिल के लिए रास्ता साफ हो जाय। मुझे भरोसा है कि अधिकाश सदस्य हमारी सहायता करेंगे। ऐसी भी आशका है कि दो-एक का रुख सहायतापूर्ण न हो, पर इससे बिल का २७ फरवरी को बाकायदा पेश होना नही रुकेगा। हा, यदि सरकार इससे पहले ही बिल को गजट मे प्रकाशित कर दे और विशेष सुविधाएं दे तो उसे बाकायदा पेश करना गैरजरूरी हो जायगा।

बस, एक बात और रह गई। व्यवस्थापिका सभा मे एक रिवाज चला आता है कि जिस दिन बिल पेश किया गया हो उसी दिन उस पर चर्चा नही की जाती है। इसका अर्थ यह है कि यदि बिल २७ फरवरी को पेश हो गया तो भी उस पर उसी दिन विचार नही किया जायगा। यह रिवाज सदस्यो, सभापति और सरकार की सहमति से शिथिल भी किया जा सकता है। पर शायद तीनो पक्ष इसके लिए राजी न हों। स्वय हाउस इन रिवाजो के पालन किये जाने के पक्ष मे रहता है। मैं स्वयं चार वर्ष तक सदस्य रह चुका हू, इसलिए मेरी सहानुभूति इन रिवाजो के साथ है।

जब मुझे ऐसा लगने लगेगा कि यहा और कुछ करना सभव नही है तो मेरा विचार कलकत्ते के लिए रवाना होने का है। यहा तो मेरी नाक का आपरेशन करनेवाला कोई विशेषज्ञ है नही, इसलिए अब की बार मैं कलकत्ते मे यह भी पूरा करा डालूगा।

विनीत
घनश्यामदास

(चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नाम महात्मा गांधी के तारीख १३-२-३३ के पत्र की नक्ल)

आपने और घनश्यामदास ने जनता के नाम जो अपील निकाली है वह मैंने पढी है। आप लोगों ने उपवास और उसकी सम्भावना की चर्चा मात्र भी क्यों की ? यदि उपवास करना ही पड़ा और यदि उसे आध्यात्मिक रूप देना पड़ा तो आप इस प्रकार उसकी आध्यात्मिकता नष्ट कर रहे हैं। यदि मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी बिल व्यवस्थापिका सभा के वर्तमान अधिवेशन में, अथवा बिलकुल ही, पास न हुए तो भी मैं स्वयं नही कह सकता हूं कि उपवास निश्चित है। मैं नहीं जानता वह कब आयेगा। आप लोगों को उसे अपने दिमाग से बिलकुल निकाल देना चाहिए और जनता को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की छूट दे देनी चाहिए। जब उपवास आयेगा और उसका स्वरूप आध्यात्मिक होगा तो उसका प्रभाव स्वतः ही पड़ेगा। यदि वह उपवास रुग्ण अथवा अहम्मन्य मस्तिष्क की उपज होगा तो उसकी खबर सुननेवाले को या तो तरस आयेगा, या घृणा होगी—जिसकी जैसी मनोवृत्ति होगी। इसलिए एक विशेषज्ञ की सलाह मानकर उसी के अनुरूप पूरी तरह आचरण करिये।

इसके साथ ही आपको मालवीयजी के रुख पर भी गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना है। वह बिलों के बिलकुल खिलाफ हैं, विशेषकर यदि जनमत निर्धारित करने के लिए उन्हें घुमाया न गया तो। यह ठीक है कि मैं उनके मत से सहमत नही हूं। मैं उनको लिख रहा हूं। पर यदि आपको तनिक भी अवकाश हो तो उनसे अवश्य मिलिये, या सिर्फ देवदास को ही भेज दीजिये। लेकिन मैं इस बारे मे दृढ़ता के साथ कोई सम्मति नही दे सकता हूं। जो-कुछ आपको बिलकुल ठीक जंचे वही करिये। बाहर के वातावरण से तो आप लोग ही अच्छी तरह परिचित हैं। मैं तो जो-कुछ जानता हूं, सुनी-सुनाई, इसलिए उसका मूल्य नही के बराबर है।

डा० अ०[1] के साथ मुलाकात हुई। मुलाकात को अत्यंत असतोषजनक कहना ठीक होगा। उनके साथ मेल होना सम्भव नही है। एक प्रकार से मुलाकात सफल भी रही। मैं उन्हे अब पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानने लगा हूं।

कृपया यह पत्र घनश्यामदास और ठक्कर बापा को भी दिखा लीजिये।

बापू

इस समय हम जिन दो कामों में जुटे हुए थे वे ये थे : हिन्दू-मन्दिरो में अछूतों का प्रवेश कराने के लिए मन्दिर-प्रवेश-बिल को पास कराना, और उनके हितो का समर्थन करने के लिए साप्ताहिक 'हरिजन' निकालना।

---

१. डा० अम्बेदकर से अभिप्राय है।

१४ फरवरी, १९३३

परम पूज्य बापू,

भरसक चेष्टा करने पर भी हम आगे नही बढ़ सके हैं। बिल के लिए २७ तारीख निश्चित हुई है और यदि सब-कुछ ठीक-ठाक रहा तो श्री गयाप्रसाद सिंह या श्री एम० सी० मित्र उसे उसी दिन पेश कर देंगे, परन्तु मुझे उसके उस दिन पेश होने मे काफी सन्देह है। सबसे पहली बात तो यह है कि बहुत-से बिल आगे से पड़े हुए हैं। यदि उन सबका वापस लिया जाना सम्भव हो तो भी कम-से-कम एक बिल—हाजी वजीहुद्दीन का शारदा ऐक्ट को रद्द करनेवाला बिल—तो रहेगा ही, और सारा दिन उसी मे लग जायगा। इस प्रकार बिल शायद २७ तारीख को पेश ही न हो सके, और आप जानते ही हैं कि केवल बिल पेश होने से ही कुछ काम न बनेगा। यदि सरकार बिल को पेश करने की विशेष सुविधाएं दे दे तो अन्य बिलों के बावजूद वह २७ को पेश किया जा सकता है।

मैं आपको लिख ही चुका हूं कि यदि बिल गजट मे प्रकाशित हो जाय तो उसे बाकायदा पेश हुआ करार दिया जायगा। श्री रंगा अय्यर ने सरकार को लिखा भी है, परन्तु अभी तक उन्हें कोई उत्तर नही मिला है। मेरे सुनने मे तो अभी तक यही आया है कि हमें कोई विशेष सुविधाएं नही मिलेंगी। विशेष सुविधाएं मागने के लिए व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के हस्ताक्षरों सहित जो पत्र भेजा जाने वाला था वह भेज दिया गया है। केवल १२ हस्ताक्षर कराये जा सके हैं।

नेशनलिस्ट पार्टी में दलबंदी हो रही है। इसके अलावा नेशनलिस्ट पार्टी और इडिपेन्डेन्ट पार्टी मे भी प्रतिद्वन्द्विता चल रही है। चेष्टा की जा रही है कि इन्डिपेन्डेन्ट पार्टी भी ऐसा ही एक पत्र भेज दे।

बिल-सम्बन्धी धीमी प्रगति के कारण जो निराशा हो रही है उसकी ओर ध्यान न दिया जाय तो स्थिति काफी संतोषजनक है और देश बडी तेजी के साथ आगे बढ रहा है। लोग अस्पृश्यता-निवारण मे अधिकाधिक रुचि दिखा रहे हैं और परिणाम सतोषजनक है।

पडितजी एक बड़ा बुरा वक्तव्य देने वाले थे, जिसमें वह बिल के पेश किये जाने का जोरदार विरोध करते, पर उन्हें फिलहाल वैसा वक्तव्य न देने को राजी कर लिया गया है।

हिन्दी 'हरिजन' की बात अभी तक अनिश्चित है। हमने श्री गुप्ते का नाम मुद्रक और प्रकाशक के स्थान पर दिया था। सी० आई० डी० उनके सम्बन्ध मे जाच कर रही है। अब नागपुर पुलिस ने उनके संबंध में पूरी रिपोर्ट भेजने को लिखा है। बहुत चेष्टा करने पर भी काम जल्दी से आगे नही बढ रहा है।

ठक्कर बापा डिप्टी कमिश्नर से दो बार मिले, पर तो भी कोई प्रगति नही हुई।

विनीत
घनश्यामदास

१८ फरवरी, १६३३

परम पूज्य बापू,

फिलहाल कोई महत्त्वपूर्ण बात लिखने योग्य नही है। दोनों ओर से प्रचार-कार्य जारी है। हम भी लगे हुए है, सनातनी लोग भी। जब हमने कुछ सदस्यो से विशेष सुविधाओं के लिए सरकार से अनुरोध कराया तो विपक्षी दल ने भी कई सदस्यों से इसका विरोध कराया। फलत. हमने निश्चय किया है कि यदि हमें सदस्यो से अपेक्षाकृत अधिक सहायता प्राप्त करनी है तो बिल को व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास कराने के मामले मे जल्दबाजी से काम न लेकर उसके वितरण से ही संतोष करना पड़ेगा। मैं जानता हू कि आप इस मामले मे सहमत नही हैं। पर मेरी अपनी धारणा तो यह है कि बिल के वितरण में और निर्वाचक समिति की नियुक्ति मे वास्तव में कोई भेद नही है। यदि निर्वाचक समिति नियुक्त हो जाय तो भी शिमला-अधिवेशन से पहले कुछ होना सम्भव नही है और यदि बिल को एक निश्चित अवधि का निर्देश करके सदस्यो मे बांट दिया जाय तो भी निर्वाचक समिति की नियुक्ति सम्भव है, और बिल पर उसके बाद ही विचार किया जायगा। अतएव बिल के वितरण पर सहमत होकर हम उससे अधिक समय नष्ट नही करेंगे जितना हमें वैसे भी करना पड़ता। इसलिए हमने कुछ सदस्यो से सरकार से अनुरोध कराया है कि बिल पेश हो सके, इसके लिए वह सुविधाएं प्रदान करे, जिसमे जनमत निर्धारित करने के लिए उसे इस शर्त के साथ बाटा जा सके कि वह शिमला-अधिवेशन तक व्यवस्थापिका सभा में लौट आयेगा। आशा है, आपको इस कार्य-प्रणाली पर विशेष आपत्ति नही होगी।

मैंने सुना है कि सनातनी वर्ग ने काफी रुपया इकट्ठा किया है। रुपया दक्षिण से भी आ रहा है और रकम का काफी अच्छा भाग कलकत्ता और बम्बई के मारवाड़ियों से आया है। कठवा के महाराज ने भी काफी रुपया दिया है। पता नही, इस खबर में कहा तक सचाई है, पर कुछ सचाई है अवश्य।

खेद है कि आपको राजाजी को और मुझे सार्वजनिक रूप से डाटना पड़ा। हम दोनो आपस मे झगड़ रहे हैं कि उस विशिष्ट अंश के लिए किसको दोष देना चाहिए। पर मुझे अच्छी तरह याद पड़ता है कि मैने राजाजी से कहा था कि उपवास के सम्बन्ध में कुछ मत कहिये। हां, मेरे कारण भिन्न थे। प्रेस मुलाकात का मसविदा स्वयं राजाजी ने तैयार किया था, और मूल मसविदे मे आपके उपवास की चर्चा तक नही थी। मूल मे जो वाक्य था, उसका आशय यही था, कि

हमने पहले से दुगुनी शक्ति के साथ काम करने का और बिल को वर्तमान अधिवेशन में पास कराने का आपको वचन दिया है। मैंने कहा कि मैं इस पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं हूं, क्योंकि न तो मैंने कोई ऐसा वादा ही किया था, और न मैं अपने-आपको इतना बडा ही समझता हूं कि ऐसा वादा कर सकूं। इसके अलावा यह कहना भी गलत होगा कि *मैं पहले से दुगुनी शक्ति के साथ काम करूंगा।* इस पर यह सुझाया गया कि जनता को इस बात का कुछ तो इशारा जरूर ही देना चाहिए कि इस बिल की ओर आपका ध्यान कितना लगा हुआ है। बस, उपवास-सम्बन्धी अंश का जन्म उसी उत्सुकता से हुआ। पर मैं आपकी बात समझ गया, और मैं आपसे इस मामले में सहमत हूं कि उसकी चर्चा नही करनी चाहिए थी।

आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक है।

विनीत
घनश्यामदास

२३ फरवरी, १६३२

परम पूज्य बापू,

कल हमने वेस्टर्न होटल में चाय-पार्टी का आयोजन किया, जिसमे व्यवस्थापिका सभा के प्राय: ३५ सदस्यों ने भाग लिया। जितनी की हमें आशा थी उससे भी अधिक सफलता मिली। कुछ सदस्यों ने बिल के विरोधी होते हुए भी उसके पेश किये जाने और लोकमत का पता लगाने के लिए उसके घुमाए जाने का पक्ष लिया। अब हमारी माग मामूली-सी है, इसलिए हमें पहले से अधिक समर्थन प्राप्त हो रहा है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि बिल २७ फरवरी को पेश हो जायगा और २४ मार्च को बाट दिया जायगा। कई सदस्यों ने वादा किया कि जो अन्य बिल रास्ता रोके पड़े हैं उनके कारण व्यर्थ ही समय नष्ट न हो, इसका वे ध्यान रखेंगे। मंदिर-प्रवेश-सम्बन्धी दूसरा बिल २७ फरवरी को आनेवाला नही है, इसलिए वह सम्भवत. उस दिन पेश नहीं होगा। मैंने सर ब्रजेन्द्रसिंह से देर तक बातें की, और उन्हें याद दिलाया कि शारदा बिल के अवसर पर विशेष सुविधाएं दी गई थी। पर उन्होंने कहा कि जबतक सरकार को विश्वास नही होगा कि बिल के लिए जगह किए बगैर वह भवन के सामने नही आ सकेगा तबतक वह विशेष सुविधाएं देने की बात तक न सोचेगी।

सरकारी क्षेत्र में अभी तक यह भ्रान्त धारणा फैली हुई है कि अस्पृश्यता-निवारण एक राजनैतिक पैंतरा-मात्र है। यह बड़े परिताप का विषय है, पर अभी उन्हें वास्तविकता पर विश्वास करने मे दिन लगेंगे। परन्तु मालवीयजी के रुख ने कम-से-कम एक बात साबित कर दी है, और वह यह है कि अस्पृश्यता-निवारण

कार्य को हाथ में लेकर आप अपने कई सबसे गहरे राजनैतिक मित्रों की मित्रता से वंचित हो गये हैं।

कल की चाय-पार्टी में राजाजी की वक्तृता बड़ी ही प्रभावोत्पादिनी रही; कई सदस्यों ने तो भूरि-भूरि प्रशंसा की। मैं भी अनेक पुराने मित्रों से इतने दिनों के बाद मिला था, इसलिए बड़ा प्रफुल्लित था। इस प्रकार पार्टी बहुत ही सफल रही।

विनीत
घनश्यामदास

बनारस
५ मार्च, १९३३

परम पूज्य बापू,

मैं दिल्ली से यहां आया हूं और ५-६ दिन ठहरूंगा। इसके बाद कलकत्ता जाऊंगा। पहले मेरा इरादा था कि इस बार कलकत्ते में आपरेशन करा लूंगा, पर मुझे २० तारीख तक दिल्ली वापस लौटना है, क्योंकि बिल २४ को लिया जायगा। वैसे इस दफा बिल के सम्बन्ध में और कुछ नहीं करना है। कलकत्ते में मुझे मुश्किल से एक सप्ताह मिलेगा। इस प्रकार आपरेशन इस दफा भी मुल्तवी रहा।

मैंने पंडितजी[1] के साथ देर तक बातचीत की। मुझे मालूम हुआ कि उनसे मथुरादास मिल चुके हैं। पंडितजी का दृष्टिकोण बिलकुल भिन्न है। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहते हैं और किसी को अप्रसन्न नहीं करना चाहते। इसलिए वह जो ढंग अपना रहे हैं वह आपको नहीं भायगा।

बातचीत के दौरान पंडितजी ने स्वीकार किया कि कानूनी बाधाएं हैं, पर उन्होंने यह नहीं माना कि उन बाधाओं को विधान सभा की सहायता के बगैर दूर नहीं किया जा सकता है। उन्होंने तो यहां तक कहा कि यदि उन्हें विश्वास हो जाय कि कुछ सचमुच की कानूनी बाधाएं हैं तो वह व्यवस्थापिका सभा की सहायता से या अदालत में परीक्षा के बतौर मामला ले जाकर इस त्रुटि को दूर करने की चेष्टा करेंगे। जब मैंने उन्हें सुझाया कि हम काशी विश्वनाथ मंदिर के मामले को परीक्षा के बतौर अदालत में ले जा सकते हैं तो उन्होंने कहा कि वैसा करना वांछनीय नहीं होगा। पंडितजी को विश्वास है कि आपने जो ढंग अपनाया है उससे अस्पृश्यों को मंदिर में ले जाने में और भी देर लगेगी। वास्तव में वह सनातनी वर्ग के साथ संघर्ष से बचना चाहते हैं।

---

१. मालवीयजी।

उन्होने जो कहा उससे प्रयाग वाले प्रस्ताव के सम्बन्ध मे मेरी धारणा की और भी पुष्टि हो गई। उस प्रस्ताव के अनुसार अस्पृश्य लोग विश्वनाथ मंदिर मे प्रवेश नही कर सकते है।

दिल्ली से रवाना होने के पहले मैंने सरकारी क्षेत्रो से पता लगाया कि बिल के २४ तारीख को पेश होने की क्या सम्भावना है। उन्होने आश्वासन दिया कि उन्हे कोई बाधा दिखाई नही देती है। इसलिए सम्भवत हम २४ को पहली पाली जीत लेंगे। पर उसकी भावी प्रगति के बारे मे मुझे उतनी आशा नही है। मैं यह तो स्वीकार करने को तैयार नही हूं कि बिल के वितरण मे कोई खास समय नप्ट होगा, पर और भी बहुत-सी ऐसी कठिनाइया हैं, जिन्हे आप खुद ही समझते होगे।

विनीत

घनश्यामदास

बिड़ला हाउस

बनारस

८ मार्च, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपका २ मार्च का पत्र देखा। श्री डेविड की योजना[1] के सम्बन्ध मे बात यह है कि अभी तक हमें रघूमल चैरिटी ट्रस्ट से सिर्फ छात्रवृत्तियो के लिए १०००) रूपये मासिक का वचन मिला है। यह रकम केवल बारह महीने तक मिलेगी, पर मुझे आशा है कि साल-भर बाद इसे फिर जारी करा लिया जायगा। यह रकम श्री डेविड की योजना वाले काम मे आसानी से लाई जा सकती है।

इस कार्य के लिए अधिक रुपया सग्रह करने के बारे मे मेरा कहना यह है कि अब और अधिक वचन मिलना कठिन-सा हो रहा है, क्योंकि जिन्हे देना था वे हमारे सघ के विभिन्न बोर्डों मे से एक-न-एक बोर्ड को पहले से ही दे चुके हैं। अभी हमने रुपया अधिक खर्च नही किया है, और यदि आप सहमत हो तो मेरा सुझाव तो यही है कि फिलहाल केन्द्रीय बोर्ड इस निमित्त कुछ रुपया निकाल दे। वास्तव मे हम शिक्षण-कार्य मे कुछ रुपया खर्च करने की बात पहले से ही सोच रहे है और हमने प्रान्तीय बोर्डों से भी कह दिया है कि यदि वे अपने हिस्से का भार वहन करने को तैयार होगे तो केन्द्रीय बोर्ड भी अपने भाग मे आया हुआ भार वहन करेगा। परन्तु मुझे प्रान्तीय बोर्डों से कोई सतोषजनक उत्तर मिलने की आशा नही है, इसलिए फिलहाल केन्द्रीय बोर्ड से ही खर्च करना सबसे अच्छा रहेगा। फर्ज

१. हरिजनो को उच्च शिक्षा देने के निमित्त सवर्ण हिंदुओं से चदा लेने की योजना।

करिये, हम केन्द्रीय बोर्ड से २०,०००) रुपये खर्च करें, और १९३३ भर के लिए १२,०००) रुपये का वचन रायमल चैरिटी ट्रस्ट से मिल ही गया है, तो कुल मिलाकर ३२,०००) रुपये हुए। आप यदि अम्बालाल-जैसे मित्रों को २,५००) रुपया देने को लिखें तो अवश्य ही देंगे। मैं भी इतनी ही रकम दे दूंगा। इस प्रकार अच्छा खासा श्रीगणेश हो जायगा। कृपया मुझे कलकत्ते के पते पर लिखिये कि मेरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है।

हमने हरिजन-कार्य के लिए अबतक प्रान्तों के संग्रह को मिलाकर दो लाख से कुछ ऊपर इकट्ठा कर लिया है। दाता लोगों को इससे सरोकार नहीं है कि हम उनके पास श्री डेविड की योजना के सिलसिले में जाते हैं या केन्द्रीय या प्रान्तीय बोर्डों के संग्रह सिलसिले में। उनसे रुपया हरिजन-कार्य के लिए मांगा गया था और उन्होंने दे दिया। इसलिए मैं तो यह उचित नहीं समझता हूं कि उनके पास श्री डेविड की योजना के सिलसिले में खासतौर से पहुंचा जाय। हां, यदि आप चाहेंगे तो मैं दिल्ली पहुंचने पर लाला श्रीराम से जरूर मांगूंगा। आप भी उन्हें अपनी ओर से लिख दीजिये।

हिन्दी 'हरिजन' के मामले में मैं स्वयं दिलचस्पी ले रहा हूं। आपने देखा होगा कि मैं उसमें अपने लेख दे रहा हूं। आपने जो दोष इंगित किये हैं उनकी ओर मैंने हरिजी का ध्यान पहले से ही दिला दिया है। आपकी आलोचना सम्भवतः पत्र के केवल प्रथम अंक के सम्बन्ध में है। मेरी राय में दूसरा अंक पहले की अपेक्षा निश्चय ही अच्छा हुआ है। पर इसमें सन्देह नहीं कि पत्र को अभी और भी आकर्षक बनाना है। हमें आशा है कि हम भविष्य में आपको अधिक सन्तुष्ट कर सकेंगे। परन्तु यदि कोई आलोचना योग्य बात दिखाई पड़े तो कृपया मुझे लिखते रहियेगा।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा ही चल रहा है, और नाक भी कोई विशेष कष्ट नहीं दे रही है। फिर भी उसकी ओर ध्यान देना तो है ही। अभी इसमें देर लगेगी, क्योंकि उसके लिए एक पखवाड़े के विश्राम की जरूरत पड़ेगी और यह मार्च २४ से आगे सम्भव नहीं है।

अपने पत्र के अन्त में आपने 'पुनश्च' करके जो नोट दिया है उसमें निर्वाचक बोर्ड की चर्चा है। सम्भवतः श्री डेविड की योजना से अभिप्राय है, पर मुझे आपका सुझाव अच्छी तरह याद नहीं रहा। कम-से-कम दिल्ली पहुंचने से पहले इस मामले को उठाने में असमर्थ रहूंगा। मैं १९ की सुबह को दिल्ली पहुंचूंगा और ठक्करजी से फिर बातचीत करूंगा। इस बीच आपके उत्तर की प्रतीक्षा कलकत्ते में करूंगा।

विनीत
घनश्यामदास

'हरिजन' को तत्काल सफलता मिली, जैसा कि निम्नलिखित पत्र से स्पष्ट है :

यरवडा केन्द्रीय जेल
६ मार्च, १६३३

भाई घनश्यामदास,

अंग्रेजी 'हरिजन' अपना खर्च खुद निकाल लेता है। बाजार मे वेचकर और चन्दे के द्वारा जो रकम इकट्ठी हुई उसमे से भी बच रहा है, और केन्द्रीय बोर्ड द्वारा दी गई १०४४) रुपये की रकम वैसी ही मौजूद है। इसलिए इसे वापस किया जा सकता है। बताओ, यह रुपया तुम्हारे पास कैसे भेजा जाय ? तुम्हे महाराष्ट्र बोर्ड को भी तो कुछ देना है। रुपया वापस करने के ढंग के बारे मे इसलिए पूछ रहा हू कि मनीआर्डर, हुंडी या चेक के द्वारा रुपया भेजने से कमीशन लगेगा, और मैं वह बचाना चाहता हूं।

गुजराती 'हरिजन' निकालने का भी प्रबन्ध हो गया है। पूना से निकल रहा है। यदि घाटा हुआ तो पहले तीन मास के घाटे का भार बम्बई बोर्ड ने वहन करने की गारटी दे दी है। पर मुझे तो ऐसी आशका नहीं है।

तुम्हारा
बापू

पुनश्च.

काशी से लिखा हुआ खत मिल गया है। आपरेशन मुल्तवी रहता जाता है, यह मुझे अच्छा नही लगता।

कलकत्ता
१६ मार्च, १६३३

परम पूज्य बापू,

मैं कल यहा से दिल्ली जा रहा हू। देखता हू कि नाक का आपरेशन स्थगित करने से आप मुझ पर नाराज हो गए हैं। पर क्या करू, लाचार हू। दिल्ली मे कोई अच्छा डाक्टर नही है, और कलकत्ते मे मैं ठहर नही सकता हू। परन्तु यहा मैंने डाक्टर राय और एक नासिका-विशेषज्ञ से अपनी परीक्षा करा ली है। नासिका-विशेषज्ञ आपरेशन कराने की सलाह देता है। उसकी राय है कि नासिका की भीतरी नाली की दिशा फेरने के बजाय नाली को स्थायी रूप से ऐसा बनाना होगा कि फिर बहाव मे कोई बाधा उत्पन्न न हो। वास्तव मे कई विशेषज्ञो ने मुझे इन दोनों प्रकार के आपरेशनों की सलाह दी है। डा० राय एक-आध महीने बाद

उपचार कराने की सलाह देते हैं। हर हालत में आपरेशन दिल्ली से वापसी के बाद ही होगा।

जहा तक रचनात्मक कार्यक्रम का सम्बन्ध है, खास कलकत्ता नगर मे काम संतोषजनक ढंग से हो रहा है। प्रायः बीस पाठशालाएं चल रही हैं। हां, सबका संचालन कुछ मारवाड़ी कार्यकर्त्ता ही कर रहे हैं। पर सतीशबाबू कड़ा परिश्रम कर रहे हैं। मुझे कहना पड़ता है कि प्रान्तीय बोर्ड का काम प्रायः नही के बराबर है। रुपया इकट्ठा किया जा रहा है, पर यह भी खेतान और कई अन्य मित्रों के द्वारा ही। मैंने डा० राय से कलकत्ते की बस्तियो की बावत बात की थी। आज तीसरे पहर मैं उन्हें कुछेक स्थान दिखाने ले जा रहा हूं। आशा है, भविष्य मे यह अधिक हाथ बंटायेंगे। यह सुझाये जाने पर कि सतीशबाबू को प्रान्तीय बोर्ड में ले लिया जायगा तो कार्य अधिक सफलतापूर्वक किया जा सकेगा, मैंने डा० राय को इशारा किया और अब सारा मामला उन्ही के ऊपर छोड दिया है।

मैंने कुछ मित्रों मे श्री डेविड की योजना के लिए ४००) रुपये वार्षिक देने को कहा है। बाजार की हालत इतनी खराब है कि रुपया मांगने मे संकोच होता है। पर आशा है कि कुछ लोग देंगे। हर हालत मे, जैसा कि मैं कह चुका हू, जो रुपया हमारे पास मौजूद है उमसे काम मजे मे शुरू किया जा सकता है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अंग्रेजी 'हरिजन' स्वावलबी हो गया है। आप जबतक अंग्रेजी 'हरिजन' मे अपने कुछ लेखों के द्वारा विशेष आशीर्वाद नही देंगे तबतक हिन्दी 'हरिजन' आपकी बराबरी न कर सकेगा। पत्र की मांग बढ़ रही है। इस सम्बन्ध मे अधिक दिल्ली पहुंचने पर लिखूगा।

जी हा, हमे महाराष्ट्र बोर्ड को रुपया देना होगा, बशर्ते कि अपने बजट का एक-तिहाई वे लोग खुद इकट्ठा करें। सम्भवतः वे अभी तक कुछ इकट्ठा नही कर सके है। केन्द्रीय बोर्ड को रुपया भेजने का सुगम उपाय यह है कि रुपया बम्बई मे मेरी फर्म को भेज दिया जाय। वहां से दिल्ली आ जायगा। इससे कमीशन भी बच जायगा।

आपने अखबारों में पढ़ा ही होगा कि बंगाल कौन्सिल ने पूना-पैक्ट को धिक्कारा है। हार भारी नही हुई, पर मुझे कौन्सिल का रवैया बिलकुल पसन्द नही आया। मैंने इस मामले पर समाचार-पत्रों मे प्रकाशन के लिए तो कुछ नही कहा, जैसा कि उचित भी था, पर साथ ही मेरा विश्वास है कि पूना-पैक्ट के विरुद्ध जो प्रचार-कार्य हो रहा है उसका निराकरण करने के लिए कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है। मैं इस चिट्ठी के साथ 'एडवास' और 'लिबर्टी' पत्रों के कटिंग भेजता हूं, जिनसे आपको सम्पादकीय रवैये का अन्दाजा होगा। पर सतीशबाबू[1] का कहना है कि

---

१. श्री सतीश चन्द्र दासगुप्त।

आम जनता पैक्ट के खिलाफ बिलकुल नही है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नही होगा कि बगाल मे जनमत विभाजित है। स्वय विधानबाबू[1] पैक्ट के पक्ष में नही हैं, इसलिए अबतक एक भी प्रमुख नेता ने पैक्ट के पक्ष मे जबान नही खोली है। आज सुबह मैंने सतीशबाबू से बात की और उन्हें सर प्रफुल्लचन्द्र राय और डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास जाने की सलाह दी। यदि वे सहमत हो गये तो प्रस्ताव पास किया जा सकता है। आज तीसरे पहर मैं डा० राय से भी बात करूंगा। यह सब सूचनार्थ है।

विनीत
घनश्यामदास

अछूतो के हित के लिए हम जो काम कर रहे थे उसके निमित्त चन्दा इकट्ठा करने में कठिनाई हो रही थी।

२१ मार्च, १९३३

परम पूज्य बापू,

मैं यहा परसो आया। कुछ दिन यही रहूगा। संघ[2] का वार्षिक अधिवेशन अप्रैल के मध्य मे होगा। तबतक मैं यही हू।

जब मैं कलकत्ते में था तो डा० विधान को कई बस्तियो मे ले गया था। इनमे हरिजन लोग रहते है। कुल मिलाकर ६०० बस्तिया है, जिनमे से लगभग २०० बस्तिया पिछले कुछ वर्षों से सुधर गई हैं। ये बस्तिया 'सुधरी हुई बस्तिया' कहलाती हैं। उनमे रोशनी, जल और नाली आदि की व्यवस्था है, इसलिए इनमे सार्वजनिक पाखाने खोलना सम्भव है। बाकी ४०० बस्तियो की दशा अकथनीय है। इनमे कुछ बस्तिया तो शहर के उस पार हैं, और इनमे नाली आदि की कोई व्यवस्था नही है। ये बस्तियां सड़क की सतह के नीचे है, इसलिए पानी की एक-एक बूद इकट्ठी हो जाती है। पानी इकट्ठा न हो, इसलिए हौज बनाने को प्रोत्साहन नही दिया जाता है। पाखानो की व्यवस्था भयकर है, क्योकि नालिया नही हैं। आदमी गलियो मे निवृत्त होते हैं और झोपडियो मे रहने वालों को सडक पर इन्ही में से होकर जाना पड़ता है। गर्मियो मे अवस्था बड़ी भयकर हो जाती है और बरसात मे घुटनों तक पानी हो जाता है, क्योकि उसके वह निकलने का कोई मार्ग नही है। इस अवस्था का अन्त दो प्रकार से ही किया जा सकता है। या तो इन बस्तियो को ढहा दिया जाय, या नालियों की व्यवस्था की जाय। मुझे

---

१ डा० विधान चंद्र राय।
२. भारतीय वाणिज्य उद्योग-संघ।

बताया गया है कि सारे इलाके में नालियों की व्यवस्था करने मे ५० लाख रुपये लगेंगे, जिसका प्रश्न ही उठाना बेकार है। एक और उपाय यह भी है कि इन इलाको में कुछ पप लगा दिये जायं, जो इकट्ठे हुए पानी को पंप कर दें। समस्या का हल आसान नही है, और समस्या को हल करना नितान्त आवश्यक भी है। डा० राय का कहना है कि वह अपने कारपोरेशन के अमले के सामने भी लाचार हैं और कौन्सिलरो के सामने भी। अधिकांश कौन्सिलरो का इन बस्तियो में प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष हित है। परन्तु जब इन बस्तियो को सुधारने का प्रश्न उठाया जाता है तो ये लोग विरोध करते हैं। मैंने देखा कि डा० विधान हृदय से कुछ करना चाहते है। वास्तव मे जिन बस्तियो मे सुधार की गुजाइश थी उन्हे पहले से ही सुधार दिया गया है। उन्होने अन्य बस्तियो को भी हाथ मे लेने का वचन दे दिया है। यह आपकी सूचनार्थ है।

मैंने 'हरिजन' मे आपका लेख देखा है, जिसमे टट्टी ले जाने के आधुनिक ढंग की चर्चा की गई है। मैंने इस प्रश्न पर भी डा० विधान से बात की। उन्होंने मुझे बताया कि जब उन्होंने अपनी इस नई प्रणाली को कारपोरेशन मे जारी करना चाहा तो मेहतरो ने घोर विरोध किया। बात यह है कि यदि टट्टी गाड़ियो मे ढोई जायगी तो उसके लिए इतने भगियों की दरकार नही होगी, इसलिए जब उन्होने इस सुधार की बात सुनी तो तुरन्त विरोध करना शुरू कर दिया। साथ ही कुछ कौन्सिलर भी ऐसे है, जो मेहतरो के हितैषी होने का दम भरते हैं। उन्होंने भी इन मेहतरों को भड़काया। आप कह सकते है कि मेहतरो की सख्या घटाये बगैर भी टट्टी गाड़ियो मे ढोई जा सकती है, पर आदमियो की दरकार न होने पर भी उन्हे रखे रहने की आशा करना कारपोरेशन के साथ न्याय नही होगा।

हिन्दी 'हरिजन' मे मैं बड़ी दिलचस्पी ले रहा हूं। इस सम्बन्ध मे मैं आपको दो-एक दिन बाद फिर लिखूंगा। मैंने खुद भी उसमे कई लेख लिखे थे। पर अब नही लिख रहा हू, क्योकि पता नही वे आपको अच्छे भी लगे या नही। मुझे कलकत्ते मे मालूम हुआ कि उन्हें मारवाडियो ने ध्यानपूर्वक पढा और सभी हिन्दी पत्रो ने उन्हें उद्धृत किया। आपके कुछ लेखो का अनुवाद मुझे पसन्द नही आया। रा० द्वारा किया गया अनुवाद तो सबसे बुरा था। इसलिए यदि अनुवाद स्वयं आपकी पसन्द का हो तब तो बात दूसरी है, अन्यथा अपने लेख उनके पास सीधे न भेजिये। पत्र के सम्बन्ध में अब आपकी क्या राय है, सो लिखने की कृपा करियेगा।

श्री डेविड की योजना के सम्बन्ध मे यह जानकर मुझे सचमुच दुःख हुआ कि इस प्रगति से आप सन्तुष्ट नही हैं। मैं जानता हूँ कि मैंने यह काम सरगर्मी के साथ हाथ मे लिया था, परन्तु धन-सग्रह के संबंध में जैसा मैंने अनुमान कर रखा था उसके विपरीत परिणाम से मुझे घोर निराशा हुई। मैंने समझा था कि

जिनके पास पैसा है, कम-से-कम वे तो खुशी-खुशी देंगे, पर कलकत्ते में मैं ५०,०००) रुपये से अधिक एकत्र नही कर सका। दिल्ली मे मैं दरवाजे-दरवाजे फिरा और फिर भी १,५००) रुपये बडी मुश्किल से एकत्र कर सका। एक बड़े ठेकेदार ने, जो काग्रेसवादी है, और काफी पैसे वाला है, देने का वादा तो किया, पर दिया कुछ नही। मैंने कानपुर मे अपने कई मित्रों को लिखा है। वे पत्र तो सुन्दर लिखते हैं, पर देते-दिलाते कुछ नही है। अहमदाबाद से भी निराशा ही हुई। बम्बई में चार मारवाड़ी फर्मों ने देने का वचन दिया था, पर अभी तक कुछ नही दिया है। इसका कारण यह नही है कि लोग इस कार्य को पसन्द नही करते हैं। असली बात यह है कि हर कोई जेब से बचना चाहता है। मुझे यह जानकर बडा दुःख होगा यदि आपकी यह धारणा हो कि पहले तो मैंने काम सरगर्मी के साथ हाथ में लिया, और फिर रुपया इकट्ठा नही कर सका। आप मुझसे जितना देने को कहें, देने को तैयार हूं, पर दूसरों से पैसा निकालना मेरे बूते के बाहर की बात है। आपको पत्र लिखने के बाद से मैं तीन और जगहो से २,५००) रुपये एकत्र करने मे सफल हुआ हूं। इस रुपये का उपयोग भी श्री डेविड की योजना में हो सकता है। मैंने कलकत्ते मे कई मित्रों को सुझाया कि किस्तो मे दे दो, पर सतोषजनक उत्तर नही मिला। ताजा सग्रह के सम्बन्ध मे यही स्थिति है। पर मैं आपसे इस बात मे सहमत नही हू कि केन्द्रीय कोश से रुपया न लिया जाय। जब रुपया मौजूद है तो उसे काम में क्यों न लिया जाय ? यदि उसे काम में नही लिया जायगा तो वह धीरे-धीरे कार्यालयों के खर्च और आवश्यक बातों मे खप जायगा। कई प्रान्तीय बोर्ड तो रचनात्मक कार्य पर एक पैसा तक खर्च नही कर रहे हैं। दिल्ली प्रान्तीय बोर्ड को ठक्कर बापा ने और मैंने इसके लिए आडे हाथो लिया है। अब मैंने सारे प्रान्तीय बोर्डों से कैफियत तलब की है कि उन्होंने दफ्तर के खर्च मे कितना लगाया और रचनात्मक कार्य मे क्या खर्च किया। इसलिए मैं तो फिर वही कहूंगा कि आप डेविड-योजना पर २०,०००) रुपये केन्द्रीय बोर्ड मे से और ६,०००) रुपये रघूमल चैरिटी ट्रस्ट के खर्च कर सकते है। रघूमल चैरिटी ट्रस्ट ने १२,०००) रुपये का वचन दिया है, पर इसका आधा बंगाल मे खर्च किया जायगा। डा० विधान राय छोटी-छोटी छात्रवृत्तियो मे खर्च करना चाहते हैं, इसलिए बगाल के हिस्से मे आया हुआ रुपया डेविड-योजना के काम में नही आ सकेगा। इस प्रकार आपके पास २०,०००) रुपये केन्द्रीय बोर्ड के, ६,०००) रुपये रघूमल चैरिटी ट्रस्ट के, २५००) रुपये मेरे, २५००) रुपये जानकीदेवी के और वे २,५००) रुपये हो जायगे, जो मैंने हाल मे इकट्ठा किये हैं। कुल मिलाकर ३३,५००) रुपये हुए। कुछ और भी सग्रह हो जायगा। पर यदि हम ४०,०००) रुपये से काम आरम्भ करें तो रकम अच्छी-खासी है। जब आप निश्चय कर लेंगे तो मैं श्री ठक्कर बापा से निर्वाचन-समिति के बारे में बात

करूंगा। कृपया मेरे सुझाव पर अच्छी तरह विचार करने के बाद मुझे लिखियेगा।

मैं कलकत्ते के कुछ सनातनी मित्रों से भी मिला। वे भी मीठी-मीठी बातें तो करते हैं, पर देते-दिलाते कुछ नहीं।

आशा है, आप सानन्द हैं। सरदार, महादेवभाई और जमनालालजी को मेरा नमस्कार।

विनीत
घनश्यामदास

बापू ने अपने दूसरे पत्र मे सबसे पहले इस बात पर जोर दिया कि मैं आपरेशन को स्थगित न करूं :

यरवडा केन्द्रीय जेल
२३ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र और कटिंग मिले। तुम जबतक आपरेशन के लिए समय नही निकालोगे तबतक तुम्हें समय नही मिलेगा। कार्यव्यस्त आदमियों का ऐसा ही होता है। इसलिए स्वास्थ्य की बात को भी व्यापार की बात जैसा समझना आवश्यक है। मैं यह एक दार्शनिक तथ्य नही बल्कि एक ऐसा व्यावहारिक सत्य बता रहा हूं, जिसका प्रयोग मैंने जीवन में भी किया है और दूसरो के जीवन में भी। इसलिए मुझे आशा है कि तुम इलाज के लिए एक महीना अलग निकाल लोगे और डाक्टर के साथ पहले ही तय कर लोगे, और यह भी संकल्प कर लोगे कि डाक्टर को दिया हुआ वक्त टल न जाय।

कलकत्ते के कार्य के सम्बन्ध में जो लिखा सो जाना।

श्री डेविड की योजना के सम्बन्ध में मैं और अधिक सुनने की आशा करता हूं।

जब मैं हिन्दी 'हरिजन' को इस योग्य देखूंगा कि उसके सम्बन्ध मे अंग्रेजी 'हरिजन' के स्तम्भों में कुछ लिखूं, तो तुरन्त लिखूंगा। इस सम्बन्ध में मैं ठक्कर बापा और वियोगी हरि को खुलासा करके लिख ही चुका हूं, इसलिए और अधिक लिखना अनावश्यक है। तुम उसके लिए जितना समय दे सकते हो, दोगे, और उसमें इतनी खबर और हिदायतें दोगे कि किसी कार्यकर्त्ता का काम उसके बगैर नहीं चले। तुम कहते हो कि केन्द्रीय बोर्ड को दिया जाने वाला रुपया मैं बम्बई में तुम्हारी फर्म के पास भेज दूं। इस तरह कमीशन कैसे बचेगा? यदि नोट किसी बम्बई आते-जाते के हाथ भेज दिये जायें तो बात दूसरी है, पर उसमे

रुपया खो जाने का भी तो भय है। मुझमें इतना साहस नही है।

यरवडा-पैक्ट को बंगाल कौन्सिल ने धिक्कारा है, पर उससे मैं विशेष उद्विग्न नही हुआ हूं, न मेरा यह खयाल है कि यह समय मुकाबले का प्रचार-कार्य आरभ करने का है। जबतक सारे दल राजी न होंगे, पैक्ट में हेर-फेर असम्भव है। जब दलो के साथ बाकायदा मशवरा कर लिया जायगा तो बगाल के विरोध की ओर ध्यान देने के लिए काफी समय मिलेगा। मेरी सलाह ली गई थी, और मैंने अपनी राय भेज दी है। साथ मे उसकी नकल भेजता हू। परन्तु बगाल मे क्या करना उचित होगा, यह तो मेरी अपेक्षा तुम और सतीशबाबू ही ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो।

तुम्हारा
बापू

तीन दिन बाद उन्होंने फिर लिखा .

२६ मार्च, १६३३

भाईश्री घनश्यामदास,

दो-तीन बात अभी लिखता हूं, बाकी पीछे।

हिन्दी 'हरिजन' में पढने के लायक हम एक ही चीज पाते हैं, वह तुम्हारे लेख। तुम्हारी भाषा मीठी और तेजस्विनी है। लेकिन इतने ही से मुझे सतोष नही हो सकता है। जबतक वहा अच्छा प्रबन्ध नही हुआ है तबतक ज्यादातर यही से लेख भेजे जायगे। महादेव और मैं अनुवाद करेंगे, वियोगीजी हम लोगो की हिन्दी को दुरस्त कर लेवें। इसके उपरात सघ की तरफ से नोटिस, सूचना, प्रान्तीय खबरें इत्यादि आनी चाहिए। तब तो हिन्दी 'हरिजन' की हजारो कापिया बिकनी चाहिए। सेवा सघ का यह मुख्य गजट बन जाना चाहिए। रामदासजी को और किसी को अनुवाद के लिए यहां से लेख भेजने का मैंने इन्कार किया है। ऐसे 'हरिजन' चल ही नही सकता है। हिन्दी मे अनुवाद न मिलें, या वियोगीजी खुद न कर सकें और कोई दूसरा प्रबन्ध न हो सके तो हि० स० बन्द करना आवश्यक समझता हू।

कलकत्ते की बस्ती के बारे मे कुछ ज्यादा कार्य होने की आवश्यकता देखता हूं।

डेविड-योजना के बारे में मैं समझता हूं कि इसका चिन्तन किया जाय। मैं अधिक लिखूगा। परीक्षक बोर्ड बनाओ।

बापू के आशीर्वाद

२८ मार्च, ३३

परम पूज्य बापू,

मैं दो-एक बातों के बारे में आपकी सलाह चाहता हूं।

जब मैं बनारस में था तो मुझे मालूम हुआ कि कुछ डोम, जिन्होने कुछ दिन पहले अपना धर्म छोड दिया था, अब इस आन्दोलन के फलस्वरूप हिन्दू धर्म में वापस आना चाहते है। वहां के आर्यसमाजियो ने सघ से आर्थिक सहायता मांगी, जिससे उन्हें शुद्ध किया जा सके। मुझे इसमें कोई बुराई दिखाई नही दी, इसलिए मैंने अपनी जेब से सहायता देने का वचन दे दिया। अब प्रश्न यह है कि सघ को ऐसे मामलों मे दिलचस्पी लेनी चाहिए या नही, और यदि नही तो क्यों? जब हम ऐसे मामलो मे दिलचस्पी लेने से इन्कार कर देते हैं तो लोगों को यह बँध शिकायत करने का अवसर मिल जाता है कि हम दूसरो को खुश करने के लिए हिन्दू हितों का बलिदान करने को तैयार रहते हैं। इस आलोचना मे काफी सचाई है। मैं शुद्धि की खातिर 'शुद्ध' करने के और ईसाइयों और मुसलमानो को अपना धर्म छोड़ने को राजी करने के पक्ष में नही हू। परतु यदि किसी हिन्दू ने अपना धर्म छोड दिया है और वह हिन्दू धर्म मे पुनः वापस आना चाहता है तो मैं तो उसे प्रोत्साहित न करने का कोई कारण नही देखता हूं।

मैंने बेंथल[1] को लिखा था कि हिन्दी 'हरिजन' के लिए कागज मुफ्त दें। आप को पता ही होगा कि वह टीटागढ़ पेपर मिल्स के मैनेजिंग एजेंट हैं। बेंथल ने कहा कि पत्र मे विज्ञापन देने की बात पर तो विचार किया जा सकता है, पर कागज उपहारस्वरूप देना सम्भव नही है। मैंने कहा कि पत्र मे लिख देंगे कि टीटागढ पेपर मिल्स ने हमें कागज मुफ्त दिया है, तो यही विज्ञापन का काम करेगा। उन्होंने कहा कि इतने से काम नही चलेगा। मैंने कहा कि हम पत्र मे विज्ञापन बिलकुल नही छापते हैं, इसलिए टीटागढ पेपर मिल्स का विज्ञापन छापने मे असमर्थ हैं। अब मामला डाइरेक्टरों के बोर्ड के सामने पेश है। टीटागढ़ पेपर मिल्स का विज्ञापन लेने के सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है?

पता नही, हिंदी 'हरिजन' के सम्बन्ध में आपकी क्या राय है। मेरा तो खयाल है कि कुल मिलाकर पत्र अच्छा-खासा है। अभी इसे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने में देर लगेगी। पर मैं समझता हू कि पत्र बराबर उन्नति करता जा रहा है और तीन-चार महीने मे पूर्णतया अपने-आप निर्भर करने लगेगा।

विनीत
घनश्यामदास

---

१. सर एडवर्ड बेंथल

बापू के दूसरे पत्र से पता चलता है कि कलकत्ते की गन्दी गलियों का सफाई के बारे में उनका दिमाग किस प्रकार व्यावहारिक ढग से काम कर रहा था :

यरवडा सेन्ट्रल जेल
२८ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

मैंने २६ तारीख को हिन्दी में जो पत्र लिखा था, आशा है, वह तुम्हें मिल गया होगा। कलकत्ते की बस्तियो की समस्या को सामूहिक रूप से हल करना होगा, एक-एक, दो-दो बस्तियां करके नही। इसलिए अब जब कलकत्ता जाओ तो वहां कारपोरेशन के प्रमुख कौंसिलरों की एक आपसी बैठक बुलवाकर उनसे मिलो। यदि इस समस्या का हल करने मे कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों को आघात पहुंचता है तो इससे क्या, काम तो करना ही है। तुमने मुझे जो कुछ लिखा है, उससे मैं तो यही समझता हू कि सबसे सस्ता उपाय बस्तियों को तोड़ देना है। पाखाना हटाने के उन्नत और मानवतापूर्ण साधन काम में लाना जरूरी भी है और आगे चलकर मितव्ययितापूर्ण भी सिद्ध होगा। सभी आधुनिक साधनों को काम मे लाने मे आरम्भ मे तो अधिक खर्च होता है, पर अन्त मे वे मितव्ययितापूर्ण सिद्ध होते है। उनका विरोध व्यर्थ की बात है। इस समस्या को हल करने में जो कठिनाइया उत्पन्न होती हैं उनके पीछे उन लोगों की उदासीनता छिपी हुई है, जो मुह से तो सुधार की आवश्यकता बताते हैं, पर उसके लिए किसी प्रकार का त्याग करने को तैयार नही होते हैं। तुम्हे इस उदासीनता को सक्रिय सहानुभूति मे परिणत करना है। मार्ग अपने-आप निकल आयगा।

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्ध मे मैं तुम्हे परसों लिख चुका हू कि पहले लेख को छोडकर बाकी लेखो मे यदि कोई लेख पढने योग्य थे तो वे तुम्हारे लेख थे। तुम्हारी शैली मनोहर, सीधी-सादी और मुहावरेदार है। तुम विषय पर सीधे और बोधगम्य ढग से पहुंचते हो। मेरे लेखो का अनुवाद दोषपूर्ण अवश्य था, पर अब तो अनुवाद यही से भेजे जायेंगे। उनकी हिन्दी वहां परिष्कृत कर ली जाया करेगी। इससे खर्च भी कम होगा और पत्र का स्टेण्डर्ड भी ऊचा होगा।

डेविड-योजना की चिन्ता मत करो। मैं तो तुम्हें बताना चाहता था कि उस पर मैंने कैसे लिखा। पर तुम्हारी कठिनाई को मैं समझता हूं। यदि जरूरत हुई तो केन्द्रीय कोश का तो सहारा लेना पडेगा ही। परन्तु पहले देख लें कि पूरी रकम देने वाले आधे दर्जन दाता भी मिलते है या नही। मैं निराश नहीं हुआ हू, पर सुन्दर पत्र तैयार करने का समय ही नहीं मिलता है। पर इधर मैं समय निकालूगा। जहा एक-दो नाम मिले कि उनके साथ तुम्हारे नाम की भी घोषणा कर दूगा।

तुम्हारा
बापू

इन दिनों हमारा पत्र-व्यवहार अधिकतर 'हरिजन' के प्रकाशन और उसकी रूपरेखा तथा विषय-सूची तय करने के बारे में होता था।

३१ मार्च, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपका २३ तारीख का पत्र मिला और २६ तारीख का हाथ का लिखा पत्र भी मिला। १५ अप्रैल को संघ[1] की वार्षिक बैठक होगी। इसमे दो-तीन दिन लगेंगे। इसके बाद अर्थात् अप्रैल के अन्त मे, मैं कलकत्ता जाकर आपरेशन करा डालूगा। मैंने आपरेशन का लगभग निश्चय कर लिया है।

केन्द्रीय बोर्ड के पास रुपया भेजने का एक और अमली सुझाव पेश करता हूं। पूना में श्री शिवलाल मोतीलाल की एक काटन मिल है। यदि रुपया उन्हें दे दिया जायगा तो वे दिल्ली मे केन्द्रीय बोर्ड को रुपया दे देंगे।

यरवडा-पैक्ट के विरुद्ध बंगाल की तू-तू, मैं-मैं मे अब कोई दिलचस्पी नही ले रहा हूं। जब मैं कलकत्ते में था तो सतीशबाबू से भी मिला था। उनका कहना है कि जब कवीन्द्र और आचार्य दौरे पर से लौटेंगे तो उस समय कुछ करना आवश्यक समझा गया तो कारंवाई करेंगे।

श्री ठक्कर बापा आपसे मिलने जा ही रहे हैं। निर्वाचन बोर्ड के सम्बन्ध में आपसे खुलासा बात कर लेंगे। इसके बाद आपकी इच्छा के अनुरूप बोर्ड नियुक्त कर दिया जायगा।

विनीत
घनश्यामदास

३१ मार्च, १९३३

परम पूज्य बापू,

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्ध में आपका सुझाव पढ ही चुका हू। मेरी अपनी सम्मति तो यह है कि पत्र उन्नति करता जा रहा है। आर्थिक दृष्टि से भी पत्र समय आने पर अपना खर्च स्वय निकालने लगेगा। पत्र की वर्तमान आर्थिक अवस्था इस प्रकार है .

हम कोई १,००० प्रतियां बेच रहे हैं। यदि २,५०० प्रतिया बिकने लगेंगी तो पत्र स्वावलंबी हो जायगा। १२ पृष्ठों की २,५०० प्रतियों पर प्रति सप्ताह इस प्रकार खर्च बैठेगा :

१ भारतीय वाणिज्य उद्योग-संघ

छपाई	४५) रुपये
कागज	३३) रुपये
मुडाई	५) रुपये
डाक और रेल-खर्च	२८) रुपये

लगभग ४८०) रुपये प्रतिमास आयगा। कर्मचारियों का खर्च १६०) रुपये प्रतिमास लगाने के बाद २,५०० प्रतियों पर ६४०) रुपये प्रतिमास खर्च बैठेगा।

यदि हम ये सारी २,५०० प्रतिया बेच सकें, आधी ग्राहको को और बाकी एजेंटो के जरिये, तो हमे औसत तीन रुपये प्रति पड जायगा, जो साल-भर मे ७,५००) रुपये हुए। २,५०० प्रतिया खपाना मुश्किल नही है। पत्र का विज्ञापन अच्छी तरह नही हुआ है। मैंने अपने कई निजी मित्रों को पत्र की बिक्री बढाने को लिखा है। पता नही, वे कहां तक सफल होंगे। हम एक एजेंट को घूम-फिरकर गाहक जुटाने के लिए बाहर भेज रहे हैं। आशा है कि इस तरह भी काफी ग्राहक मिल जायगे। यदि आप पत्र की मौजूदा क्वालिटी से सन्तुष्ट हो और एक विशेप सार्वजनिक अपील निकालें तो अच्छा रहे। इसकी तुलना गुजराती के पत्र से की जाय तो यह कुछ बहुत घटिया साबित नही होगा। कृपया पत्र का छठा अर्थात् ३१ मार्च का संस्करण देखियेगा। इसमे श्री ठक्कर बापा के दो लेखो को, श्री कालेलकर के एक लेख को, और सम्पादकीय टिप्पणियों को छोड़कर बाकी सब आपके ही लेख हैं। श्री ठक्कर बापा के लेख मेरी राय मे अच्छे हैं, कम-से-कम उनका वह लेख जो १०वें पृष्ठ पर छपा है। श्री कालेलकर का लेख भी बुरा नही है, पर उसे न दिया जाता तो कोई हानि नही थी। बाकी सब लेख आपके हैं। साप्ताहिक समाचार अधिक महत्त्व के नही हैं, पर जो भी मिलें, उन्हें छापना चाहिए। इस समय मेरी शिकायत तो अनुवाद के सम्बन्ध मे है। हरिजी ने अंग्रेजी से शब्दश. अनुवाद किया है, सो मुझे पसन्द नही आया। मैंने उनसे कह दिया है कि अंग्रेजी के मुहावरों का ज्यों-का-त्यों अनुवाद करने के बजाय शुद्ध हिन्दी के मुहावरे व्यवहार में लावें। आशा है कि आपको भी यह बात पसन्द आयेगी। महादेवभाई द्वारा किये गए अनुवाद भी उतने ही बुरे हैं, इसके अलावा मैं यह भी नही चाहता हू कि आप अपने ऊपर व्यर्थ का भार लादें। कृपया अनुवाद का काम वियोगीजी के जिम्मे छोड दीजिये। देखें हम कहा तक सफल होते हैं। यदि आप किसी लेख का स्वय अनुवाद करना चाहें तो मेरी प्रार्थना यही है कि शब्दशः अनुवाद करने के बजाय उसी विषय पर स्वतंत्र लेख लिखें। वह पढने मे भी अधिक रोचक होगा। उदाहरण के लिए आपके लेख का जो अनुवाद ३१ मार्च के संस्करण मे ८वें पृष्ठ पर छपा है वह पढने मे महादेवभाई के कई अनुवादों की अपेक्षा कही भला लगता है। इसी प्रकार आपका तीसरे पृष्ठ पर छपा गुजराती का अनुवाद

भी बडा सुन्दर हुआ है। बाकी अच्छे नही रहे। इसलिए मैं यही निवेदन करूगा कि या तो आप मूल लेख भेज दिया करें या स्वतंत्र अनुवाद भेजा करें। यदि आप चाहे तो अग्रेजी या गुजराती के मूल लेखो के अविकल अनुवाद का काम हमारे जिम्मे कर दें। अनुवाद-सम्बन्धी दोष को बाद देने पर मेरी अपनी राय तो यह है कि ३१ मार्च का अक तो स्टैण्डर्ड के अनुरूप ही हुआ है। कृपया बताइये, आप इस मामले मे मुझसे सहमत हैं या नही। यदि आपकी राय दूसरी हो तो अपनी निश्चित आलोचना भेजने की कृपा करियेगा।

भविष्य के लिए मेरा सुझाव है, और मैंने यही बात वियोगीजी से कही है, कि पत्र १२ पृष्ठ का रहे और छोटे टाइप में छपे। सामग्री के सम्बन्ध में बात यह है कि जहां तक आपके लेखों का ताल्लुक है, मूल और अनुवाद सब जाने चाहिए। दो-एक टिप्पणिया सम्पादक की ओर से हो, पर दो कालम से अधिक नहीं। यदि आपके मूल लेख मिल सकें तो अग्रलेख का स्थान उन्हे दिया जाया करे। इसके अलावा साप्ताहिक रिपोर्ट भी छपनी चाहिए। पौराणिक कहानिया या भक्तमाल-जैसे पुस्तको मे से ली गई कहानिया भी दी जानी चाहिए। इस प्रकार की सामग्री के लिए भी एक पृष्ठ लिखना चाहिए। आशा है, आपको मेरा सुझाव पसन्द आयगा, यदि नही तो कृपया अपने सुझाव से सूचित करियेगा। आशा है, १२ पृष्ठों का पत्र निकालने की बात आपको पसन्द आयेगी। घटाकर ८ पृष्ठ का भी किया जा सकता है। पर मेरी राय मे १२ पृष्ठों लायक काफी सामग्री है, इसलिए पत्र के साइज को घटाना जरूरी नही है। अबतक जो रिपोर्टें निकली हैं वे महत्त्व-पूर्ण नही हैं। मैं प्रान्तीय बोर्डों का ध्यान इस ओर दिला रहा हू।

इस पत्र के साथ 'पतित बन्धु' से एक कटिंग भेज रहा हूं। इससे आपको पता चल जायगा कि हम किस प्रकार की कहानिया छापना चाहते हैं।

पता नही, अग्रेजी 'हरिजन' की एक प्रति बगाल के गवर्नर के सेक्रेटरी के पास भेजना आपको पसन्द आयेगा या नही। गवर्नर के सम्बन्ध मे मेरी राय का आपको पता है ही। आदमी अच्छा है और आपको हृदय से समझना चाहता है। खर्च मैं दूगा। यदि आप मुझसे सहमत हों तो एक प्रति हर शुक्रवार को प्राइवेट सेक्रेटरी के पास भेजी जा सकती है। एक पत्र प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम इस विषय का भेजा जा सकता है कि यह प्रति गवर्नर के लिए है।

कल मैं ग्वालियर जा रहा हूं। कोई दस-बारह दिन बाद लौटूगा।

विनीत
घनश्यामदास

१० अप्रैल, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपका २८ मार्च का पत्र मिला। कलकत्ते मे हरिजन-कार्य के सम्बन्ध मे मैं

तो खुद ही कहता हू कि कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। मैं कलकत्ता पहुचकर इस मामले को उठाऊगा। कठिनाइया मौजूद हैं ही, इसलिए सफलता प्राप्त करना उतना आसान नही है। पर हमे तो भरसक चेष्टा करनी है, इसलिए मैं इस मामले को पूरी लगन के साथ मे लूगा।

आपने यह नही लिखा कि आप टीटागढ पेपर मिल का विज्ञापन स्वीकार कर सकते हैं या नही। बैयल हमे विज्ञापन देने को तैयार हैं, पर कागज मुफ्त देने को तैयार नही हैं।

मुझे कानपुर के लाला कमलापत से ३,०००) रुपये मिले हैं। यह रुपया वह छात्रवृत्तियो मे खर्च करना चाहते हैं। मैंने पडित कुजरू को लिखकर पूछा है कि यह रकम वह किस रूप मे खर्च करना चाहते हैं। यदि वह इसे श्री डेविड की योजना पर खर्च करने को तैयार होगे तो हमे ३,०००) रुपये और मिल जायगे। हर हालत मे रुपया युक्त प्रान्त मे ही खर्च किया जायगा।

वैसे तो अन्य सस्थाए भी खामोशी के साथ काम कर रही हैं, पर उस दिन मैंने एक हरिजन बालिका विद्यालय के पारितोषिक वितरणोत्सव का सभापतित्व किया तो वहां के कार्यकर्त्ताओं की कार्यशीलता का मेरे ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ा। मैंने उनसे अपनी कार्यशीलता की सूची तैयार करने को कहा है। यदि हम संतुष्ट हुए तो मेरी राय मे बोर्ड को इन संस्थाओ की सहायता के लिए कुछ रकम निकालनी चाहिए।

विनीत
घनश्यामदास

११ अप्रैल, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपका ३-४ अप्रैल का पत्र मिला। 'हरिजन' की एक प्रति बगाल के गवर्नर के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास भेजने के सम्बन्ध मे आप जो कहते हैं सो जाना। यदि मैं आपके तर्क को ठीक समझता हूं तो प्रधान की हैसियत से मेरा अपने किसी भी मित्र को 'हरिजन' भेजना औचित्यपूर्ण होगा। अतएव मैं चाहूंगा कि 'हरिजन' की एक-एक प्रति मेरे खर्च से निम्नलिखित सज्जनो के पास भेज दी जाया करे .

१. बंगाल के गवर्नर के निजी मंत्री
२ सर एडवर्ड बैयल, कलकत्ता
३ सर वाल्टर लिटन मार्फत 'इकानामिस्ट', लन्दन
४. सर हैनरी स्ट्रेकाश, इंडिया आफिस, लन्दन
५. लार्ड रीडिंग, लन्दन

मैं ३-४ दिन के लिए दिल्ली जाऊंगा और यहां फिर वापस आकर पिताजी के नासिक से लौटने तक उनकी प्रतीक्षा करूंगा। पिताजी यहां हरिद्वार को जाते हुए मई के पहले सप्ताह मे आयेंगे। उन्हें विदा करके मैं सीधा कलकत्ते के लिए रवाना हो जाऊंगा और वहा कम-से-कम दो महीने रहूंगा।

मेरा लडका और पुत्रवधू जल्दी ही पूना जायंगे। दोनो का स्वास्थ्य अच्छा नही है। बहू तो काफी बीमार है। मैंने उनसे प्राकृतिक चिकित्सा-विशेषज्ञ डा० मेहता का इलाज कराने को कह दिया है। बहू तो चल तक नही सकती है, पर लड़का केवल दुर्बल है, कोई खास शिकायत नही है। वह बीच-बीच मे आपके दर्शन कराने आयगा। आशा है, आप उसे अनुमति देंगे।

विनीत
घनश्यामदास

९. हरिजनों के सम्बन्ध में कुछ और

सन् १९३३ में बापू के जेल मे बाहर आने से हमारे हरिजन-उद्धार-कार्य मे नई जान आ गई।

ग्वालियर
२९ अप्रैल, १९३३

परम पूज्य बापू,

जैसा कि आप इस पत्र से देख लेंगे, मैं ग्वालियर में पिताजी की प्रतीक्षा कर रहा हूं। वह अगले महीने की तीसरी तारीख को यहा पहुंचने वाले हैं। इसके बाद मैं हरिद्वार जाऊगा और उन्हे विदा करने के बाद कलकत्ते के लिए रवाना हो जाऊंगा। कलकत्ता ७ या ८ मई तक पहुंच जाऊंगा।

'हरिजन' में स्वय लेख लिखने के सम्बन्ध मे सबसे बडी रुकावट यह है कि मैं तभी लिख पाता हूं जब लिखने की इच्छा होती है। पर मैं अनुवाद-कार्य मे हाथ बटा रहा हूं। 'हरिजन' के गताक में एंड्रयूज के पत्र के सम्बन्ध में आपके लेख का अनुवाद प्रायः मेरे ही द्वारा, या मेरी सहायता से, तैयार किया गया था। मैं कलकत्ते से लेख लिखकर भेजने की फिर चेष्टा करूगा। हो सकता है, मैं पत्र का उपयोग कलकत्ते की बस्तियों के सुधार के प्रचार-कार्य के लिए करूं।

पिताजी आपसे मिले, इसमें मुझे आनन्द हुआ। मामूली-सी शिक्षा है, पता नहीं, उनकी बातचीत का आप पर कैसा प्रभाव पड़ा। पर उनका हृदय बड़ा निर्मल है और वह आपकी बड़ी भक्ति करते हैं। स्वयं कट्टर सनातनी होते हुए भी वह आपके विचारों की सराहना करते है और अपने निजी ढग से आपके पक्ष में प्रचार करते रहते हैं।

जी हा, कलकत्ता पहुचते ही आपरेशन करा डालूगा। आपको याद ही होगा कि पूना और बम्बई मे डाक्टरो की राय थी कि मुझे अपना नासिका के दोनो छिद्रों को अलग करने वाली दीवार को, जो अपने स्थान से हट गई है, निकलवा देना चाहिए। कलकत्ते के विशेषज्ञ का कहना है कि उस दीवार को हटाना उतना जरूरी नही है, जितना छिद्र मे स्थायी नाली बनाना। अमरीका में डाक्टरों ने दोनों काम कराने की सलाह दी। अतएव मैं पहले तो नासिका की नाली ठीक कराऊंगा, और यदि इससे लाभ न हुआ तो बाद में दूसरा आपरेशन करा डालूगा।

मेरी पुत्रवधू ने डा० मेहता का इलाज शुरू किया तो, पर उसे बीस दिन से अधिक जारी रखने का धैर्य नही हुआ। अब लडका और पुत्रवधू दोनो महाबलेश्वर गये हैं।

महादेवभाई पूछते हैं कि लार्ड रीडिंग और लार्ड लोदियन को जो 'हरिजन' भेजा जा रहा है उसके पैसे क्या मैं दूगा। मामूली-सी बात है। यदि पत्र को सहायता देने के लिए मेरा पैसा देना जरूरी समझा जाय तो शास्त्री को ताकीद कर दीजियेगा।

विनीत
घनश्यामदास

१२ अगस्त, १९३३

परम पूज्य बापू,

आपकी अभी तक कोई खबर नही मिली। परंतु आशा है कि यह पत्र आप तक पहुचने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

हम अंग्रेजी 'हरिजन' के लिए सामग्री यहा से भेजते है। आपके लेखों का अभाव बड़ा खल रहा है। पर किसी-न-किसी तरह काम चला लेते है। मुझे एक ऐसा विशेषज्ञ मिल गया है, जो कपड़ा रगने और तैयार करने की विद्या पर लेख लिखेगा। आशा है, ऐसे लेख पाठकों के लिए रुचिकर होंगे। हम इसी तरह काम चलाते रहेंगे, पर आपके लेख मिले बगैर पत्र को अच्छी तरह रोचक नही बनाया जा सकता।

ठक्कर बापा दौरे पर है। १८ तारीख तक लौट आवेंगे।

मैं जब से यहा आया हूं, एक चमड़ा तैयार करने का स्कूल और एक छात्रा-

वास खोलने की चेष्टा कर रहा हूं। यह छात्रावास खास तौर से हरिजनो के लिए होगा। मैं अच्छी-सी जमीन की तलाश मे हूं। कुछ हफ्तो मे श्रीगणेश हो जायगा, ऐसी आशा है। यदि आप कोई बात सुझाना चाहें तो लिख भेजें। मेरा अनुमान है कि कोई ५०००) रुपये जमीन मोल लेने मे लगेंगे, और ५०००) रुपये इमारत बनवाने मे। यह रुपया मैं सघ के धन में से खर्च करने की बात सोच रहा हूं। सदस्यों की स्वीकृति अवश्य लेनी होगी, पर मैं समझता हूं कि इस काम को आगे बढाने के मामले मे आप सहमत है। रही चमडे के स्कूल की बात, सो इसका चालू खर्च एक वर्ष के लिए मैं खुद वहन करने की बात सोच रहा हूं।

लक्ष्मी सानन्द है और पूरे आराम मे है। मैं बिलकुल स्वस्थ हूं और आशा करता हूं कि आप और महादेवभाई अच्छी तरह से है।

विनीत
घनश्यामदास

सत्याग्रहाश्रम
वर्धा
३० सितम्बर, १६३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपको मालूम ही है कि आश्रमवासियों ने गत १० अगस्त को साबरमती के सत्याग्रह आश्रम और उसकी भूमि को त्याग दिया था। मुझे आशा थी कि सरकार मेरे पत्र के अनुसार इस व्यक्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लेगी। ऐसी अवस्था में अपना कर्त्तव्य निर्धारित करना मेरा फर्ज हो जाता है। मुझे प्रतीत हुआ कि कीमती इमारतों और उतनी ही कीमती खेती और पेड़ो को यो ही नष्ट होने देना एक गलती होगी। मैंने मित्रो और सहकर्मियों के साथ परामर्श किया और मैं इस नतीजे पर पहुचा कि आश्रम का सबसे अच्छा उपयोग यही हो सकता है कि उसे हमेशा के लिए हरिजन सेवा के निमित्त अर्पित कर दिया जाय। मैंने अपना सुझाव आश्रम के ट्रस्टियों के, जो बाहर हैं, और सह-सदस्यों के सम्मुख रखा, और मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि वे इससे हृदय से सहमत हैं। जब इस सम्पत्ति का त्याग किया गया था तो यह आशा अवश्य की जा रही है कि किसी दिन सम्मानपूर्ण समझौते के द्वारा, अथवा भारत की लक्ष्य-सिद्धि होने पर, ट्रस्टी सम्पत्ति पर पुनः अधिकार कर सकेंगे। इस नवीन सुझाव के अनुरूप ट्रस्टी लोग सम्पत्ति से पूरी तरह हाथ धो रहे है। वसीयतनामे के अनुसार ऐसा करने का उन्हें अधिकार है क्योंकि ट्रस्ट का एक उद्देश्य हरिजन-सेवा भी है। अतएव यह नया सुझाव आश्रम और ट्रस्ट के व्यवस्था-विधान के पूर्णतया अनुरूप है।

ट्रस्टियों के और मेरे लिए विचारणीय प्रश्न यही था कि जिस विशेष उपयोग

का मैंने उल्लेख किया है उसके लिए सम्पत्ति किससे सुपुर्द की जाय, और हम सब सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उसे भारत-व्यापी उपयोग के लिए आखिल भारतीय हरिजन संघ के सुपुर्द करना चाहिए। ट्रस्ट के उद्देश्य निम्नलिखित है :

१. भविष्य मे बनाये जाने वाले नियमोपनियमो के अनुरूप आश्रम की भूमि पर वाछनीय हरिजन-परिवार बसाये जाय, २ हरिजन बालकों और बालिकाओं के लिए छात्रावास खोला जाय, जिसमे गैर-हरिजनो को भर्ती करने की स्वतन्त्रता रहे, ३. खाल उतारने, रगने, चमडा तैयार करने और इस प्रकार तैयार किये गए चमड़े के जूते, चप्पल और दैनिक आवश्यकताओं की ऐसी ही अन्य चीजें तैयार करने की कला मे दीक्षित करने के लिए एक शिक्षा-विभाग खोला जाय, और ४. इमारतो को गुजरात प्रान्तीय या केन्द्रीय बोर्ड के कार्यालय के रूप मे, और उन सारे उपयोगो के लिए काम मे लाया जाय, जिन्हें निम्नलिखित पैरे मे निर्दिष्ट समिति उचित समझे।

मै ट्रस्टियो की ओर से यह सुझाव पेश करता हू कि हरिजन सेवक सघ एक विशेष समिति नियुक्त करे जिसमे आप और मत्री पदेन (एक्स आफिशियो) सदस्य रहें और अन्य सदस्य अहमदाबाद के तीन नागरिक रहें। इस समिति को अपनी सख्या में वृद्धि करने का अधिकार रहे, और यही इस ट्रस्ट को हाथ मे लेकर उसके उद्देश्यों की पूर्ति करे।

दो मित्र, श्री बुधाभाई और श्री जूथाभाई इस आश्रम के साथ हमेशा से रहे हैं। उन्होंने आश्रम मे अवैतनिक प्रबन्धको की हैसियत [illegible] तत्परता प्रकट की है। इनके जीव[illegible] ने स्वतन्त्र साधन हैं [illegible]
में बहुत काल से ल[illegible] आश्रमवासी भी [illegible] -सेवा के
लिए अपना जी[illegible] । यह भी आश्र[illegible] रहने को
तैयार हो ज[illegible] बालिकाओं के [illegible] तो इसने
कमाल हासि[illegible] प्रबन्ध
करने मे कोई[illegible] जरूरी [illegible] काम
बताये है वे [illegible] जायं। [illegible] कि
कुछ हरिजन [illegible]
स्वप्न रहा है [illegible] बसाई
बसाने को छो[illegible]
रंगने का प्रयोग [illegible]
के समय तक [illegible]
१०० [illegible]
स्थान है, और [illegible]

एकड भूमि है। इस प्रकार मैं कह सकता हूं कि उपर्युक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए स्थान काफी बड़ा तो नही है, पर फिर भी फिलहाल उनको जितनी पूर्ति की आवश्यकता है, उसे देखते हुए अच्छा-खासा है। आशा है, मेरा प्रस्ताव स्वीकार करने मे और इस स्वीकृतिजन्य उत्तरदायित्व की पूर्ति मे, सघ को कोई आपत्ति नही होगी।

आपका
मो० क० गाधी

४ अक्तूबर, १९३३

प्रिय गांधीजी,

आपने अपने ३० सितम्बर, १९३३ के पत्र के द्वारा साबरमती आश्रम की भूमि और इमारत को हरिजन-सेवा-कार्य के निमित्त अर्पित करने और इस उद्देश्य मे उन्हें हरिजन सेवक सघ के सुपुर्द करने का प्रस्ताव किया है। यह आपकी और आश्रम के ट्रस्टियों की महती उदारता है। मैं इस प्रस्ताव को अविलम्ब स्वीकार करता हू और आशा करता हूं कि संघ अपने आपको आपके विश्वास के योग्य प्रमाणित करेगा। मैं केन्द्रीय बोर्ड के सदस्यो की सम्मति की प्रतीक्षा किये बगैर ही इस प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं, क्योंकि मुझे पूरा भरोसा है कि वे मेरे कार्य का अनुमोदन करेंगे।

जिन चार उद्देश्यो की पूर्ति के लिए इस सम्पत्ति के उपयोग की बात आपने पत्र के दूसरे पैरे मे कही है, संघ उन्हे सदैव अपने ध्यान मे रखेगा और सबकी पूर्ति अविलम्ब की जायगी। सर्वश्री बुधाभाई और जूथाभाई और तीसरे सज्जन की, जिनका नाम शायद भगवानजी गाधी है, सेवाओं से लाभ उठाया जायगा। आशा है, ये सज्जन मूल्यवान सहायक सिद्ध होंगे। आपने अपने पत्र के तीसरे पैरे मे कहा है कि संघ को एक विशेष समिति नियुक्त करनी चाहिए, जिसमे पांच आदमी रहे और इस सख्या में वृद्धि करने का उसे अधिकार रहे, यह समिति ट्रस्ट को अपने जिम्मे ले और इसके उद्देश्यो की पूर्ति करे। आपका सुझाव है कि मेरे और प्रधान मंत्री के अतिरिक्त अहमदाबाद के तीन नागरिक उस समिति में रहें। इन तीनों सज्जनो को आपके मशवरे से लिया जायगा। क्या मैं यह सुझाव पेश कर सकता हू कि प्रबन्धकारिणी समिति के गठन का कार्य बिलकुल संघ के ऊपर ही छोड़ दिया जाय और सघ को ही ट्रस्ट के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए उत्तरदायी समझा जाय? यदि अहमदाबाद के तीन नागरिक इस संघ के केन्द्रीय बोर्ड के सदस्य निर्वाचित हुए और साथ ही ट्रस्ट की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य नियुक्त हुए तो समिति मे सब सघ के सदस्य ही भर जायंगे, यह नही होगा कि कुछ लोग इस संघ के सदस्यो में से रहें, और कुछ बाहर से लिये जायं। परन्तु यह एक साधारण-सी

बात है जिसके ऊपर, आवश्यकता पड़ने पर, व्यक्तिगत रूप से बातचीत करके निर्णय कर लिया जायगा।

संघ को सम्पत्ति और उसकी खेती और पेड़ों का चार्ज लेने में कुछ देर लगेगी। इसीलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि जो लोग इस समय देखभाल कर रहे हैं, उनसे आप इसी प्रकार देखभाल करते रहने को कह दें।

आपकी उदारहृदयता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ,

मैं हूं
आपका
घनश्यामदास
प्रधान, हरिजन सेवक संघ

५ अक्तूबर, १९३३

परम पूज्य बापू,

आश्रम को मंडल के सुपुर्द करने के आपके प्रस्ताव की मैंने तार द्वारा स्वीकृति भेज दी थी। आरम्भ में तो मुझे संदेह था कि हम आश्रम का प्रबन्ध दूर बैठकर कर भी सकेंगे या नहीं, पर अब मालूम हुआ है कि आपके कुछ विश्वासी आदमी आश्रम में रहेंगे और अपना सारा समय देंगे। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। आपने हमारे जिम्मे यह भरोसे का काम दिया है, हम भी अपने को आपके विश्वास के योग्य साबित करने में कुछ उठा न रखेंगे। मैंने आपके प्रस्ताव को बोर्ड के अन्य सदस्यों की सम्मति का इन्तजार किये बगैर स्वीकार कर लिया है, क्योंकि मुझे पूरी आशा है कि वे मेरे इस कार्य का अनुमोदन करेंगे। संघ इस सम्पत्ति का उपयोग करने के मामले में उन चारों उद्देश्यों को सामने रखेगा, जो आपके पत्र के दूसरे पैरे में दिये गए हैं।

आपके दान और हमारी स्वीकृति के फलस्वरूप दो-एक बातों की ओर आपका ध्यान दिलाना आवश्यक है। अबतक हमारे पास बैंक में जमा रुपये को छोड़कर कोई सम्पत्ति नहीं थी। हम लोग हरिजन छात्रावास बनाने के लिए जमीन खरीदने का विचार कर रहे थे, पर अब हमारे पास आपकी दी हुई बहुमूल्य स्थावर सम्पत्ति हो जायगी। अब यह प्रश्न तुरन्त ही उठ खड़ा होगा कि इस सम्पत्ति का स्वामी कौन होगा। हरिजन मंडल? यदि हरिजन मंडल ही इसका स्वामी हुआ तो उसी की बाध्यता के अनुरूप इसका अस्तित्व रहेगा, और हमारे संघ में बाध्यता नाम की चीज अभी तक नहीं है। इसलिए हमें यही तय करना है कि हम भविष्य के लिए किस प्रकार का व्यवस्था-सम्बन्धी ढांचा रखेंगे। मुझे विशेष प्रजातन्त्रीय ढांचा पसन्द नहीं है, क्योंकि व्यवस्था के मामले में प्रजातन्त्र के द्वारा असुविधाएं उत्पन्न हो जाती हैं और दलबन्दी होने लगती है। पर साथ ही,

जहा किसी सस्था के पास लाखो रुपये की सम्पत्ति हो वहा नितान्त निरकुश ढग की शासन-व्यवस्था भी वाछनीय नही है। इन दोनो दूषणो मे से अपेक्षाकृत कम हानिकर दूषण नियन्त्रित निरकुशता, या यो कहिये कि किन्ही शर्तों के साथ दिया गया प्रजातन्त्र, ठीक रहेगा। इस सुझाव के बारे मे आपकी क्या राय है कि सघ के कार्यक्रम मे दिलोजान से लगे रहने वाले एक दर्जन आदमी सस्थापक सदस्य बनें और राय देने का अधिकार केवल उन्ही को रहे ? इस समय प्रधान को जो विशेषाधिकार दिये गए है वे उन सदस्यो को सौप दिये जाय। यदि आप इसे ठीक न समझें तो सम्पत्ति रखने के लिए ट्रस्टियो का एक अलग बोर्ड बना दिया जाय। इस बोर्ड को विशेषाधिकार दिये जाय और यदि वह यह समझे कि हरिजन बोर्ड सम्पत्ति का अच्छा उपयोग नही कर रहा है तो वह उससे वह सम्पत्ति वापस ले सके। यह दूसरा सुझाव तभी अपनाना चाहिए, यदि हम सघ के लिए प्रजातन्त्रीय ढग की व्यवस्था रखें। आपने पाच व्यक्तियो की एक ऐसी समिति बनाने की बात कही है, जिसके सदस्यो मे से तीन अहमदाबाद के निवासी हो, और सघ के प्रधान और मन्त्री पदेन (एक्स आफिशियो) सदस्य रहे। मुझे पता नही कि आप यह चाहते है कि यह समिति आश्रम की सम्पत्ति रखने और चलाने के मामले मे ट्रस्टियों-जैसा काम करे या यह कि वह परामर्शदायिनी समिति-मात्र रहे। यदि यह समिति ट्रस्टियों की भाति आचरण करेगी तो सघ की क्या स्थिति रहेगी और अहमदाबाद के नागरिको को किस ढग से निर्वाचित किया जायगा ? और यदि हरिजन मडल प्रजातन्त्रीय ढाचे का बना तो यह पता नही कि ट्रस्ट बोर्ड मे उसका प्रतिनिधित्व करने वाले प्रधान और मन्त्री किस तरह के होगे ? वर्तमान व्यवस्था मे अथवा अत्यधिक प्रजातन्त्रीय व्यवस्था मे किस प्रकार की कठिनाइया उत्पन्न होना सम्भव है, मैंने यह स्पष्ट करने की भरसक चेष्टा की है। कृपया इस मामले पर अच्छी तरह विचार करके मुझे अपने सुझाव दीजियेगा। यदि हम लोगो के जिम्मे कोई सम्पत्ति नही दी जायगी तब तो वर्तमान व्यवस्था ही ठीक है।

विनीत
घनश्यामदास

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
८ अक्तूबर, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुमने जिस कठिनाई की बात कही है वह तो मौजूद है ही। उसी की बात

सोचकर तो मैंने ट्रस्ट बोर्ड के गठन की बात कही थी। मेरी राय है कि यह सपंति ट्रस्टियों के पास स्थायी रूप से रहे और उन्हें उसे बेचने तक का अधिकार रहे। हरिजन सेवक संघ का भविष्य चाहे जो हो, तुम और ठक्कर बापा उसके स्थायी सदस्य रहें। इस प्रस्ताव से उस प्रश्न का भी निपटारा हो गया, जिससे अपेक्षाकृत अधिक बड़े प्रश्न का जन्म हुआ है और जिसकी मैं यहां समयाभाव के कारण चर्चा नहीं करना चाहता हूं। इस बीच मैं तुम्हें अखिल भारतीय चर्खा संघ का व्यवस्था-विधान पढ़ जाने को कहूंगा। मुलाकात होने तक इसकी चर्चा मुल्तवी रहे। मैं यहां ७ नवम्बर तक तो हूं ही, इसलिए यदि सम्भव हो तो उस प्रश्न की खातिर ही सही, एक दिन के लिए आ सकते हो।

तुमने दिल्ली में छात्रावास खोलने की बात कही है। अब आश्रम की जमीन और इमारतें अपने पास होने के बाद भी क्या दिल्ली वाले छात्रावास की कोई खास जरूरत रह गई है? एक और नई योजना आरम्भ करने से पहले क्या साबरमती की योजना की प्रगति देखना अच्छा नहीं रहेगा? मैं तो समझता हूं कि हमें साबरमती वाली योजना को सफलीभूत बनाने की ओर ही सारा ध्यान देना चाहिए, और उसे सफल बनाने के काम में हममें से अनेक की पूरी शक्ति के उपयोग की आवश्यकता पड़ेगी।

आशा है, तुम स्वस्थ होगे। नाक का क्या रहा? इन दिनों तो दिल्ली का मौसम बड़ा अच्छा होगा।

तुम्हारा
बापू

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
२६ अक्तूबर, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारे हिन्दी के पत्र का उत्तर अंग्रेजी में बोलकर लिखवा रहा हूं। हरिजन सेवक संघ के व्यवस्था-विधान के सम्बन्ध में मुझे अधिक लिखना नहीं था। विचारणीय प्रश्न यही है कि हमें अर्द्ध-प्रजातन्त्रीय संस्था को तुरन्त ही जन्म देना चाहिए या नहीं। पता नहीं, नियुक्ति के अन्तर्गत यह अधिकार भी दिया गया है या नहीं, पर मैंने जो बात सुझाई है उस पर तो तुरन्त ही अमल किया जा सकता है। मेरा सुझाव यही है कि आश्रम को उन ट्रस्टियों के नाम में, जिनके नाम मैं बता चुका हूं, रजिस्ट्री करा दिया जाय। तुम्हें अपने विचार के सम्बन्ध में ठक्कर बापा और हरिजी के साथ बात करनी चाहिए।

रही चर्खा संघ की बात, सो इस सम्बन्ध में मुझे पूरी स्वतन्त्रता थी, इसलिए

मैंने जो योजना बनाई उसके फलस्वरूप एक मजबूत और आसानी से चलने वाली सस्था बन गई—ऐसी सस्था, जिसे मनमाना प्रजातन्त्रीय रूप दिया जा सके। आश्रम को हरिजन सेवक संघ के निमित्त देने का निश्चय होने के तुरन्त बाद ही मैं तुम्हें लिखना चाहता था कि दिल्ली वाली महत्त्वाकांक्षापूर्ण योजना को त्याग दिया जाय। इसमे सदेह नही कि ऐसे अनेक छात्रावासो की जरूरत पडेगी और यदि उनकी व्यवस्था ठीक-ठीक हो सकी तो उनके द्वारा बहुत कुछ ठोस काम होने की सम्भावना है। जब मैं दिल्ली मे होऊं तो मुझसे जो काम चाहो, ले सकते हो।

विहारीलाल यदि छात्रावास आदि की योजनाओं के सिलसिले मे काम करने को तैयार हो तो उससे काम लिया जा सकता है। पर मैं वेतनभोगी उपदेशक रखने के बिलकुल खिलाफ हूं, चाहे वह हरिजन हो, चाहे कोई और। इस मामले मे जितनी दृढता बरती जाय, थोड़ी है।

तुम्हारा
बापू

२४ जनवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास,

लोगो के विचार का खूब परिवर्तन हुआ है। देखें क्या होता है। मुझे तो ईश्वर का हाथ इस कार्य में देखा जाता है (दिखाई देता है।) यह एक रूढ वचन नही है। यह कार्य कोई एक मनुष्य की शक्ति से हो ही नही सकता, न हजारो से। लेकिन इस बारे में अधिक लिखा या कहा नही जा सकता है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि ईश्वर पर मेरा विश्वास बढता ही जाता है। अपनी शक्ति की अल्पता का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

तुम्हारा शरीर अच्छा रहता होगा।

बापू के आशीर्वाद

विहार-भूकम्प के बारे मे मैंने इस समय बापू को जो पत्र लिखा उसकी नकल मेरे पास नही है, किन्तु बापू का उत्तर इस प्रकार था·

३१ जनवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा खत मिला है। भूकम्प और हरिजन-प्रश्न का मुकाबिला मुझे बहुत प्रिय लगा है, क्योकि वह सत्य है। बिलकुल गरीबों को कम भुगतना पडा है यह तो स्वयंसिद्ध है। लेकिन जिसके पास दो कौडी थी, वह आज भिखारी बन गये हैं,

यह भी इतना ही सत्य है न ? मैं यहां बैठा हुआ जितना सम्भावित है, कर रहा हूं।

बंगाल के दौरे ने मुझे कर्त्तव्यमूढ़ बना दिया है। अच्छा है, तुम यहीं हो। आज डाक्टर विधान को लम्बा खत लिखा है। उसे देखो और वही निश्चय करो। मुझे लगता है कि मेरे से तो एक ही निश्चय हो सकता है।

अगर आप लोग न रुकें तो जाना।

बापू के आशीर्वाद

लार्ड हैलीफैक्स ने भी, जिनके पिता की अभी मृत्यु हुई थी, भूकम्प के बारे में लिखा :

बोर्ड आफ एजुकेशन
ह्वाइट हॉल, लन्दन
१३ फरवरी, १९३४

प्रिय श्री बिड़ला,

कृपापत्र के लिए अनेक धन्यवाद। यह आपकी सद्भावना है कि आपने एक ऐसे समय में हमारा ध्यान रखा जब पिताजी की मृत्यु से उनके सभी मित्र इतने लम्बे और सुखमय सौहार्द का अन्त हो जाने पर शोक में निमग्न हैं। किन्तु पिताजी के लिए मेरे पास कृतज्ञता को छोड़कर और है ही क्या ?

बिहार में भूकम्प से धन-जन की हानि के समाचारों से मुझे बड़ा दुःख हुआ। वहां के सम्वाद-साधनों के भंग हो जाने के कारण हम शुरू-शुरू में इसे भारी क्षति का अन्दाजा नहीं लगा पाये थे। जिन लोगों को नुकसान पहुंचा है उनके साथ मेरी गहरी सहानुभूति है और मुझे आपसे यह जानकर खुशी हुई है कि कष्ट-पीड़ितों के दुःख-निवारण-कार्य में सभी कोई हाथ बटा रहे हैं।

आपका
हैलीफैक्स

१०. राजनैतिक विश्रांति

इस समय बापू सर जान एंडरसन से मिलने को उत्सुक थे।

१२ फरवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास

मिस लेस्टर से मैंने मिदनापुर[1] की बात की और कहा गवर्नर से मिले। उसने गवर्नर को खत लिखा और गवर्नर ने तार भेजा। अब वह जा रही है। मैंने जो खत उसको दिया है उसे पढ़ो। मैंने उससे कहा है कि तुमसे मिले और सब जान लेवे। सब हाल बतलाइये। आवश्यकता समझी जाय तो डाक्टर विधान से और सतीशबाबू से भी मिला दें। शुक्र को वहां से मेरे पास चली आयेगी। उसको खर्च के लिए यहां से पैसे दिये हैं। टिकट यही से कटवा दी है। उसका खर्च तुम्हारे से लू ? जमनालाल से तो है ही। क्या उचित है वह नही जानता हूं।

पत्र बहुत जल्दी से लिखा है। तुम्हारे पत्र मिले हैं उसका उत्तर दूंगा। समय ही नही मिलता है।

बापू के आशीर्वाद

२१ फरवरी, १९३४

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा खत मिला। मैं देखता हूं गवनर को कुछ लिखू या नहीं। मिदनापुर की सलामी तो बन्द हुई। लेकिन अपने दोष को स्वीकार नही किया। मिस लेस्टर ने अब वाइसराय से मिलने का समय मांगा है। इन सब चीजो से आज कुछ परिणाम नही निकल सकता है। लेकिन समझौते का एक भी मौका हम छोडना नही चाहते हैं।

विधान राय को मिलने का प्रयत्न पूरा करना चाहिए। भले काग्रेसवादी कुछ भी कहे।

मेरा वहा आने का कम-से-कम बिहार तक तो मौकूफ कर दिया है। पीछे देखेंगे।

जवाहरलाल से मिलने की कोशिश करोगे ना ?

मिस हैरिसन २ मार्च को विलायत से छूटेगी। उसका आना अच्छा ही है। मैंने इस बारे मे पहले भी लिखा ही था न ?

बापू के आशीर्वाद
पटना

---

1. जहा उन्ही दिनो मजिस्ट्रेट की हत्या हुई थी।

१३.३.३४

भाई घनश्यामदास,

सर सेम्युअल को मैंने खत लिखा है, उसकी एक प्रतिलिपि इसके साथ रखता हूं। और एक धारवाड के मेजिस्ट्रेट को पत्र लिखा था। धारवाड़ का केवल तुम्हारे जानने के लिए हैं। सर सेम्युअल के बारे मे कुछ काम लेना चाहता हूं। स्कार्पा[1] अगर वहा है तो उनसे पूछो कभी उस मिटिंग मे (क्या) हुआ था, क्योकि वह वहां मौजूद था। अगर वह न था तो उसी के जरिये मिटिंग हुई थी। जो लोग हाजिर थे उनके नाम-ठाम देवे तो भी अच्छा होगा। जो कुछ भी हकीकत मिल सकती है वह इकट्ठा करना चाहता हूं। आज तक इस चीज की बातें अंग्रेजी में हो रही हैं। और हैं सबकी-सब जाल। 'अजमेर' का 'आज मरा' बनाया गया है।

मुझे मिलने के लिये आना चाहते हैं। हरिजन-कार्य के लिए थोड़ी देर बाद बुलाऊंगा। ठक्कर बापा को दिल्ली जाने दिये हैं। उनका यहा काम नही था। यो तो सब कार्य मे उनके जैसा सेवक मदद दे सकता है, विशेषतया आवश्यकता न थी। लेकिन बिहार के बारे मे अथवा सर सेम्युअल से जो पत्र-व्यवहार इधर किया है उस बारे में आना है तो दिल चाहे तब आ सकते हो। बुध से शुक्र तक मोतीहारी की तरफ रहूंगा। शुक्र की शाम को वापस आऊंगा।

अगाथा हैरीसन १६ को मुबई पहुचेगी। लेस्टर वाइसराय से मिली है। कल यहां आती है।

बापू के आशीर्वाद

सर सेम्युअल होर को भेजा गया पत्र बापू के साथ की गई एक झूठी मुलाकात के बारे मे था जिसका विवरण इटली के एक पत्र में प्रकाशित हुआ था। यह विवरण 'टाइम्स' के रोमस्थित सम्वाददाता ने अपने पत्र में दिया था ·

वर्घा
जनवरी, १९३४

प्रिय सर सेम्युअल

आपको याद होगा कि जब मैं १९३१ के दिसम्बर मे वापस लौट रहा था तो आपने रोम में मेरे द्वारा एक पत्रकार को दी गई तथाकथित मुलाकात के सम्बन्ध में मेरे पास एक तार भिजवाया था और मैंने उत्तर देकर समाचार का खण्डन

---

१. डा० स्कार्पा, जो १९३१ मे कलकत्ते में इटली के कौंसल जनरल थे। जब बापू रोम मे थे तो यह वहा थे।

किया था। इस खण्डन का भी खण्डन निकला, पर मैंने उसे हाल ही में देखा है, क्योंकि बम्बई मे कदम रखने के एक सप्ताह के भीतर ही मुझे पकडकर जेल भेज दिया गया था।

गत अगस्त में आखिरी दफा जेल से छूटने के बाद मुझे मीराबाई (स्लेड) ने बताया कि एक अंग्रेज मित्र, बम्बई के विल्सन कालेज के प्रोफेसर मैकलीन की धारणा है कि यद्यपि बात पुरानी पड गई है तथापि उसकी सफाई हो जाना अच्छा है, क्योंकि जिस समय रोम के सम्वाददाता ने मेरे कथन का खण्डन प्रकाशित कराया था तो उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था और सम्भवत. उसी के फलस्वरूप वाइसराय द्वारा मेरे विरुद्ध १६३२ की कार्रवाई की गई थी। मैं प्रोफेसर मैकलीन से सहमत हुआ और मैंने मीराबाई से मिस अगाथा हैरिसन को तत्सम्बन्धी कटिंग संग्रह करने को लिखने को कहा। इनमे जो सबसे जरूरी कटिंग थी वह मुझे गत मास के मध्य में मिली। मैं उस समय अस्पृश्यता-निवारण-कार्य मे तेजी के साथ इधर-उधर दौरा कर रहा था। आपके अविलम्ब हवाले के लिए मैं वे कटिंग 'क', 'ख' और 'ग' का चिह्न लगाकर भेजता हू।

यह बात स्मरण रखनी होगी कि मैंने कटिंग मिस अगाथा हैरिसन मे प्राप्त होने पर पहली बार देखी। मैंने इन कटिंगो को कई बार पढा है, और मैं यह बगैर किसी सकोच के कह सकता हूं कि, 'क' 'ग' और कटिंग, जो कुछ वास्तव मे हुआ था, उसका उपहासजनक खाका-मात्र हैं। 'क' को इटालियन पत्रकार को दिये गए तथाकथित लम्बे वक्तव्य का सक्षिप्त सस्करण बताया गया है। 'ग' मे 'टाइम्स' का सम्वाददाता, तथाकथित मुलाकात के समाचार का मेरे द्वारा खण्डन देखकर अनिच्छापूर्वक स्वीकार करता है कि, सम्भव है, मेरी बात ही ठीक हो, क्योंकि सीनोर ग्याडा ने बाकायदा मुलाकात की अनुमति नही चाही थी, पर इतने पर भी वह प्रतिपादन करता है कि मेरे द्वारा दिया गया बताया वक्तव्य साररूप मे ठीक है। परन्तु यदि मैं अपनी जानकारी की बात न बताकर केवल 'क' और 'ग' का विश्लेषण-मात्र कर दू तो सत्य की रक्षा अच्छी तरह हो जायगी।

१ 'क' में जो कहा गया है कि मैंने ग्याडा को एक लम्बा वक्तव्य दिया सो मैंने न कभी लम्बा वक्तव्य दिया, न छोटा।

२ मुझे सीनोर ग्याडा से किसी भी स्थान पर मिलने को नही कहा गया। हा, मुझे एक निजी मकान के ड्राइंग रूम मे कुछ इटालियन नागरिकों से मिलने का निमंत्रण अवश्य दिया गया। उस अवसर पर मेरी मुलाकात जिन लोगो से कराई गई उनके नाम अब मुझे याद नही हैं, न मैं उनके नाम उस भेंट के दूसरे दिन ही याद रख सकता था। मुलाकात बिलकुल साधारण ढग से कराई गई थी।

३. इस अवसर पर वार्तालाप आम ढग से हो रहा था और किसी को सम्बोधन करके नही किया जा रहा था। कई मित्रो ने प्रश्न किये और असम्बद्ध रूप से

बातचीत चलती रही जैसा कि ऐसे अवसरों पर हुआ करता है।

४. अतएव सीनोर ग्याडा या 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने मेरी वार्तों को एक सम्बद्ध वक्तव्य का रूप देकर, मानो वह किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके दिया गया हो, गलती की।

५. सीनोर ग्याडा ने मेरी तसदीक के लिए कुछ नहीं दिखाया कि क्या लिखा है।

६. वार्तालाप अनेक विषयो पर हुआ, जैसे गोलमेज परिषद् मेरी तत्सम्बन्धी धारणा, और मेरा भावी कार्यक्रम। 'क' मे मेरे द्वारा जो अनेक बातें कहलाई गई हैं वे मैंने कभी नही कही। अपनी आशाओ, आशकाओं और भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध मे मुझे जो कुछ कहना था, मैंने गोलमेज परिषद् की समाप्ति पर अपने भाषण के दौरान नपी-तुली भाषा मे कह दिया था। आपसी वार्तालाप के दौरान मैंने जो कुछ कहा वह उस भाषण का रूपान्तर-मात्र था। मेरा यह स्वभाव नही है कि सार्वजनिक रूप से कुछ कहू और आपसी बातचीत में कुछ, या एक मित्र से कुछ कहू, और दूसरे से कुछ। मैं यह कैसे कह सकता था कि भारतीय राष्ट्र और ब्रिटिश सरकार मे निश्चित रूप से झगड़ा खडा हो गया है, क्योंकि मैंने उसी अवसर पर यह कहा था कि गाधी-अरविन-पैक्ट के द्वारा जो मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुआ है उसे अक्षुण्ण रखने की मैं पूरी शक्ति के साथ चेष्टा करूगा और भेद नही पडने दूगा। मैं तो आशावादी हू, इसलिए मनुष्यो मे अमिट झगडा खडा होने की सम्भावना मे मेरा विश्वास नही है।

७. मैंने यह कभी नही कहा था कि मैं इग्लैंड के विरुद्ध सघर्ष नये सिरे से छेड़ने के लिए भारत लौट रहा हू। उस वार्तालाप के अवसर पर मुझसे कई प्रकार की सम्भावनाओ के बारे मे प्रश्न किये गए थे, और 'क' मे उस बातचीत को इस रूप मे रखा गया मानो मैं उन सम्भावनाओ को प्रकृत रूप देने के लिए भारत लौट रहा होऊं।

८. मैं यह भी कहूगा कि जनता ने न सीनोर ग्याडा द्वारा तैयार किये मूल नोट देखे हैं, न उनके द्वारा तैयार और प्रकाशित की गई कहानी। 'क' और 'ग' मे तो 'टाइम्स' के सम्वाददाता की अपनी धारणाए हैं, जो उसने सीनोर ग्याडा के लेख या कथन से ग्रहण की।

पता नही, 'ग' का सबके ऊपर क्या प्रभाव पडा। यदि मेरे खण्डन की सत्यता के सम्बन्ध मे आपको शका होने लगी थी तो जिस प्रकार आपने पहली रिपोर्ट की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था, उसी प्रकार मेरे खण्डन के खण्डन की ओर भी करना चाहिए था। पता नही, आप इस पत्र को किस रूप मे लेंगे, परन्तु यदि आपको मेरी सत्यता मे कुछ सदेह हो गया है तो मैं यथाशक्ति उसका निवारण करना चाहूगा। 'ग' मे जिस अनुचरी का जिक्र किया गया है, वह मिस स्लेड हैं। मैं

इस पत्र के साथ उनके उक्त वार्तालाप-सम्बन्धी संस्मरण भेजता हू ।

मैं इस पत्र को प्रकाशित नही करा रहा हू, पर इसकी प्रतिलिपिया अपने कुछ मित्रों को उनके निजी उपयोग के लिए भेज रहा हू, पर मैं चाहूगा कि आप स्वयं इसे प्रकाशित करवाए, या प्रोफेसर एन्ड्रयूज से, जिनका पता वुडब्रुक सैली ओक बर्मिघम है, इसका जिस प्रकार चाहे उपयोग करने को कह दें ।

आपका
मो० क० गाधी

'क'

एक नया व्यापारिक बहिष्कार
निजी सम्वाददाता द्वारा

रोम
१४ दिसम्बर

श्री गांधी ने, जो अबतक अनेक इटालियन और विदेशी पत्रकारो को वक्तव्य देने से इन्कार करते आ रहे थे, 'जरनेल द इटालिया' के सीनोर ग्याडा को एक लम्बा वक्तव्य दिया है ।

श्री गाधी ने कहा कि गोलमेज परिषद् भारतीयो के लिए दीर्घकालीन और धीरे-धीरे दी जानेवाली व्यथा का साधन थी, अब उसके अन्त के साथ ही ब्रिटिश सरकार और भारतीय राष्ट्र में निश्चित रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। पर इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार को भारतीय राष्ट्र और उसके नेताओ की वास्तविक भावनाओ का पता लग गया है और यह भी मालूम पड गया है कि इंग्लैंड का क्या इरादा है । श्री गांधी ने कहा कि वह भारत को इग्लैंड के विरुद्ध तुरन्त सघर्ष आरम्भ करने के लिए लौट रहे हैं; यह संघर्ष निष्क्रिय प्रतिरोध और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का रूप धारण करेगा । उनकी धारणा है कि मुद्रा-सम्बन्धी सकट और बेकारी के कारण इग्लैंड को जिस विपत्ति का सामना करना पड रहा है, बहिष्कार के द्वारा उसमे और भी वृद्धि हो जायगी । भारतीय बाजार मे ब्रिटिश माल की खपत न होने के फलस्वरूप ब्रिटिश औद्योगिक कार्यशीलता मे बहुत कमी हो जायगी, जिससे बेकारी और बढ़ेगी और पोंड की दर और भी कम हो जायगी ।

श्री गांधी ने अन्त मे कहा कि यूरोप के बहुत ही कम देश भारतीय समस्या में दिलचस्पी दिखाते हैं, यह बड़े खेद का विषय है, क्योंकि स्वतन्त्र और समृद्ध भारत का अर्थ है अन्य राष्ट्रो के माल की अधिक खपत । उन्होने यह भी कहा कि भारतीय स्वतन्त्रता के फलस्वरूप अन्य सारे देशों के साथ व्यापारिक और बौद्धिक विनिमय होगा ।

'ग'

('लन्दन टाइम्स' से उद्धृत)

२१ दिसम्बर, १९३१

श्री गांधी ने उस मुलाकात का, जो उन्होंने रोम में स्वल्पकालीन आवास के समय 'जरनेल द इटालिया' को दिया बताते हैं और जिसका संक्षिप्त विवरण १५ दिसम्बर के 'टाइम्स' में छप चुका है, अक्षरशः खण्डन किया है। उनके द्वारा कही गई बात भारत में सविनय आंदोलन के पुनः आरम्भ होने की संभावना के सम्बन्ध में उनकी अबतक की सारी युक्तियों से इतनी बढ़-चढ़कर थी कि उनसे यह पूछना जरूरी समझा गया कि वास्तव में उन्होंने क्या कहा था। फलतः अधिकारपूर्ण क्षेत्र से उनके पास भूमध्यसागर में इटालियन स्टीमर पिल्सना पर एक तार भेजा गया, जिसमें कहा गया :

"प्रेस रिपोर्टों का कहना है कि जहाज पर सवार होने से पहले आपने 'जरनेल द इटालिया' को एक वक्तव्य दिया, जिसमें निम्नलिखित उद्गार थे :

"१. 'गोलमेज परिषद् के द्वारा भारतीय राष्ट्र और ब्रिटिश सरकार में निश्चित रूप से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है।'

"२. 'आप भारत इंग्लैंड के विरुद्ध तुरन्त संघर्ष आरम्भ करने के लिए लौट रहे हैं।'

"३. 'बहिष्कार ब्रिटेन के संकट में वृद्धि करने का शक्तिशाली साधन सिद्ध होगा।'

"४. 'हम कर नहीं देंगे, हम इंग्लैंड के लिए किसी रूप में काम नहीं करेंगे, हम अंग्रेज अधिकारियों, उनकी राजनीति और उनकी संस्थाओं से बिलकुल नाता तोड़ लेंगे, और हम ब्रिटिश माल का पूरी तौर से बहिष्कार कर देंगे।'

"यहां आपके कुछ मित्रों का कहना है कि आपने जो कुछ कहा होगा, यह उसी की गलत रिपोर्ट है। यदि ऐसी बात है तो खण्डन वांछनीय है।"

कल श्री गांधी के पास से तार द्वारा निम्नलिखित उत्तर मिला :

"'जरनेल द इटालिया' का कथन बिलकुल असत्य है। मैंने रोम में पत्र-प्रतिनिधियों को कोई वक्तव्य नहीं दिया। मेरी अन्तिम मुलाकात स्विट्जरलैंड के विलेन्यूव नामक स्थान पर रायटर के साथ हुई, जिसके दौरान मैंने भारतीय जनता से झटपट किसी नतीजे पर पहुंचकर मेरे वक्तव्य की प्रतीक्षा करने को कहा था। यदि सीधी कार्रवाई अभाग्यवश अनिवार्य हुई तो भी मैं कोई कदम जल्दबाजी में नहीं उठाऊंगा और पहले अधिकारियों की चिरौरी करूंगा। कृपया इस वक्तव्य का पूरा प्रकाशन कीजिए।"

'जरनेल द इटालिया' में श्री गांधी का जो तथाकथित वक्तव्य छपा था,

श्री गाधी ने उसका खण्डन किया है, पर सीनोर ग्याडा उनके इस खण्डन को स्वीकार करने को बिलकुल तैयार नही है। सीनोर ग्याडा ने एक संक्षिप्त से नोट मे कहा है कि जो शब्द महात्मा द्वारा कहे बताये गये हैं उन्हें उन्होंने स्वयं उनके सामने और अन्य साक्षियों के सामने लिया है। जहां तक मैं समझता हूं, श्री गाधी का खण्डन सत्यतापूर्ण भी हो सकता है, क्योंकि सीनोर ग्याडा ने बाकायदा मुलाकात का अनुरोध नही किया और न वैसी मुलाकात हुई ही।

मुझे यह खबर मिली है कि महात्मा के साथ सीनोर ग्याडा की मुलाकात एक निजी मकान मे कराई गई और श्री गाधी को यह स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि सीनोर ग्याडा कौन हैं। जब श्री गांधी ने वह उल्लेखनीय वक्तव्य देना आरम्भ किया, जो उनके द्वारा दिया गया बताते हैं, तो सीनोर ग्याडा ने उसके महत्त्व को समझकर, और किसी प्रकार की भूल न करने की इच्छा से प्रेरित होकर, कागज और पेंसिल मागी जो उन्हें दी गई। सीनोर ग्याडा ने उनका वक्तव्य वही उसी समय श्री गाधी और उनकी एक अनुचरी के सामने नोट कर लिया। इन दोनो मे से किसी ने इस विषय मे एक शब्द तक नही कहा कि जो कुछ कहा गया है वह प्रकाशन के लिए नही है।

इससे यह प्रकट है कि जहा तक श्री गांधी के उद्‌गारो के तथ्य का सम्बन्ध है, सीनोर ग्याडा ने, जिनके अंग्रेजी भाषा-विषयक ज्ञान की बात मैं स्वयं जानता हूं, वे सारी बातें विशेष सावधानी के साथ नोट कीं।

मीराबहन का वक्तव्य

अब से दो वर्ष तीन मास पहले की घटना के सम्बन्ध में मेरे संस्मरण निम्नलिखित हैं :

गाधीजी और उनके साथियों को रोम मे एक इटालियन काउण्टेस के घर, आपसी मुलाकात के लिए आमन्त्रित किया गया। यह काउण्टेस इटली के बम्बई-स्थित कौंसल की, जो उस समय रोम मे ही थे, मित्र थीं। बैठक काफी देर तक रही। पहले वार्त्तालाप हुआ, फिर जलपान, उसके बाद फिर वार्त्तालाप। आरम्भ मे गाधीजी के साथ अकेली मैं ही थी, बाद को अन्य साथी एक-एक करके आने लगे। इस मुलाकात के दौरान मैं बराबर गाधीजी के साथ ही रही। हा, उनके लिए कुछ फल आदि तैयार करने और स्वयं जलपान करने के लिए १५-२० मिनट के लिए भोजनालय मे अवश्य गई थी।

जहा तक मुझे याद है, आरम्भ मे बातचीत खानगी विषयो पर होती रही। काउण्टेस मुलाकातियो का परिचय गाधीजी से कराने और बातचीत का सिलसिला जारी रखने मे लगी हुई थी। जब बातचीत ने जोर पकड़ा तो मैंने देखा कि दो या तीन सज्जन राजनैतिक और आर्थिक विषयों पर भाति-भाति के प्रश्न कर

रहे हैं। उनमे से एक ने कागज और पेंसिल मांगी, और नोट करना शुरू किया। कुछ समय बाद हमारे अन्य साथी भी आने लगे और हम सब भोजनालय के पास वाले बड़े कमरे मे चले गये। यहा फिर आम ढग की बातचीत होने लगी। हा, किसी एक सज्जन के साथ थोडी-सी गम्भीर बातचीत अवश्य हुई थी, पर मुझे उस बातचीत का विवरण याद नही है।

थोडे मिनटो को छोडकर, जबकि मैं वहा नही थी, मैंने गाधीजी द्वारा कही गई सारी बातें सुनी। वह राजनैतिक और आर्थिक ढग के उत्तर मे यथासम्भव जो कुछ कह रहे थे, विशेष जोर और स्पष्टता के साथ कह रहे थे, क्योकि इटालियन सज्जन को अंग्रेजी समझने मे कठिनाई हो रही थी, और साथ ही प्रश्नकर्त्ता बराबर प्रश्न कर रहे थे। 'टाइम्स' के सम्वाददाता ने जो बातें गांधीजी द्वारा कही बताई हैं यदि वह वैसी कोई बात कहते तो मैं अवाक् रह जाती। इसका अर्थ यही होता कि उन्होंने अपने आदर्शों और सिद्धान्तो को एक ओर फेंक दिया है। वैसी अवस्था मे मैं उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक और पिता कभी न मानती रहती।

मीरा (मिस स्लेड)

स्वराज्य पार्लामेंटरी पार्टी ने कुछ साल पहले केन्द्रीय धारा सभा का परित्याग कर दिया था। सन् १९३४ मे वह फिर बनी। मैं काग्रेस के साथ उस पार्टी के सम्बन्ध को लेकर बड़ा उद्विग्न था। बापू उस समय आसाम मे थे। मैंने उन्हें वही यह पत्र लिखा

१४ अप्रैल, १९३४

परम पूज्य बापू,

आप पहले कार्यकारिणी की आपसी बैठक और बाद को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बाकायदा बैठक बुला रहे हैं, इसलिए मैंने सोचा कि स्वराज्य पार्टी के गठन के सम्बन्ध मे मैं भी अपने विचार रख दू। जहा तक आपकी दोनो प्रेस मुलाकातो का सवाल है, मुझे उसके सम्बन्ध मे कुछ नही कहना है। किसी-न-किसी प्रकार मैं आपसे सहमत हो जाता हू, पर इससे आप यह न समझें कि मुझमे बुद्धि-विवेक का अभाव है। जब आपकी बातें हमेशा ठीक ही हों तो मैं क्या कर सकता हू ? अब स्वराज्य पार्टी के सम्बन्ध मे जब से डा० अन्सारी, भूलाभाई और डा० राय ने नई पार्टी के जन्म की घोषणा की है, तब से पडित मालवीयजी बड़े उद्विग्न हो गये हैं। उन्हें पूरी तौर से निश्चय नही है कि निर्वाचन के अवसर पर वह कौन-सा रुख अख्तियार करेंगे। आप जानते ही हैं कि साम्प्रदायिक निर्णय के मामले मे उनके विचार बड़े कठोर हैं और जो हिन्दू-सभाई व्यवस्थापिका सभा मे जाने की इच्छा रखते हैं उन्होने उनका दुरुपयोग करना अभी से आरम्भ कर

दिया है। यदि परिस्थिति के अनुसार ठीक-ठीक आचरण नही किया गया तो, सम्भव है, पण्डितजी के नेतृत्व मे एक और दल का जन्म हो जाय। साम्प्रदायिक प्रश्न पर पण्डितजी काग्रेस और हिन्दू महासभा, दोनो के बीच मे हैं। वह दोनो मे से किसी से सहमत नही हैं। वह मैत्रीपूर्ण समझौता तो चाहते हैं, पर औचित्य की परिधि मे रहकर मुसलमानो को सन्तुष्ट करने को तत्पर नही हैं। इस समय वह इस बात की हठ पकड़े हुए हैं कि साम्प्रदायिक निर्णय का अन्त कर दिया जाय, जो कि असम्भव बात है। वह कहते हैं कि मुसलमानों को केन्द्र में ३३ प्रतिशत और बगाल में ५१ प्रतिशत सीटें दी जा सकती हैं, पर अवशिष्ट सीटो को वह हिन्दुओ और यूरोपियनों मे बाटना नही चाहते। वह चाहते हैं कि बाकी सारी सीटें हिन्दुओ को मिलें। वह जो कहते हैं, उसमें बुद्धि-विवेक की मात्रा पर्याप्त है, पर उनकी कार्यप्रणाली आपके लिए रुचिकर नहीं होगी। वह मुसलमानो की सहायता पाने के लिए सचेष्ट हैं, पर वह उन्हें कभी प्राप्त नही होगी, और वह वाइसराय और ब्रिटेन के मंत्रिमंडल के पास डेपुटेशन ले जाना चाहते हैं, जो निष्फल सिद्ध होगा। पता नही, साम्प्रदायिक मामलो में स्वराज्य पार्टी की क्या नीति रहेगी, पर यदि वह अपने सदस्यो को साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध अपने-अपने ढंग से करने को स्वतन्त्र छोड़ दें तो पण्डितजी और स्वराज्य पार्टी के दृष्टिकोणों मे सामजस्य स्थापित करना सम्भव है। यदि ऐसा नही हुआ तो राष्ट्रीय विचार वाले हिन्दुओं मे फूट पड़ने की सम्भावना है और यह कादापि वाछनीय नही है। पण्डितजी तो केवल यही चाहते हैं कि नई स्वराज्य पार्टी साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति कोई लगाव न दिखावे।

दूसरा प्रश्न स्वराज्य पार्टी के नियंत्रण का है। मैं पण्डितजी की इस बात से सहमत हूं कि या तो काग्रेस को स्वराज्य पार्टी को पूरी तौर से अपने काबू मे रखना चाहिए, या फिर उससे कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए; क्योंकि यदि आसफअली-जैसे आदमियो को पूरा अधिकार दे दिया जायगा और काग्रेस केवल आशीर्वाद देगी और किसी प्रकार का अनुशासन नही रखेगी तो वह अपने कर्त्तव्य का पालन नही करेगी। इससे पार्टी कमजोर पड़ जायगी, साधारण श्रेणी के सदस्यो में भ्रष्टाचार की वृद्धि होगी और अन्त मे काग्रेस की ही बदनामी होगी। पुरानी स्वराज्य पार्टी का मेरा जो अपना अनुभव है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूं कि बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायगा, विशेषकर इसलिए कि अब मोतीलाल-जैसे व्यक्ति मौजूद नहीं हैं। पार्टी के अनुशासन द्वारा ही सही, पर किसी-न-किसी रूप में कांग्रेस द्वारा नियंत्रण अत्यावश्यक है। पर यदि कांग्रेस किसी प्रकार का नियंत्रण नही रखना चाहती है तो उसका आशीर्वाद भी अनावश्यक है। आपको इस मामले मे पूर्ण निश्चय कर लेना चाहिए। मैं तो कांग्रेस

के नियंत्रण के पक्ष मे हू।

विनीत
घनश्यामदास

इसके बारे मे गाधीजी ने अपनी राय दी और अपने अप्रैल के पत्र मे, जिस पर तारीख नहीं लिखी है, साम्प्रदायिक निर्णय की भी चर्चा की .

डिब्रूगढ़
अप्रैल, १९३४

भाई घनश्यामदास,

एवार्ड की बात बहुत मुश्किल है। यदि मैंने जो रास्ता बताया है उसका स्वीकार मुसलमान करें तो कुछ हो सकता है, न भी करें तो वह रास्ता बिलकुल सीधा है। मुझे डर है कि वह स्वराज्यवादियों को अच्छा नहीं जचेगा। हिन्दू-मुसलिम-सिख ऐक्य आज सिद्ध होने के लिए मैं कोई वायुमडल नही पाता हूं।

धारा-सभा-प्रवेश को मैंने स्वतत्रतया देखा है। मुझे लगता है कि कांग्रेस मे हमेशा धारा-सभा-प्रवेश का दल रहेगा ही। उसी दल के हाथ मे कांग्रेस की बाग-डोर होनी चाहिए और वही दल को कांग्रेस के नाम की आवश्यकता रहती है। मैंने यह बात हमेशा के लिए मान ली है। वही लोग कोई वार बहिष्कार भी करना होगा तो करें।

धारा-सभा-प्रवेश मे मुसीबत काफी है। इसका फैसला तो होता रहेगा, गलतिया होती रहेगी, दुरस्ती होगी, नही होगी ऐसे चलता रहेगा।

कलकत्ता से राची मुझको तो ज्यादा अच्छा लगता है। राची मे लोगों के लिए सुभीता न रहे, यह दूसरी बात है। रांची मे शान्ति मिलेगी। कलकत्ते मे असम्भावित है। मैंने राजेन्द्रबाबू पर छोड दिया है।

तुम्हारा फेडरेशन का व्याख्यान पढ़ूगा और पढने के बाद अभिप्राय भेजूगा।

राची मे मिटिंग होवे तो और आना शक्य है तो आ जाना अच्छा हो सकता है। निश्चयपूर्वक नही कह सकता हू।

बापू के आशीर्वाद

अब मैंने लार्ड हेलीफैक्स को पत्र लिखने का निश्चय किया .

२३ अप्रैल, १९३४

प्रिय लार्ड हेलीफैक्स,

मैं यह पत्र बड़े हताश भाव से लिख रहा हू, पर प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि मैं रोक नही सका।

तीन वर्ष से अधिक हुए, इतिहास मे पहली बार दो महान् पुरुषों की भेंट हुई। दोनो अपने-अपने देश की ओर से मिले और दोनो ने भारत और इंग्लैंड को एक-दूसरे के इतना निकट ला दिया, जितना वे पहले कभी नही आये थे। आपने पहला कदम उठाकर दोनों देशों के आगे एक उदाहरण रख दिया कि एकमात्र पारस्परिक अवबोध और बातचीत के द्वारा ही शांति और सद्भावना का लक्ष्य सिद्ध हो सकता है। उसके बाद का इतिहास बडा दुःखद है। पर मुझे मालूम हुआ है कि हाल ही मे एक प्रान्तीय गवर्नर ने मेरे एक मित्र से कहा था कि गांधी ने पैक्ट के अंतर्गत अपनी जिम्मेदारियां सोलह आने पूरी की।

जो हो, वर्तमान अवस्था तो अत्यन्त दुःखदायी और असह्य है। अंग्रेजो की प्रतिज्ञाओ के प्रति इस समय जितना अविश्वास दिखाई देता है और वातावरण में जितनी कड़वाहट दृष्टिगोचर होती है, उतनी पहले कभी नही थी। यह सब तो है ही, इससे भी बुरी बात यह है कि पारस्परिक अवबोध और मानवीय सम्पर्क के चिर-परिचित मार्ग को हमेशा के लिए त्याग दिया गया है। इस वयोवृद्ध पुरुष को कभी अव्यावहारिक और अरचनात्मक कल्पनावादी बताया जाता है, कभी बेईमान, चालाक और कपटी राजनीतिज्ञ। उनके लिए एक साथ दोनो ही होना सम्भव नही है, और आप स्वय जानते हैं कि वह वास्तव में क्या हैं। उन्हें समझने की कोई इच्छा नही है। मानवीय सम्पर्क-मात्र को हौआ समझा जाता है। हाल ही मे गांधीजी ने लार्ड विलिंग्डन को एक पत्र लिखा था, जिसे मैंने भी देखा था। उसमे उन्होंने कहा था, "विश्वास करिये, मैं आपका और इंग्लैंड का सच्चा मित्र हूं।" वास्तव मे उन्होने यथार्थ बात कही थी। बिहार की पुनर्रचना के कार्य मे उन्होंने मर्यादा पर अड़ने के बजाय बगैर किसी शर्त के सहयोग प्रदान किया और इस प्रकार यह प्रमाणित कर दिया कि यद्यपि वह अपने-आपको पक्का असहयोगी बताते हैं, तथापि वह सबसे अच्छे सहयोगी हैं। अब उन्होने सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी उठा लिया है और ऐसा करके कांग्रेस के वामपंथियों को रुष्ट कर दिया है। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि उन्होने जो कदम उठाया है, कांग्रेस उस पर अपनी सही कर देगी। कांग्रेस और देश में उनका जितना प्रभाव था, अब उससे भी अधिक हो गया है।

पर उसके बाद क्या ? मेरी राय मे तो इस समय सबसे अधिक आवश्यक वस्तु अपेक्षाकृत अच्छे विधान की नही, अपेक्षाकृत अधिक पारस्परिक अवबोध की है। अविश्वास के वातावरण मे तैयार किया गया विधान कभी सफल नही हो सकता है। इसके विपरीत, पारस्परिक अवबोध स्वयं वैधानिक गुत्थियां सुलझाने मे सहायक होगा। मैं तो यहा तक कहूंगा कि यही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा चर्चिलो की दिलजमई कराई जा सकती है कि भारत पर विश्वास करके वे इग्लैंड के हितो को खतरे मे नही डालेंगे। अतएव इंग्लैंड और भारत के प्रत्येक

हितैषी का इस समय एकमात्र यही मिशन हो सकता है कि दोनो देशो के नेता एक-दूसरे को समझें। महोदय, इस महान् सत्य का पता सबसे पहले आपने लगाया और इस सत्य को हृदयंगम करने की आवश्यकता जितनी इस समय है उतनी पहले कभी नही थी। मेरा कहना यही है कि समुद्र के इस ओर जिन लोगों का अब भी इस सत्य मे विश्वास है, वे आपकी सक्रिय सहायता की अपेक्षा करते है। इन दुर्दिनो मे आपके प्रशसकों की जबान पर एकमात्र प्रश्न यह है "लार्ड अरविन क्या कर रहे है ?" आप हमारे मामलों मे इस समय भी जितनी रुचि लेते हैं, मै जानता हूं। पर यदि मुझे अनुमति दी जाय तो मैं कहूगा कि आपने पहले भारत को जिस प्रकार उदारतापूर्वक सहायता दी थी वह अब आपसे उससे भी अधिक सहायता की आशा करता है। आपने १९३१ मे एक उदाहरण रखा था, पर उससे पूरी तौर से लाभ नहीं उठाया गया। मेरी अब भी यही धारणा है कि दोनो देशो के लिए यही एकमात्र मार्ग है और मेरी आपसे यही अपील है कि आपने १९३१ मे जिस चीज का श्रीगणेश किया था उसे आगे बढाइये। इस समय जैसा कुछ वातावरण है उसके कारण सफलता दूर भले ही दिखाई देती हो, पर केवल इसी कारण स्तुत्य प्रयास का त्याग क्यों किया जाय !

इस लम्बे पत्र के लिए क्षमा करिए। अपनी सफाई मे मैं केवल गाधीजी के प्रति अपनी भक्ति, आपके प्रति अपनी प्रशसा और अपने देश के प्रति अपने प्रेम का हवाला दे सकता हूं।

भवदीय
जी० डी० बिडला

उन्होने बड़े ही आश्वासनपूर्ण शब्दो मे उत्तर दिया ·

८८, ईटन स्क्वायर, लदन, एस० डब्ल्यू० १
११ मई, १९३४

प्रिय श्री बिड़ला,

कुछ दिन हुए आपका पत्र मिला था। अनेक धन्यवाद। विश्वास रखिए, आजकल की कठिन परिस्थिति मे भी भारत को सतोप और शाति देने वाले हर मामले मे सद्भावना पैदा कराने के काम मे जितनी भी सहायता मै दे सकता हू, अवश्य दूंगा। मुझे आज भी पक्का विश्वास है कि जो लोग इस लक्ष्य को प्राप्त करने की सच्ची आकाक्षा रखते हैं उनकी चेष्टाओं से यह महान् कार्य अवश्य पूरा होगा। इसलिए निश्चय मानिए कि मैं जो कुछ भी कर सकता हू, सहर्ष करूगा। मेरी सदा से ही यह धारणा रही है कि आजकल की स्थिति मे सभी पक्षो को बड़े धैर्य से काम लेना चाहिए और वर्तमान कण्टकाकीर्ण मार्ग को भविष्य की आशा

के प्रकाश से आलोकित रखना चाहिए।

आपका
हेलीफैक्स

इस अध्याय को मैं बापू के एक पत्र के साथ समाप्त करता हूं। इस पत्र से इस बात का एक और प्रमाण मिलता है कि किस प्रकार वह अपने कामों में आर्थिक सहायता के लिए मुझ पर निर्भर रहते थे। इस बार वह निम्नवर्ग के लोगों की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए घरेलू उद्योगों की स्थापना करना चाहते थे।

वर्धा
२६-११-३४

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

मैं कैसे कहूं मुझे क्या चाहिए। जब सौ दो-सौ, हजार की बात रहती है तब तो माग लेता हूं। यह ग्राम-उद्योग का बहुत बड़ा काम लेकर मैंने निजी हाजत बढ़ा दी है। इसलिए मैं तो कह सकता हू कि दूसरा जो आवश्यक दान हो उसे बाद कर बाकी जो रहे सो मुझे दे दिया जाय।

ग्राम-उद्योग का बोर्ड बनाने मे कुछ मुसीबत पैदा हो रही है। मैं बोर्ड बहुत छोटा, कम-से-कम तीन का, ज्यादा-से-ज्यादा दस का, उसी आदमी को चाहता हू जो उद्देश्य मे पूर्ण विश्वास रखते हैं जो करीब-करीब अपना पूर्ण समय देवें। यह काम थोड़ी तकलीफ दे रही है, इसमें कुछ ख्याल रखते होंगे।

उतमनझाई खान साहब की देहात है। वहां जाकर बैठने का इरादा कब से रहा है। गुरुवार के रोज दिल्ली खत भेज दिया है। जाने का कारण बताया है और पूछा है क्या कुछ हर्ज है मेरे सरहदी सूबे मे जाने में? देखें, क्या उत्तर आता है।

आपरेशन का समय क्या निश्चय हुआ?

बापू के आशीर्वाद

११. भारतीय शासन बिल

जिस समय ब्रिटिश लोकसभा में भारतीय शासन बिल पर विचार हो रहा था, उस समय स्वभावतः सारे भारतवर्ष की दृष्टि उधर ही लगी हुई थी। इस बिल में भारतवर्ष के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की व्यवस्था नहीं थी, पर गांधीजी हरिजन-आन्दोलन को स्वतन्त्रता की ओर बढ़ने का एक आवश्यक उपकरण निश्चय मानकर अपना सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित कर रहे थे। वह जानते थे कि यदि ठीक भावना से काम किया जाय तो बिल से लाभ ही होगा। इसके विपरीत कुछ कांग्रेसवादियों को इस बिल में कोई तत्त्व नहीं दिखाई देता था और उनका मत था कि इसे माँटेग्यू ऐक्ट से भी बुरा समझकर उसका तिरस्कार करना चाहिए। अब जबकि भारत पूर्णरूप से स्वतन्त्र हो गया है, हम भारतवासी इस स्थिति में हैं कि अतीत पर अपेक्षाकृत अधिक निष्पक्ष भाव से विचार करें और इस बात को स्वीकार करें कि *भारतीय शासन बिल में निश्चय ही वे बीज मौजूद थे,* जो आगे चलकर अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होकर अन्त में हमें हमारी मनोवांछित स्वतन्त्रता देने वाले थे। आज हमने अपने राष्ट्र का जो संविधान बनाया है उसमें भारतीय शासन-विधान के अनेक अंशों को ले लिया गया है, जिससे पता चलता है कि उसे हमारी भावी योजनाओं के सांचे में ढाला गया था।

कलकत्ता
१४ दिसम्बर, १९३४

प्रिय महादेवभाई,

कल यहीं अपने यहां मूर के साथ कोई ढाई घण्टे तक बातें होती रहीं। श्री मुगरिज जो नये आये हैं, भी उनके साथ थे। वार्तालाप का विषय आरम्भ से अन्त तक बापू थे। उन्होंने मो ही रिपोर्ट के विषय में मेरी सम्मति मांगी। मैंने कहा कि रिपोर्ट उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्त्वपूर्ण वर्तमान वातावरण है। मैंने पारस्परिक सम्पर्क के अभाव की कड़ी आलोचना की। वह भी सहमत हुए, पर उन्होंने कहा कि सरकारी हलकों में सबको यही आशंका है कि गांधीजी के साथ जहां किसी प्रकार का संपर्क स्थापित किया गया कि तरह-तरह की अटकलबाजियों को जन्म मिल जायगा। मेरे साथ उनकी जो बातचीत हुई है, वह वाइसराय को बताएंगे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि अंग्रेज लोग गांधीजी में अब पहले से अधिक दिलचस्पी दिखाने लगे हैं। उन्होंने कहा कि वाइसराय से कल ही उन्होंने बातचीत की थी, और वाइसराय ने पूछा कि सरहद-संबंधी पत्र-व्यवहार को बापू ने किस उद्देश्य से प्रकाशित कराया। मूर ने कहा कि बापू का

उद्देश्य बिलकुल ईमानदारी से भरा हुआ था। वह कबीले के लोगो को सविनय अवज्ञा की सलाह देना नही चाहते हैं। उन्होंने कहा कि वाइसराय तो उनके दृष्टि-कोण से सहमत हो भी जाते, पर एक वर्ग ऐसा भी है, जिसका विश्वास है कि गाधीजी को समझना कठिन है, उनकी हर एक बात मे चाल रहती है। बहुतो की धारणा है कि वह सरकार के खिलाफ नये सिरे से आन्दोलन आरभ करने के मौके की तलाश मे हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वाइसराय को जो दूसरा पत्र लिखा गया था उसमें सविनय अवज्ञा की धमकी देना ठीक नही हुआ। मुझे जो कुछ मालूम हो सका है उससे तो मैं इसी नतीजे पर पहुचा हू कि काफी गलतफहमी मौजूद है। यह गलतफहमी दूर हो जायगी, पर समय लगेगा। खबर है कि सीमा-प्रान्त के गवर्नर कनिंघम को, जो बापू को जानता है, आशका है कि बापू के आगमन से सरहद मे उत्तेजना फैल जायगी और इससे वहा की सरकार को परे-शानी होगी। मुझे मूर ने बताया कि बंगाल के गवर्नर बापू से मिलने को बडे उत्सुक थे, पर किसी-न-किसी कारण से मुलाकात न हो सकी। उन्होने मुझसे पूछा कि क्या बापू कलकत्ता आ रहे हैं, जिसका अभिप्राय यह था कि यदि वह आवें तो मुलाकात करा दी जाय। मैंने उत्तर दिया कि बापू को बंगाल मे कुछ करना नहीं है, इसलिए वह बगाल नही जायंगे, पर यदि अधिकारी उनसे मिलना चाहें तो बात दूसरी है।

मेरी धारणा है कि उनके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है उसका एक कारण अविश्वास है, साथ ही यह भी आशका है कि उनकी सरहद-यात्रा से सरकार को परेशानी होगी। मैं समझता हूं कि इस अविश्वास का निवारण बहुत जरूरी है, और निवारण होगा भी। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि विलिंग्डन बापू के प्रति विरोध की भावना से उतने प्रेरित नही हैं, जितने अविश्वास की भावना से। इन लोगो के लिए सत्याग्रह का मर्म समझना बड़ा कठिन है। मूर ने कहा कि बापू के उपवास को तो सत्याग्रह कहा जा सकता है, पर और जो कुछ हुआ उसे तो सत्याग्रह न कहकर हिंसा कहना ही ठीक होगा। वह तो अतिशयोक्ति से काम ले रहे थे, पर इसमें भी कोई सन्देह नही है कि जनता ने जो कुछ किया उसे सत्या-ग्रह किसी प्रकार नही कहा जा सकता है।

मैंने यह भी देखा है कि एड्रयूज आदि व्यक्तियों के प्रति इन लोगो की भावना मे कोमलता की प्रचुरता नही है। उनके बुद्धि-विवेक के संबध मे तो उनकी धारणा बड़ी हीन है ही, साथ ही इन लोगों मे उनके प्रति एक ऐसी कुत्सा-सी है, जिसका पता मुझे अभी लगा है।

आपका
घनश्यामदास

१ फरवरी, १६३५

परम पूज्य बापू,

आपके विदा होने के तुरन्त बाद ही होम मेम्बर और वाइसराय के साथ मेरी मुलाकात हुई। इस पत्र के साथ उस मुलाकात का ब्योरा भेज रहा हूं। मैं शब्द-चित्र खीचने मे पटु नहीं हू, विशेषकर अंग्रेजी के शब्दचित्र, इसलिए मैं यह नही कह सकता कि इससे आपको सही अंदाजा हो सकेगा या नही। पर मैं इस ब्योरे के पूरकस्वरूप यह तो कह ही दू कि होम मेम्बर के साथ जो मुलाकात हुई उसके दौरान अधिकतर मैं ही बोलता रहा, जबकि वाइसराय वाली मुलाकात मे अधिकतर वही बोलते रहे। होम मेम्बर बड़ी सहृदयता से पेश आया। कोई तीक्ष्ण बुद्धि तो नही है, पर वैसे वह बड़ा स्पष्टवादी है। उसे शासनपटु कहा जा सकता है। यदि आप उसके अनुदार होने का अंदाजा लगाना चाहें तो लगा सकते हैं, पर यदि वह अनुदार है तो ईमानदार ढंग का अनुदार है। इसके विपरीत वाइसराय ने उस ढग का आचरण नही किया, जिस ढग का पहली मुलाकातो मे किया था। कांग्रेसियों ने अपने नाम नही लिखे, इससे उसके दिल को सचमुच ही चोट पहुची है। पता नही, भूलाभाई इस मामले मे अन्य कांग्रेसी सदस्यों की बात छोडकर स्वयं अपनी स्थिति पर पुन: विचार करने को तैयार होगे या नही। आप स्वय भी तो सविनय अवज्ञा आन्दोलन के संबंध मे पत्र लिखने का विचार कर रहे थे। उसी प्रकार भूलाभाई भी प्राइवेट सक्रेटरी को लिखकर आश्वासन दे सकते हैं कि उनका किसी प्रकार का व्यक्तिगत अपमान करने का उद्देश्य नही था। इसके बाद आवश्यकता होने पर वह अपना नाम लिख सकते हैं, क्योकि पहले नाम न लिखना अपमानजनक समझा गया था। मैं कम-से-कम बगाल के गवर्नर के साथ तो एक बार फिर बात करूगा ही। इसके बाद मैं घटनाओ को स्वयं अपनी रूपरेखा निश्चित करने के लिए छोड दूगा। इसमे थोड़ा समय तो अवश्य लगेगा, पर मेरी धारणा है कि यदि धैर्य से काम लिया गया तो बहुत-सी बातें स्वत: ही समय पर हो जायगी। जब उचित समझें, मुझे लिख सकते हैं। होम मेम्बर कम-से-कम वल्लभभाई से भेंट करेंगे ही, सो अच्छा ही है।

विनीत

घनश्यामदास

१५ फरवरी, १६३५

परम पूज्य बापू,

इस पत्र के साथ सर सेम्युअल होर के अभी आये हुए पत्र की नकल, मेरे उत्तर की नकल तथा बगाल के गवर्नर के साथ मेरी मुलाकात का ब्योरा भेज रहा हू। अब गवर्नर निश्चित रूप से कह रहे हैं कि बिल पास हो जाने के बाद

ऐसी बातो को लेकर मित्रता का हाथ बढाया जायगा, जिन पर दोनो पक्ष सहमत हैं। आपने भी यही कहा था कि यदि वे लोग कुछ करेंगे तो बिल पास होने के बाद ही करेंगे। यह अटकल लगाना तो बेकार है कि लोग क्या करेंगे, पर फिलहाल यह सन्तोष की बात है कि उन लोगो ने कोई योजना बना रखी है। सर सेम्युअल होर का पत्र भी उतना ही स्पष्टवादिता और सहृदयतापूर्ण है, पर यह स्पष्ट है कि जितना परिस्थितियों के अनुरूप उनके लिए कहना सम्भव है वह उससे अधिक नही कहना चाहते हैं। मुझे गवर्नर ने जो बात बताई है, सर सेम्युअल होर उसे ध्यान से रख सकते हैं। बिल पास होने के बाद कांग्रेसवादियो के लिए समझौता करना कठिन होगा, पर हमें आशा करनी चाहिए कि ठीक समय पर आपकी सूझ हमारी सहायता करेगी। इस पत्र को पढने के बाद लिखिये कि स्थिति के सम्बन्ध मे आपका क्या विचार है और यह भी बताइये कि मुझे क्या करना है।

शायद वल्लभभाई और सर हेनरी क्रैक के बीच मे एक और मुलाकात हो। मुलाकात मेरे यहा भी हो सकती है और भूलाभाई और होम मेम्बर द्वारा निश्चित किये गये किसी आम स्थान पर भी। होम मेम्बर ने इच्छा प्रकट की है कि उमे वल्लभभाई के आगमन की सूचना दे दी जाय। इसलिए कल सुबह भूलाभाई उनसे बात करेंगे और यदि वल्लभभाई ने बातचीत करने की इच्छा प्रकट की तो बातचीत का समय निश्चित कर लेंगे।

आप होम मेम्बर को लिखें या न लिखें, इस असमजस के सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि जबतक मामला एक-न-एक प्रकार से तय नही हो जाता तबतक लिखने से कोई लाभ नही है। फिलहाल तो भूलाभाई के मुलाकाती रजिस्टर मे अपना नाम लिखने का प्रश्न ही नही उठता है, पर यदि दूसरा पक्ष निश्चित रूप से कहे कि एकमात्र यही अडचन है तो, जैसा कि मुझे बताया गया है, इस सम्बन्ध मे कोई कठिनाई नहीं होगी, परन्तु जब वातावरण मे परिवर्तन होगा तो ऐसी छोटी-छोटी बातो का महत्त्व बिलकुल जाता रहेगा।

मैं अपने इस विचार पर कायम हू और मित्रो के साथ बातचीत करने के बाद मेरा यह विचार और भी दृढ हो गया है कि प्रस्तावित शासन-विधान माण्टेग्यू सुधारो से गया-बीता नहीं है। उसे उससे भी बुरा और अत्याचारपूर्ण रूप दिया जा सकता है, पर साथ ही उसे अच्छा रूप देना भी सम्भव है। इसलिए मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप संधि का द्वार बन्द न करें। यदि आपके साथ समझौता न हुआ तब तो योजना रद्द हुई रखी है। पर उस समय तक के लिए दरवाजा खुला रखना क्या ठीक न रहेगा ?

अच्छा, तो अब मेरे जाने के सम्बन्ध मे क्या रहा ? गवर्नर के साथ बात करने के बाद मे तो मेरी जाने की इच्छा हो रही है, पर अन्तिम निश्चय तो आप ही करेंगे।

साम्प्रदायिक समझौते के बारे मे राजेन्द्रबाबू ने एक फार्मूला तैयार किया है, जिसे जिन्ना ने मान लिया है। इस फार्मूले का आधार सयुक्त निर्वाचन है। सीटें उतनी ही रहेंगी और वोट देने के अधिकार की व्यवस्था इस प्रकार रखी गई है, जिससे विभिन्न इलाको की दोनो जातियो के सख्या-सम्बन्धी परिमाण का ठीक-ठीक अन्दाज लगाया जा सके। वह मेरे साथ निकट सम्पर्क बनाये हुए हैं और मैंने उन्हे सलाह दी है कि बगाल के सम्बन्ध मे बातचीत करने के लिए कलकत्ता जाने के बजाय रामानन्द चटर्जी और जे० एन० बसु को यहीं बुला लिया जाय। बंगाल का वातावरण ठीक नहीं है, इसलिए दिल्ली को ही बातचीत का केन्द्र रखना ठीक है। पर असली अड़चन सिखो को लेकर होगी। पजाब तक के हिन्दुओ को राजी करना सम्भव है। पर काम कठिन अवश्य है। मुझे आशका है कि हमेशा की तरह इस बार भी मालवीयजी से सहायता नही मिलेगी।

यदि मैंने किसी मामले मे गलती कर दी हो तो कृपया भूल-सुधार कर दीजिये। मैं इस क्षेत्र मे नौसिखुआ हू, पर वैसे मैं आपके विचारो और तर्कबुद्धि से भली-भाति परिचित हूं।

विनीत
घनश्यामदास

मालवीयजी का इस बिल मे दिलचस्पी लेना स्वाभाविक ही था। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को दृष्टि मे रखते हुए मताधिकार के बारे में उनके अपने निश्चित विचार थे। अपने कट्टर हिन्दूपन और जात-पात के प्रति अनुराग के कारण उन्होने गाधीजी के हरिजन-आन्दोलन को पसन्द नही किया। उनके इन विचारो के कारण और भी दूसरी कठिनाइया सामने आई, जिनकी चर्चा मैंने महादेव देसाई के नाम गाधीजी के लिए भेजे गये अपने २७ फरवरी के पत्र में की :

"पडितजी आज विदा हो गये हैं। हस्बमामूल वह न तो घोर सम्प्रदायवादियों से सहमत हैं, न जिन्ना-राजेन्द्रप्रसाद-फार्मूला से। उन्होंने मुझे कई सुझाव बताये हैं, पर उनकी चर्चा करने से कोई लाभ नही है, क्योंकि मैं जानता हू कि अन्त में हमें कांग्रेस-लीग समझौते का आश्रय लेना ही पड़ेगा। अब तो यह बात निश्चित-सी होती जा रही है कि पडितजी इग्लैड जायगे। वास्तव मे बम्बई के लिए रवाना होने से पहले उन्होंने मुझे निश्चयात्मक रूप से बताया कि वह १५ मार्च को रवाना हो रहे हैं।

"मेरे ये दिन परेशानी मे कटे। पडितजी बराबर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की नीति वाली बात पर जोर देते रहे और कहते रहे कि मुझे पत्र को सोलह आने उन्हीं के हाथ मे छोड देना चाहिए। उन्होने तो यहा तक कहा कि यदि मुझे उनकी नीति पसन्द नही है तो मैं त्यागपत्र दे सकता हू। मैं उनका सुझाव स्वीकार करने मे

असमर्थ था, क्योंकि सवाल सिर्फ मेरे ही इस्तीफा देने का नहीं था; बल्कि पारसनाथ और देवदास दोनों ही मेरा अनुकरण करते, जिसके फलस्वरूप संकट आया ही रखा था। परिणामस्वरूप पत्र नष्ट हो जाता। अतएव मैंने निश्चयात्मक रूप से कहा 'नहीं', और बताया कि सारा मामला डाइरेक्टरों और शेयर होल्डरों के सामने पेश किया जाय। इससे पंडितजी कुछ समय तक क्षुब्ध रहे, पर अन्त में पत्र द्वारा तटस्थ नीति वरते जाने पर राजी हो गये। इस प्रकार अब 'हिन्दुस्तान टाइम्स' न पंडितजी के खिलाफ ही टीका-टिप्पणी करेगा, न पक्ष में ही। मेरी समझ में वर्तमान परिस्थिति में यही सबसे अच्छा उपाय रहा। मैंने बोर्ड से हटाकर उन्हें दु:खी नहीं करना चाहा।"

१२. संकट-काल

उधर ब्रिटिश पार्लामेंट में भारतीय शासन विधान मंथर गति से पास हो रहा था, इधर उसे लेकर भारत और इंग्लैंड में विचार-विमर्श का सिलसिला जारी था। यह सिलसिला बिल के पास हो जाने के बाद भी बना रहा। इस विचार-विमर्श के शुरू के दौर में आर्थर मूर ने मुझे बताया कि सी० एफ० एंड्रयूज के सम्बन्ध में उनके देशवासियों की धारणा कुछ विशेष अच्छी नहीं है। मेरी धारणा वैसी नहीं थी और मैं उनकी साधु प्रकृति और नेकनीयती पर तनिक भी सन्देह करने को तैयार नहीं था। पर उनमें ये गुण शायद उनकी बुद्धि की अपेक्षा अधिक परिमाण में थे, जिनके कारण वह अंग्रेजों की निगाह में व्यर्थ ही टांग अड़ाने वाले जंचने लगे थे। फलतः उन्हें मध्यस्थता के काम में सफलता प्राप्त नहीं हुई। एक बात और थी। उनका अपना चरित्र बहुत ही अच्छा था और उनके आधार पर उनका आत्मविश्वास क्षन्तव्य भी माना जाता, पर विचित्र बात यह थी कि वह दूसरे की छाया को छोड़कर अपना निजी अस्तित्व कायम रखने में असमर्थ थे। यही कारण था कि कभी उनमें गांधीजी के प्रति भक्ति की भावना जोर पकड़ती, कभी कवीन्द्र के प्रति उतनी ही प्रबल आसक्ति। रवीन्द्रबाबू को तो वह हमेशा 'गुरुदेव' के नाम से पुकारा करते थे।

वर्धा
१६-१२-३४

प्रिय घनश्यामदासजी,

मूर के साथ आपकी बातचीत के अत्यन्त रोचक वर्णन का पत्र प्राप्त हुआ।

सदर्थ धन्यवाद। आप जो कहते हैं सो तो ठीक है, परन्तु इस सन्देह का निवारण कैसे हो ? सी० एफ० ए० जैसे मध्यस्थो के द्वारा तो यह सम्भव नहीं है, क्योकि उनके सम्बन्ध मे उच्च पदस्थ व्यक्तियों की तुच्छ धारणा है। यह तो केवल उन्ही लोगों के द्वारा सम्भव है जो बापू को अच्छी तरह जानते हों और दूसरे पक्ष से भी भली-भाति परिचित हो और उनके विश्वासभाजन हो। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि जो लोग इस गणना मे आते हैं उनमे से अधिकाश भीरु हैं और उन्हें धमकाया या नीचा दिखाया जा सकता है।

सी० एफ० ए० दिल्ली होम सेक्रेटरी और होम मेम्बर से मिलने गये थे। वह दोनो से मिलने मे सफल हुए या एक से, पता नही। वह अपने स्वभावसिद्ध भ्रामक ढंग से तार भेजते हैं : "लम्बी मुलाकात हुई। आया, अच्छा ही हुआ। विवरण लिख रहा हू। अपने कार्यक्रम का तार भेजिये।" इसके बाद दूसरा तार आया, जिसमें उन्होंने कहा, "कल पहुंच रहा हू।" ऐसा मालूम होता है कि हमेशा की तरह इस बार भी वह कुछ नही कर सके हैं, परन्तु देखें। मैं आपको सूचना दे दूगा।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

जिस दिन महादेवभाई ने यह पत्र लिखा उस दिन मैं स्वय भी अपने नीचे लिखे पत्र मे भारत मंत्री के सामने भारतीय दृष्टिकोण पेश करने की चेष्टा कर रहा था ·

कलकत्ता
१६ दिसम्बर, १६३४

प्रिय सर सेम्युअल होर,

मैं यह पत्र सयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट को ध्यानपूर्वक पढने और कामस सभा में दी गई आपकी सुन्दर स्पीच का अवलोकन करने के बाद ही लिख रहा हूं।

मैं पत्र कुछ हिचकिचाहट के साथ लिख रहा हूं, क्योकि मैं जानता हू कि प्राय: मेरा और आपका दृष्टिकोण एक नही होता है। पर मैं आपका आदर करता हूं और जिन क्षेत्रों में आपके प्रयासो के गलत मानी लगाये जाते हैं उनमे उन्हें मैत्री-पूर्ण प्रकाश मे पेश करता हूं। इसलिए मैं अपने हृदय के भावो को आपके सामने रखने का अधिकार-सा समझने लगा हू और इस प्रेरणा को दबाना ठीक नही समझता हू।

मुझे रिपोर्ट के सम्बन्ध मे कुछ नही कहना है। आपने पार्लमेंट मे ठीक ही कहा है कि भारत मे उसके द्वारा इनेगिने आदमी संतुष्ट हुए हों तो हुए हों। इधर मेरे कानों में आपके वे शब्द गूंज रहे हैं जो आपने मेरी अंतिम मुलाकात के मौके पर कहे थे : "भारत-सचिव चाहे कितने ही उन्मूलक विचारों वाला हो, वर्तमान पार्लमेंट में वह एक खास पद तक ही आगे बढ सकता है।" मैं मानता हू कि वर्तमान पार्लमेंट में संयुक्त प्रवर समिति द्वारा की गई सिफारिशों से बहुत आगे बढना शायद सम्भव नही होगा, पर मैं तो स्थिति को बिलकुल दूसरे ही दृष्टिकोण मे देख रहा हूं।

जिस योजना की सिफारिश की गई है, मैं उसकी तुलना व्यापारिक फर्मों मे दिये जाने वाले मुख्तारनामों से करता हूं। हम लोग आवश्यकतानुसार अपने मैनेजरों और मातहतो को मुख्तारआम और मुख्तारखास के अधिकार देते हैं। हम वे अधिकार छीन भी सकते हैं और यदि उन पर से हमारा विश्वास उठ गया हो तो उन्हें बर्खास्त तक कर सकते हैं। पर मेरी फर्म में तथा और बहुत-सी फर्मों मे, इस प्रकार अधिकार छीनने और बर्खास्त करने के मौके शायद ही कभी आते हों। यह व्यवस्था बडी सफल सिद्ध हुई है, क्योकि मालिक मैनेजर पर विश्वास करता है और मैनेजर मालिक पर, और दोनो एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिए काम करते हैं। इसका अर्थ यह है कि पारस्परिक विश्वास और एक समान लक्ष्य मुख्तारनामे के विषय से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जहां तक हमारा सम्बन्ध है, मैं समझता हू कि हम सभी का लक्ष्य सोलह आने उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है। इस लक्ष्य की दिशा मे उठाया गया पहला कदम मामूली सुधार भी हो सकता है और भारी सुधार भी। पर अभीष्ट की सिद्धि के लिए जो चीज सबसे अधिक आवश्यक है, वह है पारस्परिक विश्वास, सद्भावना, सहानुभूति और पारस्परिक अवबोध। क्या हम कह सकते हैं कि ये इस समय भारत में मौजूद है? मैं किसी दल को दोष नही दे रहा हू, पर मेरे मन के भाव यही हैं कि चूकि सरकार शासक दल है, इसलिए उसी को वैसी अवस्था को जन्म देना है।

मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप इस घटनाक्रम के मनोविज्ञान का विश्लेषण करें, क्योकि योजना मे संशोधन करने के बजाय उसके रद्द किये जाने की जो बात सुनाई पड रही है, उसका कारण उसकी त्रुटिया नही, बल्कि यह घटनाक्रम ही है।

गांधी-अरविन पैक्ट ने स्वीकार किया था कि

१. केन्द्र उत्तरदायित्वपूर्ण हो।

२. संघ सरकार बने।

३. जो आरक्षण और अभिरक्षण हो वे स्पष्टतया ही भारत के हित मे हों।

यह स्पष्ट है कि पैक्ट पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियो के द्वारा यह बात

मान ली गई थी कि अन्तिम लक्ष्य चाहे जो हो, अतरिम समय के लिए उनका रहना जरूरी है। जो लोग स्वतन्त्रता की बात करते थे—और इस शब्द के भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते थे—वे भी आरक्षणो को अंतरिम समय के लिए पूर्ण और सोलहो आने उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार वाले अन्तिम लक्ष्य का विरोधी नही समझते थे। क्या इसका कारण यह नही था कि इस समय जिस वैयक्तिक नाते का अभाव है, वह उस गाधी-अरविन पैक्ट मे मौजूद था ? आपने साझेदारी की भावना पर जोर दिया सो ठीक ही किया, पर जबतक वह पारस्परिक सम्पर्क स्थापित नही होता जिसके द्वारा दोनो मे पारस्परिक अवबोध और विश्वास हो सकता है तबतक उस साझेदारी को प्रकृत रूप कैसे दिया जा सकता है ? क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि प्रगति की मात्रा नही, उसका ढग ही असली चीज है ? माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारो को एक दुर्भाग्यपूर्ण वातावरण मे अमल मे लाया गया था और मुझे आशा है कि उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जायगी।

यह न जानते हुए भी कि आपकी निगाह मे मेरी क्या साख है, मैंने यह सब इसलिए लिखने का साहस किया कि मैं दोनो देशो के बीच मैत्री और शान्ति का सम्बन्ध स्थापित होते देखना चाहता हू, और इस दिशा मे विनम्र ढग से बराबर काम भी करता जा रहा हू।

सदाकाक्षाओ के साथ,

मैं हू
आपका
जी० डी० बिड़ला

साथ ही मैंने बगाल के गवर्नर से भी भेंट की, जिसका विवरण मैंने बापू की जानकारी के लिए महादेव देसाई के नाम अपने इस पत्र मे दिया :

कलकत्ता
१८ दिसम्बर, १९३४

प्रिय महादेव भाई,

मूर से मिलने के बाद मैं गवर्नर से मिला और उसी विषय पर चर्चा की। वह मुझसे सहमत तो हुए, पर साथ ही उन्होने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा, "आप वाइसराय से क्यो नही मिलते ?" मैंने कहा, "वाइसराय के लिए तो मैं अछूत जैसा हू।" इस पर वह बोले, "आप गत वर्ष तो मिले थे ?" मैंने कहा, "नही।" मैंने उनसे कहा कि मैं वाइसराय से तभी मिल सकता हू जब इस विषय पर बात करने का उनकी ओर से बढ़ावा मिले, पर यदि वह समझें कि मैं ख्वाम-ख्वाह टाग अडाता फिरता हू और अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करना चाहता हूं, तो

मेरा जाना ठीक नही है। उन्होंने कहा कि यदि वाइसराय समझेंगे कि आप गांधी के दूत बनकर आये हैं तो उन्हें बातचीत करने मे हिचकिचाहट होगी। मैंने उत्तर दिया, "मैं किसी का दूत नहीं हू, और जहा तक मुझे मालूम है, गांधीजी ने किसी को अपना दूत नियुक्त नही किया है।" उन्होने मेरी नेकनीयती मे पूरा विश्वास प्रकट करते हुए कहा, "वाइसराय से बात करके देखूगा और यदि उनसे भेंट करने मे कोई लाभ दिखाई देगा तो आपको लिखूगा।" उन्होने मुझसे पूछा, "अभी कलकत्ते में ही रहेंगे ?" मैंने उत्तर दिया, "हा" मेरी धारणा है कि सी० एफ० ए० का उनसे मिलना निरर्थक होगा। कहना तो यह चाहिए कि वह बना-बनाया खेल बिगाड देंगे।

मैं इन लोगो के साथ घनिष्ठता बढ़ाना चाहता हू, जिससे बापू का प्रतिनिधित्व अच्छी तरह किया जा सके। ऐसा किया भी जा सकता था, पर इसके लिए अनुकूल अवसर दिखाई नही देता है। यदि मैं व्यवस्थापिका सभा में होता तो बात दूसरी होती। पर इस समय तो मैं अपने निजी ढग से काम कर रहा हूं और स्थिति को अपने ही ढंग से चलने देना चाहता हूं।

एक सप्ताह-भर सोच मे पड़े रहने के बाद मैंने कल यह निश्चय किया कि मैं इसी ढंग से सेम्युअल होर को भी लिखू। मैं समझता हूं कि मौजूदा हालत मे सरकार के लिए यह सम्भव नहीं कि वह बापू के साथ विधान-सम्बन्धी मामलो पर बातचीत शुरू करे और इसलिए मैं इस बात पर जोर नही दे रहा हूं। मैं तो केवल इस बात पर ओर दे रहा हूं कि वे लोग बापू को समझें और उनके व्यक्तिगत संपर्क मे आवें। मेरे विचार मे ऐसा करने से बाकी सब गुत्थियां अपने-आप सुलझ जायगी। बापू और सरकार के बीच केवल बापू ही मध्यस्थ बन सकते हैं।

संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट में कुछ नही रखा है। उसकी सिफारिशो का मतलब केवल इतना ही है कि स्वामी अपने नौकर को ऐसे अधिकार सौंपे जो इच्छानुसार छीने जा सकें। पर यदि सरकार और बापू के बीच उचित समझौता हो जाय तो यह बात भी हमें स्वराज्य के निकट ले जा सकती है और कुछ समय के बाद बेहतर विधान प्राप्त करने में हमारी सहायक हो सकती है। इसलिए बापू जिसे हृदय-परिवर्तन कहते हैं, उसे मैं वैधानिक मामले की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता हूं।

मैंने बड़े विश्वस्त सूत्र से सुना है कि वाइसराय भवन में यह बड़ी जबर्दस्त धारणा है कि बापू गांवो मे यह सारा संगठन-कार्य इसीलिए चालू कर रहे हैं कि बाद मे सविनय अवज्ञा के आन्दोलन में गावों के लोगों को भी सम्मिलित कर सकें।

मुझे यह जानकर खुशी हुई है कि बापू केवल मेरी खातिर नहीं आ रहे हैं। यदि ऐसा होता तो मुझे बडा संकोच होता। अब कुछ दिन उनके संसर्ग का आनन्द

लेने की आशा है; पर क्या लोग उन्हें शाति से रहने देंगे ?

आपका
घनश्यामदास

राजाजी को भ्रम हो गया कि मैं बीमार हूं उन्होने मुझे मेरे स्वास्थ्य के बारे मे एक पत्र लिखा और मैंने निम्नलिखित उत्तर दिया :

कलकत्ता
२० सितम्बर, १६३४

प्रिय राजाजी,

आपके पत्र के लिए धन्यवाद।

मैं थोडे या बहुत समय के लिए खाट पर बिलकुल नही पडा। हा, तीन-चार दिन तक आराम जरूर किया, पर मुझे अपने घर मे घूमने-फिरने की पूरी आजादी थी। मुझे आफिस या कलकत्ते के बाहर नही जाने दिया गया, क्योकि डाक्टरो को भय था कि कोई रोग न घेर ले।

आपके दिल्ली जाने की खबर सुनी और सयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट पर आपकी प्रेस मुलाकात भी पढी। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आपने उसे वर्तमान शासन-व्यवस्था से भी गया-बीता बताया। मैं तो समझे बैठा था कि हम दोनो इस मामले में सहमत हैं कि उसकी सारी बुराइयो को ध्यान मे रखते हुए भी वह वर्तमान शासन-व्यवस्था से बुरी नही है। हो सकता है, आपकी स्पीच की गलत रिपोर्ट ली गई हो। मेरी अपनी राय तो यह है कि इस समय जिस चीज की सबमे अधिक आवश्यकता है, और जो सम्भव भी है, वह वैधानिक परिवर्तन नही, बल्कि वर्तमान वातावरण मे परिवर्तन है। यदि दोनों ओर का वातावरण मैत्रीपूर्ण हो और ब्रिटेन की ओर से सद्भावना प्रकट की जाय तो असतोषजनक होते हुए भी वर्तमान शासन-व्यवस्था अच्छी तरह अमल मे लाई जा सकती है। पर यदि वातावरण मे सुधार नही हुआ तो इससे भी अच्छी शासन-व्यवस्था को अमल मे नही लाया जा सकता। अतएव मैं तो इस बात को अपेक्षा कि कितनी प्रगति हुई, वातावरण को अधिक महत्त्व देता हू।

अगाथा का कहना है कि आपको लंदन जाना चाहिए। स्वय मेरी राय भी यही है कि अच्छे-से-अच्छे इरादे लेकर इधर-उधर फिरने और कुछ हासिल न कर सकने वाले श्री एण्ड्रयूज की अपेक्षा आपका और वल्लभभाई का लदन जाना कही अच्छा रहेगा। इस समय श्री एण्ड्रयूज मेरे पास ही हैं, और वाइसराय से मिल रहे हैं। वाइसराय से मिलने के लिए भूलाभाई सबसे उपयुक्त हैं, और अब तो उन्हे वैधानिक मर्यादा भी प्राप्त है, इसलिए उनके जाने से कुछ लाभ भी निकलेगा।

आशा है, लक्ष्मी और बच्ची दोनो सकुशल हैं। देवदास भी एक दूसरे तुषार-

कान्ति होते जा रहे हैं, जो दिन-भर 'पत्रिका' के लिए परिश्रम करते हैं और रात को उसके स्वप्न देखते हैं।

आपका
घनश्यामदास

सर सेम्युअल का उत्तर नये वर्ष के बिलकुल शुरू मे आया। उस पर ४ जनवरी १६३५ की तारीख पड़ी हुई है :

(निजी)

प्रिय श्री बिड़ला,

मुझे फिर से आपका पत्र पाकर खुशी हुई। मेरे भाषण के बारे मे आपने जो कुछ लिखा है उसके लिए अनेक धन्यवाद। विधान के सवाल पर आपकी और मेरी राय एक नही है। फिर भी यह अच्छी बात है कि हम एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझ लें। यह तो स्पष्ट ही है कि आपके विचार मे सरक्षणो की बात प्रमुख है। यहां हम लोगों को बडी बात यह मालूम देती है कि स्वराज्य का क्षेत्र कितना विस्तीर्ण हो रहा है। कठिनाई की—बहुत बड़ी कठिनाई की—बात यह है कि लोगो को यह कैसे समझाया जाय कि संरक्षण काफी ठोस है। और वे सचमुच के संरक्षण हैं, केवल कागजी नही। यहा कुछ आदमी ऐसे हैं, जो यह मानने को कभी तैयार न होंगे, पर मैं समझता हूं कि ऐसे समझदार लोगो की संख्या अब बहुत अधिक हो गई है जो इस बात पर विश्वास करने लगे हैं। ये वे लोग है जो सारी समस्या पर गम्भीरता के साथ विचार करते हैं और इस बात के लिए उत्सुक हैं कि भारत के साथ उचित व्यवहार किया जाय। हमारी चेष्टाओं के फलस्वरूप आजकल यहा जो लोकमत तैयार हुआ है, उसे अभी पिछले दिनो हमारे एक चोटी के राजनैतिक लेखक ने इन शब्दो मे व्यक्त किया : "जहा एक ओर हमने स्वतन्त्र संस्थाएं प्रदान की हैं, वहां संरक्षणों के रूप मे भारत मे ब्रिटिश राज्य-सम्बन्धी एक नई भावना की रूपरेखा तैयार हो रही है। हम आजादी देने के साथ-ही-साथ उसके खतरो का बीमा भी कर रहे है।" मुझे उम्मीद है कि आप व्यापारिक भाषा मे व्यक्त किये गए, इन अंतिम शब्दों को पसन्द करेंगे। मैं चाहता हूं कि आप और आपके मित्र इस मामले को इसी दृष्टिकोण से देखें। यहा की आम भावना सोच-समझकर काम करने की है। आप शायद इसे सतर्कता कहेंगे, किन्तु निश्चय ही इसमें अनुदारता की भावना का समावेश नही है। यह बात भारत के कुछ लोग नही समझ रहे हैं, लेकिन मुझे अब भी उम्मीद है कि यह सबकुछ आपको जैसा प्रतीत हो रहा है, अन्त मे वह उससे अच्छा सिद्ध होगा।

आपका
सेम्युअल होर

इस पत्र को पाते ही मैंने फिर लिखा :

१६ जनवरी, १६३५

प्रिय सर सेम्युअल होर,

आपके ४ जनवरी के पत्र के लिए धन्यवाद। मुझे ऐसा लगता है कि अपने पिछले पत्र मे मैं अपने को पूरी तरह स्पष्ट नही कर पाया, नही तो आप यह न कहते कि मेरे चित्त मे सरक्षण की बात ही सबसे मुख्य है। मैं सरक्षणो से बिलकुल भयभीत नही हू। भारत के हित मे भी कुछ-न-कुछ संरक्षण की तो आवश्यकता होगी ही, पर मैं यह नही कह सकता कि रिपोर्ट मे जिन सरक्षणों की व्यवस्था की गई है वे भारत के लिए हितकर हैं। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट मे इसका कोई भी उल्लेख नही है कि अन्तिम लक्ष्य की ओर अगला कदम क्या होगा। यह कोई साधारण त्रुटि नही है। फिर भी मैं जानता हू—और मैंने अपने पिछले पत्र मे भी माना था—कि आपकी अपनी कठिनाइया है। मैं यह भी मानता हू कि अब जब कि पासा फेंका जा चुका है, मेरा आपसे यह कहना कि आप अपनी योजनाओ मे भारतवासियो के मत के अनुकूल परिवर्तन कर दें, शायद तथ्य की ओर से आखें बन्द करने के समान होगा। इसलिए अपने पिछले पत्र में मैंने आपसे जो बात कहनी चाही थी वह यह थी कि सरक्षणो का रूप चाहे कुछ भी हो, उनके पीछे यदि सच्ची सहानुभूति और सद्भावना होगी तो उनसे प्रगति मे बाधा नहीं पड़ेगी। मैं आपका यह कथन स्वीकार करने को तैयार हू कि योजना मे अनुदारता की नही, बल्कि सोच-समझकर काम करने की भावना है। पर क्या आप यह नहीं चाहेगे कि भारतवर्ष के सभी अच्छे व्यक्ति आपसे सहमत हो और वह उठें, "विधान वैसा तो नही है जैसा हम चाहते हैं, फिर भी निर्माण के उद्देश्य को सामने रखकर हम इसे पूरी ईमानदारी के साथ चलाने की चेष्टा करेंगे, क्योंकि लिखित रूप मे जिस वस्तु का अभाव रह गया है उसकी पूर्ति भावना के द्वारा हो जायगी।" मैं चाहता हू कि आपके शासन-कार्य मे जो नये साझी बनने वाले हैं (अर्थात् भारतवासी) उन्हे उनके ब्रिटिश साझी स्वय यह विश्वास दिलावें कि वे भारत के साथ न्याय करना चाहते हैं और इस मामले में उदारता की कमी नही है। मैं ये बातें अनिश्चित विचारो वाले लोगो की तरह नही लिख रहा हू, बल्कि एक ऐसे व्यवहारी कामकाजी व्यक्ति की हैसियत से लिख रहा हू, जिसे इस बात का विश्वास है कि सद्भावना मौजूद रहेगी तो यह काम पूरा हो सकता है और अवश्य पूरा होना चाहिए। कभी-कभी तो मैं यह महसूस करता हू कि मैं लन्दन जाकर और आपसे मिलकर आपसे भी अपना यह दृष्टिकोण मनवाऊ कि पारस्परिक सद्भावना से बुरे सरक्षण भी खतरो के लिए बीमे का काम कर सकते हैं, जबकि मानवीय भावनाओ के अभाव में अच्छे सरक्षण भी शाति और सहज कार्य-सचालन के मार्ग मे बाधक सिद्ध होंगे।

मैंने यह सबकुछ आपके पिछले पत्र की स्पष्टवादिता से प्रोत्साहित होकर ही लिखा है और मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि मित्रता की भावना उत्पन्न करने के लिए आप जो भी कदम उठायेंगे, उसमे आपको मेरा पूरा सहयोग मिलेगा। इस भावना का भारतवर्ष के आजकल के वातावरण मे अभाव-सा है। भाग्य ने दोनो देशो को एक साथ बाध दिया है, इसलिए यह भावना नितान्त आवश्यक है।

आपका
जी० डी० बिड़ला

पिछले अध्याय मे मैंने होम मेम्बर सर हैनरी क्रेक के साथ ३० जून सन् १९३५ को की गई अपनी मुलाकात की चर्चा की थी। इस बात का दृष्टात देने के लिए कि व्यक्तिगत सम्पर्क के महत्त्व मे मेरा कितना दृढ विश्वास रहा है और किस प्रकार मैं हर सम्भव अवसर पर इसकी आवश्यकता पर जोर देता रहता हू, मैं उक्त मुलाकात का विवरण कुछ विस्तार के साथ देना पसन्द करूंगा ·

"आदमी ६० वर्ष के लगभग है। शक्ल-सूरत से निश्चल और ईमानदार दिखाई दिये। आरम्भ ही मे भेंट करने को आने के लिए धन्यवाद दिया। बोले कि उन्हें वाइसराय से पता चला है कि मेरा उन लोगो से मतभेद है, जिनके विचार मे प्रस्तावित सुधार माटेग्यू सुधारो से भी गये-बीते है। मैंने कहा, "सो तो है, पर मेरी सम्मति अमर्यादित नही है। मैंने तो वाइसराय से कहा भी था कि मैं अबतक जिन लोगों से मिला हूं उनमे से एक भी तो ऐसा नही है, जिसका यह विचार न हो कि प्रस्तावित सुधार माटेग्यू-सुधारो से भी गये-बीते हैं, और यदि मेरा इन लोगो से मतभेद है तो केवल मेरी इस धारणा के कारण कि यदि दोनो पक्षों ने सद्भावना और सहानुभूति का परिचय दिया तो इन प्रस्तावित सुधारो के द्वारा हम अपने लक्ष्य-स्थान तक पहुच सकते है।" मैंने कहा, "मैं तो रिपोर्ट को जाचने की कसौटी उसकी सामग्री को नही, बल्कि उसे जिसे नीयत के साथ कार्यान्वित किया जायगा, उसे मानूगा। यदि ब्रिटेन ने नेकनीयती से काम नही लिया तो सरक्षण मार्ग के रोड़े-मात्र सिद्ध होंगे, और यदि नेकनीयती और सहानुभूति के दर्शन हुए तो यही संरक्षण खतरे का बीमा सिद्ध होगे।" उन्होने कहा, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि हार्दिक सहानुभूति और नेकनीयती मौजूद है। मैं चर्चिल और उसके अनुयायियो की तो बात नही कहता, पर अनुदार दल में युवक समाज काफी सख्या मे है और उन लोगो की सहानुभूति वास्तविक है। वे अनुभव कर रहे हैं कि वे भारी अधिकारो का त्याग कर रहे है। सरक्षण केवल जोखिम के अवसर के लिए है, और मैं तो नही समझता कि उन्हे कभी काम मे लाया जायगा। यदि भारत ने इन्कार किया तो इससे बड़ी गलती दूसरी नही होगी। इसमे संदेह नही कि योजना का

असन्तोषजनक पहलू भी है। हमे तो वह तक नही मिला जो हम—अर्थात् सरकार—चाहती थी। अंग्रेज लोग कांग्रेसियों के उद्गारों से सशंकित हो उठे थे, इसीलिए इन सरक्षणो का जन्म हुआ। पर आप श्री गांधी को आश्वासन दीजिए कि हम हृदय से भारत की भलाई करना और श्री गाधी का सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं।" मैंने उत्तर दिया, "मैं आपका आश्वासन स्वीकार करने को तैयार हूं और यह भी मानने को तैयार हूं कि आप सब लोग सहानुभूति रखते हैं और भलाई करना चाहते है। पर जब मैं गांधीजी के चरणो मे जाकर बैठता हूं तो देखता हू कि वह भी देश के कल्याण के लिए सहयोग करने को अत्यन्त उत्सुक हैं। जब मैं देखता हूं कि यहां भी मेल-मिलाप की इच्छा है, और वहां भी वैसी ही इच्छा है, पर तो भी खाई बदस्तूर है तो मेरा आश्चर्य-चकित होना स्वाभाविक ही है। यदि आप गाधीजी की ओर मैत्री का हाथ नही बढ़ा सकते हैं तो आपकी मेल-मिलाप सम्बन्धी अभिलाषा में कोई-न-कोई त्रुटि अवश्य है।" उन्होने उत्तर दिया, "आपकी बात मेरी समझ मे नही आई। क्या आप यह चाहते हैं कि वाइसराय श्री गाधी से मिलें ? हिज एक्सीलेन्सी उनसे मिलना तो चाहते हैं, पर व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो ने बहिष्कार करके नई जटिलताए उत्पन्न करदी हैं। यदि आप इस सम्बन्ध मे कुछ कर सकें तो बडी बात हो, क्योकि उससे सहायता मिलेगी।" मैंने कहा, "इसके लिए आपको भूलाभाई से बात करनी चाहिए, परन्तु व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो के सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष निकालने से पहले आप इस बात की ओर ध्यान न देकर कि उन्होने क्या किया है, इस बात की ओर ध्यान दें कि उन्होने क्या कुछ नही किया है।" और मैंने बताया कि किस प्रकार व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो ने वाइसराय की स्पीच के समय मौजूद न रहने का निश्चय किया था। वह काफी प्रभावित हुए।

"मैंने कहा, "गाधीजी की न्यायप्रियता का एक और उदाहरण लीजिए। उन्होने जान-बूझकर ६-१/४ प्रतिशत की छाट मजूर कर ली, जिससे पता चलता है कि समझौते और रचनात्मक कार्य में उनका कितना विश्वास है। सर हैनरी क्रेक, आप जैसे आदमी के सम्बन्ध मे, जिसने हजारो आदमियो की खोपड़ियां तोड़ दी है और जिसने आर्डिनेन्स जारी किये हैं, पिस्तौल और तलवार हाथ मे लेकर चलने की कल्पना आसानी से की जा सकती है। पर जब मैं आपसे मिलता और बात करता हूं तो आपको स्पष्टवादी और ईमानदार आदमी पाता हूं। आप गांधीजी और उनका अनुसरण करने वालों के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार की बातें सुनते रहते हैं और उनके सम्बन्ध में आपके मन पर सदेह के बादल छाये रहते होंगे। आप यह भूल जाते हैं कि मनुष्य मनुष्य ही है, उसके पास हृदय है, और उसमे भाव उठते हैं। क्या आपने कभी गाधीजी के हृदय को स्पर्श करने की चेष्टा की है ?" उन्होंने कहा, "हा, मैं मानता हू कि यह सबकुछ बडे परिताप का विषय है, पर

आप मुझे यह बताइये कि सुधारो के सम्बन्ध मे श्री गाधी के क्या विचार हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उन्होने अभी रिपोर्ट पढी तक नही है और यह उनके अनुरूप ही हैं। वह बड़ी-बड़ी चीजो को साधारण-सी घटनाओ से जाचते है। यदि उन्हें छोटी-छोटी चीजो मे उदारता के दर्शन नही हुए तो वह स्वगत कहेंगे, "रिपोर्ट मे भी उदारता के दर्शन होने की क्या आशा है ?" पर मैं उनकी विचारधारा के सम्बन्ध मे एक बात कह दू। उनके पास लोग-बाग आते है और कहते हैं कि प्रस्तावित सुधार माटेग्यू-सुधारो से भी गये-बीते है और वह उनकी बात का अनुमोदन करते हैं। और जब मैं उनसे कहता हू कि यदि दोनो ओर सहानुभूति और सदाकाक्षा प्रचुर मात्रा में मौजूद रहे तो आयोजित योजना को व्यवहार मे लाया जा सकता है, तो वह मेरी बात का भी अनुमोदन करते हैं, और उनके इस रवैये मे किसी प्रकार का विरोधाभास भी नही है। वह अपना दृष्टिकोण इस प्रकार समझाते हैं : 'जब माटेग्यू ने अपने सुधारो का श्रीगणेश किया था तो कम-से-कम कुछ लोगो को अपना विश्वास-भाजन अवश्य बना लिया था, और उसे उनका समर्थन भी प्राप्त हुआ था। इससे पता चलता था कि उसने भारतीय जनमत को अपने साथ लेने की दिल से कोशिश की। पर इस प्रस्तावित योजना के लिए सरकार के साथ जनता का कोई भी वर्ग नही है। इससे पता चलता है कि सरकार को इसकी कोई चिन्ता नही है कि उसे जनता का विश्वास प्राप्त होगा या नही। इस प्रकार प्रस्तावित सुधार माटेग्यू-सुधारो से भी गये-बीते सिद्ध हो रहे है।' आप साझेदारी की बात तो करते है, पर जो लोग आपके साथ साझे मे आने वाले हैं उनके साथ आप किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना नहीं चाहते। इससे सदाकाक्षा या सहानुभूति कैसे प्रमाणित होगी ? यदि आप यह प्रमाणित कर सकें कि सदाकाक्षा और सहानुभूति तो मौजूद है, पर परिस्थिति ही ऐसी है कि आप आगे कदम नही बढा सकते तो गाधीजी समस्या का हल ढूं निकालेंगे और आपकी ओर सहायता का हाथ बढायेंगे। तब वह इन सुधारो को वर्तमान शासन-विधान के मुकाबिले में अच्छा समझकर ग्रहण कर लेंगे। एक बार गाधीजी से स्वराज्य की परिभाषा करने को कहा गया तो उन्होंने उसकी कोई कानूनी परिभाषा करने के बजाय दस या चौदह मुद्दे रखे और उन्हे स्वराज्य का प्रतीक बताया। आपको गाधीजी की विचार-शैली का पता इसी से चल जायगा।' उन्हो कहा, "इससे पता चलता है कि गाधीजी व्यावहारिक आदमी नही हैं।" मैंने उत्त दिया, 'न, इससे पता चलता है कि गाधीजी सबसे अधिक व्यावहारिक आदमी और जो लोग व्यावहारिक आदमी नही होते, वे लकीर के फकीर बनकर चलते हैं गाधीजी बिलकुल भिन्न हैं, और मैं एक व्यवसायी की हैसियत से कह सकता कि यदि सदाकाक्षा और सहानुभूति उपस्थित रही तो इन प्रस्तावित सुधारो त की सहायता से लक्ष्य-स्थान तक पहुंचा जा सकता है।"

"उनकी समझ में तुरन्त ही आ गया कि उन्होंने गांधीजी को अव्यावहारिक बताकर गलती की। मैंने कहना जारी रखा, 'गांधीजी के आगमन से पहले लोगों की राजनैतिक दीक्षा विध्वंसात्मक प्रणाली में हुई थी। हमें यह सोचना बताया गया था कि राजनीति का अर्थ है सरकार की विध्वंसात्मक आलोचना करना। गांधीजी ने एक नई भावना प्रदान की। उन्होंने कहा, कातो और बुनो। अस्पृश्यता का निवारण करो, अल्पसंख्यक जातियों के साथ मेल करो,' इत्यादि-इत्यादि। जनता के सामने पहली बार रचनात्मक पहलू रखा गया। पर हमने अभीतक सरकार की प्रशंसा करना नहीं सीखा है, क्योंकि आप लोगों ने हमें अभीतक इसका मौका ही नहीं दिया। जो हो, इस प्रकार की शिक्षा बड़ी खतरनाक है। एक खास वर्ग धीरे-धीरे बढ़ रहा है, जिसका विश्वास है कि वैधानिक उपायों से अच्छी-से-अच्छी चीज भी प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उस वर्ग की धारणा है कि वैधानिक उपायों से प्राप्त किया गया स्वराज्य भी स्वराज्य नहीं है। उनके निकट स्वराज्य से भी अधिक शान्ति का महत्त्व है। यह वर्ग विभिन्न श्रेणियों और सरकार के खिलाफ घृणा का प्रचार जारी रखेगा, सरकार चाहे विदेशी हो चाहे देशी[1] गांधीजी इस मनोवृत्ति के खिलाफ लड़ रहे हैं। वह हरएक कदम पर कटुता से बचना चाहते हैं। हिंसा के द्वारा प्राप्त किये गये स्वराज्य का उनके निकट कोई उपयोग नहीं है। वह तो अहिंसा को स्वराज्य से भी अधिक महत्त्व देते हैं। उनके निकटतम सहकारी उनकी नीति में आस्था रखते हैं। पर गांधीजी कितने दिन जीवित रहेंगे? यह अतीव आवश्यक है कि उनके जीवन-काल में ही ऐसा समझौता हो जाय जिसके द्वारा जनता और सरकार एक-दूसरे के निकटतम आ जाय। इस प्रकार एक दूसरे प्रकार की शिक्षा का प्रारम्भ हो जाय, जिसके द्वारा लोग यह जानना सीखेंगे कि सरकार उन्हीं की संस्था है, इसलिए उसका विध्वंस नहीं, सुधार करना चाहिए। यदि शिक्षा-प्रणाली में तुरन्त ही परिवर्तन नहीं किया गया तो बड़ा भारी अहित होगा। रक्तपातपूर्ण शान्ति अनिवार्य हो जायगी, और यह न केवल भारत के लिए ही, बल्कि इंग्लैंड के लिए भी घोर दुर्भाग्य की बात होगी। अनुदार दलवाले कह सकते हैं कि यह भारत का जनाजा होगा, मैं तो कहूंगा कि यह दोनों का जनाजा होगा। अकेले गांधीजी ही ऐसे व्यक्ति हैं जो न्यायपूर्ण बात के लिए अड़ सकते हैं, चाहे इससे उनकी बदनामी ही क्यों न होती हो।'

"उन्होंने कहा, "इसमें संदेह नहीं कि श्री गांधी साहस में अपना सानी नहीं रखते हैं। उनकी नेकनीयती में मुझे बिलकुल संदेह नहीं है और मैं यह स्वीकार करता हूं कि उन्होंने साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रवाह को रोक दिया है। परन्तु मान

---

[1] बाद की घटनाओं ने इस कथन की सचाई को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया।

लिया कि हम लोग श्री गांधी को अपनी नेकनीयती का विश्वास दिला सकें और उनके साथ किसी प्रकार का समझौता भी हो जाय, पर क्या देश उनकी बात मान लेगा ?" मैंने कहा, "हां, मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है। और उनमे अन्याय का प्रतिरोध करने की क्षमता है, चाहे वह अन्याय स्वयं उन्ही के आदमियों ने किया हो।" उन्होंने कहा, "मेरे पास तो काग्रेसियों का मापदण्ड समाचार-पत्र हैं, जो कि आजकल बहुत ही खराब हैं।" मैंने कहा, "हम लोग एक दुष्ट चक्र में घूम रहे हैं। अविश्वास से अविश्वास उत्पन्न होता है। आपने अविश्वास का वातावरण उत्पन्न करके यह साबित कर दिया है कि आप इस समय जिस साझेदारी की बात करते नही अघाते हैं वह तबतक मक्कारी समझी जाती रहेगी जबतक आप अपने साझियो से मिलने को तैयार नही होंगे।" वह बोले, "आप श्री गाधी को आश्वासन दीजिये कि वह हम सबको बहुत भाते हैं और हम उन्हें सहयोग देने को तैयार है।" मैंने उत्तर दिया, "मेरे सदेश पहुंचाने से क्या लाभ, जब आपको उनके सम्पर्क में आने में सकोच है !" उन्होंने पूछा, "आप यह सपर्क अभी चाहते हैं या बिल पास होने के बाद ?" मैंने कहा, "देर करने से क्या लाभ ? हम दूसरे ढंग से जनता के शिक्षण का कार्य जितनी जल्दी आरम्भ करें, हम सबके लिए उतना ही अच्छा है।" उन्होंने कहा, "सच बात तो यह है कि मुझे उनसे मिलते डर लगता है। मेरा छोटा-सा दिमाग है और मैं सीधा-सादा आदमी हू। सम्भव है, वह मेरे बूते से अधिक सिद्ध हो।" मैंने कहा, "मुझे यह जानकर दु ख हुआ। जब आप खुद ही स्वीकार करते है कि वह निष्कपट और ईमानदार आदमी हैं तो आपको तो उनकी शक्ति अपनी ओर करके प्रसन्न होना चाहिए।" मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि गांधीजी को उनके जैसा स्पष्टवादी और ईमानदार आदमी बहुत ही अच्छा लगेगा। उन्होंने पूछा, "क्या आपका सचमुच विश्वास है कि मेरे जैसा आदमी उन्हें भायेगा ?" मैंने कहा, "हा, क्योकि मैने आपको दिल का साफ आदमी पाया है।" उन्होने कहा, "मेरी बात पर विश्वास करिए, मैंने भारत में ३२ वर्ष बिताये हैं, और मैं अपने-आपको एक भारतवासी कहता हूं। मैंने भारतीय भावनाओ और आकाक्षाओ का पक्ष लिया है और लेता रहूंगा। मैं नही कह सकता कि मैं ईमानदार हू या नही, पर इतना तो मैं कह ही सकता हूं कि मैंने हमेशा स्पष्टवादी और ईमानदार होने की चेष्टा की है। आप जो-कुछ कहते हैं, मैं उस पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार करूंगा, और आप श्री गाधी को यह बता दीजिये कि हम लोग प्रस्तावित शासन-विधान से कही अच्छा शासन-विधान चाहते थे। हम लोगो ने संघर्ष किया, होर ने संघर्ष किया। पर चर्चिल के दलवालों की ओर से जो कठिनाइया पेश की जा रही है वे वास्तविक हैं और उनकी उपेक्षा नही की जा सकती है। अनुदार दल का युवा समाज भारत की भलाई करने को सचमुच उत्सुक है। हम सबकी सहानुभूति मौजूद है, नेकनीयती

भी मौजूद है। आप यह न समझिये कि मजदूर दलवाले आपको कुछ दे देंगे।"

"इसके बाद हमने वल्लभभाई की चर्चा की। उन्होंने उनसे मिलने की उत्सुकता प्रकट की। मैंने अपने यहा ६ तारीख को सध्या के ५ बजे मुलाकात का आयोजन किया है।

"मैं अपनी धारणा के आधार पर कह सकता हूं कि ये लोग वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने को बड़े उत्सुक हैं, पर साथ ही हिचकिचा भी रहे हैं। उन्होंने देख लिया है कि देश उनके साथ नही है। उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि गांधीजी मे साहस है, ईमानदारी है और यदि विधान पर कोई आदमी समझौता कर सकता है तो अकेले वही कर सकते है। इससे उनमे एक नई आशा जाग्रत हो गई है। मैं समझता हू इन लोगों का दिमाग ठीक दिशा में काम कर रहा है।"

१३. हिन्दू और मुसलमान

३० जनवरी, १९३५ को सर सेम्युअल होर ने फिर लिखा

व्यक्तिगत

इडिया आफिस
ह्वाइट हाल
३० जनवरी, १९३५

प्रिय श्री बिडला,

आपके १९ जनवरी के एक और पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। उसमे जो उद्गार व्यक्त किये गए हैं उन्हें पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। भारत को हमारी वास्तविक सदाकाक्षा का विश्वास दिलाना कठिन कार्य अवश्य दिखाई देता है। मुझे विश्वास है कि उसका प्रचुर भण्डार है। जो लोग हमारी वर्तमान नीति का विरोध कर रहे हैं, उनमे से अधिकाश लोग भी सदाकाक्षा की भावना से ही प्रेरित हैं। हा, उनका अपना दृष्टिकोण अवश्य है। दूसरे शब्दो में उन्हें भारत के जनसाधारण के मगल की हृदय से चिन्ता है, और वे हमारे सुझावो का विरोध इसलिए करते हैं कि उनका सचमुच यह विश्वास है कि उनसे उस अभीष्ट की सिद्धि नहीं होगी। यदि आम आश्वासन निष्फल सिद्ध हुआ तो हमे आशा करनी चाहिए कि आप और आपके मित्र जिस सहानुभूति और सदाकाक्षा की खोज कर रहे हैं उसका प्रत्यक्ष प्रमाण उस समय मिलेगा जब शासन-विधान को प्रकृत रूप दिया जायगा। कहावत है, "खीर का स्वाद उसे खाने से ही जाना जा सकता है।" मैंने

हाल ही मे आक्सफोर्ड में एक स्पीच के दौरान नवीन शासन-विधान की रूपरेखा देने की चेष्टा की थी, उसकी एक प्रतिलिपि भेजता हू, शायद आप उसे पढना चाहें। आप देखेंगे ही कि मैंने अपने पिछले पत्र मे जो विचार व्यक्त किये थे इस स्पीच में उन्हें विकसित रूप दिया गया है। जिसे आप मानवी सम्पर्क कहते हैं, उसे मुझे एक से अधिक विचार-शैलियों के लोगों के साथ बनाए रखना पड़ता है। पर अगले सप्ताह बिल का द्वितीय वाचन होगा ही, उस अवसर पर मैं यथासम्भव सहानुभूति के साथ अपने दिल की बात कहने की चेष्टा करूंगा।

आपका
सेम्युअल होर

हवाई डाक द्वारा

१५ फरवरी, १९३५

प्रिय सर सेम्युअल,

आपके पत्र और आपकी स्पीच की प्रति के लिए धन्यवाद। मैंने स्पीच स्थानीय दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे प्रकाशनार्थ भेज दी है।

आपकी दलील अच्छी तरह समझता हूं। वह इस प्रकार है : "हम लोग भारत को पर्याप्त प्रगति प्रदान कर रहे हैं, पर अभी इस बात को पूरी तौर पर नही समझा जा रहा है। खीर का स्वाद खाने से ही जाना जा सकता है और जब भारतवासी सुधारों को काम मे लायंगे तो उन्हे हमारी नेकनीयती और सदाकाक्षा का पता चलेगा, और साथ ही वे यह भी जानेंगे कि कितनी कुछ प्रगति सम्भव है। जब आपकी ओर ऐसी भावनाएं है तब तो व्यक्तिगत सम्पर्क की सहायता से पारस्परिक समझौता और भी आसान हो जायगा। पर यह स्पष्ट ही है कि फिलहाल आपको परिस्थितियां इनसे अधिक और कुछ कहने की इजाजत नही देती हैं। मुझे तो सिर्फ इतना ही कहना है कि साझेदारी का दस्तावेज एक ऐसा कागज है, जिस पर दोनों साझियों के हस्ताक्षर किये जाते हैं। वर्तमान बिल पर केवल एक ही दस्तखत है। यदि आप भले फल का कामना करते हैं तो मेरा निवेदन है कि, आज नही तो कल, आपको अपने साझियो के दस्तखत लेने ही पड़ेंगे। लकाशायर-पैक्ट के सम्बन्ध में सबसे बड़ी शिकायत यही है कि वह सम्मत पैक्ट नही था, लादा हुआ पैक्ट था। आशा है, आप असल सुधारों के सम्बन्ध मे इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न नही होने देंगे। मैं आपको अपने विचारो से और अधिक तग नही करना चाहता हूं, इसलिए मगल की आशा करता हुआ इस विषय को यही छोडता हूं।

यह कहना अनावश्यक है कि मैंने आपके पत्र की नेकनीयती को अच्छी तरह

हृदयंगम किया है। इसीसे मुझे आशाजनक दृष्टिकोण अपनाने का साहस होता है।

सदाकाक्षाओ के साथ,

आपका
जी० डी० बिड़ला

भारतीय शासन-विधान के बनने से पहले गोलमेज परिषद् की जितनी भी बैठकें हुई उन सभी मे हिन्दू-मुस्लिम-समस्या एक जटिल प्रश्न बनी रही। सभी सम्प्रदायों के लिए एक ही निर्वाचन-सूची और एक ही निर्वाचन-क्षेत्र हो या अलग-अलग हो, या फिर चुनाव तो मिले-जुले हो, लेकिन कुछ स्थान विशेष रूप से सुरक्षित कर लिये जाय—इन सभी प्रश्नो पर बडी सरगर्मी के साथ विचार किया गया। दुर्भाग्यवश कोई पक्का फैसला नही हो सका और इसका दु खान्तर परिणाम विभाजन के रूप मे सामने आया। राजनैतिक क्षेत्र के प्रमुख हिन्दू नेता बापू की सलाह मानने को तैयार नही थे, यद्यपि वे उनका आदर करने का बराबर दम भरते थे। गाधीजी सोलहो आने आपसी समझौते के पक्ष मे थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए अपने प्राण तक न्योछावर करने को तैयार थे; पर अपेक्षाकृत अधिक सांसारिक राजनीतिज्ञ सारी समस्या को अपनी-अपनी जाति के लोगो के लिए रोटी-दाल के सवाल के रूप मे देखते थे। उधर मुसलमानो की ओर से श्री जिन्ना भी अपनी बात पर पूरी तरह से अडे हुए थे। उन्होने मुसलमानो के प्रति बापू की मंगलकामना को दुरदुराया और उसे एक ऐसा स्वतंत्र पाकिस्तान बनाने की, जिसके वह स्वय प्रधान हो, महत्वाकाक्षा-पूर्ण योजना को विफल बनाने के हिन्दू-षड्यन्त्र का एक अग-मात्र माना। कहना तो यह चाहिए कि एक बार उनके दिमाग मे इस भड़कीली योजना को प्रश्रय मिलने के बाद, विभाजन को छोड और किसी आधार पर समझौते की बातचीत की, और उससे सबध रखने वाले सुझावो की, असफलता उस समय तक एक स्वयसिद्ध बात थी, जबतक अपनी जाति के नेतृत्व की बागडोर उनके हाथ मे थी। इतने पर भी बापू के कुछ इने-गिने कट्टर अनुयायियो ने समझौते की आशा नही छोड़ी और डा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक मसविदा तैयार किया। इसके सम्बन्ध मे मैंने २१ फरवरी, १६३५ को महादेव देसाई को एक पत्र लिखा :

प्रिय महादेवभाई,

मैंने राजेन्द्रबाबू को सलाह दी है कि यदि मुसलमान नेता इस फार्मूले को मान लें (जैसी कि आशा नही है) तो हिन्दू महासभा के विरोध के बावजूद हमें उसे हिन्दू जनता द्वारा स्वीकार करा लेना चाहिए। एक बार कांग्रेस निश्चित रुख अख्तियार कर ले, फिर तो परिणाम अच्छा ही होगा। यदि कांग्रेसी नेता फार्मूले

को मूर्त रूप दे देंगे तो हिन्दू महासभा भी अपने अधिवेशन में उस पर सही कर देगी। सम्प्रदायवादियों के द्वारा काफी क्षति हुई है। जबतक मुसलमान समझौते का रुख न दिखावें तबतक तो इन सम्प्रदायवादियों के प्रति सहनशीलता दिखाई भी जा सकती है, पर यदि मुसलमान समझौता करने की इच्छा दिखावें तो कांग्रेसी नेताओं को हिन्दुओं को स्पष्टरूप से बता देना चाहिए कि उनके लिए यही ठीक रहेगा। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हिन्दू जनता उनके पीछे हो लेगी।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

कुछ दिन बाद मैंने इसी विषय पर बापू को भी लिखा :

ता० २६-२-१९३५

परम पूज्य बापू,

बेचारे राजेन्द्रबाबू बुरी तरह परेशान हैं। राजा नरेन्द्रनाथ और पंडित नानकचंद, इन दोनों ने तो राजेन्द्रबाबू के मसविदे को स्वीकार कर लिया है। पर बंगाली हिन्दुओं और सिखों में काफी मतभेद है। पंडितजी कुछ इनको समझाते हैं, कुछ उनको। किन्तु यह साफ जाहिर है कि जितना जिन्ना-राजेन्द्रबाबू मसविदे में है उसके बाहर जाना उनके लिए सम्भव नहीं है। मेरा खयाल है कि प्रायः लोग कायरता के शिकार बने हुए हैं। उदाहरण के लिए बंगाल के हिन्दू एम० एल० ए० वर्ग को यह चीज अच्छी लगती है, पर हिम्मत नहीं कि उसपर दस्तखत कर दें। 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादक को अच्छी लगी तो 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सम्पादक को रुचिकर नहीं है। इधर कुछ उग्र लड़के, जो क्रान्तिकारी बताये जाते हैं, उनके सामने सब भीगी बिल्ली बन जाते हैं। नलिनी आ रहे हैं, पर पूर्वी बंगाल के होने के कारण सम्मिलित चुनाव के नाम से घबराते हैं। मंगलसिंह और तारासिंह कुछ-कुछ पसन्द तो करते हैं, पर डरते हैं। ज्ञानी शेरसिंह तो उसे छूना भी नहीं चाहते। गोकुलचंद नारंग वगैरा पसन्द करते हैं, पर सिखों से डरते हैं। यदि व्यक्तियों के दस्तखतों से ही समझौता होने वाला है तो यह समझ लेना चाहिए कि आज के वातावरण में वह प्रलयकाल तक स्वप्न बना रहेगा। हम लोग चेष्टा तो कर ही रहे हैं, पर इधर मैंने राजेन्द्रबाबू को सुझाया है कि कांग्रेस और लीग समझौता कर लें और उसे देश के सामने रख दें। यह सही है कि सरकार उस पर फिलहाल अमल नहीं करेगी, पर और कोई रास्ता भी तो नहीं है। यदि राजेन्द्रबाबू ने ऐसा किया तो मेरा खयाल है कि समझौते का पक्ष समय पाकर अत्यन्त प्रबल हो जायगा। राजेन्द्रबाबू और वल्लभभाई दोनों ही इस प्रस्ताव को पसन्द करते

हैं। देखें, क्या होता है।

हरिजन आश्रम के लिए नक्शे कमेटी के सुपुर्द हैं। पास होते ही काम शुरू हो जायगा।

मेरे भेड़-मेढ़े आस्ट्रेलिया से आ पहुंचे हैं। मैं सात-एक रोज के लिए पिलानी जा रहा हूं। आपके पत्र की प्रतीक्षा करूंगा।

विनीत

घनश्यामदास

२८ फरवरी, १९३५

प्रिय महादेवभाई,

साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत तो भंग होती दिखाई देती है। पंजाब के हिन्दू तो सुझाव के उतने विरुद्ध नहीं थे, पर मुख्य कठिनाई सिखों और बंगाल के हिन्दुओं के द्वारा उत्पन्न की गई है। बंगाली हिन्दुओं में भी जो लोग पश्चिमी बंगाल से आये हैं वे संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में हैं। पर पूर्वी बंगाल के हिन्दू तो उसकी संभावना-मात्र से भयातुर हो गये हैं। सबसे अधिक क्षोभ की बात तो यह है कि बंगालियों में एक भी तो ऐसा नहीं है, जो जिम्मेदारी के साथ बात कर सके। जो लोग सुझाव के पक्ष में हैं उन तक में इतना साहस नहीं है कि यह बात स्पष्ट रूप में कह दें।

आज सुबह हमने एक छोटी-सी बैठक की, जिसमें राजेन्द्रबाबू, भूलाभाई और वल्लभभाई थे। मैं था ही। हमने यही सोचा कि और आगे जाना ठीक नहीं रहेगा, क्योंकि हमें यह जंचा कि समझौते की बातचीत को और अधिक दिनों तक घसीटा जायेगा तो उससे मामला और भी पेचीदा हो जायगा। हम सब एकमत थे कि यदि कांग्रेस और लीग में समझौता सम्भव हो तो हमें कर लेना चाहिए। पर जिन्ना इसके लिए तैयार नहीं थे, और हमने यह भी देखा कि बंगाल के बगैर (कांग्रेसी बंगाल तक हमारा समर्थन करने को तैयार नहीं है) समझौता निरर्थक होगा। यह बड़ा दुःखद प्रसंग है, पर हमें इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। सबसे पहली बात तो यह है कि एक भी बंगाली दृढ़तापूर्वक हमारा समर्थन करने को तैयार नहीं है। यह बात बंगाल के लिए बड़ी शर्म की अवश्य है, पर कांग्रेस का दोष भी कम नहीं है। हमने बंगाल में किसी का समर्थन नहीं किया, फलतः बंगाल में हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करने वाला एक भी आदमी नहीं है। साम्प्रदायिक समस्या वैसी-की-वैसी ही है और अपनी विफलता के फलस्वरूप हम संसार की दृष्टि में लाछित हैं।

तुमने देखा ही होगा कि सरकार ने ग्रामोत्थान के निमित्त एक करोड़ रुपये की रकम निकाली है। बापू की चेष्टाओं की बदौलत सरकार के कानों पर जू

रेंगी तो, पर मुझे आशका है कि यह रुपया ठीक तरह से खर्च नहीं किया जायगा। सरकार तो वस्तुस्थिति तक से अनभिज्ञ है। इसलिए सम्भव है, वह जनता के लिए भोजन और कपड़े की अपेक्षा रेडियो की अधिक आवश्यकता समझे। यह रुपया प्रान्तों के मत्रियों द्वारा खर्च किया जायगा। यदि ग्रामोद्योग संघ इस मामले में आगे बढकर सरकार की सहायता करने मे तत्परता दिखावे तो कैसा रहे? यदि मैं भूल नही रहा हूं तो जब वल्लभभाई ने गुजरात बाढ रिलीफ फड का आयोजन किया था तो एक प्रकार से सरकारी चदे पर कब्जा कर लिया था। मैं समझता हूं, यदि बापू एक बार सकल्प कर लें और प्रातीय सरकारों और मत्रियो के साथ ठीक ढग से पेश आया जाय तो इस एक करोड़ की निधि को एक प्रकार से अपने अधिकार मे लिया जा सकता है। यह बात बापू के सूचनार्थ है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

१४. पिलानी

मेरी पिलानी वाली प्रिय योजना ने अब एक ऐसी संस्था का रूप ले लिया है कि उसके प्रारम्भिक दिनों की याद करना शायद कुछ रोचक सिद्ध हो। अब पिलानी की संस्था एक यूनीवर्सिटी कालेज के स्तर पर पहुंच गई है और राजपूताना मरु-भूमि का वह खड गुलाब के फूल की तरह खिल उठा है; पर ऐसी स्थिति सदा से ही नही थी।

महादेव देसाई के नाम बापू के लिए लिखा गया मेरा एक पत्र आरम्भ तो दूसरी बातों से होता है, किन्तु शीघ्र ही उसमे पिलानी की चर्चा छिड जाती है। उस पत्र के पहले भाग मे बंगाल सरकार का जिक्र है, जिसने उन्ही दिनो सार्व-जनिक रूप से अपनी एक भूल स्वीकार करके उसका परिष्कार किया था। बंगाल सरकार के इस कार्य की तुलना मैंने अपने पत्र में कुछ ऐसे *नेताओं* के रवैये से की है, जिन्होने यह जानते हुए भी कि जनता के दोषारोपण ठीक नही हैं, उनका खण्डन करने की चेष्टा नहीं की। उस समय 'नेशनल कॉल', जो अब बन्द हो गया है, मेरे खिलाफ गंदा प्रचार कर रहा था। उससे मुझे बड़ा क्लेश होता था, खास-तौर से इसलिए कि उस पत्र के डाइरेक्टरों मे मेरे कुछ ऐसे मित्र थे, जो जानते थे कि इन ऊल-जलूल बातों की जड़ में हीन अर्थलोलुपता-मात्र है।

बिड़ला हाउस
नई दिल्ली
१७-१-१९३६

प्रिय महादेवभाई,

तुम्हारे पत्र के लिए धन्यवाद। इसमे मेरी चिन्ता दूर नही हुई है। इस बार बापू के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे चिन्ता की बात यह है कि उन पर विश्राम या चिकित्सा का पूरा प्रभाव नही पड रहा है। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वह बराबर आराम कर रहे हैं। सरदार से और बापू से कह देना कि जबतक वे पूरी तरह चंगे न हो जायं, दिल्ली बिलकुल न आवें। हा, इसमे सन्देह नहीं कि दिल्ली का जलवायु बडा अच्छा है, इसलिए यदि वे आवें तो केवल विश्राम के लिए आवें, और किसी काम के लिए नही। पर यदि अहमदाबाद उनके स्वास्थ्य के लिए अधिक अच्छा स्थान प्रतीत हो तो स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। सरदार ने मुझसे कहा है कि जब बापू अहमदाबाद मे हो तो मैं भी कुछ समय के लिए आ जाऊं। मुझे ट्रस्टी की हैसियत से साबरमती आश्रम भी जाना है, पर मैं अपना कार्यक्रम कुछ समय बाद निश्चित करूंगा। यदि बापू यहा नही आते हैं तो फरवरी का महीना कलकत्ते मे बिताऊंगा।

देखता हू कि वे दोनो पत्र न तुम्हे रुचे, न बापू को। मैं अपने पत्र पर तुम्हारी आलोचना चाहूगा। यदि उस पत्र की भाषा अच्छी न लगी हो तो इसका दोष मेरी मनोवृत्ति को देना चाहिए। यदि मैं उसे कुछ दूसरे ढंग से लिखता तो मैं अपने नही, किसी दूसरे के विचारो को व्यक्त करता। अतएव आलोचना पत्र की नही, बल्कि उसमे व्यक्त किये गए मेरे विचारो की है, इसलिए मैं जानना चाहूगा कि तुम्हारी आपत्ति का विषय क्या है। इससे मेरा पथ-प्रदर्शन होगा।

रही गवर्नर के उत्तर की बात, सो मैं इस मामले मे तुमसे सहमत नही हू। तुम अपने लोगो से इतने कम की और विरोधियों से इतने अधिक की आशा क्यों करते हो? यदि मैं तुलना के लिए एक उदाहरण दू तो गलत माने मत निकालना। 'नेशनल कॉल' की ही बात को लो। वह मुझे पिछले तीन साल से आए-दिन दुर्वचन कहता आ रहा है, न डा० अन्सारी ने और न किसी और डाइरेक्टर ने उस सम्बन्ध मे कुछ कहा है। तुम कहोगे, और मैं तुम्हारी बात मान लूगा, कि बेचारे राजेन्द्रबाबू तो संत हैं, पर न्याय की बात उठाने पर संतपन की ओर ध्यान नही दिया जा सकता। गवर्नर ने एक मामले मे आपत्तिजनक अंशो को हटवा तो दिया पर इस मामले मे तो डा० अन्सारी ने इस बात की ओर ध्यान तक देना जरूरी नही समझा। मैं किसी के खिलाफ शिकायत नही कर रहा हूं। तुम स्वयं जानते हो कि मैं राजेन्द्रबाबू का कितना आदर करता हू। मेरा यह दृष्टांत देने

का उद्देश्य यही था कि हमे मानव-स्वभाव जैसा है उसे उसी रूप मे लेना चाहिए और ठीक जिस प्रकार हमे 'नेशनल कॉल' के डाइरेक्टरो के प्रति सहिष्णुता का रुख अख्तियार करना चाहिए, उसी प्रकार बंगाल के गवर्नर के प्रति भी। पर मुझे तो अपने पत्र के सम्बन्ध में, या यो कहो कि अपनी मनोवृत्ति के सम्बन्ध मे, तुम्हारी आलोचना की दरकार है।

मैं पिलानी के सम्बन्ध मे 'हरिजन' मे कुछ लिखना नही चाहता हू। ऐसा करना बेकार की इश्तहारबाजी होगी, क्योंकि सारा काम अभी प्रयोग-मात्र है। हमने गत वर्ष तय किया था कि स्कूल और कालेज के सभी ८०० लडको को आध सेर दूध मिला करे और जो लड़के मूल्य न दे सके उन्हे दूध मुफ्त दिया जाय। बहुत कोशिश करने के बावजूद पंड्या २० से अधिक गायें एकत्र नही कर सका और वे सभी अच्छी नस्ल की नही थी। गाव वाले उसे खेती-मास्टर कहते हैं। जब वह हिसार और रोहतक से बुड्ढी गायें लाया तो उन्होने काफी दिल्लगी की। दूध की समस्या ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इसके विपरीत गाव मे तुम्हें रुपये का २६ पौंड दूध मिल सकता है। इसलिए पंड्या से कहा गया कि जबतक पर्याप्त संख्या में गायों का प्रबन्ध न हो जाय, दूध खरीदकर लड़को को पिलाया जाय, इससे पड्या को बडी परेशानी हुई है। लगभग ६ हन्डर दूध खरीदना, फिर उसे उबालना और इसके बाद उसे लड़को मे बांटना उसके लिए उतनी ही बडी समस्या हो गई होगी जितनी मेरे लिए अपनी किसी बड़ी मिल की समस्या हो। उसकी अस्त-व्यस्तता विनोद की सामग्री है। पर लडको को दूध मिलना शुरू हो गया है। हम लोगो को आशा है कि आगामी १० दिनो मे हर कोई दूध पा सकेगा।

हम लोग हर ६ महीने बाद डाक्टरी परीक्षा कराते हैं। इसलिए खुराक के वैज्ञानिक नियमन का परिणाम देखने की चीज होगी। रसोई घर मे मिर्चों का निषेध है और हम लोग रसोई घर का प्रबन्ध लड़को को स्वयं अपना करने देने के बजाय उस पर नियन्त्रण करने की बात सोच रहे हैं। सम्भव है, हमे पाकशास्त्र मे दीक्षा देने के लिए कक्षा खोलनी पड़े।

हरिजन होस्टल उन्नति कर रहा है। एक ऊची कक्षा का विद्यार्थी एक बडे होस्टल मे रख दिया गया है, जिसमे सवर्ण हिन्दू रहते हैं। इस हरिजन लड़के के आगमन पर अन्य लडको ने किसी प्रकार की आपत्ति नही की।

इस समय हमारे पास १५० भेड़ें हैं। उन चार आस्ट्रेलियन भेड़ो ने दो मेमने दिये और दो और देनेवाले हैं। इस प्रकार हमारे पास शीघ्र ही लगभग १० आस्ट्रेलियन भेड़ें हो जायंगी। आस्ट्रेलियन दुम्बो को बीकानेरी भेड़ो के साथ लगाया गया, जिसके फलस्वरूप एक कलमी नस्ल तैयार हो रही है। पर पंड्या ने प्रत्येक भेड़ की ऊन का ठीक-ठीक ब्योरा नही रखा, जिसके फलस्वरूप हम लोग

सही पता लगाने में असमर्थ हैं कि बीकानेर और हिसार की भेड़ों के मुकाबिले में आस्ट्रेलियन भेड़ें कितनी ऊन देती हैं।

आर्थिक दृष्टि से डेयरी असफल सिद्ध नहीं हुई है। अब हम छीजन को हिसाब से अलग रखें तो हमें किसी प्रकार का घाटा नहीं हुआ है। हम लोग दूध)॥। पौंड के हिसाब से बेचते हैं और इस हिसाब से प्रति गाय पर आय और व्यय १० रुपया मासिक आता है। यदि हम छीजन को हिसाब में नहीं लेते हैं तो हमें नवीन उत्पादन को भी हिसाब में नहीं लेना है।

मैं जिस होल्स्टीन नस्ल के सांड को इंग्लैंड से लाया था उसने गायों के साथ जोड़ी करना शुरू कर दिया है। वह बढ़िया जानवर है और उसकी गांव में बड़ी चर्चा है। मुझे लार्ड लिनलिथगो ने इंग्लैंड में बताया था कि दूध की दृष्टि से होल्स्टीन नस्ल बड़ी सफल सिद्ध होगी। मैं यह प्रयोग इसीलिए कर रहा हूं। साहबजी महाराज की भी यही सम्मति है। परमेश्वरी प्रसाद इसके विरुद्ध हैं और पड्या की इस नस्ल के सम्बन्ध में कोई खास सम्मति नहीं है।

रही कृषि-सम्बन्धी प्रयोग की बात, सो गत वर्ष हमें १,५००) रुपये का घाटा हुआ। हमें पता चला कि हम ४) रुपये प्रति बीघा कृषि में खो रहे हैं, इसलिए हमने इस लाइन को छोड़ने का निश्चय कर लिया है। अच्छा बीज तैयार कराने के लिए सिर्फ ५० बीघा जमीन जोती-बोई जायगी।

इस समय हम लोग दस्तकारी के निम्नलिखित विभाग चला रहे हैं—बढ़ई का काम, टोपी बनाना, चमड़े का काम, कालीन बुनना, कम्बल बुनना, रंगना, छापना और छापना। इस वर्ष हम निम्नलिखित विभागों की वृद्धि कर रहे हैं—दर्जी का काम, राज का काम, जिल्दसाजी, खिलौने बनाना और मधुमक्खी-पालन। कुछ समय बाद हम मुर्गियों का फार्म भी खोलने का विचार रखते हैं। हमने यह तय किया है कि अगले वर्ष से निम्नतम श्रेणी से लगाकर इन्टरमीडियेट तक के लड़के को उपर्युक्त विषयों में से कोई एक या दो विषय अवश्य लेने पड़ेंगे। प्रत्येक सप्ताह में लड़के को कम-से-कम ३ घंटे इनमें से लिये हुए विषयों को सीखने में लगाने पड़ेंगे, जिसके फलस्वरूप जब लड़का इण्टर के बाद छोड़ेगा तो उसे एक-दो विषयों का ज्ञान अवश्य रहेगा। इससे उद्योग-धन्धा विभाग स्वावलम्बी भी हो जायगा, क्योंकि हम लोग विद्यार्थियों से निःशुल्क काम लेंगे। इस समय हमारा खर्च ८०,०००) रुपये है। तुम कहोगे, यह बहुत है, पर यदि ८०० लड़कों को अच्छी शिक्षा देनी है तो १००) रुपये प्रति लड़का अधिक नहीं है। कुछ समय बाद हमें लड़कों से शुल्क भी मिलने लगेगा, जिससे कुछ सहायता मिल सकती है। लड़कों की शारीरिक अवस्था बहुत अच्छी है। चार बातें अनिवार्य हैं : सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक व्यायाम और खेलकूद, दुग्धपान और चुनी हुई पुस्तकों का स्वाध्याय। पर यद्यपि लड़कों का स्वाध्याय बड़ा अच्छा है, और उनका परीक्षा-

फल संतोषजनक होता है, तथापि मैं यह कहने मे असमर्थ हूं कि वे चरित्र के मामले मे अन्य कालेजों के लड़कों से बढकर हैं, अथवा नही। कुछ विद्यार्थियो का कहना है कि बड़े शहरों के अनेक कालेजों के लड़के मद्यपान की कुटेव डाल लेते है। हमारे गांव में तो एकमात्र पेय पदार्थ या तो जल है या दूध।

कालेज, स्कूल और बालिकाओं के स्कूल के अतिरिक्त हम लोग इस समय १५ ग्राम-पाठशालाएं भी चला रहे हैं। अगले वर्ष उनकी सख्या २० हो जायगी। इस वर्ष हमने यह भी निश्चय किया है कि ग्राम-पाठशालाओं के शिक्षक हरेक घर मे फलो के वृक्ष लगावें। मै इस वसन्त मे दिल्ली से नारंगी के २,००० पौधे भेज रहा हूं। राजपूताना में नारगी खूब फलती है। पन्द्रह वर्ष पहले हमने प्रयोग किया और स्वयं मेरे बाग मे, २,००० पौधे लगाये गये। इनमें से २०० पौधों ने तो इस वर्ष फल भी दिये। यदि हम ५० मील की परिधि में प्रत्येक घर मे एक पौधा लगा सकें तो दर्शनीय दृश्य होगा।

सरदार को मेरा प्रणाम कहना। उनका पत्र अभी मिला। उन्हे अलग से उत्तर नही दे रहा हूं। शायद यही चिट्ठी काफी होगी।

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

१५. लंदन में सम्पर्क-स्थापन-कार्य

मैं अब भी यही चाहता था कि एक ओर ब्रिटिश नेताओ और दूसरी ओर गाधीजी तथा काग्रेसी नेताओ के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हों और इसी उद्देश्य से सन् १९३५ की गर्मियों मे लदन गया। इस यात्रा के निमित्त मुझे बापू और बगाल के गवर्नर का आशीर्वाद प्राप्त था और दोनों ने ही मुझे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो के नाम परिचय-पत्र दिये थे। मेरी पहली मुलाकात इंडिया आफिस के सर फिण्डलेटर स्टीवार्ट के साथ हुई। मैंने उनका रुख बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण पाया। यह स्पष्ट था कि उनके हृदय में गाधीजी के लिए कुछ प्रेम है। गाधीजी से उनकी मुलाकात भारत के अलावा लंदन मे भी हुई थी, जहां वह गोलमेज परिषद् मे भाग लेने गये थे। १४ जून को मैंने गांधीजी को इस मुलाकात की पूरी रिपोर्ट लिख भेजी। यहा उसके अंतिम पैरे का उल्लेख करना ही काफी होगा :

"उन्होंने आपके स्वास्थ्य के बारे मे पूछताछ की और कहा कि आज भी उनको उस रविवार के उन तीन सुखद घटों की याद है जब आपसे उनकी बातचीत हुई

थी। मैंने कहा, "यह तो मेरे पक्ष में एक बहुत ही अच्छा तर्क है। राजनीति की दृष्टि से आप दोनो एक-दूसरे से सहमत नही हैं, फिर भी आपको उनकी भेंट की सुखद याद है। यह व्यक्तिगत सम्पर्क का ही परिणाम है। इस समय इस व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव-सा है। हमे इसी के जरिये मित्रता स्थापित करनी चाहिए।" वह मुझे फिर लिखेंगे।"

कुछ दिन बाद मैं श्री बटलर से मिला। यह इस समय ब्रिटेन के अर्थमत्री हैं, तब इडिया आफिस मे भारत के उपसचिव थे। उनसे जो बातचीत हुई उसकी भी लम्बी रिपोर्ट मैंने गांधीजी को भेजी। मुझे इसमे सदेह नही रह गया था कि लंदन मे रहने वाले अग्रेजों को सचमुच इस बात का पक्का विश्वास है कि भारतीय शासन बिल पास होना भारत मे स्वायत्त शासन की दिशा में एक बहुत बडा कदम होगा। उधर भारत मे ठीक इसके विपरीत यह भावना थी कि यह कानून पीछे ले जाने वाला कदम होगा। श्री बटलर इस तथ्य को समझ गये और हमने गति-अवरोध का अंत करने वाले कितने ही सुझावो पर विचार-विमर्श किया। मेरा एक सुझाव यह था कि भारत में जो नया वाइसराय भेजा जाय उसे भारतवासियो के साथ तुरन्त सम्पर्क स्थापित करने की पूरी ताकीद रहे। दूसरा सुझाव यह था कि या तो स्वय भारत सचिव ही, नही तो उपसचिव, भारत आकर व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करे। मैंने उनके सामने एक और विकल्प रखा। वह यह था कि गाधीजी को लदन बुलाया जाय और यदि सम्भव हो तो उनके बुलाने का कारण कुछ और बताया जाय, यद्यपि असली उद्देश्य बातचीत करना हो। श्री बटलर ने इस मामले मे काफी सहानुभूति दिखाई। उन्होंने कहा, "हमें यह देखकर बडी निराशा होती है कि जिस बिल के लिए हमने अपने स्वास्थ्य, अपने मित्रो और अपने समय की चिन्ता नही की, उसे एक पीछे ले जाने वाला कदम समझा जा रहा है। सर सेम्युअल होर का स्वास्थ्य बिगड़ ही गया। मैं काम के बोझ को इसलिए वहन कर पाया कि मैं जवान था, फिर भी मुझ पर बडा श्रम पडा, और उसका पुरस्कार यह मिल रहा है!" उन्होंने कहा कि लार्ड हेलीफैक्स ने तो भारत-सम्बन्धी कार्य को अपने जीवन का मिशन बना लिया है। उन्होने जोर दिया कि मैं जल्दी-से-जल्दी प्रधान मत्री श्री बाल्डविन और भारत मत्री लार्ड जेटलैंड से मिलूं।

सर जार्ज शुस्टर से भी मेरी बड़ी मनोरजक बातचीत हुई। इस मुलाकात के सम्बन्ध मे मैंने गाधीजी को अपनी रिपोर्ट मे लिखा था, "मैंने उन्हें बताया कि मैं अपने गाव मे क्या-कुछ कर रहा हूं। उन्होने बड़ी दिलचस्पी दिखाई और कहा कि उन्हे दूध के पाउडर से ताजा दूध ज्यादा अच्छा लगता है। उन्होने मुझसे इसके बारे में लार्ड लिनलिथगो से बातचीत करने को कहा। उन्होने यह भी कहा, "जब कभी सहायता की जरूरत हो, आ जाइए, मुझसे जो कुछ भी बन पडेगा, मैं उठा नही रखूगा।"

इसके बाद जल्दी-जल्दी कई मुलाकातें हुईं। ये मुलाकातें ज्यादातर भोजन के समय ही होती थी। पहले सर बैसिल ब्लेकेट से; फिर अनुदार दल के सदस्य सर हैनरी पेजक्रॉफ्ट से और फिर मैन्चेस्टर के नेताओं के पूरे समूह के साथ बातचीत हुई, जिन्हें श्री किर्क पैट्रिक ने लोकसभा मे दोपहर का भोजन करने को बुलाया था। इसके बाद (स्वर्गीय) लार्ड लोदियन के साथ लम्बी बातचीत हुई। वह भारत के सच्चे मित्र थे। आज हम इस बात को देख सकते हैं कि उन्होंने स्थिति का जो चित्र उस समय खीचा था वह बिलकुल सही उतरा। भारतीय शासन-विधान मे अंग्रेजो की आगे बढ़ने की इच्छा के दर्शन इतने स्पष्ट रूप से हुए कि कांग्रेस ने पद-ग्रहण करने का और प्रान्तो मे मन्त्रिमडल बनाने का निश्चय किया। ये प्रान्त अब राज्य कहलाते हैं। यदि चार वर्ष बाद लड़ाई न भडक उठती तो केन्द्र मे भी एक संयुक्त संघीय शासन की स्थापना हो जाती और विभाजन की नौबत न आती। पर युद्ध ने सबकुछ उलट-पलट दिया। कांग्रेसी सरकारो ने तो इस्तीफा दिया ही, समस्त पूर्वीय देशों मे भी राष्ट्रीयता की भावना को जबर्दस्त प्रोत्साहन मिला और युद्ध के दौरान ही वह भावना इतनी बलवती हो उठी कि गाधीजी अपना 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ने मे सफल हुए। श्री एटली और ब्रिटिश सरकार ने भी युद्धकाल में दिये गए अपने वचनो का पालन किया।

मैंने लार्ड लोदियन के साथ अपनी बातचीत की जो रिपोर्ट भेजी उसमे उनके उद्‌गारों का इस प्रकार उल्लेख किया :

"उन्होंने कहा, "आप लोगो ने कोई शासन-विधान नही चलाया है, इसलिए आपके लिए यह अंदाजा लगाना सम्भव नही है कि आप लोग कितने बड़े अधिकार का उपयोग करने वाले हैं। यदि आप शासन-विधान को देखेंगे तो आपको ऐसा प्रतीत होगा मानों सारे अधिकार गवर्नर जनरल और गवर्नरो को सौप दिये गए हैं। पर क्या यहां भी सारे अधिकार राजा को सौंपे हुए नही हैं? सबकुछ राजा के नाम से किया जाता है, और क्या राजा ने कभी हस्तक्षेप किया है? हम लोग शासन-विधान मे विश्वास रखनेवाले लोग हैं। जहा अधिकार व्यवस्थापिका सभा के सदस्यो के हाथ में गये कि गवर्नर या गवर्नर जनरल कभी हस्तक्षेप नही करेंगे। हां, यदि कानून और व्यवस्था अथवा देश की शाति पर खतरा आया तो आपका भी यह इरादा नही है कि शान्ति खतरे मे पडे। सिविल सर्विस हमेशा सहायता करेगी। किसी जमाने मे इंग्लैंड के मजदूर लोग सिविल सर्विस को गालियां दिया करते थे, पर ज्योंही मजदूरो की सरकार बनी कि वे लोग सिविल सर्विस के सबसे अच्छे मित्र सिद्ध हुए। आप भी यही देखेंगे। हम लोग अनुशासन-प्रिय लोग हैं। वे लोग आप लोगों को सलाह-मशवरा अवश्य देंगे, पर जहां एक बार कोई नीति निर्धारित हुई कि वे लोग वफादारी के साथ उसे कार्यरूप मे

थी। मैंने कहा, "यह तो मेरे पक्ष मे एक बहुत ही अच्छा तर्क है। राजनीति की दृष्टि से आप दोनों एक-दूसरे से सहमत नही हैं, फिर भी आपको उनकी भेंट की सुखद याद है। यह व्यक्तिगत सम्पर्क का ही परिणाम है। इस समय इस व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव-सा है। हमे इसी के जरिये मित्रता स्थापित करनी चाहिए।" वह मुझे फिर लिखेंगे।"

कुछ दिन बाद मैं श्री बटलर से मिला। यह इस समय ब्रिटेन के अर्थमंत्री हैं, तब इडिया आफिस मे भारत के उपसचिव थे। उनसे जो बातचीत हुई उसकी भी लम्बी रिपोर्ट मैंने गांधीजी को भेजी। मुझे इसमे सदेह नही रह गया था कि लदन मे रहने वाले अंग्रेजों को सचमुच इस बात का पक्का विश्वास है कि भारतीय शासन बिल पास होना भारत मे स्वायत्त शासन की दिशा मे एक बहुत बडा कदम होगा। उधर भारत मे ठीक इसके विपरीत यह भावना थी कि यह कानून पीछे ले जाने वाला कदम होगा। श्री बटलर इस तथ्य को समझ गये और हमने गति-अवरोध का अंत करने वाले कितने ही सुझावों पर विचार-विमर्श किया। मेरा एक सुझाव यह था कि भारत में जो नया वाइसराय भेजा जाय उसे भारतवासियो के साथ तुरन्त सम्पर्क स्थापित करने की पूरी ताकीद रहे। दूसरा सुझाव यह था कि या तो स्वयं भारत सचिव ही, नही तो उपसचिव, भारत आकर व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करें। मैंने उनके सामने एक और विकल्प रखा। वह यह था कि गांधीजी को लंदन बुलाया जाय और यदि सम्भव हो तो उनके बुलाने का कारण कुछ और बताया जाय, यद्यपि असली उद्देश्य बातचीत करना हो। श्री बटलर ने इस मामले मे काफी सहानुभूति दिखाई। उन्होंने कहा, "हमे यह देखकर बड़ी निराशा होती है कि जिस बिल के लिए हमने अपने स्वास्थ्य, अपने मित्रो और अपने समय की चिन्ता नही की, उसे एक पीछे ले जाने वाला कदम समझा जा रहा है। सर सेम्युअल होर का स्वास्थ्य बिगड़ ही गया। मैं काम के बोझ को इसलिए वहन कर पाया कि मैं जवान था, फिर भी मुझ पर बडा श्रम पड़ा, और उसका पुरस्कार यह मिल रहा है!" उन्होंने कहा कि लार्ड हेलीफैक्स ने तो भारत-सम्बन्धी कार्य को अपने जीवन का मिशन बना लिया है। उन्होंने जोर दिया कि मैं जल्दी-से-जल्दी प्रधान मत्री श्री बाल्डविन और भारत मत्री लार्ड जेटलैंड से मिलू।

सर जार्ज शुस्टर से भी मेरी बड़ी मनोरजक बातचीत हुई। इस मुलाकात के सम्बन्ध मे मैने गाधीजी को अपनी रिपोर्ट मे लिखा था, "मैंने उन्हे बताया कि मैं अपने गांव में क्या-कुछ कर रहा हू। उन्होने बड़ी दिलचस्पी दिखाई और कहा कि उन्हें दूध के पाउडर से ताजा दूध ज्यादा अच्छा लगता है। उन्होने मुझसे इसके बारे मे लार्ड लिनलिथगो से बातचीत करने को कहा। उन्होने यह भी कहा, "जब कभी सहायता की जरूरत हो, आ जाइए, मुझसे जो कुछ भी बन पड़ेगा, मैं उठा नही रखूगा।"

इसके बाद जल्दी-जल्दी कई मुलाकातें हुईं। ये मुलाकातें ज्यादातर भोजन के समय ही होती थीं। पहले सर बेसिल ब्लेकेट से; फिर अनुदार दल के सदस्य सर हेनरी पेजक्रॉफ्ट से और फिर मैन्चेस्टर के नेताओं के पूरे समूह के साथ बातचीत हुई, जिन्हें श्री फिर्क पैट्रिक ने लोकसभा में दोपहर का भोजन करने को बुलाया था। इसके बाद (स्वर्गीय) लार्ड लोदियन के साथ लम्बी बातचीत हुई। वह भारत के सच्चे मित्र थे। आज हम इस बात को देख सकते हैं कि उन्होंने स्थिति का जो चित्र उस समय खींचा था वह बिलकुल सही उतरा। भारतीय शासन-विधान में अंग्रेजों की आगे बढ़ने की इच्छा के दर्शन इतने स्पष्ट रूप से हुए कि कांग्रेस ने पद-ग्रहण करने का और प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाने का निश्चय किया। ये प्रान्त अब राज्य कहलाते हैं। यदि चार वर्ष बाद लड़ाई न भड़क उठती तो केन्द्र में भी एक संयुक्त संघीय शासन की स्थापना हो जाती और विभाजन की नौबत न आती। पर युद्ध ने सबकुछ उलट-पलट दिया। कांग्रेसी सरकारों ने तो इस्तीफा दिया ही, समस्त पूर्वीय देशों में भी राष्ट्रीयता की भावना को जबर्दस्त प्रोत्साहन मिला और युद्ध के दौरान ही वह भावना इतनी बलवती हो उठी कि गांधीजी अपना 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ने में सफल हुए। श्री एटली और ब्रिटिश सरकार ने भी युद्धकाल में दिये गए अपने वचनों का पालन किया।

मैंने लार्ड लोदियन के साथ अपनी बातचीत की जो रिपोर्ट भेजी उसमें उनके उद्‌गारों का इस प्रकार उल्लेख किया :

"उन्होंने कहा, "आप लोगों ने कोई शासन-विधान नहीं चलाया है, इसलिए आपके लिए यह अंदाजा लगाना सम्भव नहीं है कि आप लोग कितने बड़े अधिकार का उपयोग करने वाले हैं। यदि आप शासन-विधान को देखेंगे तो आपको ऐसा प्रतीत होगा मानों सारे अधिकार गवर्नर जनरल और गवर्नरों को सौंप दिये गए हैं। पर क्या यहां भी सारे अधिकार राजा को सौंपे हुए नहीं हैं? सबकुछ राजा के नाम से किया जाता है, और क्या राजा ने कभी हस्तक्षेप किया है? हम लोग शासन-विधान में विश्वास रखनेवाले लोग हैं। जहां अधिकार व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों के हाथ में गये कि गवर्नर या गवर्नर जनरल कभी हस्तक्षेप नहीं करेंगे। हां, यदि कानून और व्यवस्था अथवा देश की शांति पर खतरा आया तो आपका भी यह इरादा नहीं है कि शान्ति खतरे में पड़े। सिविल सर्विस हमेशा सहायता करेगी। किसी जमाने में इंग्लैंड के मजदूर लोग सिविल सर्विस को गालियां दिया करते थे, पर ज्योंही मजदूरों की सरकार बनी कि वे लोग सिविल सर्विस के सबसे अच्छे मित्र सिद्ध हुए। आप भी यही देखेंगे। हम लोग अनुशासन-प्रिय लोग हैं। वे लोग आप लोगों को सलाह-मशवरा अवश्य देंगे, पर जहां एक बार कोई नीति निर्धारित हुई कि वे लोग वफादारी के साथ उसे कार्यरूप में

परिणत करेंगे।" मैंने बाधा देते हुए बताया कि यहां की सिविल सर्विस और भारत की विदेशी सिविल सर्विस में अन्तर है। मैंने कहा, "आप लोगों को नौकरियो के भारतीयकरण की गति को तेज करना होगा।" वह सहमत हुए। बोले, "आपको अब जिस सबसे बड़े खतरे का मुकाबला करना है वह है सैन्य विभाग के नियंत्रण का विरोध। पर आपको बाकी सारी चीजें मिल ही गई हैं।" परन्तु वह मुझसे इस मामले मे सहमत थे कि भारत मे लोगों की मानसिक अवस्था में सुधार करना आवश्यक है। इस समय वह बहुत खराब है। बोले, "हम इस दिशा में कुछ नही कर सकते। हमें यहा अनुदार दलवालो के साथ मोर्चा लेना पड़ा। श्री बाल्डविन और सर सेम्युअल होर ने जिस साहस का परिचय दिया आप उसका अदाजा नही लगा सकते थे। यह उदार ढग की राजनीति की भारी विजय थी। हम लोग भारत मे भी इसी ढग की मानसिक अवस्था उत्पन्न नही कर सके, क्योंकि हम अनुदार दल वालों को भी नही छोड़ना चाहते थे। इन लोगो ने इस विधान को आत्म-समर्पण के नाम से पुकारा, इसलिए हमे यहां एक दूसरे ही ढग की भाषा में बात करनी पड़ी। इसके अलावा एक और कठिनाई लार्ड विलिंग्डन-विषयक थी। उन्हें महात्मा गाधी मे भारी अविश्वास है और वह कुछ अधिक बुद्धिमान भी नही हैं। पर जुलाई के मध्य तक बिल कानून बन जायगा और आगामी अप्रैल मास मे नया वाइसराय चला जायगा। इसलिए हमे कुछ-न-कुछ तो करना ही है।" मैंने कहा, "मेरे धीरज का अन्त हो गया है। मै आगामी अप्रैल तक तो ठहरने से रहा, तबतक तो पासा पड़ भी चुकेगा। भारतीय जनमत को आने वाले सुधारों को अविश्वास की दृष्टि से देखना सिखाया गया है और आगामी अप्रैल तक उनको विध्वंस करने के सिद्धान्त को लेकर नये निर्वाचन लड़ने की तैयारी कर ली जायगी।" वह इस मामले मे सहमत हुए कि कुछ-न-कुछ तुरन्त ही करना आवश्यक है, और पूछने लगे, "क्या आपके पास कोई रचनात्मक सुझाव है?" मैंने कहा, "पहली बात पारस्परिक सम्पर्क और दूसरी बात समझौता।" उन्होंने पूछा कि भारत मे सबसे अच्छा गवर्नर कौन-सा है। मैंने कहा, "या तो एडरसन को बातचीत करनी चाहिए, या भारत सचिव को भारत जाना चाहिए, या फिर गाधीजी को यहा बुलाना चाहिए।" उन्होंने कहा कि उनकी भी यही राय है कि इस मानसिक अवस्था मे परिवर्तन करने के हेतु कुछ-न-कुछ तुरन्त करना आवश्यक है। आशा है, लार्ड जेटलैंड इस सम्बन्ध मे कुछ कर सकेंगे। उन्होंने यह भी बताया कि वह लार्ड जेटलैंड, लार्ड हेलीफैक्स और श्री मैकडानल्ड से बात करेंगे। उन्होंने सलाह दी कि मुझे श्री मैकडानल्ड से मिलना चाहिए। वह मेरे सम्बन्ध मे श्री मैकडानल्ड को लिखेंगे और इसके बाद मैं उनसे मुलाकात का समय निश्चित कर लूगा।"

लार्ड जेटलैंड उन दिनों भारत सचिव थे। अपने पिता के जीवन-काल मे वह

लार्ड रोनाल्डशे के नाम से पुकारे जाते थे और बंगाल के गवर्नर रह चुके थे। वहा हिन्दू-धर्म से उन्हें कुछ रुचि हो गई थी और उन्होंने 'दी हार्ट आफ आर्यावर्त' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। लंदन में मैं उनसे मिलने गया, और उन्होंने मेरी बातें बड़े ध्यान से सुनी। बातचीत के दौरान उन्होंने बहुत ही कम बाधा डाली। बस, एक बार पूछा-भर कि क्या गांधीजी एक व्यावहारिक आदमी हैं? मैंने कहा कि होर, हेलीफैक्स, फिन्डलेटर स्टीवार्ड और स्मट्स से पूछ देखिये, वे आपको गांधीजी की व्यावहारिकता का प्रमाण दे सकते हैं। तब लार्ड जेटलैंड ने पूछा, "लेकिन उनकी 'हिन्द-स्वराज्य' पुस्तक के बारे मे आपका क्या खयाल है?" मैंने उत्तर दिया, "गांधीजी ने कुछ चरम लक्ष्य निर्धारित कर दिये हैं। पर सभव है कि जबतक हम उन लक्ष्यों तक पहुंच न जाय तबतक उनके अनुरूप आचरण न कर सकें। उदाहरणस्वरूप, मैंने उन्हें बताया कि यद्यपि गांधीजी ने अपनी पुस्तक में अस्पतालों की आलोचना की है, फिर भी उन्होंने लाजपतराय और सी०आर० दास द्वारा बनाये गए अस्पतालो का उद्घाटन किया। लार्ड जेटलैंड बोल उठे, "और खुद श्री गाधी ने भी तो अपना आपरेशन कराया था।" मैंने कहा, 'आपको उनके व्यावहारिक होने मे कोई शंका नही करनी चाहिए। वह मात्रा नही, गुण देखते हैं। वह तो भावना के भूखे हैं।" लार्ड जेटलैंड ने कहा, "मुझे आपकी बात बहुत पसन्द आई। मुझे गलतफहमी से नफरत है। जब मैं कलकत्ते मे था तो मेरी समझ मे नही आता था कि गलतफहमी हो ही क्यो। अग्रेजों को कांग्रेस के बारे मे कुछ गलतफहमियां हो गई हैं। ऋण न चुकाने की और इसी प्रकार की अन्य बातो ने उन्हें भयभीत कर दिया है। आशका की यह भावना सिर्फ सरकार के विरोधियो तक ही सीमित नही है, समर्थकों ने भी अपने निजी पत्रो मे लिखा है कि वे लोग (अर्थात् भारतवासी) बडा खतरनाक काम कर रहे हैं।" लार्ड जेटलैंड चाहते थे कि भारत मे रहने वाले उनके मित्र इस बात को समझने की चेष्टा करें कि उन्हे भारतीय शासन बिल को पास कराने मे कैसी-कैसी कठिनाइयो का सामना करना पडा है। मैंने कहा कि मैं यह बात भारतवासियो को तभी समझा सकता हूं जब उसके अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो। "हमसे न मिलिये" की नीति से सारा वातावरण दूषित हो गया है।

मैंने क्वेटा वाले मामले का उदाहरण दिया। गांधीजी और लार्ड विलिंग्डन के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह उस समय उनके सामने था। मैंने उसके सम्बन्धित अंशो को पढा और उनसे कहा कि देखिये, दोनो रुखो मे कितना अन्तर है। उन्होंने इसे महसूस किया और कहा, "अब क्या किया जाय?" मैंने उत्तर दिया, "वैसे गांधीजी और लार्ड विलिंग्डन की मुलाकात निरर्थक सिद्ध होगी, फिर भी यह मुलाकात होनी अवश्य चाहिए, क्योंकि जबतक वाइसराय गांधीजी से नहीं मिल लेंगे तबतक गवर्नर लोग भी उनसे नही मिल सकते।" उन्होंने कहा,

चाहिए। इसलिए अब मैं पूरी तरह से उन्हीं के हाथों में हूं।

अब लोगो से जो बातचीत हुई, कुछ उसके सम्बन्ध मे कह दू। सबसे पहले मैंने उन्हें बताया कि भारतवासियो की यह कोई राजनैतिक चाल नही है, बल्कि सचमुच ही उनकी यह भावना है कि बिल आगे की ओर बढानेवाला नही, बल्कि पीछे की ओर हटाने वाला कदम है, जिससे अग्रेजो की पकड और भी मजबूत हो जाय। मेरी इस बात पर यहां के लोग चकित रह जाते है और उनकी समझ में नही आता कि भारतवासी ऐसा क्योकर सोच सकते हैं। दूसरे मैंने उन्हें बताया, "मैं इस बात को स्वीकार करता हू कि इस बिल को आप लोग सच्चे दिल से एक भारी प्रगति मानते हैं। यदि इन सुधारों के पीछे सद्भावना हो तो यह बिल सच-मुच ही भारी प्रगति सिद्ध हो सकता है। पर भारतवर्ष के ब्रिटिश अधिकारियों के व्यवहार में हमे इस भावना का अभाव दिखाई देता है। मेरा तो सदा से यह विश्वास रहा है कि असल चीज बिल की भाषा नही, बल्कि उसके पीछे छिपी भावना है। सद्भावना के बिना तो यह बिल एक बहुत ही प्रतिगामी कानून सिद्ध होगा।" मैंने कहा कि चूकि हर बात का अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल और गवर्नर करेंगे, इसलिए यदि वे अपने अधिकारो से काम लेने लगेंगे तो उनका शासन एक परले सिरे का स्वेच्छाचारी शासन बन जायगा। इसके विपरीत यदि वे वैधानिक राज्य-सत्ता के आदर्श को सामने रखकर काम करेंगे, और ये सब लोग इसी आदर्श की बात कहते हैं, तो इस बिल के द्वारा बहुत अच्छी शासन-व्यवस्था अस्तित्व मे आ सकती है। इसलिए सबकुछ इस बात पर निर्भर है कि बिल को किस भावना के साथ प्रकृत रूप दिया जायगा। मैंने यह बात स्वीकार की कि हमारे इग्लैंड वाले मित्रो के मन मे सद्भावना और सहानुभूति है, पर ये भावनाए समुद्र को पार नही कर पाई हैं, क्योकि भारत मे जिन लोगों के हाथ मे शासन की बागडोर है उनका आचरण यहा व्यक्त की गई भावनाओं के विपरीत है। मैंने एक बिलकुल ही हाल की क्वेटा वाली घटना का उदाहरण दिया। इसके बारे मे आपके और लार्ड विलिंग्डन के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह मैंने उन्हे दे दिया है और यह समझाने की चेष्टा की है कि आपके अनुरोध मे और लार्ड विलिंग्डन के उत्तर में कितना अन्तर है। मैंने कहा कि ऐसी परिस्थिति मे यह कैसे विश्वास किया जा सकता है कि आज जब हमे अपने दुखी भाइयों से ही मिलने की अनुमति नही दी जाती तब निकट भविष्य में ही हमे अधिक अधिकार क्योकर मिल सकेंगे ? भारत के इस दमनपूर्ण वातावरण के कारण ही हमे यह विश्वास करना पडता है कि नये सुधार हमे पीछे की ओर ले जायगे। सुधारों के प्रति एक दूसरे ही प्रकार की मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिए, जिससे उन्हें अमल मे लाया जा सके और हमारे यहा के हितैषियो की अभिलाषा की पूर्ति हो सके और मौजूदा कशमकश का हमेशा के लिए अन्त किया जा सके, यह जरूरी है कि तुरन्त ही भारत मे अपेक्षा-

कृत अधिक अच्छी भावना को उद्दीप्त किया जाय। मैंने उन्हें यह भी बताया कि मैंने दिल्ली मे यह भावना पैदा करने की चेष्टा की, पर असफल रहा। तीसरे, मैंने उनसे कहा कि मित्रता की इस भावना के अभाव मे इस बिल के द्वारा, सभव है, दोनों देशो में कटुता और भी बढ़ जाय। मैंने कहा कि वर्तमान वातावरण से तो चारो तरफ गैरजिम्मेदारी बढती जा रही है। सिविल सर्विस के लोग गैरजिम्मेदार और अनुशासनविहीन होते जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप मैंने खा साहब के मामले की चर्चा की और बताया कि किस प्रकार नीचे के अफसरो के खा साहब के खिलाफ उठ खड़े होने के कारण उस मामले में गृहमंत्री कुछ भी नही कर सके। आजकल तो भारत के सिविल सर्विस वालो का खयाल है कि उनका एकमात्र कर्त्तव्य कानून और शांति की रक्षा करना है, इसलिए जनप्रिय लोगों की ओर से जो भी सुझाव आये उनका विरोध होना ही चाहिए, चाहे वे अच्छे ही क्यो न हो। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओ मे उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होने के कारण वे सरकार के हरेक काम को सदेह की दृष्टि से देखते हैं। इसका परिणाम यही होगा कि दक्षिण-पंथी तो कमजोर पड़ते जायगे और वामपथी मजबूत होते जायगे। यदि स्थिति का सम्यक् ज्ञान न हुआ तो, सम्भव है, दक्षिण-पंथी भी सुधारों को निकम्मा बनाने मे लग जाय। वर्तमान परिस्थिति से मुसलमानो मे अनैतिकता फैल रही है, क्योकि वे समझते हैं कि वे चाहे बुरे-से-बुरा आचरण करें, उन्हें सरकार का समर्थन मिलता रहेगा। मैं यहा इन लोगों से कहता हूं कि इन कठिनाइयो के बावजूद गांधीजी ने इस बाढ मे वह चलने से इन्कार कर दिया है। "आप लोग उस आदमी की हत्या किये डाल रहे हैं, जो इस संसार में आपका सबसे बड़ा हितैषी है।" मैं इन लोगों को बताता हूं कि वर्तमान वातावरण के कारण इतनी अनैतिकता फैल रही है कि भारतवर्ष मे कोई रचनात्मक कार्य करना असम्भव-सा हो गया है। जनसाधारण की क्रयशक्ति मे वृद्धि करने की आवश्यकता पर अंग्रेज अर्थशास्त्री इतना जोर देते हैं, पर वैसा उस समय तक सम्भव नही होगा जबतक दोनो के बीच की खाई न पट जाय।

उधर शासक वर्ग का सारा समय कानून और शांति की रक्षा मे लगा रहे और इधर जनता का समय उससे मोर्चा लेने में बीते—यह बड़े ही परिताप की परिस्थिति है। इसलिए मैं यहां वालों से कहता आ रहा हू कि इस क्रम को बिलकुल उलट देना चाहिए। जो पहला कदम उठाया जाय वह हो व्यक्तिगत सम्पर्क की स्थापना। दूसरा काम यह हो कि गवर्नर जनरल और गवर्नरो के पद संभालने के लिए अच्छे-से-अच्छे आदमी भेजे जायं, जिससे मंत्रियों और गवर्नरो के बीच संघर्ष की सम्भावना ही नष्ट हो जाय। मैं इन लोगो से यह भी कहता आ रहा हूं कि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सरकार का संचालन करने या शासन के यन्त्र को योग्यतापूर्वक चलाते रहने में कांग्रेस को कोई दिलचस्पी नही है। यदि

कांग्रेस पद-ग्रहण करेगी तो कुछ रचनात्मक कार्य करने के लिए। छंटनी, ग्रामोत्थान, स्वास्थ्य-सुधार, सफाई, शिक्षा का विस्तार, करों में इस प्रकार का सन्तुलन कि गरीबों का बोझ कम और अमीरों का बोझ अधिक हो, अधिक भारतवासियों को नौकरी, उद्योग-धंधों में सहायता, महाजनी, जहाजरानी और बीमा-व्यवस्था को प्रोत्साहन, सैन्य विभाग के राष्ट्रीयकरण और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति की दिशा में अटूट प्रगति—बस, केवल ऐसी कार्य-योजना कांग्रेस को सुधार अमल में लाने के लिए आकर्षित कर सकती है।

मेरी बातों के उत्तर में वे लोग कहते हैं, "आप कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जितना भी अधिकार देना चाहते हैं वे सब तो उन्हें बिल के द्वारा प्राप्त हो ही जायंगे। इस बिल को लेकर हमारे विरोधियों की तो कौन कहे, समर्थकों तक में कितनी हलचल मच गई है, इसका आप लोग अन्दाजा तक नहीं लगा सकते। विरोधियों ने तो विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था और बिल को आत्मसमर्पण का कार्य बताया था। उधर समर्थकों ने बिल का समर्थन किया तो केवल पार्टी के प्रति वफादारी की खातिर, फिर भी भीतर-ही-भीतर वे हमें चेतावनी-पर-चेतावनी देते रहे कि बिल से ब्रिटेन के शासन पर बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ेगा।" इन लोगों का कहना है, "बाल्डविन, होर और हेलीफैक्स को इस बिल के पास कराने में बड़े साहस से काम लेना पड़ा है, इसलिए यदि हम लोग उनके और भारत के दूसरे हितैषियों के साहस की सराहना न करें, उनके दल के त्याग और मैत्री के बन्धन को भुला दें और इस बिल को लेकर उनके स्वास्थ्य पर जो जोर पड़ा उसकी ओर से आंखें मूंदे रहें तो यह घोर अन्याय की बात होगी। इससे अधिक निर्दयता की बात और क्या हो सकती है कि यह कहा जाय कि सब कुछ भारत पर ब्रिटेन की पकड़ को और भी मजबूत करने के लिए किया गया है? इसकी जरूरत ही क्या थी? क्या पकड़ ढीली थी? भारतवासियों के हाथों में कितना बड़ा अधिकार सौंपा गया है इसकी आप कल्पना तक नहीं कर सकते हैं। अंग्रेजी सत्ता का अंत हो रहा है। अधिकार एक बार दे देने के बाद उसे फिर कोई वापस नहीं ले सकता, और अधिकार दिया जा चुका है। यह ठीक है कि बिल से ऐसा लगता है मानो सारे अधिकार गवर्नरों और गवर्नर जनरल के हाथों में सुरक्षित कर दिये गए हों, किन्तु क्या ऐसी ही स्थिति इंग्लैंड में राजा और सामन्त सभा की नहीं है? जो संरक्षण रखे गये हैं वे आपके ही हित में हैं। कौन इतना बेवकूफ होगा जो आपके मामले में दखल देगा? हम लोग विधान भीरु जाति हैं और इंग्लैंड के किसी भी दल को यह बात सहन नहीं होगी कि कोई गवर्नर या गवर्नर जनरल किसी मंत्री के मामले में हस्तक्षेप करे। हां, कोई मंत्री अराजकता या अशान्ति फैलाना चाहता हो तो बात दूसरी है। अब केवल एक चीज रह जाती है, जिसके [illegible] वह है सैन्य विभाग पर अधिकार; पर यदि

आपने शासन-यंत्र पर पूरी तरह से काबू पा लिया और समझदारी के साथ काम लिया तो आपको इस लड़ाई को लड़ने और जीतने मे कोई कठिनाई नही पड़ेगी। निर्देशविधि (इन्स्ट्रूमेंट आफ इंस्ट्रक्शन्स) में दिया हुआ है कि सैनिक मामलो में मंत्रियों के साथ मिलकर सलाह की जाय। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने कभी शासन-यन्त्र को चलाने का काम नही किया है, इसलिए वे इस बात को नही समझ रहे हैं कि संरक्षण तो भवन को सुरक्षित रखने के लिए सिर्फ ताले-कुंजी का काम करेंगे। जो कोई उसके भीतर जाकर उसमें रहना चाहेगा उसके मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नही होगी। आप तो ग्रामोत्थान और शिक्षा आदि जैसी छोटी-छोटी बातों की चर्चा कर रहे हैं, पर अब तो समूची सरकार ही आपकी होगी। आपको तो अपनी नीति निर्धारित करके विधान सभा के सदस्यों को अपने साथ रखना है, फिर आप जो भी कार्य-योजना चाहें, अमल में ला सकते हैं। (इन लोगों को यह बताना बेकार है कि सरकारी आय का ८० प्रतिशत भाग तो पहले से ही सैनिक कार्यों और ऋणों के मद्दे लिख दिया गया है। इस समय इस सवाल को आगे बढ़ाना निरर्थक होगा।) आपकी योजनाओं मे कोई भी दखल नही देगा।"

भारत के मौजूदा वातावरण के सम्बन्ध मे उनका कहना है, "हम अवस्था को पूरी तरह से समझते हैं, पर उसके सम्बन्ध मे पहले कुछ करना-धरना सम्भव नही था। हम यहां से कोई भी ऐसी बात नही कह सकते थे जिससे कट्टरपंथियो के आन्दोलन को उत्तेजना मिलती। श्री बाल्डविन, लार्ड हेलीफैक्स और सर सेम्युअल होर-जैसे अनुदार दलवालो के लिए एक अनुदार दलीय पार्लमिट मे, जहा कट्टरपथी लोग उन्मत्त साडों की तरह लड़ रहे थे, इस बिल को पास कराना कोई आसान काम नही था। हम चाहते हैं कि ये सब बातें आप भारतवर्ष मे अपने मित्रों को समझा दें। यह तो ठीक है कि कोई दूसरा वाइसराय होता तो शायद वातावरण अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता। जो हो, वाइसराय और गाधीजी की एक-दूसरे के साथ पटरी नही बैठी। पर अब जब बिल पास हो गया है, लोगों की मनोवृत्ति मे सुधार करने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा। हम यह स्वीकार करते हैं कि बिल की धाराओं से भी अधिक महत्त्व की बात है लोगों की मनोवृत्ति। यदि सम्भव हो तो हमे गाधीजी को अपनी ओर करना चाहिए। इस मामले में हम आपसे पूरी तरह से सहमत हैं। सवाल सिर्फ यही है कि यह कैसे किया जाय ?"

इन लोगों की नेकनीयती से भरी बातों से मैं बड़ा प्रभावित हुआ हूं। जब जेटलैंड, बटलर, लोदियन और फिन्डलेटर स्टीवार्ट-जैसे लोग इस ढंग की बातें करते हैं और हमे आश्वासन देते हैं कि संरक्षण मंत्रियों के कार्य-कलाप में हस्तक्षेप करने के लिए नही रखे गये हैं, तब यह विश्वास क्योकर न किया जाय कि वे ये

बातें सच्चे हृदय से कह रहे हैं ? मैं यह नही मान सकता कि ये सारी बातें कोरी भावुकता-मात्र हैं। अपने व्यापारी कामकाज मे मैं कभी मीठी-मीठी बातों के धोखे मे नही आया, इसलिए यदि मैं इन लोगो के सद्व्यवहार और वक्तृता के प्रवाह मे बह जाऊं तो मेरे लिए बड़े आश्चर्य की बात होगी। फिर भी सारी बातो का निर्णय आप स्वयं ही करिये, क्योंकि यदि मुझे धोखा हुआ हो तो भी मैं इन लोगो से इसके सिवाय और कुछ नही कह रहा हूं कि इन्हे आपके साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और सुधारों को अमल मे लाने के लिए कोई समझौता कर लेना चाहिए। इन लोगों से मेरी जो बातचीत हुई, मैंने जिन-जिन बातों पर जोर दिया, और उन्होंने जो उत्तर दिया, उसका सार मैंने आपको बता दिया। आशा है, यह सब व्यर्थ नहीं जायगा।

नीचे कुछ सवाल और अपने उत्तर दे रहा हूं। इनका अपना महत्त्व है, क्योंकि ये उन लोगों की ओर से आये हैं जिनकी बात यहां चलती है :

१. प्रश्न—हम किसके साथ समझौता करें ?

उत्तर—मुसलमानो का तो कोई सवाल ही नही उठता, क्योकि वे सुधारों के विरोध में नही हैं। हम उन्हें उनके अधिकारो से वंचित नही करना चाहते। उदार दल वालो के पीछे जनता का बल नहीं है, इसलिए उनके सम्बन्ध मे चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। कम्युनिस्टों को बाद दे देना चाहिए, क्योकि वे तो कांग्रेस का ही एक अंग हैं। किन्तु यदि उन्हें अलग माना जाय तो उनपर ध्यान देने की आवश्यकता नही है, क्योंकि अपने दृष्टिकोण के मामले में वे समझौता करने के इच्छुक नही हैं। इसलिए जो एकमात्र संस्था रह जाती है वह है कांग्रेस, और कांग्रेस से बातचीत करने का मतलब है गांधीजी से बातचीत करना, क्योंकि अकेले वही ऐसे व्यक्ति हैं, जो समझौते को मूर्त रूप दे सकते हैं।

२. प्रश्न—क्या गांधीजी समझौते को मूर्त रूप दे सकेंगे ?

उत्तर—हां।

३. प्रश्न—समझौते की शर्त क्या होगी ?

उत्तर—पारस्परिक विश्वास और मित्रता ही उसका आधार होना चाहिए। विधान पर इस तरह अमल करना चाहिए कि उससे भारत की उन्नति हो और हम औपनिवेशिक स्वराज्य की ओर बढ सकें। (इसपर वे कहते हैं कि औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा मित्रता कोई ऐसा पदार्थ नही है, जिसे कोई कानूनी कागज-पत्र जन्म देगा। उसकी प्राप्ति तो कठोर परिश्रम के बाद ही सम्भव है और उसे पाने के लिए ब्रिटेन से भी अधिक भारत को चेष्टा करनी होगी। फिर भी वे इस बात का आश्वासन देते हैं कि इस दिशा में वे सदा हमारी सहायता करेंगे।)

४. हमें समझौता या संधि-जैसे शब्दों से अरुचि है।

ये लोग कहते हैं कि इस समय इंग्लैंड मे इन शब्दों के प्रति बड़ी दुर्भावना

है। दोनों पक्षवालों की बद्धमूल धारणाओं को ध्यान में रखना ही होगा। इसका उत्तर मैं यों देता हूं: "यदि सार वस्तु मिल जाती है तो मैं शब्दों को लेकर नहीं झगड़ूंगा। क्या आप एन्थनी ईडन को फ्रांस, इटली और दूसरी जगहों पर इसलिए नहीं भेज रहे हैं कि वे दिल खोलकर बातचीत करके आपसी समझौता करें? क्या आप इस समय भी आयरलैण्ड से समझौते की बातचीत नहीं चला रहे हैं?" इसका वे जवाब देते हैं। "मान लीजिये कि व्यक्तिगत सम्पर्क और समझौते के बाद हमारी ओर से यानी राजा की ओर से, पक्की घोषणा कर दी जाय और कांग्रेस उसका उत्तर दे, तो?" मेरा जवाब यह है: "यदि दोनों पक्ष कर्त्तव्यों के बारे में एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझ लें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।" मेरा उनसे कहना है कि समझौता उन्हीं के हित में अच्छा होगा, क्योंकि उससे दूसरा पक्ष बंध जायगा। फिर भी जब तक अभिप्राय को ठीक समझने की भावना मौजूद है तबतक मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

५. प्रश्न—गांधीजी से मिले कौन?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है कि पहल वाइसराय को करनी होगी, क्योंकि जबतक वह ऐसा नहीं करेंगे तबतक दूसरे लोग गांधीजी से बातचीत नहीं कर सकेंगे। पर वाइसराय की भेंट से ही प्रयोजन उतना सिद्ध नहीं होगा; किसी और को भी गांधीजी को अपने हाथ में लेना होगा। इसके लिए मैं एन्डरसन का नाम सुझाता हूं।

प्रश्न—इमर्सन[1] के बारे में आपकी क्या राय है? क्या वह गांधीजी को पसन्द हैं?

उत्तर—कह नहीं सकता। लोग कहते तो हैं कि वह बहुत अच्छे आदमी हैं।

६. प्रश्न—क्या गांधीजी व्यावहारिक हैं?

उत्तर—हेलीफैक्स, होर, स्मट्स और फिन्डलेटर स्टीवार्ट का हवाला काफी होगा। मैं खुद व्यापारी हूं, इसलिए मैं किसी कोरे भावुक आदमी के पीछे कभी नहीं लगता।

७. प्रश्न—श्री गांधी से मिलने के बाद और हमारी ओर से घोषणा हो जाने पर क्या गांधीजी यह घोषणा कर सकेंगे: "ये सुधार अच्छे नहीं हैं, इनमें वह बात नहीं है, जो मैं चाहता हूं, पर रचनात्मक कार्य के लिए मुझे सद्भावना और सहायता का आश्वासन दिया गया है, इसलिए अपने देश की सहायता करने के लिए मैं इन्हें कुछ समय तक कसौटी पर कसकर अवश्य देखूंगा।"

उत्तर—हां, वह ऐसा उत्तर दे सकते हैं। मुझे इसकी बड़ी आशा है, बशर्ते

---

१. सर हरबर्ट इमर्सन, जो १९३३ से १९३८ तक पंजाब के गवर्नर थे।

कि आपको उनसे व्यवहार करने का ढंग मालूम हो। अगर आप उनसे ईमानदारी का बरताव करें, उनके सामने अपना हृदय खोलकर रख दें और उन्हें अपनी सारी कठिनाइयां बतलावें तो वह अवश्य आपकी सहायता करेंगे।

८. इसपर वे लोग कहते हैं, "श्री गांधी के बारे में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यद्यपि भारत की ६० प्रतिशत जनता उन्हें आदर और प्रेम की दृष्टि से देखती है तथापि उनकी कोई वैधानिक स्थिति नहीं है। हम अंग्रेजों को ऐसे आदमियों के साथ व्यवहार करने की आदत पड़ी हुई है, जिनकी कोई वैधानिक स्थिति होती है।"

इस पर मैं कहता हूं, "तो क्या आप तबतक प्रतीक्षा करेंगे जबतक गांधीजी मन्त्री न बन जाय ? तब तो इसके लिए आपको प्रलय काल तक बाट जोहनी होगी।"

तब मुझसे कहा जाता है, "दुर्भाग्यवश श्री गांधी और वाइसराय के मिलन ने दो विरोधी नेताओं के मिलन का रूप ले लिया है।"

इसपर मैं जवाब देता हू, "यह सब आपका ही किया हुआ है। गाधीजी लार्ड चेम्सफोर्ड से मित्र की तरह मिले थे, और बाद में समझौता होने से पहले लार्ड रीडिंग और लार्ड अरविन से भी इसी प्रकार मिले थे।"

९. प्रश्न—क्या आप नये वाइसराय के जाने तक नहीं रुक सकते ?

उत्तर—तबतक बहुत देर हो जायगी।

मुझे उम्मीद है कि इन सवालों से आपको इस बात का आभास मिल जायगा कि यहां हवा का रुख किधर है।

अब कुछ लार्ड हेलीफैक्स, बटलर और लार्ड डरबी के बारे में सुन लीजिये। बटलर ने मुझसे जान-बूझकर पूछा कि भारतवर्ष में लार्ड हेलीफैक्स के बारे में लोगों के कैसे विचार हैं ? मैंने कहा, "लोग अब भी उनसे प्रेम करते हैं, पर हमारा खयाल है कि उनकी वह प्रतिष्ठा नहीं रही है, भारतीय मामलों में अब उनका कोई प्रभाव नहीं रह गया है और भारत में रहने वाले अंग्रेजों को तो वह बिलकुल ही अप्रिय हैं।" उन्होंने कहा, "मैं आपका भ्रम दूर करना चाहता हूं। यह बात बिलकुल गलत है कि उनकी प्रतिष्ठा जाती रही है। उनका बड़ा प्रभाव है और वह भारत को भूले नहीं हैं। भारत को तो उन्होंने अपने जीवन का एक मिशन बना लिया है।"

श्री बटलर का दृष्टिकोण व्यापक है और वह बहुत ही योग्य और बुद्धिमान व्यक्ति हैं। उनमें जातीय भेदभाव या बड़प्पन की भावना लेशमात्र भी नहीं है। हम लोग अंग्रेजों की नेकनीयती पर सन्देह करते हैं, इससे उन्हें बड़ा दुःख होता है। वह मुझे हर प्रकार की सम्भव सहायता दे रहे हैं। पर अब तक मैं जितने लोगों से मिला हूं, उन सबमें लार्ड डरबी का व्यक्तित्व सबसे आकर्षक है। वह तकल्लुफ

से दूर रहते हैं। जब मैंने उनसे मिलना चाहा तब मुझे अपने घर बुलाने के बजाय वह स्वयं मुझसे मिलने के लिए फौरन मेरे होटल में चले आये। मैं जिनसे भी मिलना चाहूंगा उनसे वह मेरी मुलाकात की व्यवस्था करा देंगे। उन्होंने कहा है कि जब कभी जरूरत हो, टेलीफोन कर दिया कीजिये, मैं या तो स्वयं आपके पास आ जाया करूंगा या आपको बुला भेजूंगा। उन्होंने मुझसे पितृवत् स्नेह के साथ बातचीत की। मुझे तो यह बहुत ही अच्छे लगे।

मैं समझता हूं कि अब पत्र लिखने की बारी आपकी है। आपको जो कुछ कहना हो लिखकर मेरे आदमी को दे दीजिये और वह उसे मेरे पास दिल्ली से हवाई डाक से भेज देगा। मुझे आशा है कि यहां मैं आपका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर रहा हूं। यहां के वातावरण में जो सचमुच की गलतफहमी फैली हुई है उसे हटाने के लिए मुझे भारी प्रयास करना पड़ रहा है। जब क्वेटा से महादेवभाई का पत्र मिला तब मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। वहां और यहां के वातावरण में कितना भारी अन्तर है! भारतवर्ष में रहते हुए मैं इस अन्तर को नहीं समझ पाता था। मैं समझता हूं कि अधिकांश दोष मशीनरी का है और यद्यपि यहां काफी सहृदय और नेक लोग हैं तथापि मुझे मशीनरी के चलने में शंका है। मैं तो, बस, इतना ही कह सकता हूं कि मशीनरी के कल-पुर्जों में भरपूर तेल डाल दिया जायगा। मुझे आपके हरेक काम में गलतफहमी को दूर करने की चेष्टा दिखाई देती है। इस क्षोभकारी वातावरण में ऐसा करना अकेले आपही के लिए सम्भव है। एक प्रतिष्ठित मित्र का कहना है, "हम लोग वैधानिक कार्य-प्रणाली के अभ्यस्त हैं। जबतक लायड जार्ज पदासीन रहे तबतक वह बहुत बड़े आदमी थे पर अब जबकि वह अपने पद पर नहीं हैं, हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकते और न उनके विचारों पर अमल ही कर सकते हैं, चाहे हम उनका या किसी भी दूसरे आदमी का कितना ही सम्मान क्यों न करते हों। आपको यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि श्री गांधी किसी पद पर नहीं हैं। जब आपकी अपनी सरकार हो जायगी तब बात कुछ और ही होगी। सिविल सर्विस वाले तो आपके दाम-मात्र होंगे। फिलहाल ऐसा मुमकिन नहीं है। यह परिवर्तन कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी, क्योंकि सिविल सर्विस वालों को तो केवल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना सिखाया जाता है।" इस समय तो मैं इस बात की प्रतीक्षा में हूं कि सर फिण्डलेटर स्टीवार्ट मुझसे अगला कौन-सा कदम उठाने को कहते हैं।

जुलाई के महीने में मैं बहुत ही व्यस्त रहा। प्रारम्भ मंत्रिमंडल के प्रधान श्री रैमसे मैक्डानल्ड की भेंट से हुआ। उन्होंने उन्हीं दिनों प्रधान मंत्रित्व का भार श्री बाल्डविन को सौंपा था। उनसे जो बातचीत हुई, उसके कुछ नोट नीचे देता हूं:

बातचीत ३५ मिनट तक जारी रही। उन्होंने पूछा, "भारत कैसा है?" मैंने उत्तर दिया, "बड़ा दुःखी है।" वह बोले, "सभी दुःखी हैं।" मैंने कहा, "पर हमारी

बात जुदा है। आपने हमे एक शासन-विधान दिया है, जिसके बारे में आपकी धारणा है कि वह सचमुच प्रगतिपूर्ण है और हमें हमारे लक्ष्य स्थान तक ले जायगा, जबकि हम समझते हैं कि यह एक पीछे की ओर ले जाने वाला कदम है, जिससे शिकजा और भी कस जायगा। हमारी यह धारणा भारत-व्यापी वातावरण के कारण है। हम लोगो के साथ कोढ़ियो-जैसा अविश्वासपूर्ण व्यवहार किया जाता है। आप लोग सहानुभूतिपूर्ण व्याख्यान झाड़ते हैं, पर उनसे हमारा कोई भला नही होता। हम लोग चाहते हैं सहानुभूतिपूर्ण कार्य। मानवीय सम्पर्क का पूर्णतया अभाव है। हम लोग जब कभी किसी अच्छे काम के लिए सहयोग देने की तत्परता प्रकट करते हैं, इन्कार कर दिया जाता है, और हमे नीचा दिखाया जाता है, और ऐसे वातावरण मे आप लोग चाहते हैं कि हम सुधारो की सराहना करें! यह स्वाभाविक ही है कि हम इन सुधारो को और आपकी नीयत को सशय की दृष्टि से देखें। आप जमीन को भली प्रकार जोते बिना और सिंचाई का समुचित प्रबन्ध किये बगैर बीज बखेर रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है कि आपको फसल से वंचित होना पड़े।"

उन्होंने कहा, "आपका कहना बिलकुल ठीक है। मानवीय सम्पर्क अत्यावश्यक है। पर कठिनाइया नही हैं, ऐसी बात नही है। वाइसराय स्वय एक अच्छे आदमी हैं, और श्री गाधी भी अच्छे आदमी हैं, पर वे एक-दूसरे के साथ मिल-बैठ नही सकते। दोनो दो प्रकार की सुन्दर गतों के समान हैं, उन्हें अलग-अलग निकाला जाय तो दोनो कर्ण-प्रिय लगेंगी, पर यदि दोनों को एक साथ निकाला जाय तो सामजस्य का नितान्त अभाव सिद्ध होगा। बस, यही मुश्किल है। अब यही देखना है कि अगला वाइसराय कौन होगा"। "कौन होगा?" मैं मुस्कराकर बोला, "आप यह सवाल मुझसे कर रहे हैं?—मुझसे, जिसे गुप्त बातो का कुछ भी पता नही है? मैं इस प्रश्न का उत्तर कैसे दे सकता हू? पर अन्य लोग लार्ड लिनलियगो, बंगाल के गवर्नर लार्ड लोदियन और लार्ड पर्सी का नाम लेते हैं। आपका और होर का नाम भी लिया जा रहा है।" अब वह कुछ गम्भीर भाव से बोले, "देखिये, एक प्रान्तीय गवर्नर तो वाइसराय हो ही नही सकता। लोदियन का प्रश्न ही नही उठता है। रहा मैं, सो यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक रहता तो मैं अवश्य जाना चाहता, पर ऐसी बात नही है। आपको पता ही है कि मैं भारत से कितना प्रेम करता हूं। मैंने ही गोलमेज परिषद् के सिद्धान्त को जारी रखवाया था। जब सरकार बदली तो मेरी एक शर्त यह भी थी कि इस प्रश्न को योंही न छोड़ दिया जाय, बल्कि गोलमेज-सिद्धान्त मे नये प्राणों का सचार किया जाय। हा, यह बात दूसरी है कि परिषद् पहले की अपेक्षा कम बड़ी हो। हमें सहानुभूतिपूर्ण श्रीगणेश करना चाहिए। अनेक व्यक्ति चाहते हैं कि संरक्षण तुरन्त अमल मे आवें। यदि कांग्रेस के साथ छिड गई तब तो संरक्षणों को महत्त्व प्राप्त होगा, अन्यथा यहां कोई

संस्थाओं से काम लेना नहीं चाहता है। यदि कांग्रेस ने [illegible] शासन-विधान का निषेध करने के इरादे से किया तो अनुदार दलवालों के मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे। हां, हमें भी इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि प्रारम्भ सहानुभूतिपूर्ण ढंग से हो। आप स्वभावतः एक उदार-चेता हैं। आपको संतोषपूर्वक उद्घाटन का विधान करना है, आपको हमसे भी इस बात का वचन लेना चाहिए कि हम सहानुभूति-पूर्ण ढंग से कार्य करेंगे। मैं आपसे इस मामले में बिलकुल सहमत हूं कि वैसा वाता-वरण उत्पन्न करने के लिए कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है।"

मैंने कहा, "मैं जो कुछ कहना चाहता था वह आपने और भी सुन्दर ढंग से कह दिया।" इसके बाद वह अपनी विचारधारा क्रमानुसार ही शब्दों द्वारा व्यक्त करने लगे। उनकी दृष्टि छत की ओर लगी हुई थी। बोले, "यह सब-कुछ कैसे किया जाय, यही एक प्रश्न है। अभी हमने श्रीगणेश भी नहीं किया है। यह एक उतनी ही बड़ी समस्या है जितनी अपने नये दफ्तर में कमरों का पता लगाने की। मैं रास्तों और कोनों से बिलकुल अपरिचित हूं और इस नई इमारत की शनैः-शनैः जानकारी हासिल कर रहा हूं। पर आपकी समस्या स्थायी तो है नहीं। हां, काफी बड़ी अवश्य है। उसका सामना तो करना ही होगा। न करना मूर्खता का काम होगा। पर मैं यह नहीं जानता कि आपकी मदद कैसे करूं। सोच रहा हूं कि आगामी शरद ऋतु में भारत जाकर भी गांधी से मिलूं। मैं विमान के लिए और एक परमिट भी हैलिफैक्स से पा सकता हूं। मेरे जाने के मार्ग में कठिनाइयां अवश्य हैं, पर मेरी इच्छा यही है कि जाऊं। मैं मौके की तलाश में रहूंगा। यदि गया तो अपने मित्र श्री गांधी से अवश्य मिलूंगा। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है कि लोग क्या सोचेंगे। यदि मैं उनसे मिला तो मैं जानता हूं कि काम आसान तब हो जायगा। पर फिलहाल मुझे प्रकाश दिखाई नहीं दे रहा है। मैं अभी-अभी भारी कार्य से अलग हुआ हूं और मुझे नींद न आने की अभी तक शिकायत है। अपना नया घर ठीक कर रहा हूं। मेरे नये घर में अव्यवस्था और गड़बड़ का राज्य है। न कोट टांगने के लिए खूंटी है, न पुस्तक रखने के लिए अल्मारी। आप शायद जानते ही होंगे कि मैं घरेलू आदमी हूं। घर को ठीक-ठीक करने में एक सप्ताह लगेगा, इसके बाद इन चीजों की ओर अधिक ध्यान दूंगा। पर फिलहाल मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि मैं किस प्रकार सहायता कर सकूंगा।" उन्होंने बातचीत के दौरान तीन बार भारत जाने की इच्छा को दुहराया, और जब मैंने कहा कि यदि वह न जा सकें तो कोई और आदमी ही गांधीजी से बात करे। बंगाल के गवर्नर बात क्यों न करें? उन्हें बंगाल के गवर्नर पद पर रखा था, क्योंकि वह भी स्काटलैंड के निवासी थे। मैंने कहा, "पर आपको सहायता तो करनी ही होगी। आप मंत्रि-मण्डल के सदस्य हैं, आप बहुत-कुछ कर सकते हैं।" उन्होंने पूछा, "क्या आपने इंडिया आफिस से बात की है?" मैंने कहा, "हां।" उन्होंने बताया कि लार्ड

जेटलैंड भले आदमी हैं। मैंने कहा, "सो तो है, पर मुझे पता नही कि उनमें होर-जैसा लौह संकल्प है या नही।" उन्होंने कहा, "होर को बिल का समर्थन करने के मामले में न्याय का विश्वास हो गया था। जेटलैंड पहले से ही भारत के साथ सहानुभूति रखते हैं, इसलिए संभव है, उनका समर्थन अपेक्षाकृत अधिक दूरस्थ हो। पर मैं कह नही सकता। जो हो, पहला कदम भारत-सचिव की ओर से ही उठाया जायगा। हमारे मंत्रिमंडल की बैठक सप्ताह मे एक बार दो घटे के लिए होती है, इसलिए जेटलैंड से अधिक मिलने का अवसर नही मिलता है। पर वह जब किसी चीज को उठायेंगे तो वह पूरी होगी ही। वह इस बात से पूरी तौर से सचेत हैं कि यदि सुधारों को अच्छी तरह समर्थन नही मिला तो उनकी ख्याति को बट्टा लगेगा। अतएव आपकी बात सुनने को बाध्य हैं।" मैंने कहा, "लार्ड जेटलैंड मेरे साथ सहमत हैं और फिन्डलेटर स्टीवार्ट मेरी काफी मदद करते हैं। पर अगले कदम की बात कोई नही उठाता है।" मैंने उन्हें बताया कि मैं अबतक कितने आदमियो से मिल चुका हू। उन्होंने कहा, "मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आपने अपनी पहुंच काफी दूर तक फैला रखी है। पर आप यह मत समझिये कि वे लोग अगले कदम की बात सोच नही रहे हैं। वे सोच तो रहे हैं, पर वे अभी कुछ कह नही सकते। वे आपकी बात तो सुनेंगे ही। आप भारत इस धारणा के साथ न लौटिये कि अगला कदम है ही नही। आपको सफलता मिलेगी। मैं भारत जा सकता तो बड़ी बात होती, पर इस बीच मैं यह सोचूगा कि आपकी किस प्रकार सहायता करूं। आप मुझसे एक बार फिर मिलिये।"

मैंने उन्हें बताया कि अपने नींद न आने के रोग से पीछा छुडाने के लिए मैंने क्या किया था। मैंने उन्हें अपनी खुराक मे परिवर्तन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, "मुझे एक मित्र डाक्टर की दरकार है, पर वैसे मुझे डाक्टरो मे आस्था नही है। मैं प्रतिदिन होर्डर के साथ नाश्ता करता हू, जिससे मुझे बड़ी सहायता मिलती है।" उन्होंने पुराने दिनों का जिक्र किया जब उन्होंने भारत जाकर खूब शिकार खेला था। उन्होंने कई पुराने व्य[illegible] भी चर्चा की जिन्होंने उनके साथ बडी शिष्टता का व्यवहार किया था।

मैं व्यक्तिगत सम्पर्क के प्रभा[illegible] हुआ था। अगले दिन मेरी [illegible] लिनलिथगो से हु[illegible] भोजन श्रीम[illegible] के [illegible] चाय श्री एटली और [illegible] ली, और [illegible] दल के सदस्यों [illegible] वाले भोज [illegible]

डेवीस, सेमोर [illegible]
चार्ल्स [illegible]

निकले। मैंने कहा, "आप लोग एक ओर हमारी नेकनीयती पर शक करते आ रहे हैं, दूसरी ओर यह चाहते हैं कि हम आपकी सहानुभूति पर विश्वास करें, और हर बार आप ही यह तय करते हैं कि हमारे लिए क्या अच्छा रहेगा। जब हम लोग कष्ट मे होते हैं तब भी आप ही निश्चय करते हैं कि इस परिस्थिति में हमारे लिए क्या अच्छा रहेगा।" एटली ने सरकारी दृष्टिकोण सामने रखा और कहा, "दोष दोनों पक्षों का है। आप लोगों ने १९३० मे, जबकि सरकार हमारी थी, मामले का निपटारा न करके भारी भूल की।" मैंने कहा, "आप हमें कोई बिल नही दे सकते थे, क्योंकि सामन्त सभा आपके रास्ते मे रुकावट डाल देती। आप मजदूर दल के सदस्य तो लम्बी-चौड़ी स्पीचें देना-भर जानते हैं। आप जो वादे करते हैं उन्हें पूरा करने का आपका इरादा बिलकुल नही है।" इससे कुछ लोग चिढ गये और मैंने बातचीत का रुख आर्थिक समस्या की ओर फेरा, पर यहा भी भारत का प्रसंग आ ही गया। मैंने कहा, "आप लोगों के रहन-सहन का स्तर विदेशी व्यापार और विदेशो में लगाई पूंजी के ऊपर निर्भर है। आप जानते ही हैं कि विदेशी व्यापार की मात्रा मे कमी होती जा रही है, और कभी वह समय भी आयगा जब आपको विदेशों मे लगाई पूजी से हाथ धोना पडेगा। तब क्या आप अपने रहन-सहन का स्तर आतरिक उत्पादन की सहायता से ही कायम रख सकेंगे?" उन्होंने कहा, "नही।" मैंने पूछा, "तो फिर आप अपना रहन-सहन सम्बन्धी स्तर और भी ऊंचा करने की आकांक्षा का मेल भारत की आत्मनिर्णय-सम्बन्धी अपनी माग के साथ कैसे बढा सकते हैं?" उन्हें इस असंगति का निर्देश कराया गया, सो उन्हें पसन्द नहीं आया। मैंने उन्हे कुछ ऐसी किंवदन्तियां सुनाईं, जो मैंने सुनी थीं। मैंने एक प्रमुख मजदूर नेता से पूछा कि उन लोगों ने श्री बेन को इंडिया आफिस मे क्यों रखा जबकि भारत के सम्बन्ध में उनका ज्ञान नही के बराबर था। मुझे बताया गया कि एक तीव्र बुद्धि के आदमी की यहां सर्विसो के साथ और वहां भारत सरकार के साथ झड़प हो जाती है। श्री मैकडानल्ड ने बड़ी चतुरता के साथ हरेक आफिस मे एक ऐसा आदमी रख दिया जो काम सुचारु रूप से चलाता रहे और सर्विसों के आगे हमेशा झुकता रहे। मुझे बताया गया कि जब सन् १९२४ मे लार्ड पासफील्ड ने अपने विभाग का चार्ज संभाला तो विभाग के सभी सिविलियनों को इकट्ठा करके कहा, "सज्जनो मैं जानता हू कि अबतक आप ही मालिक रहे हैं, और भविष्य में भी आप ही रहेंगे। इसलिए कामकाज बदस्तूर जारी रखिये।" एक अतिथि ने कहा, "बात सच्ची है। हम लोग जो कहते हैं उसे कर दिखाना सम्भव नही है। हमने गत परिषद् में तरह-तरह के प्रस्ताव पास किये। यदि उनपर अमल किया जाय तो सारे ससार की निधि समाप्त हो जाय।" श्री एटली को यह बात पसन्द नही आई और वह और भी चिढ गये। मैंने जो कुछ भी कहा उन्होंने उसी का खण्डन किया। उन्होंने कहा, "मजदूर दल

दाह के उपयुक्त होती है। मैं चाहता हूं कि शासन-विधान एक स्पंदनयुक्त शरीर हो। केवल पारस्परिक सम्पर्क और पारस्परिक समझौते के द्वारा ही ऐसे प्राणो का सचार हो सकता है।

वह पुनः सहमत हुए और उन्होने इस बात पर खेद प्रकट किया कि भारत की सिविल सर्विस और व्यापार में जो अंग्रेज हैं, वे इंग्लैंड के कोई बहुत अच्छे प्रतिनिधि नही हैं।

१६. इंग्लैण्ड की बड़ी-बड़ी आशाएं

मैं गाधीजी की ओर से प्रत्येक संभव प्रयास कर लेना चाहता था और इसलिए मैंने उन सभी आदमियो से भेंट की, जो सहायक हो सकते थे।

मैं भूतपूर्व भारत-मत्री सर आस्टिन चेम्बरलेन, जिन्होने वाइसराय का पद ग्रहण करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, कैंटरबरी के लाट पादरी, श्री बाल्डविन, 'टाइम्स' के सपादक ज्योफरी डासन, सर वाल्ट रलेटन, 'न्यु स्टेट्स-मैन' के श्री किग्सले मार्टिन, 'मैन्चेस्टर गार्जियन' के श्री बोर्न तथा अन्य लोगो से मिला। उस समय अनुदार दल के लोग सत्तारूढ थे। भारतीय शासन-विधान के निर्माता वही थे, और वे सभी हितैपिता का दम भरते थे। मजदूर दल के और नरम लोगो के सम्बन्ध मे भी यही कहा जा सकता था।

बाल्डविन लार्ड हेलीफैक्स के विशेष रूप से प्रशंसक थे। उनके सम्बन्ध में उनकी बडी ऊंची धारणा थी। यह स्पष्ट था कि लार्ड हेलीफैक्स के साथ मेरी जो मित्रता थी वह उनके निकट मेरी सबसे बडी सिफारिश थी। उनकी एक अजीब-सी आदत थी कि वह बिना किसी खास कारण के हर दो-तीन मिनट के अन्तर पर ठहाका मारकर हंस पड़ते थे। वह कहते थे कि पाच वर्ष तक प्रधानमंत्री की हैसियत से घोर परिश्रम करने के बाद अब वह थक गये हैं। हा, बीच-बीच में कुछ ऐसा समय भी अवश्य गुजरता है जब वह थकावट महसूस नही करते।

स्वर्गीय लार्ड सेलिसबरी के साथ मेरी बातचीत का विवरण इस प्रकार है.

"वृद्ध और बहरे। न अधिक सामर्थ्य है, न विशेष बुद्धि। पर अपने उत्तर-दायित्व की ओर से सचेत हैं। मुझसे पूछने लगे कि क्या मुझे गाधीजी प्रिय लगते हैं। मैंने कहा, "हा।" उन्होंने कहा कि उन्हें गांधीजी से मिलने का सुयोग कभी नहीं मिला। मैंने उन्हें बिल के प्रति उनके विरोध की यादे दिलाई और कहा कि

मैं भी बिल के खिलाफ ही हूं, पर अन्य कारणों से। मैंने कहा, "यह प्रगति अपर्याप्त है, पर क्या हम लोग राजनैतिक मतभेद के बावजूद बिल को सफल बनाने मे मित्रो की तरह आचरण नही कर सकते ?" उन्होने पूछा, "क्या हम इस समय मित्र नहीं हैं ?" मैंने कहा, "नहीं। इस समय भारत मे गलतफहमी और विरोध की भावना का वातावरण व्याप्त है।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं श्री गौर के सपर्क में आ चुका हू। क्या वह भारत का प्रतिनिधित्व नही करते हैं ?" मैंने कहा कि उन्हें व्यवस्थापिका सभा में जाने के लिए एक भी निर्वाचन-क्षेत्र न मिलेगा। वह बोले, "हां, यह मैं जानता हूं।" उन्होंने ठोस सुझाव मांगा। मैंने कहा, "हेलीफैक्स की भावना को पुनः जीवन दीजिये। उन्होंने कहा कि वह हेलीफैक्स से सहमत नही हैं, परन्तु हेलीफैक्स ने जो कुछ किया वह केवल हेलीफैक्स के लिए ही सम्भव था, अच्छे आदमी हैं। डर्बी भी अच्छे आदमी हैं।" पर उनके साथ पटरी नही बैठती है। मैंने कहा, "और इस पर भी आप मित्र बने रह सके हैं।" वह सहमत हुए और बोले कि राजनैतिक मामलो में सहमत हुए बिना भी वे मित्र बने रह सके।

उन्होने गांधीजी की साधुता, महान् चरित्र और सदाकांक्षाओं की सराहना की, पर साथ ही कहा, "सबसे बड़ी भूल की बात यही है कि आप भारतीय लोग सद्गुणों और अनुभव को एक समझ लेते हैं। इंग्लैंड को १००० वर्ष का अनुभव प्राप्त है। आप लोग इस मामले मे बिलकुल कोरे हैं।" मैंने कहा, "हमारी पृष्ठभूमि इंग्लैंड की अपेक्षा कही पुरानी और गौरवपूर्ण है।" उन्होने कहा, "मैं तो घटाकर नहीं कहना चाहता हू। आपकी सभ्यता और आपके दर्शन-शास्त्र किसी भी देश की सभ्यता और दर्शन-शास्त्रों से पुराने हैं, पर यह प्रजातन्त्र तो नही है। आप को अभी सीखना है।" मैंने कहा, "क्या आप लोगो ने भूलें नहीं की ?" उत्तर मिला, "हां।" मैंने कहा, "हम लोगो में कुछ चीजो का अभाव है, इसी कारण हम मैत्री की चर्चा चला रहे हैं।"

आदमी तो अच्छे हैं, किन्तु मैं तो नही समझता कि वह विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे।"

बात विचित्र-सी है, पर श्री विन्सटन चर्चिल की भेंट मेरा सबसे सुखद अनुभव था। वह भारत शासन-विधान बिल के सबसे बड़े विरोधी थे और उन्हें सदन में सरकारी पक्ष की ओर से आक्रमण करने की सुविधा प्राप्त थी। पर मैंने उन्हें आग उगलने वाला नहीं पाया। उन्होने मुझे अपने ग्राम्य निवास-स्थान चार्टवेल पर दोपहर के भोजन के लिए बुलाया। उस भेंट का ब्योरा यह है :

"बहुत ही असाधारण व्यक्ति हैं। निजी बातचीत में भी उतने ही ओजस्वी

नही है कि आप ब्रिटेन के प्रति कितने वफादार है, मुझे अधिक शिक्षा-प्रसार की भी चिन्ता नही है। पर जन-साधारण को मक्खन अवश्य दीजिये। मैं तो मक्खन का समर्थक हूं। जैसा कि फ्रांस के राजा ने कहा था—मुर्गी को हांडी में डालो। जी हां, मैं तो हमेशा मक्खन का हामी रहा हूं। गायो की सख्या में कमी करिये, पर उनकी नस्ल सुधारिये। हरएक खेतिहर अपना जमीदार हो। सबसे बढिया नस्ल को जिबह मत होने दीजिये। हरएक गांव के लिए एक सांड की व्यवस्था कीजिये। गांधीजी से कहिये कि जो अधिकार दिये जा रहे हैं, उन्हें काम में लावें और विधान को सफल बनावें। गाधीजी इग्लैंड मे थे उस समय मैं उनसे नही मिला था। अवस्था ही कुछ ऐसी भोंडी थी, पर मेरा लडका तो उनसे मिला ही। अब मैं उनसे मिलना चाहूंगा। मरने से पहले एक बार भारत जाने की साध है। यदि गया तो कोई छह महीने रहूंगा।"

उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या गाधीजी शासन-विधान का विध्वस करना चाहते हैं? मैंने कहा 'गांधीजी उदासीन हैं। उनका विश्वास है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता बिल्कुल हमारी चेष्टाओं के द्वारा ही प्राप्त होगी और राजनैतिक प्रगति हमारे ऊपर ही निर्भर करती है। अतएव वह जनता के उत्थान मे दत्त-चित्त हैं। शासन-विधानों मे उन्हें विशेष रुचि नही है।" वह सहमत हुए। पूछा कि यदि वह भारत गये तो क्या उनकी आवभगत की जायगी। मैंने कहा, "आप इस ओर से निश्चिन्त रहिये।" उन्होंने बताया कि जबतक लार्ड विलिंग्डन वहां हैं तबतक वह वहां नही जाना चाहते हैं, पर उनके चले आने के बाद वह अवश्य जाना चाहेंगे। बोले, 'भारत के प्रति मेरी वास्तविक सदाकांक्षा है। भारत के भविष्य के सम्बन्ध मे मैं सचमुच चिन्तातुर हूं। मेरी धारणा है कि भारत हमारे लिए भारस्वरूप है। हमे सेना रखनी पड़ती है। यदि भारत अपनी देख-भाल स्वयं कर सके तो हमे आनन्द होगा। आदमी का जीवन है ही कितना? मैं अधिक स्वार्थपरता से काम नही लूगा। यदि सुधार सफल सिद्ध हुए तो मुझे बेहद खुशी होगी। मेरी हमेशा से धारणा रही है कि पचास भारत हैं। अब आपको असली पदार्थ मिल ही गया है, आप उसे सफल बनाइये और यदि आपने ऐसा किया तो आप जब और अधिक की माग करेंगे, मैं आपका समर्थन करूगा।"

मैं वहा जो कुछ कहता रहा था उसका मैंने एक सक्षिप्त विवरण तैयार किया और उसकी प्रतिलिपि लार्ड हेलीफैक्स को भेजी, जिससे मेरे विचारों का स्पष्टी-करण हो जाय। वह विवरण इस प्रकार है:

"गांधी-अरविन समझोता भारत और ब्रिटेन को एकसूत्र में बाधने की दिशा मे एक बड़ा कदम था। उसने एक उदाहरण कायम किया। उसने अव्यवस्था फैला-कर राजनैतिक प्रगति करने के तरीके की जडों पर प्रहार किया और पारस्परिक

चर्चा और विश्वास के तरीके की स्थापना की, किन्तु उसके फलितार्थों को समझौते के रचयिताओ को छोड बहुत कम लोगो ने समझा। समझौते के कागज की स्याही भी मुश्किल से सूख पायी होगी कि दोनो ही देश से बाहर चले गये।[1] अगर वे दोनो भारत मे रहे होते तो समझौता जीवित रहता। काग्रेस के अनुयायी और सरकारी हलके इन दोनो ने ही समझौते को गलत समझा। कांग्रेसी लड़ना तो जानते थे, किन्तु यह नही जानते थे कि समझौता किस तरह किया जाता है। सरकारी हलकों ने यह कभी नही छिपाया कि उन्हें उत्तेजना फैलाने वालों से अरुचि है। उनसे चर्चा करने का अर्थ अपनी प्रतिष्ठा घटाना था। इसलिए समझौते ने अलग-अलग कारणों से दोनो पक्षों में असन्तोष पैदा कर दिया और दोनों ने ही उसे पहला अवसर मिलते ही दफना दिया।

इसके बाद दूसरा संघर्ष शुरू हुआ और आर्डिनेन्स राज चला। काग्रेस को दबा दिया गया। गाधीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया का दौर शुरू हुआ। गाधीवाद अपने विशुद्ध रूप मे अहिंसा, सचाई और कष्ट-सहन द्वारा अग्रेजो का हृदय-परिवर्तन करने में विश्वास रखता है। घृणा का उसमें कोई स्थान नही, ऐसा माना जाता है; किन्तु वातावरण घृणा से व्याप्त है, कारण सत्याग्रहियो ने गांधीवाद को उसके विशुद्ध रूप मे कभी अगीकार नही किया। उग्रपथियो ने उससे फायदा उठाया, किन्तु उसमे उनकी आस्था न थी। उनका लक्ष्य राजनैतिक स्वतन्त्रता-प्राप्ति है, साधनो की उन्हे चिन्ता नही है। इस प्रकार काग्रेस की हार ने एक नई शक्ति को जन्म दिया, जिसका सिद्धात ही दूसरा था।

आमरण-अनशन और अस्पृश्यता-विरोधी आदोलन के बाद स्थिति ने मूर्त रूप धारण कर लिया। उग्रपथियो को गाधीवाद की उपयोगिता मे सदेह होने लगा। वे वाम पक्ष की ओर झुक गये, जबकि लोकमत के एक अन्य महत्त्वपूर्ण अग को असेम्बली-बहिष्कार के औचित्य मे सन्देह होने लगा। इस समय गांधीजी ने महसूस किया कि ससदीय कार्यशीलता स्थायी बन चुकी है। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि कांग्रेस के अनुयायियो मे अहिंसा के वेश में हिंसा घुस आई है। इसलिए वह सविनय अवज्ञा आदोलन बन्द कर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक बुराइयों को दूर करने के काम में जुट गये। उन्होंने हरिजन-सेवा और ग्राम-सुधार का काम प्रारम्भ किया। इस प्रकार वह काग्रेस की शुद्धि करना चाहते थे। गाधीजी ने हमेशा यह माना है कि स्वराज्य भीतर मे आयगा, बाहर से नही। गांधीजी ने अनुभव किया कि अपने विचारों को लोगों पर लादा तो जा सकता है, किन्तु लोगों के लिए उनको पचाना कठिन होगा। इसलिए उन्होने

---

१. अरविन का कार्यकाल खत्म हो गया और वे इग्लैंड चले गये। गांधीजी गोल मेज परिषद् में शामिल होने विलायत चले गये थे।

अपने विचारों पर आग्रह करने की अपेक्षा कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता से अलग होना ही अच्छा समझा।

असेम्बली भग कर दी गई, इससे संसदीय मनोवृत्ति वाले दल को नया बल प्राप्त हुआ। उग्रपंथियों ने इसका विरोध किया, कारण उनकी यह धारणा थी कि उससे आम जनता का ध्यान कार्यक्रम से हट जायगा। किन्तु वे प्रतिरोध नही कर सके। चुनाव हुए। गृह मन्त्री कांग्रेस नेता श्री भूलाभाई देसाई की भावना और भाषणों से प्रभावित तो हुए, पर मानवीय सम्पर्क के दर्शन नहीं हुए। सरकार ने व्यक्तिगत सम्पर्क और पारस्परिक समझौते के महत्त्व को न पहचानकर एक अच्छा-खासा अवसर हाथ से गंवा दिया। असेम्बली के अधिवेशन के समाप्त होते-न-होते विरोधी पक्ष के भाषण अधिकाधिक उत्तरदायित्व-शून्य होते गये। कांग्रेसी सदस्यो ने वाइसराय की अतिथि-पुस्तिका मे हस्ताक्षर नही किये, जिससे लार्ड विलिंग्टन चिढ़ गए। खाई और भी चौडी हुई, उग्रपंथियों की शक्ति बढी। जब हाल ही मे जबलपुर-कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई और असेम्बली के काम का पर्यालोचन होने लगा तो इस वर्ग (कांग्रेस समाजवादी पार्टी) ने ससदीय कार्यशीलता में आस्था रखने वाले सदस्यो के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विद्रोह कर दिया। अनेक उग्र प्रस्ताव पेश किये गए और नाम-मात्र की जीत भी हासिल हुई। स्थिति को दक्षिणपक्ष वालो की, खासकर श्री राजगोपालाचार्य की, व्यवहार-कुशलता और बुद्धिमता के द्वारा ही सभाला जा सका। इस प्रकार दक्षिणपक्षीय कांग्रेसियो को दो शक्तियों से लडना पड़ रहा है: एक ओर तो सरकार से और दूसरी ओर समाजवादियो से। समाजवादी सीधा हमला कर रहे हैं। वे नेताओं को यह कहकर बदनाम करते हैं कि वे कुछ भी हासिल नही कर सके। सरकार दक्षिण पक्ष की उपेक्षा करके अप्रत्यक्ष रूप से समाजवादियों की सहायता कर रही है। इस प्रकार दक्षिण पक्ष दो शक्तियों के बीच कुचला जा रहा है। इसका परिणाम या तो यह होगा कि दक्षिण पक्षवाले हट जायंगे और समाजवादियो के लिए मैदान खाली छोड देंगे, या यह होगा कि वे लोकमत को अपने साथ रखने के लिए सुधारों के सम्बन्ध मे कोई उग्र कार्यक्रम अपनायगे। वर्तमान वातावरण का कांग्रेस के दक्षिण पक्ष पर यही प्रभाव पडा है। मुसलमानो पर यह प्रभाव पड़ा है कि वे यह मानने लगे हैं कि उनके बुरे कामों की ओर से भी आंखें मूद ली जायंगी। हाल ही मे मुलतान की एक सार्वजनिक सभा मे प्रस्ताव पास किया गया कि पैगम्बर की आलोचना करने के लिए अमुक हिन्दू को मौत के घाट उतार दिया जाय। पुलिस को इसका पता तुरन्त चल गया, किन्तु उस हिन्दू को नही बचाया जा सका और उसकी हत्या हो ही गई। यह स्थिति खतरनाक है और इसके परिणाम गम्भीर हो सकते हैं। जब सरकार कोई कड़ी कार्रवाई करती है, जैसा कि कराची मे किया गया, तो उसकी गम्भीर प्रतिक्रिया होती है।

इस वातावरण से सरकारी अमला भी अछूता नही रहा है। चाहे कैसा ही लोकप्रिय आदोलन हो, उसे शका और विरोध की भावना से देखने की मनोवृत्ति एक ऐसी बात है, जिसका भविष्य मे गम्भीर परिणाम हो सकता है। ऐसे वातावरण में रचनात्मक काम असम्भव हो जाता है। सरकार कानून और व्यवस्था कायम रखने मे जुटी है और लोग सरकार से मोर्चा लेने में संलग्न हैं।

और इधर सरकार ने विश्वस्त भारतीय नेताओं को क्वेटा न जाने देने का जो निश्चय किया है उससे सारे भारत मे रोप की लहर फैल गई है। वातावरण में पहले से ही खिचाव मौजूद था, इस निश्चय ने असन्तोष के एक नये कारण को जन्म दिया है।

भारत के नये विधान का सूत्रपात ऐसे ही वातावरण मे किया जायगा जबकि न व्यक्तिगत सम्पर्क मौजूद है, न पारस्परिक विश्वास।

इग्लैंड मे भारत के प्रति वास्तविक सहानुभूति और सद्‌भावना मौजूद है। यहां सबका हृदय से विश्वास है कि विधान के द्वारा वास्तविक प्रगति करने वाला कदम उठाया गया है, कि उससे भारतीयो को सचमुच भारी अधिकार मिलेंगे और भारत अपने लक्ष्य-स्थान तक पहुच सकेगा। इस नेकनीयती की अनुभूति इंग्लैंड में ही होती है, भारत उससे बिलकुल बेखबर है। भारत में इन प्रस्तावों को प्रतिगामी कदम समझा जाता है। इसका कारण यह है कि पारस्परिक विश्वास, मित्रता और व्यक्तिगत सम्पर्क के बिना कोई साझेदारी सम्भव हो सकती है, ऐसा विश्वास करने को कोई भी भारतवासी तैयार नही है। भारत के लोग शासन-विधान को पढ़ते हैं और उसकी शब्दश: व्याख्या करते है, तो उन्हें यही दिखाई देता है कि उसमें वाइसराय और गवर्नरों के हाथ मे कितने विशाल अधिकार सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। वे इस स्पष्टीकरण को केवल मित्रतापूर्ण वातावरण मे ही स्वीकार कर सकते हैं कि शोधक प्राधिकारी (corrective authority) की व्यवस्था सभी विधानों मे है।

यदि नये विधान को दोनों देशों के हित में सफलतापूर्वक अमल मे लाना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि वर्तमान वातावरण को बदलने के लिए तुरन्त कुछ-न-कुछ किया जाय। एक नई भावना को जन्म देना होगा, ऐसी भावना को जो अरविन-गाधी समझौते में व्याप्त थी।

समझदार भारतीय स्त्री-पुरुष अग्रेजो की सहायता की आवश्यकता को समझते हैं, वे उनकी मित्रता की कामना करते हैं। इसलिए प्रश्न यही है कि एक ओर सरकार की स्थिति और प्रतिष्ठा को और दूसरी ओर भारतीयों की स्थिति और स्वाभिमान को ध्यान मे रखकर इस मित्रता को कैसे प्राप्त किया जाय।

इसी बात को ध्यान मे रखकर मैं निम्न सुझाव प्रस्तुत करने का साहस करता हू :

१. पहला कदम जो उठाया जाय वह हो व्यक्तिगत सम्पर्क, जिससे और अधिक सम्पर्क स्थापित हो सके व एक-दूसरे को समझने की दिशा मे प्रगति हो। परेशान करने वाली व अनावश्यक अटकलवाजी से बचने के लिए भेंट अनौपचारिक तौर पर और किसी गैर राजनैतिक विषय को लेकर हो तो अच्छा रहेगा।

२. यह सम्पर्क बढ़ाया जाय। एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न किया जाय। यदि यह समझा जाय कि दिल्ली मे सफलता सम्भव नही है तो सर जान एंडरसन-जैसा आदमी इन प्रश्नों को हाथ मे ले।

३ अगर अन्तिम पूर्ति भावी वाइसराय के द्वारा करानी हो तो अतरिम काल का उपयोग उसके लिए भूमिका तैयार करने मे किया जाय, जिससे खाई और चौड़ी न हो सके।

४. इसके लिए सबसे अच्छा वातावरण इंग्लैंड मे ही मिल सकता है, अतः क्या यह सम्भव नही है कि गाधीजी को और किसी काम से इग्लैंड बुला लिया जाय ? मुझे याद पडता है कि उन्हे सन् १९२९ में या तो चर्च के कुछ लोगो ने या किसी विश्वविद्यालय ने निमन्त्रण दिया था।

५ क्या भारत-मन्त्री या भावी वाइसराय अगली सर्दियो मे वहा जाने वाले किसी कमीशन के अध्यक्ष बनकर भारत जा सकते हैं ?

६. साथ ही क्या यह सभव नही है कि किसी तीसरे आदमी की मार्फत विचार-विनिमय किया जाय, जिससे दोनो पक्षो की ओर से उपयुक्त घोषणाए की जा सकें ? वैसी अवस्था मे व्यक्तिगत सम्पर्क की बारी इन घोषणाओ के बाद आवेगी।"

लार्ड हेलीफैक्स ने अपने उत्तर में कहा कि वह इस विवरण की एक प्रति भारत के भावी वाइसराय लार्ड लिनलिथगो को भेज रहे हैं।

लार्ड लिनलिथगो से मैं कई बार मिला और इग्लैड से रवाना होने से पहले उन्हें एक पत्र भी भेजा, जिसमें मैंने लिखा

"मैं दो-एक बातें और भी कह देना चाहता था। नये वाइसराय को अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के निमित्त कठोर परिश्रम करना पडेगा, इसलिए उन्हें किसी ऐसे आदमी की सहायता की दरकार हो सकती है, जो पक्षपात मे मुक्त हो। क्या लार्ड विलिंग्डन की भांति नये वाइसराय के लिए भी अपना प्राइवेट सेक्रेटरी यहां से ले जाना अच्छा नही रहेगा ?

जब नये वाइसराय व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर चुकेंगे तो कुछ समस्याएं विचारार्थ उपस्थित होंगी। मैं उन्हें यहा दे रहा हूं, जिससे आप उनका हल सोच सकें :

१. अहिंसात्मक राजनैतिक बन्दियो की रिहाई। इनकी संख्या अधिक तो नही है, पर इनमे अब्दुल गफ्फार खा और पंडित नेहरू-जैसे व्यक्ति हैं। शायद पडित नेहरू को शीघ्र ही रिहा कर दिया जायगा।

२. जब्त की गई भूमि की वापसी। गांधी-अरविन पैक्ट में यह बात मान ली गई थी, पर पैक्ट का अन्त होने पर यह बात घटाई मे पड़ गई। जबतक कांग्रेस-वादियों के सहकर्मी इस प्रकार बीच में लटके रहेंगे, उन्हें पदों पर बने रहना नही भायेगा।

३ आतंकवादियों की समस्या को भी हल करना होगा। आतंकवाद से पूरी तरह निस्तार पाने के हेतु किसी-न-किसी प्रकार की योजना का पता लगाना ही होगा। इस मामले में कांग्रेस और सरकार, दोनों का दृष्टिकोण समान है, पर उनकी कार्य-प्रणाली जुदा-जुदा है। कांग्रेस दड द्वारा नही, मेल के द्वारा आतंकवाद का अन्त करना चाहती है। जहा एक ओर कांग्रेस को अपनी कार्यप्रणाली मे से दड को बाद नही देना चाहिए, वहा मेरी राय में सरकार को भी मेल का मार्ग नही त्यागना चाहिए। मैं एक ऐसी अवस्था की बात सोच रहा हूं जिसके अन्तर्गत सरकार और विरोधी वर्ग, दोनों ही एक समान दृष्टिकोण अपना सकें और इस प्रकार आतकवाद का पूरी तौर से मुकाबला कर सकें। श्री शरतचंद्र बोस की रिहाई एक ठीक दिशा मे उठाया गया कदम है, और मैं समझता हू उनके भाई श्री सुभाषचन्द्र बोस पर भी काबू पाया जा सकता है। ऐसे किसी फार्मूले को खोज निकालना सर जान एडरसन के बुद्धिकौशल के लिए असम्भव नही है।

मैं ये सारी बातें मात्र आपके विचारार्थ लिख रहा हूं, क्योंकि किसी-न-किसी दिन आपको इन बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना पड़ेगा और आप शायद पहले से ही सोच रखना अच्छा समझें।

आपके सौजन्य और सद्भावना के लिए धन्यवाद।"

इस प्रकार मैंने इंग्लैण्ड से काफी बड़ी आशाएं लेकर विदा ली। लार्ड लोदियन के इस पत्र से कि नये वाइसराय लार्ड लिनलिथगो हमारे राष्ट्रीय नेताओ के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने का निश्चित उद्देश्य लेकर भारत पहुचेंगे, मुझे खास तौर से प्रसन्नता हुई।

१७. भारत-वापसी

सितम्बर १९३५ मे मैं भारत लौटा और तुरन्त वर्धा गया, ताकि गाधीजी के साथ रहकर उन्हें खुद अपनी जबानी अपने संस्मरण सुना सकू। गाधीजी का यह अनुभव करना स्वाभाविक ही था कि मुझे इग्लैण्ड मे जिस मित्रता के दर्शन हुए, वह अभी भारत के सरकारी हलको मे व्याप्त नही हुई है। फिर भी उन्होने मुझसे लिनलिथगो और दूसरो को यह लिखने को कहा कि वह वाइसराय के भारत पहुचने के पहले सुधारो के बारे में कांग्रेस को कोई भी नया निश्चय न करने की सलाह देंगे और इस उद्देश्य की सिद्धि मे अपने प्रभाव का उपयोग करेंगे। अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए लार्ड लोदियन ने जो टिप्पणी की उसे यहा देना प्रासगिक प्रतीत होता है :

"सरकार चलाना बड़ा ही कठिन कार्य है। अरस्तू और यूनानी लोग इसे सबसे बड़ी कला समझते थे। लोग शासन करना तभी सीख सकते हैं जब वे उत्तरदायित्व ग्रहण करें और अपने विचारो को अनुभव की कसौटी पर कसें। मेरा विश्वास है कि भारत का समूचा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि उसका युवा समाज प्रान्तो मे और उसके बाद केन्द्र मे शासन-भार ग्रहण करने के हेतु निर्वाचनों मे जोर-शोर के साथ भाग लेता है या नही। भारत का शासन-विधान चाहे जो हो, युवा समाज प्रकृत कार्य द्वारा ही राजनैतिक रग-पट्ठे बना सकेगा और भारत के आगे साम्प्रदायिकता, दरिद्रता, अल्पसख्यको का प्रश्न, देशी नरेश, सम्पत्ति का सामर्थ्य आदि जो मौलिक समस्याएं मौजूद हैं, उनका निवटारा करने के लिए आवश्यक चरित्र का निर्माण कर सकेगा। मैं आपके पास 'ट्वेन्टियथ सेन्चुरी' नामक मासिक पत्रिका के उस अक की एक प्रति भेजता हू, जिसमे मैंने इस विचार को अपने मस्तिष्क मे प्रश्रय देने के कारण बताये हैं कि महात्मा गाधी जिस मौलिक हृदय-परिवर्तन पर हमेशा जोर देते आये हैं, वह यहा सचमुच हुआ है, और कि भारतीय सरकार का सचालन करने का भार अब से भारतीय कधों पर ही रहेगा। यदि उन्होने यह नही देखा हो तो आप इसका अवलोकन करने के बाद उनके पास भेज दें तो बड़ी कृपा हो।

यदि शासन-विधान मे अपने रग-पट्ठों को अभ्यस्त करने के बाद तरुण भारत को पता चले कि वास्तविक सुधारों की सिद्धि मे स्वयं शासन-विधान ही बाधक है तो उसके लिए उसकी पुनरावृत्ति की माग करना वैध होगा, और यदि वह मांग पूरी न की गई तो उसके लिए अधिक प्रत्यक्ष कार्रवाई करना भी औचित्यपूर्ण होगा। इसके अलावा व्यावहारिक सरकार-सचालन कार्य मे युवकों क्षा और अनुभव प्राप्त किया होगा वह उन्हें सफलता प्राप्त करने और

भारत के लिए सुन्दर सरकार उपलब्ध करने में समर्थ बनायेगा। पर यदि तरुण भारत अभी से सविनय अवज्ञा और असहयोग का अथवा हिंसापूर्ण क्रान्ति का मार्ग अपना लेगा तो वह उदार और वैधानिक ढंग की शासन-प्रणाली की शिक्षा से वंचित रहेगा और फलतः तानाशाही के उन कठोर दाव-पेचों में उसकी आस्था दृढ़ हो जायगी, जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता का विनाश कर यूरोप का विध्वंस कर रहे हैं, वैयक्तिक विचार का स्थान सामूहिक संगठन को दे रहे हैं और इस प्रकार विश्व को युद्ध की ओर वापस ले जा रहे हैं। यदि ऐसा हुआ तो यह निश्चित है कि भारत खंड-खंड और विनष्ट हो जायगा। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि यदि उपनिवेशों की भांति नवीन भारत भी अपने देश को अच्छी सरकार देने में समर्थ हुआ तो अन्य स्थानों की भांति उसके हाथों में भी पूर्ण सत्ता अनायास भाव से और अनिवार्य रूप से आ जायगी। इस समय ब्रिटेन में इस विचारधारा का प्राधान्य है कि यद्यपि वह भारत के साथ व्यापार करना चाहता है तथापि उस पर अधिकार न बनाये रखा जाय। हां, यह देखना है कि भारत संकट में पड़े बगैर भी स्वराज्य का उपभोग कर सकता है या नहीं। जहां ब्रिटेन के जनमत ने यह देखा कि भारत के राजनेता भारतीय शासन और सुधार से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं पर व्यावहारिकता और समझदारी के साथ काबू पा रहे हैं, बस, अभिरक्षण उसी प्रकार गायब हो जायंगे, जिस प्रकार कनाडा और आस्ट्रेलिया में हो गए थे। अतएव किसी भी दृष्टिकोण से देखिए, कांग्रेस और उसके प्रतिद्वन्द्वियों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रान्तीय सरकार पर अधिकार करें, उसे सफल बनावें और उसके बाद केन्द्र में भी यही करें।"

स्वयं लार्ड लिनलिथगो ने लिखा :

"मेरी निजी धारणा यह है कि पिछले दस वर्षों में भारतीय आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति रखने की दिशा में यहां के जनमत में काफी प्रगति हुई है। मेरा विश्वास है कि इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है कि जनमत की प्रगति एक खास सीमा में होती है। नई परिस्थितियों और दृष्टिकोणों के अनुरूप रुख अपनाने के मामले में वयस्क पीढ़ी को युवा समाज की अपेक्षा अधिक कठिनाई होगी और राज-कार्य इसी पीढ़ी के हाथ में है। वास्तव में बात तो यह है कि ४५ वर्ष की आयु के बाद साधारणतया लोग नई परिस्थितियों को सहज ही नहीं अपनाते हैं। यह बात दोनों ही देशों के निवासियों और सभी नस्लों के लोगों पर लागू होती है। असीम धैर्य की दरकार होगी, और यदि किसी चेष्टा के प्रारम्भिक काल में तुरन्त ही अनुकूल परिणाम उपलब्ध न हो तो निराशा के आगे सिर न झुकाने के लिए काफी साहस की आवश्यकता होगी।

मुझे नये विधान का यथाशक्ति अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना होगा, और जहां तक मुझसे सम्भव होगा, मेरी यही चेष्टा रहेगी कि उसकी मर्यादा के भीतर

रहकर सभी प्रकार के राजनैतिक दलो के स्त्री-पुरुष काम कर सकें। शायद आप इस बात से सहमत होगे कि भारत की राजनैतिक अवस्था पर कैसा-क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका इस समय अनुमान करना बुद्धिमान-से-बुद्धिमान आदमी के लिए भी सम्भव नही होगा। इसलिए मेरी तो यही धारणा है कि इस समय हमारी सम्मति जो भी हो, हमे अन्तिम निर्णय उस समय तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए जबतक चित्र और भी अधिक स्पष्ट न हो जाय। जैसा कि मैं समझता हू, आप स्वय जानते है, मैं इस बीच मे पारस्परिक सम्मान और पारस्परिक विश्वास की उस भावना को बल देने और उसके क्षेत्र को अधिक व्यापक करने की चेष्टाओं मे, जिसके अभाव मे कोई भी मगलदायी कार्य सम्पन्न होना सम्भव नही है, अपना योग देने को सदैव तत्पर मिलूगा। मैं व्यक्तिगत मित्रता के उन सबधो को भी दृढ करने मे पूरा योग दूगा, जिनके द्वारा सार्वजनिक जीवन की कठिनाइया बहुधा कम हो जाती हैं और उसके भार हलके हो जाते है। इन मैत्री-पूर्ण सम्बन्धो का अपना निजी महत्त्व और अपना निजी मूल्य है।

पर अफसोस, आशाओ के इस नीलाकाश पर शीघ्र ही बादल छाने वाले थे! कलकत्ते के कट्टर अग्रेज व्यवसायियो के निहित स्वार्थ विरोध की कितनी भारी दीवार खडी कर देंगे, यह बात लार्ड लिनलिथगो ने नही सोची थी। विरोध तो बम्बई के अग्रेज व्यवसायियो की ओर से भी हुआ, पर उतना नहीं। जब वाइसराय पहली बार कलकत्ता गये और वहा उन्होने विशुद्ध यूरोपीय बंगाल क्लब का भोजन का निमन्त्रण स्वीकार न कर, कलकत्ता क्लब का निमंत्रण स्वीकार किया, जिसके सदस्य यूरोपीय भी थे और भारतीय भी, तो सारा यूरोपीय समाज उनके खिलाफ उठ खडा हुआ। उन्होने उन चंद उच्च अफसरो के असहायक रवैये की बात भी नही सोची थी, जिनकी सहायता और सहयोग पर अधिकाशतः निर्भर करना उनके लिए अनिवार्य था। वैसे ये लोग अपने अमले की परिपाटी के अनुरूप ब्रिटिश सरकार और पार्लमेण्ट के इरादो और विधान-निहित भावना को वफादारी के साथ मूर्तरूप देना चाहते थे, पर कई ऐसी बातें थी, जिनके कारण उनका झुकाव विपरीत दिशा मे हो गया। प्रथम तो जिन अग्रेज व्यापारियों के साथ घनिष्ठ सामाजिक मेलजोल था, उनके विचार काफी कट्टर थे और वे आपस मे अपने विचारो को खुले तौर पर व्यक्त करते थे। कहना तो यह चाहिए कि एक ओर तो कुछ अग्रेज व्यापारी, जिनका निकास समाज के निचले स्तर से हुआ था, यह चाहते थे कि उनके पुत्र भारतीय सिविल सर्विस या भारतीय सेना में भरती हो जाय, क्योकि वे जिस स्तर पर पहुचना चाहते थे, वे समझते थे कि इस प्रकार वे उसकी एक सीढी और लाघ जायगे। दूसरी ओर अग्रेज अफसर अपने व्यवसायी मित्रो से अनुनय करते थे कि वे उनके पुत्रों को अपनी फर्मों मे भरती

कर लें, ताकि उनका आर्थिक जीवन एक औसत दर्जे के अफसर की अपेक्षा अधिक समृद्ध हो सके।

सन् १९३१ की गर्मियों के जोरदार आतंकवादी आन्दोलन ने, जो कि गांधी-अरविन-समझौते को भंग करके शुरू किया गया था, अंग्रेज अफसरों और व्यवसायियों के रुख को और भी कठोर कर दिया था, जैसा कि स्वाभाविक ही था। जब यह आन्दोलन चलाया गया तब गांधीजी भारत से बाहर थे, हालांकि बंगाल में डा० विधानचन्द्र राय और नलिनीरंजन सरकार-जैसे कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं ने सार्वजनिक रूप से इस आन्दोलन से अपनी असहमति प्रकट की थी। दूसरा मुख्य प्रभाव भूतपूर्व वाइसराय का पड़ा, जिन्होंने खुले तौर पर गांधीजी के प्रति अविश्वास प्रकट किया। अफवाह थी कि उन्होंने बापू को फालतू आदमी कहा था। यह धारणा सरकारी और व्यापारी, दोनों ही क्षेत्रों में व्याप्त थी और उनका तर्क यह था कि माना कि उनमें से अधिकांश का बापू के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ है, पर लार्ड विलिंग्डन तो उनसे मिल चुके हैं और वह जो कुछ उनके बारे में कहते हैं, सोच-समझकर ही कहते होंगे। सर हरबर्ट इमर्सन उल्लेख-योग्य अपवाद सिद्ध हुए। गांधी-अरविन-समझौते के सरकारी पहलू को कार्यान्वित कराने का भार उन्हीं पर था। इस सिलसिले में बापू से उनका अनेक बार साक्षात्कार हुआ, जैसा कि स्वाभाविक ही था। नतीजा यह हुआ कि दोनों एक-दूसरे को अच्छे लगने लगे और दोनों के बीच एक-दूसरे के प्रति विश्वास की वृद्धि हुई; पर कुल मिलाकर सरकारी अफसर गांधीजी की नेकनीयती में विश्वास नहीं करते थे, आपसी बातचीत में नये वाइसराय के उग्र आलोचक थे और उनकी इस बात से खास तौर पर नाराज थे कि वह अपना प्राइवेट सेक्रेटरी अपने साथ लाये और इसके लिए उन्होंने इण्डिया आफिस के एक अधिकारी को छांटा। वे प्राइवेट सेक्रेटरी के पद को भारतीय सिविल सर्विस वालों का इजारा और गवर्नरी के पद के लिए एक सीढ़ी समझते थे।

एक और दुर्भाग्यपूर्ण बात यह हुई कि इन सारी बातों का स्वयं लार्ड लिनलिथगो पर सामूहिक प्रभाव पड़ा। वह काफी लम्बे समय तक अपने प्रारम्भिक रवैये पर डटे रहे। उन्होंने कांग्रेस को शासन विधान को कार्यान्वित करने, प्रान्तीय स्वशासन की योजना के अधीन पद-ग्रहण करने और सरकारों की रचना करने के लिए राजी किया और खुद गांधीजी के साथ मित्रता का नाता जोड़ा। पर धीरे-धीरे उपर्युक्त शक्तियों ने उन्हें इतना प्रभावित कर दिया कि सन् १९३९ में जर्मनी के साथ युद्ध छिड़ते-छिड़ते उनका भारतीयों, और खासकर कांग्रेस, पर से कुछ ऐसा विश्वास उठ गया था कि वह शुरू से ही राष्ट्रीय सरकार की रचना और सम्मिलित युद्ध-प्रयास-सम्बन्धी सुझाव को दृढ़तापूर्वक ठुकराते रहे। उनका यह रुख इसलिए और भी अधिक असंगत और बेहूदा लगा कि वह तो वह, जिस ब्रिटिश

सरकार का वह प्रतिनिधित्व कर रहे थे वह स्वय, हिटलर की खुशामद करके उसे मनाने की नीति का अनुसरण कर रही थी, जबकि भारतीय लोकमत शुरू से अन्त तक नाजी-विरोधी रहा। हा, वह जर्मन-विरोधी नही था। इसके अलावा, भारतीय लोकमत ने चीन का भी जोरों से समर्थन किया और मचूरिया पर जापान के आक्रमणो को धिक्कारा। श्री नेहरू की प्रेरणा पर काग्रेस ने एक डाक्टरी दल का संगठन करके चीनियो की सहायता के लिए भेजा। इसके विपरीत भारत मे रहनेवाले अग्रेजो की दृष्टि केवल उनके व्यापारिक हितो पर केन्द्रित प्रतीत होती थी। उन्होंने इस सभावना की ओर से आखें बन्द कर रखी थी कि कभी भारत पर हमला करने के लिए हिटलर और जापान मे गठबधन हो सकता है। वह तो कलकत्ते से कच्चा लोहा जहाजो मे लादकर जापानी बन्दरगाहो को रवाना करने में व्यस्त थे। यही लोहा बाद मे भारतीय और अग्रेज सैनिको की छातियों को छेदने वाली गोलियो की शक्ल मे वापस आया।

यहां बापू का एक पत्र देता हू जिससे पता चलता है कि आर्थिक समस्याओ से निबटने में बापू कितना सीधा-सादा और सहज तरीका बरतते थे ·

सेगाव, वर्धा
४-७-३६

प्रिय घनश्यामदास,

मैंने सग्रहालय के बारे मे महादेव को लिखने के लिए नही कहा था। असल में मैंने उसे दूसरी इमारतो के बारे मे लिखने को कहा था। तुमको याद होगा कि मैंने अपनी जरूरतें गिनाते समय यह कहा था कि दूसरी इमारतो के लिए १,००,००० रुपये की आवश्यकता होगी। बाद मे विद्यालय को इमारतो मे शामिल कर लिया गया, हालाकि जब १,००,००० रुपये की राशि का उल्लेख किया गया था, मैंने विद्यालय के मामले को, इसलिए अलग रखा था कि मैं विद्यालय की इमारत के अलावा १,००,००० रुपये की लागत से अन्य इमारतें बनाने की सोच रहा था। किन्तु कोष मे या सुरक्षित निधि मे इतना रुपया नही है कि विद्यालय के निमित्त हुआ खर्च पूरा किया जा सके। मेरा यह खयाल था कि तुमने १,००,००० रु० की राशि मे से कुछ रुपया बच्छराज एण्ड कम्पनी को भेज दिया है। अब मुझे पता चला है कि इस मद मे कुछ भी जमा नही हुआ है। इसीलिए मैंने त्रिवेन्द्रम तुम्हे पत्र भेजा था। शायद यह पत्र तुम्हें नही मिला। अगर उस १,००,००० रुपये की राशि मे से कुछ निकालना सम्भव हो तो करना चाहिए।

मैंने डा० मुजे को एक पत्र लिखा है। उसकी प्रतिलिपि तुम्हे मिली होगी।

पारनेकर के साथ क्या व्यवस्था तय पाई है ?

बापू के आशीर्वाद

महादेवभाई का अगला पत्र इस समय के बापू के जीवनक्रम पर रोचक प्रकाश डालता है :

मगनवाड़ी, वर्धा
३० अगस्त, १९३६

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं आपको अलग डाक से विश्वभारती संसद की कार्रवाई की नकल भेज रहा हूं। आपको यह जानकर खुशी होगी कि ६०,००० रुपये के 'गुप्तदान'[1] द्वारा उन लोगों को अपना पुराना कर्ज उतारने में मदद मिली है और कम-से-कम एक बार तो उनके बजट में संतुलन आ ही गया प्रतीत होता है। पर ऐसा कबतक होता रहेगा, पता नहीं। काश्मीर में क्या आपका समय अच्छी तरह नहीं बीता ?

मैंने जान-बूझकर उस ऐतिहासिक मुलाकात के बारे में नहीं लिखा। ऐसी बातों की चर्चा पत्र-व्यवहार द्वारा नहीं की जा सकती। मैं अगले महीने आपके यहां आने की बाट देखूंगा। गत सप्ताह जवाहरलालजी के आगमन के अवसर पर मौसम जैसा कुछ रहा, शायद आपके आगमन के समय उसकी अपेक्षा अधिक मंगलकारी सिद्ध होगा। उन्हें थोड़ा रास्ता वर्षा और कीचड़ में तय करना पड़ा। बापू अपने ग्राम-सेवा के कार्य में अधिकाधिक व्यस्त होते जा रहे हैं और पत्र-व्यवहार अथवा लेखन-कार्य के लिए थोड़ा-सा भी समय निकालने को तैयार नहीं है। तीन या चार सप्ताह पूर्व उन्होंने समाजवाद पर अपना वक्तव्य पूरा किया था, किन्तु उसे फिर से देख जाने के लिए उन्हें अभी तक एक क्षण का भी समय नहीं मिल सका है। उन्होंने अपने घर में (सारे घर में एक ही तो कमरा है) कुछ मित्रों को इकट्ठा किया और उन सबके रोगों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं में ही उनका अधिकांश समय खपने लगा। पर सारी कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती है। असल बात यह है कि वह कांग्रेस और सारी बाहरी कार्यशीलता से अपना दिमाग हटा रहे हैं और उसे पूर्णतः गांव और उसकी समस्याओं पर केन्द्रित कर रहे हैं। वह इसी को अपनी साधना बताते हैं और अन्य किसी कार्यक्रम द्वारा उसमें बाधा पड़े, यह वह नहीं चाहते। उनके पास सर पी० टी० (सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास) के आग्रहपूर्ण पत्र आये कि उन्हें अफ्रीकी प्रतिनिधि-मंडल के स्वागत के लिए बम्बई जाना चाहिए, परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। नवम्बर के शुरू में गुजरात साहित्य परिषद् की अध्यक्षता करनी है, एक साल

---

[1] कवीन्द्र रवीन्द्र को यह गुप्तदान मैंने ही दिया था। इस दान के पीछे एक मर्मस्पर्शी इतिहास है, जिसे यहां दुहराने की जरूरत नहीं है।

पहले उन्होंने इसका वादा कर लिया था। पर उनकी इस वादे को भी पूरा करने की इच्छा नही है—मना रहे हैं कि कोई-न-कोई ऐसी बात हो जाय कि उनका जाना रुक जाय। जब आप यहां आवेंगे तो शायद उनकी मौजूदा मनोवृत्ति का सही अन्दाजा लगा सकेंगे।

आशा है, आप अच्छी तरह होंगे।

आपका
महादेव

१८. लिनलिथगो का शासन-काल

लिनलिथगो भारत के लिए कोई अजनबी न थे। वह पिछले वर्षों में कृषि-सम्बन्धी शाही कमीशन के अध्यक्ष रह चुके थे और इस हैसियत से उन्होंने काश्मीर और पेशावर से लगाकर कन्याकुमारी तक देश के सभी भागो की यात्रा की थी। वह कृषि-सम्बन्धी विषयो के विशेषज्ञ प्रसिद्ध थे और जब वह वाइसराय बनकर भारत आये तो उनके साथ मेरा प्रथम सम्पर्क मुख्यत सांडो और गायो के विषय को लेकर ही हुआ। मैं पिलानी मे शिक्षण-सम्बन्धी एक बृहद् प्रयोग मे लगा हुआ था। वहा बच्चो के लिए दूध की समुचित व्यवस्था हो, इसके लिए अच्छी नस्ल के पशुओ की दरकार थी और यही मेरी समस्या थी। इंग्लैण्ड के प्रवास के समय मैंने एक होलस्टीन सांड खरीदा, किन्तु मुझे परिणाम से संतोष नही हुआ। मेरी एक सूझ यह थी कि बड़े शहरो को जो दुधारू गायें भेजी जाती हैं, उनकी वापसी यात्रा का रेल-भाड़ा इस तरह निर्धारित किया जाय कि जब ये गायें दूध देना बन्द कर दें तो उन्हें कसाईखानो में भेजने के बजाय वापस अपने घरो को लौटाना ज्यादा लाभदायक प्रतीत हो। मेरी प्रेरणा पर वाइसराय ने इस मामले की बारीकी से जांच कराई, पर अपने कार्यकाल के प्रारम्भ मे ही उन्हे ऐसी नौकरशाही से पाला पड़ा, जिसमे वह इस मामले में पार न पा सके। रेलवे ने इस सुझाव को रद्द कर दिया। इतने पर भी वाइसराय की पूरी पराजय नहीं हुई; रेलवे बोर्ड ने स्वीकार किया कि जो पशु किसी उत्तर-पश्चिम स्टेशन से हावड़ा भेजे जायेंगे, उनके लिए विशेष वापसी दर जारी की जायगी, अर्थात् प्रति चार पहियो की गाडी पर भेजे जाने वाले पशुओ के लिए छ आना प्रति मील के हिसाब से किराया वसूल किया जायगा, पर शर्त यह होगी कि वापसी नौ महीने के भीतर हो जानी चाहिए। किन्तु मैंने वाइसराय को लिखा कि अधिकतर ग्वाले अशिक्षित हैं, वे वापसी

टिकट नहीं खरीदेंगे, इसलिए यह ज्यादा अच्छा हो कि कलकत्ता भेजी जानेवाली गायों के लिए एक सामान किराया तय कर दिया जाय और नौ महीने के भीतर वापस पशु भेजने वाले के लिए मुफ्त टिकट दे दिया जाय। इसका यह अर्थ होता कि भेजने वाले को वापसी टिकट खरीदना ही पड़ता। इस टिकट को वह गाय के साथ ऐसे किसी भी व्यक्ति के हाथ बेच सकता था, जो गाय को देश वापस लाना चाहता।

अपनी लन्दन की मुलाकात के बाद मैं नये वाइसराय से पहली बार ५ अगस्त, १९३६ को मिला और हमारी मुलाकात करीब एक घंटे तक रही। इस मुलाकात का जो विवरण मेरे पास है, उसमें यह चित्र स्पष्ट होता है कि वाइसराय एक सदाशयी और ईमानदार आदमी हैं, जिन्हें अपने वातावरण के साथ संघर्ष करना पड़ रहा है। उनकी अवस्था उस तैराक जैसी थी, जो नदी की तेज धारा में प्रवाह के विरुद्ध तैरने की कोशिश कर रहा हो। इस प्रवाह की तेजी का उन्होंने पहले कभी अंदाजा नहीं लगाया था। अन्त में उन्हें उस प्रवाह में बह जाना पड़ा।

मैं मानता हूं कि भेंट के समय अधिकतर बात मैंने ही की। मैंने उन्हें याद दिलाई कि जेटलैण्ड, हेलीफैक्स, लोदियन और होर ने मुझसे कहा था कि गांधीजी को नये वाइसराय से मिलने के पहले कोई नया निर्णय नहीं करना चाहिए। मैंने उन्हें यह भी बताया कि किसी प्रकार मैंने उनके व्यक्तिगत संदेश और अपने संस्मरण गांधीजी तक पहुंचा दिये थे। स्थिति के बारे में मेरे आशावादी दृष्टिकोण के साथ सहमत होने में उन्हें कठिनाई का बोध हुआ था, किन्तु उन्होंने वादा किया कि कांग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन के अवसर पर कोई नया निर्णय न किया जाय, इसकी वह चेष्टा करेंगे। मैंने कहा कि लार्ड विलिंग्डन ने यह डर फैलाने में सक्रिय भाग लिया है कि यदि वाइसराय गांधीजी से मिलेंगे तो परिणाम अच्छा न निकलेगा। लिनलिथगो को इस बात का अच्छी तरह पता था, और वह सहमत थे। वह जिस वातावरण से घिरे हुए थे उसकी विरोध-भावना की गंध उनकी नाक में पहुंच चुकी थी।

मैंने कहा, "गांधीजी ने अपने वचन का पालन किया है। मुझे पता नहीं कि आप अब भी पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने के इच्छुक हैं, अथवा आपके विचारों में परिवर्तन हो गया है। मैंने लन्दन में अपने विचार-बिन्दु पर जोर दिया था, पर अब मैं ऐसा नहीं करूंगा। मैंने जब आपसे लन्दन में बात की थी उस समय आपको वस्तुस्थिति का उतना ज्ञान नहीं था जितना मुझे था, पर अब यह नहीं कहा जा सकता है कि आपको स्थिति का अध्ययन करने की उतनी सुविधा प्राप्त नहीं है जितनी मुझे है। आपको मेरे विचार मालूम ही हैं। मैं उन पर उसी प्रकार डटा हुआ हूं। यदि आप समझते हैं कि आपको सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ-न-

कुछ करना चाहिए तो आप मेरा पथ-प्रदर्शन करिये। इसके विपरीत यदि आपने अपने विचार बदल दिये हैं और उसी पुरानी नीति को अपनाने का निश्चय कर लिया है तो मैं केवल इतना ही कहकर बात खत्म कर दूगा कि ऐसा करना बड़ी भूल होगी।" वह कुछ क्षण विचार-मग्न हो गये, फिर बोले, "गांधी और जवाहरलालजी का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ?" मैंने उत्तर दिया, "आपको स्थिति को समझने के लिए दोनों के स्वभाव को समझना होगा। दोनों के स्वभाव, दृष्टिकोणों और विचारों मे जमीन आसमान का अन्तर है। पर इसके कारण दोनों के पारस्परिक स्नेह-सम्बन्ध मे कोई अन्तर नही पडता है। जबतक गांधीजी जीवित हैं, मैं कांग्रेस मे फूट पड़ने की कोई सम्भावना नही देखता हूं।" उन्होने कहा, "मैं भी यही समझता हूं।" उन्होंने पूछा, "निर्वाचन का खर्च कौन उठावेगा? गांधीजी ?" मैंने कहा, "मैं तो ऐसा नहीं समझता हूं, यह सब कांग्रेस के द्वारा ही किया जायगा, और जहा तक मैं समझता हूं, कांग्रेसवादी पाच प्रान्तों मे बहुमत से जीतेंगे।"

इसके बाद उन्होंने कहा, "मैं आपसे साफ कह रहा हू। जब मैं यहा आया तो सरकारी हलकों मे भारी त्रास फैला हुआ था। मैंने सर हेनरी क्रेक से अच्छी तरह बातचीत की। मुझे भय है कि फिलहाल मेरे लिए कोई कदम उठाना सम्भव नही होगा। मैं जानता हूं कि कांग्रेस बड़ी मजबूत पार्टी है और प्रान्तों मे बहुमत प्राप्त करेगी। मैं यह भी स्वीकार करता हू कि कांग्रेस ने जनता मे स्वाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की है और भारत मे जो वैधानिक परिवर्तन हुए हैं उनका बहुत-कुछ श्रेय उसी को है। पर अन्य महत्त्वपूर्ण पार्टिया भी तो हैं, और यदि मैं कांग्रेस के साथ आवश्यकता से अधिक मैत्री करने लगू तो अन्य पार्टियों को असुविधा की स्थिति मे डाल दूगा और इससे निर्वाचनो मे कांग्रेस को आवश्यकता से अधिक महत्त्व मिल जायगा। सम्भव है, मुझे पक्षपात का दोषी ठहराया जाने लगे। अतएव राजा के प्रतिनिधि की हैसियत से मेरे लिए ऐसा कोई काम करना उचित नहीं होगा, जिससे पक्षपात की गध आवे। इसके अलावा एक बात और भी है। मैं आज गाधीजी से किस विषय पर बात करूगा ? मैं उनके साथ खिलवाड़ नही करना चाहता हूं। मैं भारत सरकार के विधान का एक अर्ध-विराम तक बदलने में अशक्त हू। मैं बंगाल के कैदियो को भी रिहा नही कर सकता। फिर बताइये, मैं उनसे किस विषय पर बात करूं ? हा, यदि कोई अग्रगण्य व्यक्ति मुझसे मिलना चाहे तो मैं हमेशा तैयार हूं। प० मदनमोहन मालवीय मुझसे मिल ही चुके है। आप मिले ही हैं। पर यदि मैं गांधीजी को विशेषरूप से निमन्त्रण दू तो इसका कोई वैध कारण नही दिखाई देता है।" मैंने कहा, "मैं आपकी बात अच्छी तरह समझता हू। इस समय गांधीजी भेंट की याचना नही करेंगे। पर इसका यह मतलब नही है कि वह थोथे लोकोपचार मे विश्वास रखते है। आपके यह कहने-भर की

देर है कि आप उनसे मिलना चाहते हैं, और वह तुरन्त लिखकर भेंट की याचना करेंगे। पर उन्हें स्वयं कुछ नहीं कहना है। मैं कांग्रेसवादी नहीं हूं। अतएव जब मुझे आपको स्थिति कांग्रेस को और कांग्रेस की स्थिति आपको समझानी पड़ती है तो मुझे असुविधा का सामना करना पड़ता है। आप स्वयं गांधीजी-जैसे किसी कांग्रेसवादी को कांग्रेसी राजनीति की चर्चा करते हुए देखने का अवसर क्यों नहीं ढूंढ़ते हैं ? यदि आप ऐसा करें तो आपको उनके रुख के संबंध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त होगा और उन्हें भी आपका दृष्टिकोण समझने का अवसर मिलेगा। फिलहाल भारत-सरकार के विधान में किसी प्रकार का परिवर्तन करना संभव है, ऐसा मैंने कभी नहीं सुझाया है; पर इसके अलावा और बहुत-सी बातें की जा सकती हैं और करनी चाहिए। क्या आतंकवाद के संबंध में एक समान ग्राह्य फार्मूला तैयार करना सम्भव नहीं है ? और भी अनेक ऐसी बातें हैं, जिन्हें करना सम्भव है। मैं तो नहीं समझता कि इस समय सरकार निष्पक्षता से काम ले रही है। खान साहब के रिहा होते ही उनके ऊपर पंजाब और सीमा-प्रान्त में प्रवेश की निषेधाज्ञा लगा दी जाती है। फर्ज करिये, खान साहब मंत्री बनने वाले हों। आप ऐसा करके उन्हें निर्वाचन-सम्बन्धी प्रचार-कार्य की सुविधा से वंचित कर रहे हैं। यह कहां का न्याय है ? यह न निष्पक्षता है, न न्याय। इस सारी अनुचित बातों को हटाकर वातावरण में सुधार किया जा सकता है, पर जैसा कि मैंने अभी कहा है, मैं इस मामले पर अधिक जोर नहीं दूंगा। मैंने काफी जोर दिया है। अब आप खुद निर्णय करिये।" साथ ही मैंने पूछा, "पर क्या आपका खयाल है कि निर्वाचन के बाद स्थिति में परिवर्तन होगा ?" उन्होंने कहा, "निश्चय ही, भारी। निर्वाचन के बाद तो चित्र बिलकुल दूसरे ही ढंग का होगा। निर्वाचन के बाद स्वयं मेरा हिस्सा ठोस रहेगा, पर मैं वचन नहीं देता हूं। हम नहीं जानते कि निर्वाचन के बाद स्थिति कैसी होगी और हमें क्या कार्रवाई करनी पड़ेगी।" इसके बाद उन्होंने बताया कि उन्हें खबर मिली है कि कांग्रेसी लोग पद-ग्रहण करने से बचने की चेष्टा कर रहे हैं, क्योंकि उन्होंने कोई रचनात्मक कार्य किया और शिक्षा-प्रसार और अन्य धंधों के लिए उन्हें टैक्स लगाना पड़े तो वे बदनाम हो जायगे। मैंने कहा, "आपकी खबर बिलकुल निराधार है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि उचित अवबोध रहा, और वातावरण में सुधार हुआ, और कांग्रेस ने पद-ग्रहण किया तो वे लोग शिक्षा, सफाई आदि के लिए उन लोगों पर टैक्स लगाने में, जो टैक्स का भार वहन करने में समर्थ हैं, तनिक भी नहीं हिचकिचायेंगे। वास्तव में इससे कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ेगी ही।" उन्होंने मेरी बात मानी, पर कहा कि उन्हें यह खबर एक कांग्रेसवादी ने ही दी है। पर उन्होंने यह भी कहा, "फर्ज करिये, मैं गाधीजी से मिलूं और कहूं कि मैं यह कर दूगा और वह कर दूंगा और विधान को अत्यन्त उदार ढंग से अमल में लाऊंगा और जोखिम भी उठाने को

तैयार रहूंगा, क्या आप पद-ग्रहण को तत्पर है तो मुझे इसमे तनिक भी सदेह नही है कि उनका उत्तर होगा, "नही।" मैंने उत्तर दिया, 'महोदय, आप पहले से ही बहुत कुछ फर्ज किये ले रहे हैं।" उन्होंने पूछा, "क्या आप समझते हैं कि वह पद-ग्रहण करने को राजी हो जायगे ?" मैंने कहा, "वेशक, बशर्ते उन्हें विश्वास हो जाय कि जनता की सेवा के लिए रचनात्मक कार्य करने योग्य वातावरण मौजूद है। गांधीजी आरम्भ से ही रचनात्मक कार्य करते आये हैं, इसलिए काग्रेस के पद-ग्रहण करने से वह तनिक भी घबराने वाले नही है। पर शर्त यही है कि वातावरण ठीक ढंग का हो।" इसके बाद मैंने कहा, "मैं आपके विचारो से परिचित हूं, मैं उन्हें गाधीजी के पास पहुचा दूगा। मुझे इस बात से खुशी हुई कि आपने सारी बात इतनी स्पष्टता और स्वच्छता के साथ रखी। अब मैं आपको इस मामले को लेकर और अधिक परेशान नही करूगा। यदि आपको कभी मेरी सहायता की जरूरत पड़े तो मैं हाजिर हू, पर फिलहाल आपको स्थिति का अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त है, इसलिए मैं अधिक कुछ नही कहूंगा। मैं आपके निष्कर्पों से सहमत नही हू, पर कोई बात नही है।"

इसके बाद हमने पशुपालन के सम्बन्ध में कुछ बातें की। उन्होने कहा, "यदि मैं किसानो को कुछ लाभ पहुचा सकू तो मेरा अन्त करण सुखी होगा। यदि मैं ऐसा करने मे सफल हुआ तो मुझे इसकी चिन्ता नही है कि लोग मेरे सम्बन्ध मे क्या सोचेंगे।" इसके बाद बोले, "गाधीजी से कह दीजिये कि मेरी राय मे राष्ट्रीयता अपराध नही है और मैं सहज दृष्टिकोण अपनाने मे समर्थ हूं।" फिर वह बोले, "जिस समय मैं भारत पहुंचा तो अधिकारियो मे कितना त्रास फैला हुआ था इसका आप अन्दाजा नही लगा सकते।" मैंने उनसे कहा, "मैं पहले ही जानता था और इस सम्बन्ध मे मैंने आपको एक पत्र मे चेतावनी भी दी थी।" उन्होंने कहा, "मैं नही समझता था कि स्थिति इतनी बुरी निकलेगी।"

कहना अनावश्यक है कि वार्त्तालाप के दौरान पूरी सहृदयता का दौर-दौरा रहा, और मैं अपनी इस सम्मति पर दृढ हू कि वह एक अच्छे ईमानदार आदमी हैं। वह अपने विचारो का त्याग करने को बाध्य हुए है, और यद्यपि वह निर्वाचन के बाद कुछ कार्रवाई करेंगे, तथापि वह कोई वचन देने को तैयार नही हैं। जब मैंने कहा कि मैं उनसे फिर मिलने की आशा करता हू तो वह बोले, 'मेरे पास अधिक मत आइये, नही तो यह समझा जायगा कि आप मुझे बहुत अधिक प्रभावित करने की चेष्टा कर रहे हैं। हा, आप जब चाहे लिख अवश्य सकते हैं, भले ही मैं आपसे सहमत न होऊ।"

इस मुलाकात के बाद लार्ड लोदियन का एक पत्र मिला। मैंने उत्तर मे लिखा .

"मुझे आपकी यह धारणा जानकर आनन्द हुआ कि वाइसराय लोकोपचार की परवा न कर पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने को दृढ-प्रतिज्ञ हैं। अभी तक तो मुझे उसके कोई लक्षण दिखाई नही दिये हैं। मैं वाइसराय से परसों मिला था और मैंने देखा कि अभी कुछ होने वाला नही है।

भारत वापस आने पर मैंने देखा कि लार्ड विलिंग्डन ने इस बात को लेकर कि नया वाइसराय भारत में आकर क्या कुछ करने वाला है, त्रास फैलाना आरभ कर दिया है। "नया वाइसराय गाधी से मिलेगा और पुरानी नीति को बदल देगा।" मानो गांधी के वाइसराय-भवन मे पदार्पण करने मात्र से आकाश फट पडेगा। 'मार्निंग पोस्ट' मे एक तार छपा है और उसके बाद ही सर तेज ने मित्रों और प्रेसवालों को आपका पत्र दिखाया, जिसमें आपने यह कहा मालूम होता है कि मैंने गांधीजी से वचन ले लिया है कि वह वाइसराय से मिलने तक कोई नई कार्रवाई नही करेंगे। आशा है, आप मेरी बात को गलत नही समझेंगे, क्योंकि मैं आपको दोष नही दे रहा हूं। जो लोग पारस्परिक सम्पर्क स्थापित किये जाने के भविष्य में दिलचस्पी रखते थे, उन्होंने इस सबका पूरा उपयोग किया। स्वयं मेरा पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' अपने बम्बई-स्थित संवाददाता द्वारा भेजी गई यह मूर्खतापूर्ण खबर छापने की गलती कर बैठा कि लार्ड हेलीफैक्स गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार कर रहे हैं।

मुझे हमेशा से आशका रही है कि सरकारी अमला शासन के प्रधान और विरोधी दल के पारस्परिक सम्पर्क के बिलकुल खिलाफ है। अमले ने इस त्रास और उसकी भोड़ी उपलक्षणा (implications) को प्रश्रय दिया ही, और जब लार्ड लिनलिथगो आये तो उन्होंने वातावरण को त्रास और भय से लदा हुआ पाया। मुझे यह तो पता नही कि उन्होंने क्या किया और क्या सोचा, पर वस्तु-स्थिति यह है कि उन्होंने फिलहाल पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का विचार त्याग दिया है। मेरी अपनी धारणा है कि उन्हे यह सब विवश होकर करना पड़ रहा है।

शायद उन्हें सलाह दी जा रही है कि यदि उन्होने निर्वाचन के पहले कुछ किया तो वैसा करने से कांग्रेस को बल मिलेगा। मुझे आशंका है कि उन्हे बिलकुल गलत सलाह दी गई है। पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने का विचार एक साधन-मात्र है। सारा प्रश्न इस बात का है कि क्या हमें भारत की सारी सामर्थ्य को हमेशा के लिए रचनात्मक कार्य करने की दिशा मे लगाना चाहिए। यह केवल आपके शब्दों मे 'पुलिस राज्य' का अन्त करके पारस्परिक अवबोध का वातावरण उत्पन्न करने से ही सम्भव हो सकता है, जिससे प्रत्यक्ष कार्रवाई का विचार तक बहुत काफी दिनों के लिए खत्म हो जाय।

पारस्परिक वार्तालाप के दौरान नेताओं के लिए यह जानना जरूरी है कि

ब्रिटेन भारत की प्रगति में कहां तक सहायता करने को तैयार है और सुधारों को अत्यन्त उदारतापूर्वक किस प्रकार अमल में लाया जायगा और जरूरत पड़ने पर जोखिम भी उठाई जायगी या नहीं। इन सारी बातों पर निर्वाचन के बाद नहीं, बल्कि अभी बातचीत होनी आवश्यक है। इसके लिए सबसे अच्छा समय एक वर्ष पहले था। बिहार के भूकंप ने मिल-जुलकर काम करने और पारस्परिक सम्पर्क करने का अच्छा अवसर दिया था। अब मौका उतना अच्छा नहीं है, पर निर्वाचन के बाद जबकि कांग्रेस अनेक प्रान्तों में बहुमत के साथ जीतेगी, मेरी समझ में मौका और भी बुरा हो जायगा। यदि कांग्रेस की विजय होने के बाद सरकार मैत्री का भाव दिखावेगी तो उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। मुझे तो आशंका है *कि कहीं निर्वाचन के दौरान ही भिड़न्त न हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो सारा* वातावरण ही बिगड़ जायगा। निर्वाचन के प्रति सभी प्रान्तीय सरकारों ने निष्पक्षता का रवैया नहीं अपनाया है।

एक बात और है। लार्ड लिनलिथगो ने अपने लिए बड़ा अच्छा वातावरण तैयार कर लिया है। उनके गांधीजी से मिलने के होंए ने उन्हें कुछ लोकप्रिय बना दिया है और देहाती मामलों में दिलचस्पी लेने के कारण उस लोकप्रियता में वृद्धि हो गई है। निर्वाचन के बाद सम्भव है, इस मोहिनी का अन्त हो जाय।

कुछ ऐसी बातें हो रही हैं, जिनके लिए उन्हें दोषी ठहराना ही पड़ेगा। अब्दुल *गफ्फार खां के सीमा-प्रान्त और पंजाब में प्रवेश करने का निषेध है, जबकि नये* सुधारों के अंतर्गत यदि कोई व्यक्ति नई सरकार पर काबू पा सकता है तो अकेले वही, क्योंकि जनता उनके वश में है। एक प्रकार से उन्हें निर्वाचन-सम्बन्धी प्रचार-कार्य करने से वंचित कर दिया गया है। हमें यह फर्ज क्यों नहीं करना चाहिए कि नये सुधारों के अन्तर्गत वह सीमा-प्रान्त के प्रधान मन्त्री बन जायगे? इधर वर्तमान सरकार उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाकर उन वर्तमान मन्त्रियों के पक्ष में लड़ रही है, जो उनके विरुद्ध मोर्चा ले रहे हैं। अभी तक वाइसराय के खिलाफ एक शब्द तक नहीं कहा गया है। कांग्रेसी समाचार-पत्र या तो खामोश हैं, या उनके सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ अच्छा ही कह रहे हैं। पर मुझे आशंका है कि यह स्थिति जारी नहीं रहेगी। हां, ईश्वर से मेरी यह प्रार्थना अवश्य है कि ऐसा हो। पर जहां एक बार वातावरण विषाक्त हुआ कि दोनों पक्षों के लिए मित्रता का आचरण करना कठिन हो जायगा। अतएव मेरी सम्मति में *अवस्था ऐसी है कि* देर करना ठीक नहीं होगा।

यह मेरे लिए बड़ी ही निराशा की बात हुई कि मैं इंग्लैण्ड गया, वहां से ऐसी अच्छी धारणा और गांधीजी के लिए आपके और अन्य मित्रों के व्यक्तिगत संदेश लाया और गांधीजी ने उनका समुचित उत्तर दिया, तब भी अन्त में मुझे इस प्रकार असफल होना पड़ा। पर ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् की ऐसी इच्छा नहीं

थी। मैं लार्ड हेलीफैक्स को अलग से नही लिख रहा हूं, क्योंकि आप उन्हें यह पत्र दिखाना चाहेंगे। मेरी अब भी यही प्रार्थना है कि वाइसराय अविलम्ब अच्छा वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता को समझेंगे। वह किसी हद तक असहाय भी हैं, पर वह जब कभी साहसपूर्ण कदम उठाने का निश्चय करेंगे, उन्हें अपने आदमियों के विरोध का सामना करना पड़ेगा। मैं तो समझता हूं कि जब लार्ड हेलीफैक्स ने गांधीजी को बातचीत के लिए बुलाया था तो उन्हें भी इसी प्रकार का अनुभव हुआ होगा। यही दुःख की कहानी है।"

किन्तु अगले मार्च के चुनाव समाप्त हो जाने के बाद वाइसराय के साथ मेरी जो बातचीत हुई वह कुछ अधिक आशाप्रद थी। उन्होंने कहा :

"मुझे खुशी है कि कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। मुझे आश्चर्य नही हुआ। मैं पहले से ही जानता था, पर मेरे आदमी यह नही जानते थे। मुझे अंग्रेजी अनुभव था। मैं जानता था कि मैदान मे और कोई पार्टी मौजूद नही है, कांग्रेस सुगठित संस्था है और जनता को प्रिय लगेगी, इसलिए उसको विजय होनी चाहिए। मुझे तो आश्चर्य है कि उसे बम्बई मे बहुमत प्राप्त नही हुआ। उसे वहा १० सीटें और मिल सकती थी।" मैंने उन्हें बताया कि इसका कारण महाराष्ट्र है, जहां कांग्रेस का देहाती जनता के साथ पूरा सम्पर्क नही है। वह सहमत हुए।

इसके बाद मैंने कहा, अब क्या होगा? आपने सुना ही होगा कि कांग्रेस का दिमाग किस ओर काम कर रहा है। मैं वर्धा से आ रहा हूं, इसलिए गांधीजी की विचारधारा से परिचित हूं। उनकी स्थिति कुछ-कुछ इस प्रकार है: "आप लोग अपनी स्पीचों मे हमसे बराबर कहते आ रहे हैं कि हमें सचमुच के अधिकार दिये जा रहे हैं। आपने अभिरक्षण अवश्य रखे हैं, पर आपने बराबर यही बताया है कि वे जोखिम का बीमा-मात्र हैं। अब गांधीजी आपकी ही बात स्वीकार करके कहते हैं कि जबतक हम विधान को तोडने या आपके अस्तित्व के विरुद्ध कुछ करने को न आवें तबतक आप अभिरक्षणो से काम मत लीजिये। हमें काम करने दीजिये।" उन्होंने कहा, मैं इस स्थिति को अच्छी तरह समझता हूं। वस्तुस्थिति को देखा जाय तो मूल बातों में गाधी की स्थिति में और मेरी स्थिति मे कोई भेद नही है। अंग्रेज लोग विवेकशील होते हैं और यदि यह विधान प्रदान करने के बाद वे कांग्रेस को उसे अमल में लाने की स्वतन्त्रता नही देंगे तो वह हमे कहां ले जाकर पटकेगा? यदि हम दखल देंगे और गतिरोध उत्पन्न करेंगे तो आप लोग मतदाताओं के पास दुबारा जायगे और फिर बहुमत प्राप्त करके वापस आ जायंगे। इसलिए हम लोग अभिरक्षणो का उपयोग केवल कौतुक के लिए नही करना चाहते हैं। पर यदि आप आकर कहेंगे, 'हम विधान को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं' तब

तो हमे अभिरक्षण काम मे लाने ही पड़ेंगे। इसलिए आप मुझसे जैसी सार्वजनिक घोषणा कराना चाहें, मैं करने को तैयार हू और सहानुभूति और सद्भावना-संबंधी जैसा आश्वासन दिलाना चाहे, देने को तैयार हूं। मैंने इस सम्बन्ध मे अपने गवर्नरो से जो कुछ कहा है, आपको वह सब मालूम हो जाय तो आपको आश्चर्य होगा। पर यदि कोई अभिरक्षणो का खात्मा चाहे तो यह असम्भव है। मेरे लिए ऐसा करना सम्भव नही है, क्योकि मुझे विधान को बदलने का अधिकार नही है, और मुझे आशका है कि हमे गलत समझा जायगा, क्योकि यदि कोई आकर कहे, 'अभिरक्षणों का खात्मा करिये' और मैं उत्तर दू, 'हम ऐसा नही कर सकते' तो सारे समाचार-पत्र कहने लगेंगे कि अभिरक्षणो द्वारा ही शासन-कार्य चलाया जायगा, यद्यपि वास्तव मे ऐसी बात नही है। अतएव मुझे इस स्थिति से कुछ चिन्ता-सी हो गई है।' मैंने बताया कि जहां तक मैं समझ सका हू, गांधीजी यह नही चाहते कि विधान बदला जाय, पर वह भद्रपुरुषो का समझौता अवश्य चाहते हैं। मैं बोला, मैं समझता हू, गवर्नर लोग अपने-अपने प्रान्तो के कांग्रेसी नेताओं को बुला भेजेंगे, पर वे लोग गवर्नरो के सामने केवल कांग्रेस द्वारा निश्चित सिद्धांत ही पेश कर सकेंगे, जिनके उत्तर मे वे कहेगे 'न'। और प्रातीय नेता द्वितीय श्रेणी के हैं—हा, मद्रास की बात दूसरी है, जहा हमारे राजगोपालाचार्य मौजूद हैं। वह बीच ही में बोल उठे, "मैं जानता था कि आप उन्हें बाद देंगे।" मैंने कहना जारी रखा, 'इसलिए क्या यह सम्भव नही है कि बातचीत का क्षेत्र प्रान्तो से हटाकर दिल्ली मे रखा जाय, क्योकि वैसी अवस्था मे बात अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से हो सकेगी। तब फिर समस्या का हल ढूढ निकालना कठिन न होगा।' मैंने उन्हें यह भी बताया कि यदि वह गांधीजी से मिलेंगे तो वह अपनी बात अधिक जोरदार भाषा मे तो अवश्य कहेगे, पर साथ ही कोई हल भी ढूढ़ निकालेंगे। पर सवाल यह है कि वैसी स्थिति कैसे उत्पन्न की जाय?' उन्होने कहा, 'कार्य कठिन अवश्य है। यदि आज मुझसे गांधीजी मिलने के लिए आवें (उन्हें यह खबर लगी थी कि उनसे गांधीजी मिलने के लिए आ रहे है) तो केवल इसी विषय पर बात कर सकते हैं। अब से छः महीने पहले वह एक दूसरे ही मिशन को लेकर आ सकते थे, पर उस समय मेरे आदमियो ने मुझे पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करने की सलाह नही दी। यदि वह एक सप्ताह बाद आवें तब भी सम्भव है, अवस्था भिन्न हो। पर इस समय मैंने आपसे जो कुछ कहा है, उनसे इससे अधिक और क्या कह सकता हू?' मैंने उन्हें बताया कि उन्हे बिलकुल गलत खबर मिली है। वह उनसे भेंट करने बिलकुल नही आ रहे हैं, और दिल्ली भी वह जवाहरलालजी के अनुरोध पर आ रहे हैं। पर साथ ही मैंने उन्हे यह भी बताया कि क्या कुछ होना सम्भव है। उन्हें स्वय अपने दिमाग से काम लेकर समस्या का हल तलाश करना होगा। उन्होने कहा, 'मैं समझ गया, गांधीजी का मुझसे मिलने के लिए आज आना सम्भव नही है,

न मेरी समझ मे यही आ रहा है कि उन्हें कैसे बुलाऊं। उस पर भी मेरी धारणा है कि हम दोनों मे किसी प्रकार का मतभेद नही है। मुझे आशा है कि उन्हें भी मालूम होगा कि हम दोनों के बीच किसी तरह की गलतफहमी नही है।' मैंने उन्हें इसका आश्वासन दिया।

बातचीत का नतीजा कुछ नही निकला, क्योंकि यद्यपि उन्होंने बड़ी सहृदयता दिखाई और एक प्रकार से उन्मूलनवादी विचार बड़े अच्छे ढंग मे प्रकट किये, तथापि वह यह स्थिर नही कर सके कि अब उन्हें क्या करना चाहिए। जब मैंने नौकरशाही पर आक्रमण किया और बताया कि किस प्रकार अधिकारियों ने युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त मे कांग्रेस के विपक्षियों का खुल्लमखुला साथ दिया, तो उन्होंने उनके पक्ष मे कुछ नही कहा। उन्होने कांग्रेस की विजय पर बार-बार संतोष प्रकट किया। उन्होंने आश्वासन दिया कि वे किसी भी गवर्नर को अपने अधिकारो से काम नही लेने देंगे, पर सहानुभूति और सद्भावना के आश्वासन से अधिक वह और कुछ नही दे सके, न यही बता सके कि अभिरक्षकों का खात्मा किस प्रकार संभव है। हां, वह अपने सहानुभूति और सद्भावना के आश्वासन को प्रकाशन तक देने को प्रस्तुत थे। साथ ही उन्होने यह भी देख लिया कि गांधीजी विधान का खात्मा नही चाहते हैं।

उन्होंने जवाहरलालजी के सम्बन्ध मे बात की और कहा, "क्या मेरा यह कहना ठीक होगा कि गांधी और जवाहरलालजी मे बड़ा गहरा स्नेह है ?" मैंने उत्तर दिया, "हां।" उन्होंने कहा, मैं समझता हूं, देश मे जवाहरलालजी की स्थिति भी बनी-बनायी है। यदि किसी समझौते की बात पर जवाहरलाल सहमत न हो तो क्या गांधीजी उनके खिलाफ उठ खड़े होंगे ?" मैंने उत्तर दिया, "जवाहरलालजी चुपचाप अनुकरण करेंगे।" उनकी भी यही राय हुई।

इसके बाद हम दोनो ने बिड़ला कालेज के संबंध मे बातचीत की।"

तीन दिन बाद वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री लैथवेट ने इच्छा प्रकट की कि वह चाय पीने और बात करने के लिए आना चाहेंगे। १७ मार्च को मैंने वाइसराय के लिए अपना अगला पत्र उनके पास भेजा :

प्रिय श्री लैथवेट,

आपने देखा ही होगा कि गांधीजी के फार्मूले को कार्यकारिणी ने मंजूर कर लिया है और मुझे इसमें संदेह नही है कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति भी उसे मंजूर कर लेगी। अब यह घोषणा करने का भार कि गवर्नर अपने हस्तक्षेप-संबंधी विशेषाधिकारों मे काम नही लेंगे अथवा मंत्रियों की सलाह को रद्द नही करेंगे, मुख्य मंत्री पर ही रहेगा। मुख्य मंत्री को इस सम्बन्ध मे अपना सन्तोष करना

होगा और इस प्रकार गवर्नर का काम बहुत सरल हो जायगा। यदि मुख्य मंत्री के साथ कोई और कांग्रेसी नेता भी हो और उसे साथ लेकर गवर्नर के साथ विचार-विमर्श बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से हो सकता हो तो यह भी सम्भव होगा।

मेरी राय मे 'विधान के भीतर' एक बड़ा महत्त्वपूर्ण वाक्यांश है, जिसके द्वारा कांग्रेस की ओर से गारटी दी जा रही है कि केवल गतिरोध की खातिर गतिरोध करने की कोई इच्छा नहीं है। यदि गवर्नर लोग सहानुभूति के साथ पेश आयंगे तो मुझे आशा है कि उचित अवबोध के मार्ग मे कोई कठिनाई उपस्थित नही होगी। मैं समझता हूं कि यह कांग्रेस के दक्षिणपक्ष की बहुत बड़ी विजय है, और यदि इसका उचित उत्तर मिला तो इससे कांग्रेस के हाथ बहुत मजबूत हो जायगे। आशा है, हिज एक्सीलेन्सी इस स्थिति को समझते हैं।

सदाकांक्षाओं के साथ,

भवदीय
जी० डी० बिड़ला

बापू का दिमाग इस समय बहुत ही महत्त्व की समस्या मे लगा था, तब भी वह अपने 'गोरे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं' की कितनी हितचिन्ता रखते थे, इसका पता रामेश्वरदास के नाम उनके इस पत्र से चलता है :

सेगांव, वर्धा
२५-६-३७

प्रिय रामेश्वरदास,

आपका पत्र मिला। बच्छराज एंड कंपनी से रकम के बारे मे मुझे सूचना मिली है। लगभग एक लाख रुपया ग्रामोद्योग संघ को देना है। आप व्यक्तिगत खर्च के लिए जो दे रहे है वह निश्चय ही अलग है।

ब्रजमोहन द्वारा मुझे कई 'गोरे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं' के लिए इंग्लैण्ड जाने को जहाज की सीटें मिली थी। अब वह यहां नहीं है। कलकत्ते में मुझे किसको लिखना चाहिए या आप ही लिखकर यह पूछें कि क्या एक अंग्रेज बहन को जहाज द्वारा भेजना सभव होगा ?

बापू के आशीर्वाद

१९. कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण

अगली गर्मियों मे मैं फिर भारत और ब्रिटेन के बीच व्यापारिक समझौते की बातचीत करने के लिए लदन गया। मैंने इस अवसर से लाभ उठाया और पारस्परिक संदेहों को दूर करने और ऐसे समझौते पर पहुंचने की कोशिश की, जिसके द्वारा कांग्रेस के लिए प्रान्तों में पद-ग्रहण करना सम्भव हो सके और उस स्वशासन का प्रयोग आरम्भ हो जाय, जिसे उस समय प्रान्तीय स्वायत्त शासन का प्रेरणाहीन नाम दिया गया था। पारस्परिक सदेह के कारण दोनो ओर काफी बिगाड़ हो रहा था। वाइसराय गांधीजी से मिलने का विचार लेकर भारत आये थे, पर अभीतक गांधीजी से उनकी मुलाकात नही हुई थी। हमारे अपने पक्ष के सम्बन्ध में मुझे यह खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे लन्दन पहुंचने के कुछ ही समय बाद मुझे बापू के विश्वस्त प्राइवेट सेक्रेटरी महादेव देसाई का पत्र मिला, जिसमे उन्होने यह तक लिख डाला कि लार्ड हेलीफैक्स हमारे साथ दुरंगी चाल चल रहे हैं और भारत के मित्र नहीं हैं। उन्होंने लिखा, "क्या आपका यह पूरा विश्वास है कि ये लोग हमारी सहायता करने को उतने ही उत्सुक हैं, जितना वे आपको लिखे गए पत्रो में प्रकट करते हैं? मेरी सूचना तो यह है कि हेलीफैक्स ही हैं, जो किसी प्रकार का समझौता नही चाहते। दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूककर पीता है और यह हेलीफैक्स भारत सचिव और दूसरो को यह सलाह देते प्रतीत होते हैं कि गाधीजी के साथ किसी भी हालत मे फिर समझौता न किया जाय।" मैंने उन्हें यह उत्तर दिया :

लंदन, १६ जून, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

मैं यहा मित्रों से बातचीत कर रहा था और वार्त्तालाप के दौरान मैंने यही पाया कि केवल अविश्वास काम कर रहा है, वस्तु स्थिति के सम्बन्ध में कोई मौलिक मतभेद नही है। बातचीत के दौरान मुझे ऐसा लगा कि यदि दोनों पक्षों के विचारों को इस प्रकार से सजाया जा सके कि वह दोनों के लिए ग्राह्य हो तो बड़ी बात हो। कुछ-कुछ इस प्रकार :

"यदि गवर्नर और उसके मंत्री मे गहरा मतभेद हो तो चाहे उस मतभेद का विषय उत्तरदायित्वों मे से ही एक क्यों न हो, मंत्रिगण और गवर्नर पहले समझौता करने की भरसक चेष्टा करेंगे, पर यदि वे अपनी चेष्टा मे असफल रहें और गवर्नर के लिए अपने मंत्रियो की सलाह का त्याग करना आवश्यक हो जाय तो वह उन्हें लिखकर देगा कि इस मामले मे वह उनकी सलाह मानने मे असमर्थ है, चाहे इसके कारण मंत्री को त्यागपत्र ही क्यों न देना पड़े। वैसी अवस्था मे उक्त

मंत्री गवर्नर की उस सूचना का अर्थ यह लगायगा कि उससे त्यागपत्र मागा जा रहा है।"

विचार कर रहा हू कि यह सुझाव भारत-सचिव के सम्मुख अपना बताकर रखू। हा, मैं यह साफ-साफ कह दूगा कि मुझे यह सुझाव बापू अथवा और किसी की ओर से रखने का अधिकार नही है। फिर भी मैं यह जानना चाहूगा कि इससे बापू की माग की पूर्ति होती है या नही। मेरी तो धारणा है कि होती है, इसलिए मैंने सोचा था कि इसे लेकर भारत-सचिव पर दबाव डालू। परन्तु यदि बापू इसे सन्तोषजनक न समझें तो इस पत्र के मिलते ही तार भेजना अच्छा होगा। जहा तक मैं समझता हू, तथ्य की बात यही है कि मंत्रिमण्डल को भग करने का उत्तर-दायित्व गवर्नर के कधो पर रहे। इस मसविदे मे मैंने इस विचार की रक्षा की है।

इस वक्तव्य मे लेशमात्र सत्य नही है कि लार्ड हेलीफैक्स व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किये जाने के विरुद्ध हैं। मैं यह इसलिए कह रहा हू कि मुझे इस बात की पूरी जानकारी है।

सम्भवतः कार्यकारिणी की बैठक शीघ्र ही होने वाली है। यहा स्थिति निराशाजनक हो, ऐसी कोई बात नही है। अतएव जबतक मैं यह न लिखू कि यहा कुछ होने वाला नही है तबतक, मुझे आशा है, कार्यकारिणी ऐसा कोई काम नही करेगी, जिससे दरवाजा बन्द हो जाय। यहा तो लोग हृदय से चाहते हैं कि काग्रेस पद-ग्रहण करे। यदि उन्हें बर्खास्तगी के सम्बन्ध मे बापू की बात से सहमत होने मे थोड़ा-बहुत सकोच है तो केवल इसी कारण कि समझौते से पैदा होने वाली परिस्थितियों के सम्बन्ध मे उन्हे भरोसा नही है। जहा तक बापू का सम्बन्ध है, मुझे तो अभी तक एक भी ऐसा आदमी नही मिला है, जिसे उनके सम्बन्ध मे गलतफहमी हो। इस समय का वातावरण १९३५ के वातावरण से बिलकुल भिन्न है। ये लोग बापू के अविश्वास को समझते हैं, परन्तु साथ ही उनका कहना है कि "वह पद-ग्रहण करके स्वय पता क्यो नही लगाते कि हम उनकी किस हद तक सहायता कर सकते है ?" मैं तो उनके सामने बापू के विचारो को ठीक ढंग से पेश कर ही रहा हू, और मैं यह देख रहा हू कि उनकी दलीलो का उत्तर देना इन लोगों के लिए कठिन हो रहा है। इसलिए अच्छा यही है कि अपनी ओर से दर-वाजा उस समय तक खुला रखा जाय जबतक कि ये लोग स्वय उसे बन्द न कर दें, और मेरा विश्वास है कि ये लोग ऐसा नही करेंगे।

तुम्हारा
घनश्यामदास

कुछ सप्ताह बाद मुझे यह खुशखबरी मिली कि काग्रेस ने पद-ग्रहण कर लिया मैंने महादेवभाई को लिखा :

प्रिय महादेवभाई,

अभी-अभी रायटर ने टेलीफोन पर सूचना भेजी है कि बापू के कहने से कार्य-कारिणी ने छह प्रान्तों में पद-ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। इस समाचार से मुझे बेहद खुशी हुई। मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि बापू ने ठीक ही निश्चय किया है और केवल बापू ही ऐसा निश्चय कर सकते थे। मेरी यह धारणा तो अवश्य है कि हमारी मांगें आशिक रूप से पूरी हो गई है, परन्तु किसी साधारण कोटि के राजनेता को ऐसी परिस्थितियो मे आगे कदम बढ़ाने का साहस न होता। अस्तु, हमारी परीक्षा का समय आरम्भ होता है और मुझे इसमे सन्देह नही है कि बापू की देखरेख मे कांग्रेसी मंत्रिमंडल सबसे सफल मंत्रिमंडल सिद्ध होगे और हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे।

अब मैं कल लार्ड हेलीफैक्स और सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से और दो-एक दिन मे फिर लार्ड जेटलैंड और लार्ड लोदियन से मिलूगा। इस देश से विदा होने के पहले मैं दो-चार अन्य राजनेताओं से भी मिल लू, ऐसा विचार है। मैं उनके दिमाग मे यह बात बिठा देना चाहता हूं कि यदि कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण कराने में इतनी कठिनाई हुई तो उसे पद-ग्रहण किये रहने को राजी करने मे और भी अधिक कठिनाई होगी और यदि उसके साथ विवेक से काम नही लिया गया तो वह पद-त्याग देगी। मैं उन्हें यह भी बताऊंगा कि नौकरशाही को सीमा के भीतर रखना कितना आवश्यक है।

वैसे राजाजी के पत्र से मेरी आशाओ पर तुषारपात हो गया था, तो भी मैं कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण किये जाने की सम्भावना की ओर से बिलकुल ही निराश नही हुआ था। पहली बात तो यह हुई कि तुमने जो एकदम खामोशी साध रखी थी उससे भी मुझे आशा बंधी हुई थी। तुम जानते हो हो कि मैं जबसे यहा आया हूं, तुमने मुझे एक भी चिट्ठी नही लिखी है। मैंने अपने मन मे सोचा कि यह सयोग मात्र नही हो सकता है, ऐसा जानबूझ कर और बापू की ताकीद से किया जा रहा है। इसका एकमात्र अर्थ यही हो सकता था कि तुम इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहना चाहते थे कि बापू क्या सोच रहे है। शायद बापू कार्यकारिणी की वर्धावाली बैठक की समाप्ति तक रुकना चाहते थे।

बापू को यह भी बता देना कि मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक है। आरम्भ मे काम उतना नही था, इसलिए मैंने पटेबाजी का कुछ अभ्यास किया था। काम बढ़ने पर वह छोड़ देना पड़ा। पर वैसे मैं काफी व्यायाम कर लेता हूं। मेरे लिए पटेबाजी नई चीज नही है, क्योकि बचपन मे मैं अच्छी-खासी लाठी चला और कुश्ती लड़ लेता था। यहा यह सब मैं पुराने अभ्यास को ताजा करने के लिए कर रहा था। पर यह सब कुछ बेकार-सा है। यह सब मैं तुम्हे इसलिए लिख रहा हूं

कि इससे तुम्हारा मनोरंजन होगा।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
८ जुलाई, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

आज मैंने लार्ड हेलीफैक्स से बात की और उन्हें बताया कि गवर्नरों और नौकरशाही के लिए निष्कपट भाव से आचरण करना कितना आवश्यक है। मैंने उनसे कहा कि कांग्रेस केवल विधान को चलाने के लिए पद-ग्रहण नहीं कर रही है, बल्कि अपने लक्ष्यस्थल की ओर अग्रसर होने के लिए। मैंने बताया कि कांग्रेस-वादी अपने लक्ष्य की ओर वैधानिक मार्ग से भी बढ सकते हैं और प्रत्यक्ष कार्रवाई के द्वारा भी। फिलहाल उन्होंने प्रत्यक्ष कार्रवाई का मार्ग छोड़कर वैधानिक मार्ग अपनाया है। यदि गवर्नरों और नौकरशाही ने घपलेबाजी से काम नहीं लिया तो वैधानिकता का बोल-बाला होगा, अन्यथा कांग्रेस पुनः प्रत्यक्ष कार्रवाई करने को बाध्य होगी। राजनीतिमत्ता का तकाजा यही है कि गवर्नरों और नौकरशाही को पार्लमेंट के इस इरादे से अवगत कर दिया जाय कि घपलेबाजी से काम नहीं चलेगा।

उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा, "मैं आपसे पहले भी कह चुका हूं और अब फिर कहता हूं कि आपको इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की आशका को जगह नहीं देनी चाहिए। अंग्रेजों का चरित्र ही कुछ इस प्रकार का है कि उन्हें अपने आपको नई परिस्थितियों के अनुरूप बनाने में देर नहीं लगती है। शायद भारतीय अफसरों को इस मामले में कुछ देर लगे, पर अंग्रेजों को देर नहीं लगेगी।"

तुम्हें शायद मालूम ही होगा कि मुझसे एक बार बापू ने तीथल में कहा था कि पद-ग्रहण के बाद वह स्वयं लार्ड लिनलिथगो से सीमाप्रान्त के आयोजित दौरे के सम्बन्ध में मुलाकात की दरख्वास्त करेंगे। जब मैंने हेलीफैक्स को यह बात बताई तो वह बड़े खुश हुए और बोले कि लार्ड लिनलिथगो भी बापू से मिलकर निस्सन्देह प्रसन्न होंगे, और आशा है कि उनके प्रस्तावित दौरे के सम्बन्ध में कोई अड़चन पैदा नहीं होगी।

मैंने उन्हें चेतावनी दी कि कांग्रेस-राज निर्विघ्न रूप से चलता रहेगा, ऐसी बात नहीं है। यदा-कदा कठिनाइयां उत्पन्न होती रहेंगी और यदि लार्ड लिनलिथगो बापू को समझ लेंगे तो उनके परामर्श से सदा लाभान्वित होते रहेंगे। उन्हें स्वयं यह बात मालूम थी और उन्होंने कहा, "मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि

लिनलिथगो बापू के साथ पारस्परिक मैत्री का सम्पर्क स्थापित करने का अवसर नही गंवायंगे।" मैं समझता हूं कि बापू को अपनी योजनाएं अभी से स्थिर कर लेनी चाहिए।

मुझे लोदियन के नाम बापू का पत्र, जिसमे उन्होंने उन्हें भारत आने का निमन्त्रण दिया है, बड़ा रोचक लगा। मैंने स्वयं उनसे इस विषय पर कुछ दिन पहले बात की थी और वह इस बारे मे विचार कर रहे है। मैंने इसकी चर्चा हेलीफैक्स से की। कहा कि लोदियन के अतिरिक्त और लोगों को भी भारत जाना चाहिए, जिससे अधिक सम्पर्क स्थापित किया जा सके। इस सिलसिले में मैंने लेन्सबरी और चर्चिल का नाम लिया। उन्हें सुझाव रुचा और वह बोले कि इससे वैयक्तिक मैत्री की भावना तो बढेगी ही, वे ब्रिटिश हितो को भारत को, और भारतीय हितो को ब्रिटेन को समझाने मे भी समर्थ होंगे।

आज तीसरे पहर मैं सर फिन्डलेटर स्टीवार्ट से फिर मिला। उनसे भी मैंने उन्ही बातों की चर्चा की, जिनकी चर्चा लार्ड हेलीफैक्स से की थी और उनके उत्तर भी प्राय: हेलीफैक्स के उत्तरो जैसे ही थे। मैं जेटलैण्ड से भी मिलूगा और जो बातें औरो से कहता आ रहा हूं उन्ही को लेकर उनपर भी जोर डालूगा। इधर तुम्हारे पास से कोई नया मसाला मिल गया तो मित्रो के सामने वह भी रख दूगा।

कल रात मैं सर जार्ज और लेडी शुस्टर के साथ भोजन कर रहा था तो सर जार्ज के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे बडी मनोरंजक बातचीत हुई। मैंने उन्हे बताया कि हमें सामाजिक कार्य को आगे बढ़ाने मे रुपये-पैसे की दिक्कत होगी और उनसे पूछा कि कोई सुझाव हो तो बताइये।

उन्होने मुझे स्केण्डिनेवियन देशो की यात्रा करके वहां की अवस्था का अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होने मुझे डेनियल हैमिल्टन का स्थान भी देखने की सलाह दी और कहा कि वह भारत मे अधिक कुछ न कर सकेगा, क्योंकि भारत मे हरेक काम रुपये को लक्ष्य मानकर किया जाता है। उन्होने कहा कि बैंकिंग जाच कमीशन पर भारत सरकार के २६ लाख रुपये खर्च हुए। हमें इग्लैण्ड मे भी रुपये को लक्ष्य बनाकर काम करना पडता है, परन्तु भारत मे, जहा रुपये को लक्ष्य बनाकर काम कराने का क्षेत्र, सम्भव है उतना विस्तीर्ण न हो, सेवा-भाव के क्षेत्र मे विस्तार की गुंजायश है। जब उसका पूर्ण विकास हो जायगा तो रुपये का खेल खुद ही पिछड़ जायगा।

उन्होने मुझे चेतावनी भी दी कि यदि मैं सैद्धान्तिक रूप से बात करना आरंभ करूगा तो उससे भारत का अनुदार वर्ग सशंकित हो जायगा। पर उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि बापू की प्रेरणा से सेवा-भाव के क्षेत्र को विस्तीर्ण करना सम्भव है और बजट मे वृद्धि किये बिना ही हमारे लक्ष्य की सिद्धि हो सकती है।

दूसरे शब्दो मे वह धन के मापदण्ड को पदच्युत करके उसके रिक्त स्थान पर परिश्रम के मापदण्ड को आसीन देखना चाहते हैं।

इस पत्र के साथ 'टाइम्स' का जो लेख भेजा जा रहा है, उसमे तुम देखोगे कि सम्पादक ने किस प्रकार मुकाबला करने मे और विध्वस करने मे भेद किया है। आखिर अब इन लोगों की समझ मे भेद आ गया।

उस दिन मैं श्री बटलर के साथ दोपहर का भोजन कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे गवर्नर बनाकर भारत भेजा जायगा। यहा सब लोग पूर्ण रूप से सन्तुष्ट दिखाई पडते है और मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि काग्रेस के प्रति सभी की सहानुभूति रहेगी और सभी सहायता करना चाहेगे। कुछ दिनों बाद मैं चर्चिल से मिल रहा हू। लार्ड डरबी ने मुझे दोपहर के भोजन के लिए दावत दी है और ओलीवर स्टेनले, जो एक मत्री हैं और व्यापार-मडल मे भी हैं, मेरे साथ दोपहर का भोजन करने आ रहे हैं। बम्बई के गवर्नर सर रोजर लमले भी मेरे यहा भोजन करने आ रहे हैं।

इन पारस्परिक सम्पर्कों के दौरान मैं इन लोगो के दिमाग मे यही बात बैठाने की चेष्टा कर रहा हू कि काग्रेस केवल शासन-विधान को सफल बनाने के लिए नही आई है, बल्कि आगे बढना चाहती है। उसके मार्ग मे रोड़े न अटकाकर उसकी सहायता करनी चाहिए। यदि रोडे अटकाये गये तो काग्रेस को बाध्य होकर पुन. प्रत्यक्ष कार्रवाई करनी पडेगी। परन्तु यहा मैंने यही पाया है कि सभी की सहानुभूति काग्रेस के साथ है और सभी यह आश्वासन देते है कि ब्रिटिश जनता यही चाहेगी कि काग्रेस अपने लक्ष्य की ओर बढे। लोग काग्रेस का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य ही मानते हैं। यदि स्वतन्त्रता का अभिप्राय साम्राज्य से नाता तोडना हो तो ये लोग इसके सर्वथा विरुद्ध है। औपनिवेशिक स्वराज्य मे भी संबंध विच्छेद करने का अधिकार मौजूद है, और यही काफी है।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन, १२ जुलाई, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ माडरेट कहलाने वाले लोगो ने यहां अभी से इस ढग की बातचीत शुरू कर दी है जिससे यहा सकेत मिलता है कि काग्रेस अधिक दिनों तक पदारूढ नही रहेगी। बहुत सम्भव है कि यह सबकुछ 'इच्छा विचार की जननी' वाली बात हो। ये लोग कुछ-कुछ इस ढग से बात करते हैं कि यदि जवाहरलाल ने राजद्रोह करने की सलाह देना आरम्भ किया तो क्या होगा?

क्या उन्हे गिरफ्तार कर लिया जायगा ? यदि नही तो गवर्नर दखल देने को बाध्य होगा ? इस तरह की दुनिया-भर की फजूल बातें यहा के राजनेताओ और राजनीति-विशारदो के पास पहुचाई जा रही हैं, परन्तु इनका अधिक प्रभाव नही पड़ता है।

मैंने एक माडरेट को यह बताने की चुनौती दी कि जवाहरलाल द्वारा राजद्रोह फैलाये जाने मे उनका क्या अभिप्राय है। उन्होने उत्तर दिया कि सम्भव है, वह स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द करें। मैंने करारा उत्तर दिया कि स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द करने में क्या बुराई है, क्या उपनिवेशों को सम्बन्ध तोड़ने का अधिकार प्राप्त नहीं है ? दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार के सदस्य तो साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद करने की आवाज बुलन्द कर ही रहे हैं।

मैं यह सब सिर्फ यह बताने के लिए लिख रहा हूं कि माडरेटो को इस बात से हार्दिक प्रसन्नता नही हुई है कि काग्रेस ने पद-ग्रहण कर लिया है, क्योकि यदि काग्रेस ने शासन की बागडोर हाथ मे ले ली तो नरम दल वालों का इतिहास हमेशा के लिए खत्म हो जायगा। ये लोग अब भी शासन करने का स्वप्न देख रहे हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

सर रोजर लमले (अब लार्ड स्कारबुरो) व्यक्तिगत सम्पर्क मे विश्वास रखनेवाले प्रतीत होते थे। वह इस समय बम्बई के गवर्नर निर्दिष्ट हो गये थे। उनसे बातचीत करने के बाद मैंने महादेवभाई को लिखा :

"हमने करीब दो घटे बातचीत की। उन्होने मुझसे हमारे लोगो के बारे में अधिक जानकारी हासिल करने की कोशिश की। वह खास तौर पर बापू से मिलना चाहते हैं और बहुत उत्सुक हैं कि भारत पहुंचते ही उन्हे बापू से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिले। क्या बता सकते हो कि यह किस प्रकार सम्भव हो सकेगा ? यह ठीक है कि बापू बम्बई कभी-कभी ही जाते हैं, पर शायद गवर्नर से मिलने जा सकें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात वह यह जानना चाहते हैं कि मन्त्री लोगों को जब कभी निमंत्रित किया जायगा तो वे उनके साथ भोजन करने आयेंगे या नही। मैंने कहा कि इस सम्बन्ध में मैं कुछ नही कह सकता। मैंने उनसे कहा कि बापू इस प्रकार के आतिथ्य-सत्कार के विरुद्ध हैं, पर निमन्त्रण मिलने पर मन्त्रियो को भोजन-समारोहो में जाने की छूट रहेगी या नही, इस बारे मे मैं कुछ नही कह सकता। इस बात के लिए तो बापू ही सबसे अधिक उपयुक्त हैं।

तुमने जो यह सुझाव दिया है कि मैं फ्रास मे लोरडेस जाऊं, सो उसके बारे मे यह कहना चाहता हू कि मुझे इस बात के सिवाय और किसी बात मे दिलचस्पी नही है कि मैं जल्दी-से-जल्दी भारत पहुंच जाऊं। पर मुझे लगता है कि सितम्बर के मध्य तक हमको यही रुकना पड़ेगा।

हा, मैं तुम्हारे लिए बढ़िया औजारों के बक्स और विज्ञान के बक्स लेता आऊगा। और किसी चीज की जरूरत हो तो लिख देना।"

मैंने श्री चर्चिल के साथ अपनी मुलाकात का यह विवरण बापू को भेजा :

२२ जुलाई, १९३७

"आज मैं चर्चिल के साथ उनके घर दोपहर का भोजन कर रहा था। फिर दो घटे तक उनका साथ रहा। वह यथापूर्व बडी सहृदयता से पेश आये। बड़े मिलनसार हैं, परन्तु भारत के विषय मे उनका अज्ञान वैसा ही बना हुआ है।

मुझे देखते ही उन्होंने कहा, "तो एक महान् प्रयोग का आरम्भ हो ही गया!" और जब मैंने उत्तर मे कहा, "हा, सो तो है, परन्तु इसे सफल बनाने मे आपकी सारी सहानुभूति सदाकाक्षा की दरकार होगी," तो उन्होंने मुझे इसका आश्वासन दिया। साथ ही उन्होंने कहा, "यह सबकुछ आप ही लोगों पर निर्भर है। आप जानते ही हैं कि जबसे सम्राट् ने विधान पर हस्ताक्षर किये हैं, मैंने उसके विरुद्ध जबान तक नहीं खोली है। यदि आप इस प्रयोग को सफल बना सकें तो अपने लक्ष्य पर स्वतः ही पहुच जायगे। आप देख ही रहे हैं कि दुनिया-भर मे प्रजातन्त्र पर किस तरह हमला किया जा रहा है और यदि आप अपने कार्यों द्वारा यह दिखा सकें कि आप प्रजातन्त्र को सफल बना सकेंगे तो आपको आगे बढने मे कोई कठिनाई नही होगी। आप खेल के नियमो का पालन करिये, हम भी वैसा ही करेंगे।"

मैंने पूछा, "खेल के नियमो का पालन करने से आपका क्या अभिप्राय है?" उन्होंने उत्तर दिया, "प्रान्तो को सन्तुष्ट, शान्तिपूर्ण और समृद्ध बनाइये, हिंसा मत होने दीजिए और अग्रेजो की हत्या मत करिए।" मैंने कहा, "आपने जो कुछ कहा उससे तो मैं हक्का-बक्का रह गया। क्या आप सचमुच यह विश्वास करते हैं कि हम अग्रेजो की हत्या करेंगे?" वह मेरी आत्मतुष्टि से चकित तो हुए, परन्तु उन्होंने मेरे इस आश्वासन को स्वीकार कर लिया कि भारत हिंसा मे विश्वास नही करता है। मैंने यह भी कहा कि "उग्र-से-उग्र काग्रेसवादी भी अंग्रेज-विरोधी नही है।" वह स्वतन्त्रता तो चाहता है, परन्तु इसके लिए अंग्रेज-विरोधी होना जरूरी नही है।" उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या यही बात जवाहरलाल के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है? मैंने उत्तर दिया, "हा, यद्यपि मैं पूजीवादी हूं और वह

समाजवादी हैं और सामाजिक कल्याण के सम्बन्ध में हम दोनों के दृष्टिकोण भिन्न है, तथापि उनके साथ न्याय किया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि वह एक महान् व्यक्ति हैं, बहुत साफ तबीयत के आदमी हैं और अंग्रेज-विरोधी तो जरा भी नही हैं। सारी बातों का पता लगाने के लिए आपको स्वयं भारत जाना चाहिए। इससे हमे भी बड़ी सहायता मिलेगी।" उन्होंने उत्तर दिया, "मैं जाना तो चाहूंगा। लिनलिथगो ने तो मुझे दावत दे ही रखी है, और यदि गांधीजी की भी यही इच्छा हुई तो मैं जाऊंगा। अपने नेता से मेरा अभिवादन कहिये और उनसे कहिये कि मैं उनकी सफलता की कामना करता हू। समाजवाद से मोर्चा लेने मे कोताही मत करिये। धन-सग्रह अच्छी चीज है, क्योकि इससे सूझ पैदा होती है। हा, पूजीवादियों को स्वामी नही, सेवक होना चाहिए।"

यूरोप की राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध मे उन्हें घोर संशय है। अगले साल-भर तक तो उन्हें युद्ध की आशका नही है, परन्तु वह सुदूर भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ कहने मे असमर्थ हैं। उन्होने कहा, "तानाशाह लोग पागल होते जा रहे हैं और अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। रूस उत्तरोत्तर कम साम्यवादी और जर्मनी अधिक समाजवादी होता जा रहा है। इस प्रकार दोनो मे एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित हो गया है। इंग्लैण्ड ही एक ऐसा देश है, जिसने प्रजातंत्र को बनाए रखा है। मैंने इंग्लैण्ड को पुनः सशस्त्र करने का आन्दोलन इसलिए आरम्भ किया कि मेरा विश्वास है कि राष्ट्रों का शासन या तो अधिकार के द्वारा होता है या बल के द्वारा। शासन करने का श्रेयस्कर मार्ग अधिकार है, परन्तु जबतक आपके पास बल न हो, आप अधिकार से वंचित रहेंगे, और अब हमारे पास बल है और उसकी सहायता से हम अपने अधिकार का प्रतिपादन कर सकते हैं। इटली तो एक साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा है!"

वह इसी लहजे मे देर तक बातें करते रहे। इस बार उन्होंने स्वय अनुरोध किया कि मैं उन्हें भारत की स्थिति के सम्बन्ध मे सूचित करता रहू। मैंने वचन दे दिया है।

इसके साथ कुछ कतरनें भेजता हू, जिनमें तुम्हारी दिलचस्पी होगी। 'मार्निंग पोस्ट' तो यहां की जनता के कानो मे विष उंडेलता ही रहता है, परन्तु इससे क्या हुआ! हम ठीक रास्ते पर चलते रहें।"

युद्ध के बारे मे श्री चर्चिल का अनुमान कितना ठीक निकला! एक साल तो और शान्ति रही, उसके बाद क्या होना था, यह कोई नही जानता था।

इस आड़े वक्त में लार्ड लोदियन भारत के अच्छे मित्र सिद्ध हुए हैं। मैंने महादेवभाई को (बापू के लिए) लिखा :

"कल शाम लार्ड लोदियन मिलने आये। उनके साथ भविष्य के सम्बन्ध मे बहुत देर तक बातचीत होती रही। मैंने उन्हें बताया कि यद्यपि कांग्रेस ने पद-ग्रहण कर लिया है, तथापि ऐसा उसने इसलिए नही किया है कि उसका विधान-मात्र से सन्तोप करने का विचार है, बल्कि इसलिए कि उसका स्थान किसी तरह ऐसी वस्तु को दिया जाय, जो उसे पसद हो, और अब जबकि उसने आपकी इच्छा के अनुरूप आचरण किया है, यह आप कहां तक सम्भव समझते हैं कि इस विधान को अमल मे लाकर वह उसके स्थान पर अपनी पसन्द की चीज स्थापित कर देगी, उन्होने उत्तर दिया, "आप लोगों को फिलहाल नौकरियो के और साम्प्रदायिक प्रश्न को नही छेड़ना चाहिए, परन्तु समाज-सुधार के अन्य पहलुओं पर आपको गवर्नरो के हस्तक्षेप को कदापि महन नही करना चाहिए। ऐसे शनै.-शनै. एक प्रकार की परिपाटी स्थापित हो जायगी और प्रान्तीय स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से स्थापित हो जायगी। रही सघ शासन-व्यवस्था की बात, सो जब वह अस्तित्व मे आयगी तो मुझे आशा है कि कांग्रेस अपना निजी मंत्रिमंडल बना लेगी।"

मैंने उन्हें बताया कि ३७५ सीटो मे कांग्रेस को मुश्किल से १०० मिलेंगी और इस प्रकार वह बहुसख्यक दल के रूप मे नही जा सकेगी। इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि बहुसख्यक न होते हुए भी वह एक सबसे अधिक सख्या वाले दल की हैसियत से बहुसंख्यक दल का गठन कर सकेगी। मैंने इसका खण्डन नही किया। इसके बाद उन्होने सुझाव दिया कि हमे तुरन्त ही सैनिक बजटों को चुनौती देना आरम्भ कर देना चाहिए। इसके फलस्वरूप गवर्नर जनरल के साथ बातचीत का मौका मिलेगा और फलत सैनिक बजटो के मामले मे अधिक कहने का अवसर मिलेगा। मैंने पूछा, "इससे हमे सैनिक अथवा वैदेशिक मामलो पर अधिकार करने का अवसर किस प्रकार मिल जायगा ? आपका दावा है कि शासन-विधान मे स्वत: विकास के अणु विद्यमान हैं। अब आपको यह साबित करना होगा कि इसके द्वारा हमें वह मिल जायगा, जिसे हममे से कुछ लोग औपनिवेशिक स्वराज्य कहते हैं।"

उन्हें यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि एक नये कानून के बगैर यह सम्भव नही होगा। तब मैंने उन्हें बताया कि मैं इस चीज की विभावना किस रूप मे करता हूं। मैंने यह बात मान ली कि बुद्धि-विवेक और समझाने-बुझाने के मार्ग द्वारा ऐसी परिपाटी को जन्म दे सकेंगे, जिसके द्वारा दो-तीन वर्षों के भीतर ही हमे पूर्ण प्रान्तीय स्वतन्त्रता मिल जायगी। हमें यह देखना होगा कि कानून और व्यवस्था की रक्षा होती है और साम्प्रदायिक मामलों मे निष्पक्षता से काम लिया जाता है या नही। नौकरिया वास्तव में सेवा करने के साधन बन जायंगी। यह सबकुछ तो ठीक है, परन्तु जहा तक केन्द्र का सम्बन्ध है, मुझे इसमे पूरा संदेह

है कि यह अवस्था हस्तान्तरित विषयों तक के सम्बन्ध में उत्पन्न की जा सकेगी। इसलिए मैंने यह सुझाव रखा कि शासन-विधान को दो-तीन साल तक अमल में लाने के बाद हमें अपने सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का एक छोटा-सा दल इंग्लैण्ड भेजना चाहिए। यह दल वहां मन्त्रिमंडल के सदस्यों से मिलकर उन्हें बतायगा कि हमने वैधानिक उपायों से आगे बढ़ने की भरसक चेष्टा की है, पर अब प्रगति सम्भव नहीं है और इसके लिए एक नया कानून बिलकुल आवश्यक हो गया है। इस दल को वहां की सरकार को इसके लिए राजी करने की चेष्टा करनी चाहिए कि अब हमें अपनी पसन्द की चीज मिल जानी चाहिए। दल को वहां वालों को स्पष्टरूप में बता देना चाहिए कि भारत अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट रहने वाला नहीं है और यदि स्थायी समझौता नहीं हुआ तो प्रत्यक्ष कार्रवाई की सम्भावना है।

इसके बाद मैंने लार्ड लोदियन से पूछा कि क्या यह कार्य-प्रणाली अपनाने से वहां की सरकार हमारे साथ औचित्यपूर्ण व्यवहार करने और हमारी बात सुनने को राजी हो जायगी। मैंने यह सुझाव भी पेश किया कि आगामी दो-तीन वर्षों में हमें शासन-विधान को हर प्रकार से सफल बनाने की चेष्टा करनी चाहिए और पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करना चाहिए, जिससे समय आने पर वहां के मंत्रि-मंडल के सदस्य और वहां की जनता हमारे साथ मैत्री का आचरण कर सके। इंग्लैण्ड के प्रमुख व्यक्ति भारत जावें और भारत के प्रमुख व्यक्ति इंग्लैण्ड आएं।

उन्होंने उत्तर दिया कि सुझाव अच्छा है। उन्होंने आशा प्रकट की कि समय आने पर इसका इंग्लैंड की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ेगा और इस कार्य-प्रणाली के द्वारा, सम्भव है, हमें अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त हो सके। उन्होंने बताया कि उन्होंने बापू को चिट्ठी लिखी है और शायद नवम्बर के मध्य तक वह खुद भी भारत के लिए रवाना हो जायं। परन्तु उन्होंने कहा कि इस बात को गुप्त रखा जाय। मैंने पूछा कि क्या इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई कार्यक्रम निर्धारित किया है? उन्होंने कहा, "न। स्पीचें झाड़ने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है।" मैंने उत्तर में कहा कि मैं यह तो नहीं चाहता कि आप स्पीचें दें, परन्तु मैं यह अवश्य जानना चाहता हूं कि आप भारत अंग्रेजों के अतिथि होकर जायंगे या भारत के? उन्होंने कहा, "निश्चय ही भारत का। मैं गांधीजी से मिलूंगा।" परन्तु मैंने कहा, इतना ही काफी नहीं है। आपको अधिक-से-अधिक कांग्रेसवादियों से मिलना चाहिए। आपको गवर्नमेंट हाउस में न ठहरकर भारतीयों के यहां ठहरना चाहिए।

मैंने उनसे पूछा कि क्या वह दिल्ली और कलकत्ते में मेरे पास ठहरना पसन्द करेंगे। उन्होंने उत्तर दिया, "मुझे एक दिन के लिए तो गवर्नमेंट हाउस में ठहरना ही होगा, परन्तु वैसे मुझे आपके साथ ठहरकर बड़ी खुशी होगी।" मैंने उन्हें बताया कि मैंने इसी तरह की बात चर्चिल के साथ की है, परन्तु वह शायद सभी

जायगे जब बापू उन्हें बुलायगे। उन्होंने इस सम्वाद मे बडी रुचि दिखाई। वह मुझसे सहमत थे कि मुझे इसी प्रकार का अनुरोध बाल्डविन से भी करना चाहिए।

मैंने उन्हें बताया कि यदि दो-तीन साल बाद प्रगति नही हुई तो भारत प्रत्यक्ष कार्रवाई करने को बाध्य हो जायगा। परन्तु प्रत्यक्ष कार्रवाई का अर्थ लार्ड लोदियन ने रक्तपातपूर्ण क्रांति लगाया है। वह अहिंसात्मक सामूहिक सविनय अवज्ञा की कल्पना तक नही कर सकते हैं। उनका खयाल है कि जवाहरलाल बापू के सामने सिर केवल इसलिए झुका रहे हैं कि इसके सिवा और कोई चारा नहीं है। परन्तु ठीक समय पर वह उठ खडे होंगे और चूकि अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा में उनका विश्वास नही है, इसलिए वह भारत को क्रान्ति की ओर ले जायगे। युवा समाज उनके पीछे हो लेगा, इसका फल यह होगा कि पूजीपति फासिस्ट ढग पर अपना सगठन करेंगे और किसान लोग साम्यवादी ढग पर।

मैंने उन्हे बार-बार बताने की कोशिश की कि वह यूरोपियन हैं, इसलिए उन्हें साम्यवाद और फासिज्म के अलावा और किसी चीज का पता नहीं है, जबकि भारत मे एक तीसरी दिशा मे कदम उठाया गया है, जिसमे कुछ सफलता भी मिली है, और वह है अहिंसात्मक क्रान्ति। मैंने उन्हे बताया कि जबतक कांग्रेस को यह यकीन न हो जायगा कि प्रत्यक्ष कार्रवाई करने पर भी उसकी अहिंसात्मक रूपरेखा वैसी ही बनी रहेगी तबतक वह वैसा नही करेगी। परन्तु उन्होंने कहा कि मानवी प्रकृति जैसी कुछ है, रहेगी। वह इस बात पर विश्वास ही न कर सके कि यह सबकुछ सम्भव है।

इसके बाद उन्होने कहा, "गांधीजी का आदर इसलिए किया जाता है कि वह सत पुरुष हैं, परन्तु जब सघर्ष की नौबत आयगी तो वे लोग उनकी बात तक नही पूछेंगे। जवाहरलाल कभी गांधीवाद के आगे सिर नहीं झुकायेंगे।" लाख समझाने पर भी मैं उन्हें अपनी बात का विश्वास नहीं दिला सका। उन्होंने केवल इतना ही कहा कि वह मेरे कथन के मर्म को समझने के लिए भारत जायंगे।

मुझे इसी डाक से बापू का अपने हाथ से लिखा हुआ पत्र मिला है। तुम्हारा पत्र भी मिला है। मुझे बापू का पत्र इतना पसन्द आया कि मैंने उसकी नकलें लार्ड हेलीफैक्स, लोदियन और चर्चिल को भी भेजी हैं। मैंने मत्रियो के वेतन पर बापू के अन्तिम लेख की नकल भी प्रमुख व्यक्तियों के पास भेज दी है।

मुझे सारी बातों की खबर देते रहना। वैसे मैं यूरोप के अन्य देशो के लिए रवाना हो रहा हूं, क्योंकि ये लोग अगस्त में काम-काज नहीं करते हैं, परन्तु हम लोग सितम्बर के पहले सप्ताह मे फिर इकट्ठे होंगे। यह बात बडी खिझाने वाली है कि हमे उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, परन्तु इसके सिवा और चारा भी क्या है!

हमें यदाकदा 'टाइम्स' और 'डेली हेरल्ड' में भारत के सम्बन्ध में प्रेस-समाचार पढने को मिलते रहते हैं। पर वैसे हम लोग एक प्रकार से अलग-थलग से हो गए हैं। इसलिए मैंने देवदास से 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नियमित रूप से भेजने को कह दिया है।

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन
४ सितम्बर, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

तुम्हारे पत्रों को केवल रोचक कहना काफी नहीं होगा। मैं एक ऐसे आदमी की तरह हूं, जो सहारा के रेगिस्तान में हो और प्यास से तड़प रहा हो। मैंने देवदास को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' भेजने को लिख दिया था, परन्तु उन्होंने अभी तक भेजना शुरू नहीं किया है। इसके परिणामस्वरूप भारत से मेरा सम्बन्ध कटा-सा हो गया। मेरा लड़का कुछ कटिंग भेजता रहता है और मैं 'हरिजन' से सम्पर्क बनाए हुए हूं। परन्तु इन सारी चीजों से मुझे वह सामग्री नहीं मिलती है, जो तुम्हारे द्वारा मिल सकती है। इसलिए मुझे जब तुम्हारे पत्र मिलते हैं तो मैं उनका अच्छी तरह पान करता हूं, और जब कभी बापू लिखते हैं तब तो मैं अपने-आपको सशरीर स्वर्ग मे पाता हू। मैं यदा-कदा तुम्हारे पत्रों के उद्धरण लार्ड हेलीफैक्स के पास भेज देता हू, पर इधर कई दिनों से नहीं भेज रहा हू, क्योंकि भारत का प्रश्न मेरे लिए बड़े महत्त्व का हो सकता है, उनके लिए शायद वह इस समय महत्त्व का न हो, जबकि शंघाई मे गोली-वर्षा हो रही है और फ्रेन्को ब्रिटिश जहाजों को टारपीडो मारकर डुबो रहा है।

बापू ने अण्डमान के भूख-हड़तालियों की हड़ताल भग कराने मे कमाल का काम किया है। उनके इस कार्य की बडी सराहना हो रही है। मुझे इसमे संदेह नही है कि जब अधिकारियों ने बापू को उनके छुटकारे के लिए आते देखा होगा तो चैन की सास ली होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि वाइसराय के साथ बापू की मित्रता घनिष्ठतर होती जा रही है, परन्तु सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि वह हमें सहयोग का मार्ग दिखा रहे हैं। वह कई बार कह चुके हैं कि वह सहयोग करने के लिए बेहद आतुर हैं और असहयोग भी सहयोग की दिशा में उठाया गया एक कदम है। अब वह आचरण द्वारा यह सिद्ध कर रहे हैं। निस्सन्देह यदि हम अपने भीतर सामर्थ्य उत्पन्न कर लें तो सहयोग से किसी प्रकार के अनिष्ट की सभावना नही है।

लक्ष्मीनिवास भारतीय समाचार-पत्रों की जो कतरनें भेजता रहता है उनसे पता चलता है कि उच्छृंखलता जोर पकड़ती जा रही है। बिहार में किसानो ने

व्यवस्थापिका सभा पर धावा बोला, भवन मे प्रवेश करके सीटो पर अधिकार कर लिया और मुख्य मन्त्री के कहने पर भी वही जमे रहे। यह सब मुझे बिलकुल अच्छा नही लगा। इस पर तुर्रा यह कि मुख्य मंत्री ने भाषण द्वारा उन्हें मीठी-मीठी बातें तो बताईं, पर यह नही बताया कि उन्होंने व्यवस्थापिका सभा की सीटो पर अधिकार करके और वहा से जाने से इन्कार करके गलती की। राघवेन्द्रराव के विरुद्ध जो प्रदर्शन किया गया, बापू ने उसकी आलोचना करके ठीक ही किया, परन्तु मुझे आशका है कि यदि कठोरता नही बरती गई तो उच्छृंखलता मे उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। मुझे आशा करनी चाहिए कि काग्रेस के अधिकारी इस परिस्थिति की ओर से अचेत नही हैं और इस सम्बन्ध मे सारी आवश्यक कार्रवाई करेंगे। आम लोगो मे यह धारणा जड पकड़ती जा रही दीखती है कि स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता एक ही चीज है।

अपने दफ्तर के बारे मे तुमने जो कुछ कहा, उससे मुझे आश्चर्य हुआ। तुम कहते हो कि मुझे इन सारी चीजो मे फेरफार करने मे एक दिन तुम्हारी सहायता करनी चाहिए। मैंने इसके लिए इन्कार कब किया है ? क्या तुमने मुझसे इस सम्बन्ध मे कभी कुछ कहा ? तुम्हारे दफ्तर के बारे मे मुझे बापू से झगडा करते सात वर्ष हो गये, पर अभी तक कोई नतीजा नही निकला है। बापू को सारे पत्र अपने हाथ से, कभी इस हाथ से कभी उससे, लिखने पडते है। तुम्हारे टाइपिस्ट लोगो के लिए उपयुक्त स्थान तो अजायब-घर है। मैंने कार्यदक्षता के संबध मे बापू से बहस की है। वह मुझसे सिद्धान्तरूप मे तो सहमत हैं, परन्तु जब उन्हें लदन मे एक स्टेनोग्राफर की जरूरत पडी और मैंने एक स्टेनोग्राफर देने की तत्परता दिखाई तो उन्होने पोलक की बहन को काम के लिए बुला लिया ! खैर, महादेवभाई, जहांतक मेरा सबध है, मैं तैयार हू।

मैंने एटलस के लिए अभी आर्डर नही दिया है। रही सदर्भ-रेफरेन्स की पुस्तकों की बात, सो 'स्टेट्समैन इयर बुक' के लिए आर्डर दे ही रहा हूं। तुम्हे और जिन-जिन पुस्तको की दरकार हो, मुझे लिखो, मैं आर्डर दे दूगा। मैं तुम्हारे लड़के के लिए बढ़ई के औजारो का बक्सा भी भेज रहा हू।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन
लन्दन
८ सितम्बर, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

जहा तक बापू के स्वास्थ्य का संबध है, तुम्हारे २६ तारीख के पत्र से चिंता

हुई। मैंने उनके संबंध मे तुम्हारे पास तार और भेजा तुम्हारा उत्तर न मिलने से चिन्ता और भी बढ गई है। गनीमत यही है कि उनके स्वास्थ्य के संबंध में समाचार-पत्रों मे कुछ नही निकला है। इससे मैंने यही समझा है कि अब वह पहले से अच्छे हैं। फिर भी उनके आराम लेने के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। तुमने केवल अपने अन्तिम पत्र में लिखा है कि बापू ने अवस्था को समझ लिया है और अब वह अधिक विश्राम ले रहे हैं। इसलिए समझ मे नही आता कि उनके स्वास्थ्य मे गड़बड़ी क्यों हुई।

तुमने अपने पत्र में लिखा था कि मुझे शीघ्र चल पडना चाहिए। मैंने तुम्हे तार दिया है कि वैसे मेरा विचार ७ अक्तूबर को रवाना होने का था, परन्तु यदि मेरी दरकार इससे पहले हो तो मैं सबकुछ छोडकर यहा से चल दूगा।

फिलहाल मैं तुम्हारे पत्रो और लेखो का कोई उपयोग नही कर रहा हूं, क्योंकि इस समय इस देश मे भूमध्यसागर और सुदूर पूर्व-संबधी समस्या को लेकर बड़ी बेचैनी फैली हुई है। सब कोई कार्य मे बेतरह व्यस्त दिखाई देते हैं और मुझे आशका है कि शनैः-शनैः अवस्था गंभीर रूप धारण कर लेगी। ब्रिटेन १९३५ में सारे अपमान सहता गया, पर अब वह पहले से अधिक शक्तिशाली है और एक वर्ष बाद उसकी शक्ति मे और भी अधिक वृद्धि हो जायगी। भूमध्यसागर और सुदूर-पूर्व मे उसके साथ जिस प्रकार छेड़खानी की जा रही है, उसके कारण उसने पहले से अधिक कठोर रुख अख्तियार कर लिया है और एक वर्ष बाद जब वह खूब शक्तिशाली हो जायगा तो शायद यह छेड़छाड़ बर्दाश्त नही करेगा। उधर जापान भी लडाई पर उतारू दिखाई देता है और हिटलर अपने उपनिवेश वापस चाहता है, और इटली भी अपनी तलवार झनझना रहा है। हो सकता है, यदि इन्हें इस बात का पता लग जाय कि ब्रिटेन एक वर्ष बाद अबसे कही अधिक शक्तिशाली हो जायगा तो शायद ये एक वर्ष प्रतीक्षा करने के बजाय फौरन युद्ध छेड़ना चाहेंगे। उधर इटली और रूस मे निश्चित रूप से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है और पता नही, बात कहा तक बढे। इस प्रकार तुम देखोगे कि इस समय राजनैतिक अवस्था बड़ी नाजुक है। साथ ही यह भी निश्चित है कि ब्रिटेन लड़ाई छेड़ने को उत्सुक नही है। यदि लड़ाई छिड भी गई तो वह जितने दिन तक सम्भव होगा, अलग रहना चाहेगा। पर एक ओर फासिस्ट देशो और बोलशेविक रूस मे और दूसरी ओर जापान और ब्रिटेन मे मनमुटाव काफी बढ़ गया है।

सस्नेह तुम्हारा ही
घनश्यामदास

२०. उन्नीस सौ सैंतीस

मैंने सन् १९३७ मे कुछ समय इंग्लैंड मे बिताया। पर वहा भी दो ज्वलंत प्रश्न मुझे बराबर सताते रहे। पहला प्रश्न यह था कि काग्रेस को प्रान्तो मे पद ग्रहण करना चाहिए या नही। दूसरा यह कि नजरबन्दो की रिहाई होनी चाहिए या नही। काग्रेस ने पद-ग्रहण न करने का जो हठ पकड रखा था उससे मुझे बड़ा मानसिक क्लेश पहुचा। मेरे मनोभाव राजाजी के नाम ३ जुलाई, १९३७ के पत्र मे प्रकट हुए।

"आपके निर्णय से मुझे जो निराशा हुई है, मेरा विश्वास है कि आप उसे समझेंगे। मैं आपकी अपेक्षा इग्लैंड के प्रतिनिधियों के अधिक निकट सपर्क मे हूं और इसलिए जितना अविश्वास आपको है, उतना मुझे नही है। इसलिए मेरी यह धारणा स्वाभाविक ही है कि यदि मेरी तरह आप भी उनके निकट संपर्क में आवें तो आपका अविश्वास काफूर हो जायगा, और सपर्क स्थापित करने का उपाय है पद-ग्रहण। इतने स्पष्टीकरण के बाद कोई भी गवर्नर हस्तक्षेप करने का साहस करेगा, ऐसा मैं क्षण-भर के लिए भी मानने को तैयार नहीं हू। मेरी सारी दलीलें इसी आधार पर अवस्थित हैं। मैं जानता हू कि आप इस तर्क को स्वीकार नही करते, पर मैं इसके जवाब मे इसके सिवा और कोई दलीलें पेश नही कर सकता कि आप खुद आजमाइश कर देखिये।

मुझे अबतक याद है कि किस प्रकार, जब बापू लार्ड अरविन के निवास-स्थान पर गये थे तो उनकी लगभग पक्की धारणा थी कि लार्ड अरविन सच्चे आदमी नहीं हैं और वहां वह यही अविश्वास की भावना लेकर गये थे, किन्तु जब वह लौटे (लौटने पर मैं ही उनसे सबसे पहले मिला था, क्योंकि वह मुझे लेने के लिए मेरे निवास-स्थान पर उतर पडे थे) तो मेरा पहला सवाल यही था कि आदमी कैसा जंचा ? उन्होने उत्तर दिया था कि आदमी तो ईमानदार है। इस जवाब से मुझे बडी तसल्ली हुई। मैं आपसे आज भी यही कहूगा कि अविश्वास का एकमात्र कारण व्यक्तिगत सपर्क का अभाव है और हमे अपने ही हित में व्यक्तिगत सपर्क स्थापित करना चाहिए। पर शायद बापू का निर्णय हममे से किसी भी व्यक्ति के निर्णय के मुकाबले मे अधिक युक्तिसगत होगा, इसलिए हम सबको उसे ही मानना चाहिए। वैसे मेरे मन की बात तो यह है कि मेरा दिमाग ऐसा करने से इकार करता है।

कभी-कभी हताश हो जाता हू, पर साथ ही मुझे इस विचार से सांत्वना मिलती है कि मेरा यही पुरस्कार क्या कम है कि मैंने बापू के आगे अंग्रेजो का पक्ष

लिया और अंग्रेजो के आगे बापू का। यह काम भी बडा रोचक है। वैसे इस कार्य से मेरा जी ऊब जाता है, पर मैं जितनी ही अधिक बापू की चर्चा अंग्रेजों से और अंग्रेजों की चर्चा बापू से करता हूं, मुझे उतना ही अधिक प्रतीत होता जाता है कि दुनिया की इन दो बड़ी शक्तियों में मेल न होना कितने दुर्भाग्य की बात है। मेरा खयाल है कि जब इन दोनो शक्तियों मे मेल हो जायगा तो संसार का बड़ा उपकार होगा। अपने इस विश्वास से मुझे प्रोत्साहन मिलता है।"

मंत्रियों के पद-ग्रहण करने की देर थी कि राजनैतिक नजरबन्दों की रिहाई की लोकप्रिय मांग सामने आ गई। बंगाल के लिए यह स्वभावत: ही मुख्य प्रश्न था। मैंने १७ सितम्बर को लन्दन से एक पत्र में श्री नलिनीरंजन सरकार को लिखा :

"आपको एक विशेष प्रश्न के ऊपर लिखना चाहता हूं। आप जानते हैं कि गाधीजी ने नजरबन्दो के बारे में क्या कुछ किया है। उन्होंने सभी को भारी परेशानी से बचा लिया है और मुझे तनिक भी सन्देह नही कि इसके लिए भारत सरकार और अन्य सब कोई उनके प्रति आभारी हैं। किन्तु अब नजरबन्दों की रिहाई का सवाल उठता है। आप जानते ही हैं कि गांधीजी नजरबन्दों को राहत पहुंचाने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं और 'राहत' का मतलब नजरबन्दो की रिहाई के अलावा और क्या हो सकता है ?

मैं आपकी कठिनाइयों को समझता हूं। सभी नजरबन्दो को तुरन्त रिहा करने मे जो अड़चनें सामने आवेंगी, मैं उनसे बेखबर नही हूं। किन्तु एक बार रिहाई का सिलसिला बाकायदा शुरू हो जाने के बाद तमाम नजरबन्दो की रिहाई का प्रश्न केवल समय का ही प्रश्न रह जायगा। मैं तो नही समझता कि कोई बदला लेने की भावना से प्रेरित है। इन लोगों को कानून और व्यवस्था के हित मे नजरबन्द किया गया था, और यदि उनकी रिहाई से कानून और व्यवस्था मे बाधा न पडती हो तो उनकी रिहाई आवश्यक हो जाती है।

गाधीजी का स्वास्थ्य बहुत खराब है और इधर उन्होने नजरबन्दो की रिहाई का बीड़ा उठा लिया है। जब मैंने देखा कि उनके हस्तक्षेप के कारण नजरबन्दो की भूख हड़ताल का अंत हो गया तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ। पर मुझे उसके फलितार्थों पर चिन्ता-सी होने लगी है। इसलिए आपसे अनुरोध है कि आप कृपा करके इस बारे मे गांधीजी की इच्छाओं को पूरा करने के लिए अपनी शक्ति भर अधिक-से-अधिक प्रयत्न करें।

मुझे मालूम हुआ है कि गाधीजी ने आपके मंत्रिमंडल से अपील की थी और उसका उन्हें बहुत ही अभद्रतापूर्ण उत्तर मिला है। इसके विपरीत, वाइसराय ने उन्हें बड़ा ही मित्रतापूर्ण उत्तर भेजा। सोचिये तो सही, हमारे अपने ही आदमियों

ने उन्हें कैसा रूखा उत्तर दिया। एक मन्त्री के नाते आपके सिर पर कितनी भारी जिम्मेदारियां हैं, सो आपको बताना न होगा। आप अन्य मन्त्रियो पर कुछ-न-कुछ दबाव अवश्य डाल सकते हैं।

क्या आप मेरी ओर से गवर्नर महोदय से स्थिति का विश्लेषण करने का अनुरोध करेंगे ? मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि गाधीजी को शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने के सारे अवसर दिये जाय। उन्होंने काकोरी के कैदियों के पक्ष में किये गए प्रदर्शन को किस प्रकार धिक्कारा, सो आप जानते ही है। अहिंसा की भावना को देश मे स्थायी रूप देने के सबध मे वह आएदिन जो कुछ कहते रहते हैं, सो भी आपसे छिपा नही है, और आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हू कि गाधीजी कल्पना के राज्य मे विचरण नही करते हैं। इस समय जो कुछ किया जायगा, वह हमारे लिए और हमारे हिस्सेदार अग्रेजो के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगा। सर जान एडरसन निस्सन्देह ऐसे व्यक्ति हैं, जो दूर भविष्य की बात सोच सकते हैं। वाइसराय का रुख भी बहुत ही सहायतापूर्ण है। गाधीजी बूढे हो गए हैं। जब वह हमारे बीच नहीं रहेगे तो हमे काफी मुसीबतो का सामना करना पड़ेगा। पर यदि हम उनके जीवन-काल मे सहयोग और शान्ति की परम्पराएं स्थापित कर सकें तो इससे भारत बहुत-सी कठिनाइयो से, और इग्लैंड काफी परेशानी से बच जायगा। जरूरी हो तो मेरा पत्र गवर्नर महोदय को सुना दीजिए, पर आप शक्ति-भर प्रयत्न अवश्य कीजिए। आपको यह न भूलना चाहिए कि आपके पद का जो भी स्वरूप हो, आप एक मन्त्री हैं और आपकी जिम्मेदारिया हैं। विश्वास है, आप स्वय इस तथ्य को समझते होंगे।"

बगाल मे राजबदियो का जेल मे रखा जाना लोगो मे नाराजगी और अशान्ति का कारण बना हुआ था। इग्लैंड मे मैं और जितने दिन रहा, मेरे समय का काफी भाग ब्रिटिश सरकार को यही सुझाने मे खर्च हुआ। स्वदेश लौटने पर मैंने एक योजना तैयार की, जिसे गाधीजी और नलिनी सरकार दोनो ने स्वीकार किया, नलिनी सरकार ने बंगाल-सरकार की ओर से। प्रस्ताव यह था कि जो लोग अपने घरो और गावों मे नजरबन्द है, उनमे से ११०० को तत्काल रिहा कर दिया जाय और जो जेलो मे नजरबन्द हैं, उन्हें जत्थों मे एक निश्चित समय के भीतर, जो चार महीनों से अधिक न हो, रिहा किया जाय। चार महीने के बाद कोई भी जेल मे न रहे, सिवा इस अवस्था के कि किसी खास बदी के बारे में गाधीजी यह कहे कि उससे उन्हे सन्तोषजनक आश्वासन नही मिला और इसलिए वह उसकी रिहाई की सिफारिश नही कर सकते। किन्तु सरकार को गाधीजी की तमाम सिफारिशो को स्वीकार कर लेना चाहिए। नलिनी सरकार स्वभाव से ही अपनी जिम्मेदारियो

को समझने वाले व्यक्ति और बंगाल के सच्चे सेवक थे।

दुर्भाग्यवश, गांधीजी उसी समय बहुत बीमार पड़ गये और उनका स्थान लेने वाला उतना ही विश्वस्त पंच कोई दूसरा उपलब्ध नहीं था। कुछ गैरकांग्रेसी नेताओं द्वारा हिंसा के प्रतिपादन ने रिहाई की समस्या को काफी जटिल बना दिया। उस समय दुर्भाग्यवश बंगाल की राजनीति ने विभिन्न दलों के बीच झगड़ों-टंटों का रूप धारण कर लिया और बंगाल की सरकार को, जो उस समय कई दलों की मिली-जुली सरकार थी, अरुचिकर वातावरण में काम करना पड़ा।

२१. कुछ भीतरी इतिहास

कांग्रेस ने प्रांतों में पदग्रहण किया और हमारे सामने उज्ज्वल भविष्य आ उपस्थित हुआ। दो वर्ष बाद यह उज्ज्वल भविष्य महायुद्ध के थपेड़ों में आकर अत्यन्त दुःखद रूप से खण्ड-खण्ड होने वाला था। इस वृत्तान्त को यहीं छोड़ने से पहले पदग्रहण के भीतरी इतिहास के कुछ अंशों पर दृष्टिपात करना अच्छा रहेगा। बापू ने मुझे स्वयं लिखा :

सेगांव
१६ जुलाई, १९३७

भाई घनश्यामदास,

मैं तुम्हारे सारे पत्र ध्यान से पढ़ता हूं। तुम्हें लिखने का न तो समय मिला, न इच्छा हुई। और लिखता भी क्या ? प्रति क्षण अवस्था बदल और सुधर रही थी। ऐसी अवस्था में तुम्हें कुछ लिखना अनुपयुक्त होता। दूसरों को लिखना जरूरी था, क्योंकि मैं भी उतना ही प्रभावित होना चाहता था, जितना वे लोग मुझे लिखते थे। परन्तु मैं इतना अवश्य कह सकता हूं कि मैं विदेशों से आये हुए पत्रों से उतना प्रभावित नहीं हुआ जितना कि भारत की घटनाओं से। यह कहो कि मेरी अवस्था उस स्त्री जैसी थी, जिसके शीघ्र ही बच्चा होने वाला हो। ऐसी स्त्री के शरीर के भीतर न जाने क्या-कुछ होता है, पर बेचारी उन सारी बातों का वर्णन नहीं कर सकती है। अब हम सब जानते ही हैं कि क्या हुआ। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि कार्यकारिणी की बैठक में जवाहर ने जो कुछ किया और कहा, वह सचमुच विलक्षण था। वह पहले ही मेरी निगाह में ऊंचे थे, अब वह बहुत ऊंचे उठ गये हैं। तिस पर तुर्रा यह कि हम दोनों अब भी सहमत नहीं हैं।

अब हमारी कठिनाइयों का श्रीगणेश होता है। यह अच्छा ही है कि हमारा भविष्य हमारे सामर्थ्य, सत्यवादिता, साहस, संकल्प, सतर्कता और नियंत्रण पर निर्भर करता है। तुम जो काम कर रहे हो, ठीक ही है। अधिकारियों की समझ मे यह बात आ जानी चाहिए कि कार्यकारिणी के प्रस्ताव में शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लिया गया है। प्रत्येक शब्द सार्थक है और जो कुछ कहा गया है, उस पर अमल किया जायगा। अन्त में यह भी कहूंगा कि जो कुछ किया गया है, ईश्वर के नाम पर और ईश्वर पर भरोसा रखकर। तुम साधु बनोगे और साधु ही रहोगे। आशीर्वाद।

बापू

बापू के विश्वस्त निजी मंत्री महादेव देसाई के पत्र से कुछ और भी अधिक भीतरी इतिहास के दर्शन हुए :

मगनवाड़ी, वर्धा
१८-७-३७

प्रिय घनश्यामदासजी,

मेरी खामोशी पर आपको जो आश्चर्य हुआ, उसे मैं समझता हूं। खामोशी अनिवार्य तो थी ही, वह जान-बूझकर साधी गई थी, क्योंकि लिखने लायक कोई बात थी ही नही। मैं यह तो देख ही रहा था कि बापू को देश के कोने-कोने से जो चिट्ठियां मिल रही थीं उनके कारण वह पद-ग्रहण करने के पक्ष मे अधिकाधिक होते जा रहे थे, परन्तु साथ ही मैं यह भी कहूंगा कि इस ओर निश्चयात्मक रूप से उनका झुकाव लार्ड जेटलैंड की दूसरी स्पीच के बाद से हुआ। मेरा अभिप्राय उस स्पीच से है, जिसमें उन्होंने इस आलोचना का खण्डन किया था कि समझौते और मेल का दरवाजा बन्द कर दिया गया है। उस स्पीच का बापू पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। जब जवाहर कार्यकारिणी की बैठक से तीन दिन पहले वर्धा आये तबतक बापू इस सम्बन्ध मे निश्चय कर भी चुके थे। मैं जवाहर के पक्ष मे यह अवश्य कहूंगा कि उन्हें इस मामले मे राजी करने मे कोई कठिनाई नही हुई। कार्यकारिणी की बैठक के दौरान उनका रुख भद्रतापूर्ण और उनकी साधुतापूर्ण आत्मप्रेरणा के अनुरूप ही रहा। यही कारण है कि बैठक का काम अबाध रूप से चलता रहा।

खैर, अब तो यह सबकुछ इतिहास की सामग्री बन गया है। अब मैं आपको यह बताऊं कि बापू ने इस समस्या के प्रति कैसा रवैया अपनाया है। श्री राजगोपालाचार्य ने पदग्रहण करने के अवसर पर अपने और अपने सहयोगियों के लिए आशीर्वाद का तार भेजने की कामना की। बापू ने तार भेजा, परन्तु यह

स्पष्ट कर दिया कि उसे प्रकाशित न किया जाय। उन्होंने तार मे कहा, "निजी। बैठक का पथप्रदर्शन करने मे मुझे जिस स्रोत से स्फूर्ति प्राप्त हुई है, वह है मनोयोग-पूर्ण प्रार्थना। आप जानते ही हैं कि मेरा सारा भरोसा आप ही पर है। ईश्वर आपका प्रयत्न सफल करे। इसे प्रकाशित मत करिये। सदस्यों को सन्देश भेजने का मुझे कोई अधिकार नही है। इसके लिए आपको जवाहरलाल से अनुरोध करना होगा। सस्नेह।"

लार्ड हेलीफैक्स-जैसे व्यक्तियो से अपनी बातचीत के दौरान आप इस तार का हवाला दे सकते हैं और तार भी दिखा सकते हैं, परन्तु व्यवस्थापिका सभा मे किस भाव को लेकर जायं, इसका निदर्शन आपको बापू के उस लेख से और भी अधिक अच्छी तरह मिलेगा, जो उन्होने हाल ही में 'हरिजन' में लिखा है और जिसकी एक प्रति इस पत्र के साथ भेजता हूं। मैं जानना चाहूंगा कि अंग्रेजों में इस लेख की क्या प्रतिक्रिया हुई। इसका निश्चय आप उन्हें यह लेख दिखाकर ही कर सकते हैं, क्योकि वैसे वे लोग शायद इसे न पढ़ पावें। आप उसकी प्रतिलिपियां तैयार कराके मित्रो मे वितरित कर सकते हैं। इस पत्र के साथ चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की वह स्पीच भी भेजता हूं, जो उन्होंने गवर्नर द्वारा आमंत्रित किये जाने के दो दिन पहले दी थी।

सप्रेम आपका ही
महादेव

इन दिनो बापू ने 'हरिजन' मे जो लेख लिखे, उनकी ओर काफी ध्यान आकर्षित हुआ। उनमे बापू ने सादगी और किफायतशारी पर जोर दिया था (इस हद तक कि हमारे मंत्रियो को उनकी अपेक्षा को पूरा करना असम्भव-सा प्रतीत हुआ—मोटरगाड़ी भी नही!) एक लेख मे उन्होने एक अंग्रेज धनपति के विचारों को विस्तार से उद्धृत किया था, जो भारत में अनेक उच्च पदों पर रह चुके थे। वह सर जार्ज शुस्टर थे और मैंने ही उनके विचारों को बापू के पास भेजा था। उन्होंने इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया था कि रुपये की प्रेरणा के स्थान पर सेवा की प्रेरणा और सहकारिता को प्रतिष्ठित करना चाहिए।

जब बापू और वाइसराय पहली बार मिले तो भविष्य सचमुच अधिक उज्ज्वल प्रतीत हुआ।

वाइसराय शिविर, भारत
२३ जुलाई, १९३७

प्रिय श्री गांधी,

मैं शिमला लौट रहा हूं। आप नई दिल्ली मे आकर मुझसे मिल सकें तो मुझे

बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि आप इस सुझाव को पसन्द करें तो क्या ४ अगस्त, बुधवार को ११-३० बजे वाइसराय भवन में मुलाकात सुविधाजनक होगी ?

सार्वजनिक ढग का कोई खास काम नहीं है, जिसे लेकर आपको कष्ट दू। पर आपसे मिलकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी, और मुझे पूरी आशा है कि आपके लिए आ सकना सभव होगा।

भवदीय
लिनलियगो

सेगांव; वर्धा
२४-७-३७

प्रिय मित्र,

आपके कृपा-पत्र के लिए धन्यवाद।

कुछ समय से मैं यह सोच रहा था कि मैं आपसे मिलने की प्रार्थना करू। मैं यह चर्चा करना चाहता था कि खान साहब अब्दुल गफ्फार खा के सीमाप्रांत-प्रवेश पर जो प्रतिबन्ध है, क्या उसे हटाया जा सकता है और क्या मैं भी सीमाप्रान्त की यात्रा कर सकता हू ? मेरे सीमाप्रान्त मे जाने पर कोई प्रतिबन्ध नही है, पर अधिकारियो की स्वीकृति प्राप्त किये बिना वहा जाने का मेरा कोई इरादा नही है।

इसलिए आपका पत्र दुहरे स्वागत के योग्य है। मैं यह समझे लेता हूं कि अपनी मुलाकात के समय इन दोनो विषयो को उठाने पर कोई आपत्ति नही होगी। मुझे आगामी ४ अगस्त को ११-३० बजे वाइसराय भवन, नई दिल्ली, आने मे प्रसन्नता होगी।

आपका
मो० क० गांधी

इन पत्रों की प्रतिलिपिया मुझे लन्दन मे महादेवभाई के एक लम्बे पत्र के साथ मिली। मद्रास में राजाजी को और अन्य प्रान्तों में दूसरों को जो सफलता प्राप्त हुई उसका उल्लेख करने के बाद महादेवभाई ने लिखा·

"आपने लिखा है कि सर रोजर लमले बापू से मिलने को उत्सुक हैं और आपने पूछा है कि यह किस प्रकार संभव होगा। शायद उन्हे परिस्थितियो का आपसे ज्यादा अच्छा ज्ञान था, क्योंकि सम्पर्क का मार्ग बन गया है। यह पत्र आपके हाथो मे पहुंचने के पहले ही समाचारपत्रो मे मोटे अक्षरों में छप चुकेगा कि बापू वाइसराय से मिले हैं। चार दिन पहले सेगाव मे इस स्थान के मजिस्ट्रेट को देख-

र हर्षमिश्रित आश्चर्य हुआ। वह एक महत्त्वपूर्ण सरकारी कागज वापू के हाथ
सौंपने खासतौर से आये थे। वह कागज लार्ड लिनलिथगो का व्यक्तिगत पत्र
ा, जिसमे उन्होंने बापू को बुलाया था। मैं आपको बापू की तात्कालिक प्रति-
क्रिया वताता हू, क्योकि इस छोटी-सी बात से पता चलता है कि बापू के रोम-
रोम मे किस प्रकार अहिसा समाई हुई है। बापू ने कहा, "मुझे लगता है कि किसी
ने वाइसराय से यह जरूर कहा होगा कि बुलाये वगैर मैं उनसे मिलने नही जाऊगा
और ज्योंही दुनिया को यह पता चलेगा कि मैंने मुलाकात की दरख्वास्त नही की
है, बल्कि उन्होने ही मुझे निमन्त्रण भेजा है, त्यो-ही बेचारे को गलत रोशनी मे
देखा जाने लगेगा।" वापू की प्रकृति मे जो अहिसा है उसने स्वभावतया ही
वाइसराय की प्रतिष्ठा की सम्भावित हानि के विरुद्ध विद्रोह किया। तब उन्होंने
अपने ही हाथ से उसका उत्तर लिखा। दोनो पत्रों की प्रतिलिपिया इसके साथ
भेजता हू। वापू अपने उत्तर में अपने भाव किसी-न-किसी रूप में व्यक्त कर ही
देते, पर उन्होने ऐसा नही किया। मुझसे बोले, "क्या वह (वाइसराय) अपना
काम नही जानते ? मैं उन्हे सलाह देने की जिम्मेदारी क्यो लूं...?" वाइसराय
इस समय आसाम और बिहार का दौरा कर रहे हैं और मैं नही जानता कि बापू
का पत्र उन्हें दिल्ली पहुंचने के पहले मिल भी पावेगा या नही। बापू ने सीमा-
प्रात का सवाल उठाया है, पर हमारा विश्वास है कि उसके कारण कोई अड़चन
उत्पन्न नही होगी। इस मुलाकात का उद्देश्य यदि पगडंडी तैयार करना भर है तो
वाइसराय इससे अधिक और कहते भी क्या ? पर यह जाहिर है कि यह सबकुछ
गाधीजी से मिलकर प्रसन्न होने के लिए नही किया गया होगा। दोनों केवल एक-
दूसरे की कुशल-मंगल पूछकर ही एक-दूसरे से विदा नही ले लेंगे। वैसे मुलाकात
के एक घटे से अधिक चलने की सभावना नही है। पर मुझे पहले से ही अटकल
नही लगानी चाहिए। हा, तो आप सर रोजर लमले से कह सकते हैं कि उनके
बापू को बुलावा-मात्र देने की देर है और बापू खुशी के साथ उपस्थित हो जायगे।

आपने मन्त्रियों द्वारा भोजो और पार्टियों के निमन्त्रण स्वीकार किये जाने के
संबंध में सर रोजर से जो कुछ कहा, उससे पता चलता है कि आप बापू को कितने
सहज भाव से समझते हैं। गत सप्ताह वल्लभभाई इस सम्बन्ध मे तथा अन्य प्रश्नो
के सम्बन्ध मे चर्चा करने यहा आये थे। आपको यह जानकर खेद होगा कि सबने
भोज आदि से बिलकुल अलग रहने का फैसला किया है। गवर्नर के निमन्त्रण को
स्वीकार करने का यह अर्थ होता है कि मंत्रियों को भी वैसे ही शिष्टाचार का
परिचय देने के लिए तैयार होना चाहिए। हमारे गरीब मन्त्रियों के लिए ऐसी
सामाजिक कार्यशीलता क्योंकर संभव है ? किन्तु प्रश्न केवल गरीबी का नही है।
बापू का विश्वास है कि देश के सर्वोत्तम हितो को ध्यान मे रखते हुए कुछ वर्षों
तक तो नपा-तुला औपचारिक संबंध रखना ही समझदारी का काम होगा।

आपने चर्चिल के बारे मे जो कुछ लिखा, मजेदार रहा। जब उन्होंने हिंसा र हिन्दुस्तानियों द्वारा अंग्रेजो की हत्या किये जाने वाली बात कही तो आपने हें उनके उस लेख की याद क्यों नही दिलाई, जिसमें उन्होंने हमको धमकी दी कि यदि हमने पद-ग्रहण करने से इन्कार किया तो हमारे हक में बहुत ही बुरा गा? बापू के वक्तव्य के बारे में उन्होने जिन निर्दयतापूर्ण शब्दो का प्रयोग या था उनकी याद अब भी काटे की तरह कसकती है। क्या आप जानते हैं वे द क्या थे? उन्होने बापू के उन उद्‌गारों को 'काटेदार तार की बाड़ से घिरी फुसलाने वाली बातो' का नाम दिया था। पर यह सबकुछ चर्चिल के अनुरूप था। जब उन्होंने आयरिश नेता माइकल कॉलिन्स को अपने निवास-स्थान पर वत दी तो मजाक मे कहा कि ब्रिटिश सरकार ने तो उनके (अर्थात् कॉलिन्स) सिर का मूल्य केवल १००० पौण्ड आका था, जबकि बोअर लोगों ने उनके अर्थात् चर्चिल के) शीश को १० पौण्ड के लायक समझा। मुझे पूरा यकीन है ग चर्चिल ने बापू का जो अभिनन्दन किया है, वह हार्दिक है। आप इसके लिए न्हें बापू का धन्यवाद पहुंचा दें। सन् १९३१ मे उन्होने बापू से मिलने से इन्कार र दिया था, पर यदि अब वह बापू के अनुरोध पर भारत आयें तो मैं समझता हूं ह खुद ही बापू से मिलने की प्रार्थना करेंगे।"

शीघ्र ही वाइसराय के साथ बापू की पहली मुलाकात का वृत्तान्त आ गया।

वाइसराय लॉज
४ अगस्त, ३७

प्रिय घनश्यामदासजी,

विचित्र जगह से पत्र लिख रहा हू। क्यो, है न यही बात? और आप देखेंगे कि मैं इस स्थान से परिचित तक नहीं हूं, क्योंकि दिल्ली वाला प्रासाद वाइसराय हाउस कहलाता है, वाइसराय लॉज शिमला वाले भवन का नाम है। अस्तु, उधर बापू वाइसराय के साथ मुलाकात कर रहे हैं, इधर मैं अपने-आपको उपयोगी बना रहा हू, और बापू ने मार्ग में जो कई पत्र लिखने को कहा था, उन्हें लिख रहा हूं। आपका प्यारा-सा पुराना मोटर ड्राइवर, मेरा मतलब उस सुन्दर युवक ड्राइवर से है, जो मुझसे भी अधिक उज्ज्वल वस्त्र पहनता है, हमे यहा लाया और बापू हिज एक्सीलेंसी के साथ ११-३० से बन्द हैं। जैसा कि मैंने आपको लिखा था, मुलाकात का हेतु आपसी मनमुटाव को दूर करना है। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह मुलाकात नहीं की गई है। बापू भी यह सकल्प करके भीतर गये हैं कि उत्तर-पश्चिमी सीमा की समस्या को छोड़कर और किसी बात की चर्चा नहीं उठायेंगे। और उत्तर-पश्चिम सीमा की चर्चा उन्होंने वाइसराय के नाम अपने

उत्तर में ही कर दी थी। परन्तु मैंने अपने सारे पत्र लिख डाले हैं, इधर एक बजने वाला है, जिसका अर्थ यह है कि महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा हो रही है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आपका एक पत्र वर्धा में मेरा इन्तजार कर रहा है, क्योंकि देवदास को कल उसकी नकल मिली थी। उसका मूल भी वर्धा में उसी समय पहुंच गया होगा। मैं समझता हू, जिस समय लार्ड लो० आपसे बात कर रहे थे, उस समय उन्हें मालूम था कि यह मुलाकात होने वाली है।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

पुनश्च :—यह मुलाकात के बाद लिख रहा हूं। बातचीत सहृदयतापूर्ण, स्पष्ट और मिलनसारी से भरी हुई थी और कोई डेढ़ घण्टे तक जारी रही। जहा तक गांधीजी का सम्बन्ध है, सीमा-प्रान्त का द्वार उनके लिए खुला है, परन्तु जहा तक खान साहब का मम्बन्ध है, उन्हें इसके लिए गवर्नर से लिखा-पढ़ी करनी चाहिए। बापू ने हिज एक्सीलेंसी को बताया कि खान साहब कौन हैं और किस प्रकार उनके लिए लिखा-पढी करना असम्भव है। परन्तु उन्हे आशा है कि रास्ता निकल आवेगा। अब सीमा-प्रान्त के मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे ही दिया है, इसलिए हमे आशा करनी चाहिए कि सबकुछ ठीक हो जायगा।

हिज एक्सीलेंसी ने सीमा-सम्बन्धी समस्या की चर्चा करने के सम्बन्ध मे कोई आपत्ति नही की और बापू के वहां जाने के सम्बन्ध मे भी उन्होने कोई कठिनाई खड़ी नही की।

जिन अन्य विषयों पर बातें हुई वे हैं—ग्रामसुधार, गायें, हाथ का बना कागज, सरकडे की कलम, इत्यादि।

महादेव

वर्धा
६ अगस्त, ३७

प्रिय घनश्यामदासजी,

इस पत्र के साथ मुलाकात का संक्षिप्त विवरण भेज रहा हूं। यह सिर्फ आपही के लिए है और आपके २७ और २८ तारीख के पत्रों के उत्तर मे भेजा जा रहा है। यद्यपि पारस्परिक संपर्क पुन. स्थापित हो गया है, तथापि बापू इसे उतना ही महत्त्व देते हैं, जितना वह मैत्रीपूर्ण विचार-विनिमय को देते। पुराना साम्राज्यवाद अटूट बना हुआ है और उसे आत्मसमर्पण करने मे अभी बहुत दिन लगेंगे। बापू इन पारस्परिक संपर्कों को विशेष महत्त्व देने के खिलाफ आपको चेतावनी देते हैं, और उन्होने जो निमन्त्रण लार्ड लोदियन को दिया है वह चर्चिल

या लार्ड बाल्डविन या अन्य मित्रो को देने को बिलकुल तैयार नही हैं। यदि वे अपनी खुशी से आवें तो अवश्य आ सकते हैं, पर बापू उनसे आने का अनुरोध नही करेंगे। इसके अलावा वह उन्हें निमन्त्रण देने के मामले मे काग्रेस के नेता का पद ग्रहण नही करना चाहते हैं। लार्ड लोदियन की बात दूसरी है। उन्होंने दोनो पक्षों के बीच पुल बाधने के मामले मे महत्त्वपूर्ण काम किया है और इसके अलावा वह सीधे बापू को कई बार लिख भी चुके हैं। इसलिए उन्हें जो सुझाव कहिये या निमन्त्रण कहिये, दिया गया था सो स्वत ही स्वाभाविक घटना-क्रम के दौरान आत्मप्रेरणा द्वारा दिया गया था। चर्चिल प्रभृति आये और उन्होंने यहां आकर साम्राज्यवादी अनर्गल प्रलाप किया तो उन्हें बुलाना इस प्रकार की बातें करने का अनुमति-पत्र देने के समान होगा। न, बापू इस पारस्परिक सपर्क वाले व्यापार से कोई सरोकार नही रखेंगे।

सीमाप्रान्त के संबध मे वाइसराय ने वचन दिया है कि गवर्नर से पत्र-व्यवहार के बाद वह बापू को लिखेंगे। सभव है, प्रतिबध उठा लिया जाय।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आपको मेरे सारे पत्र मिल गये न? यह स्थान ही ऐसा निकम्मा है कि बहुधा ठीक समय पर डाले गये पत्र भी हवाई डाक के समय तक नही पहुच पाते। मैंने एक भी हवाई डाक को हाथ से नही गवाया है। सी० एफ० एन्ड्रयूज कल आ रहे हैं, किस सिलसिले मे, सो अनुमान मैं अभीतक नही लगा सका हू।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

२५ जनवरी ३८

प्रिय घनश्यामदासजी,

मुझे ५० हजार रुपया ग्राम-शिक्षा के लिए और उतने ही ग्रामोद्योग के लिए जरूरत है। फिर हरिजन सेवक सघ का भी बोझा है। इस संबध मे और अधिक बातचीत करने की जरूरत है। आशा है, बृजमोहन बहुत अच्छे होंगे और किशन भी।

बापू के आशीर्वाद

२२. नये मंत्रियों की कठिनाइयां

ज्यूरिच
१६ अगस्त, १६३७

प्रिय महादेवभाई,

तुम्हारे दो पत्र बगैर जवाब दिये पड़े हैं। रिप वान विन्कल होना तो एक ओर, तुम मुझे पूरी जानकारी करा रहे हो और इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा उपकृत हूं। मुझे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की प्रतियां नही मिल रही हैं और लन्दन छोड़ने के बाद से 'हरिजन' से भी संबंध टूट-सा गया है। इस प्रकार मुझे भारत के विषय मे जो कुछ समाचार मिलते हैं वे या तो निजी पत्रों के द्वारा या फिर ब्रिटिश समाचार-पत्रों के द्वारा। अबतक 'टाइम्स' ने हमारे प्रति बड़ी दयालुता का परिचय दिया है और श्री इंगलिंग हमेशा प्रशसात्मक समाचार ही भेजते हैं। 'मार्निंग पोस्ट' शत्रुतापूर्ण ढंग से लिखा करता था, परन्तु जबसे मैंने इस बात की चर्चा चर्चिल और लार्ड हेलीफैक्स के साथ की है, उसके रुख में परिवर्तन हुआ है। सभव है, यह सयोग-मात्र हो।

मुझे इस समय जो समाचार मिल रहे हैं उनसे मुझे आश्चर्य नही हुआ है। किसी दिन मैं समाचार पढ़ता हूं कि यदि शिक्षा मंत्री अमुक काम नही करेंगे तो विद्यार्थी हड़ताल कर देंगे। दूसरे दिन पढ़ने में आता है कि यदि उद्योग मंत्री दियासलाई के कारखाने में काम करने वालों की मांगो का निबटारा सतोषजनक रीति से नही करेंगे तो वे हड़ताल कर देंगे। कानपुर की बड़ी हड़ताल का अंत में निपटारा तो हो गया, परन्तु मैंने पढा है कि एक बार तो हड़तालियो ने पंतजी के निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया था। उधर अण्डमान की भूख-हड़ताल से लोगो के दिमाग परेशान हैं ही।

ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेसी शासन मे हर कोई मनमानी करना चाहता है। मुझे इसमें सदेह नही है कि नियंत्रण-संबंधी जनमत तैयार करने के मामले मे बापू कुछ उठा नही रखेंगे, पर किसी दिन मुझे यह खबर सुनकर आश्चर्य नही होगा कि प्रदर्शनकारी दल बनाकर झंडों के साथ जयघोष करते हुए मंत्रियों के घरो में जा घुसे। अबतक जनता के उद्‌गारों को जिस प्रकार दबाया गया है उसकी प्रतिक्रिया अब दिखाई दे रही है। और यह अच्छा ही है कि दबी हुई गैस निकल जाय, परन्तु जनता के लिए यह जानना बिलकुल जरूरी है कि स्वराज्य में भी उन्हें कानून मानकर अनुशासन और बुद्धि-विवेक के साथ चलना होगा। यह मानी हुई बात है कि जनता धीरे-धीरे यह सबकुछ जान जायगी, परन्तु क्या तुम्हारी यह राय नही है कि जनता को इस ढग की शिक्षा देने का काम अविलम्ब आरम्भ कर दिया जाय?

मेरी समझ मे यह बात अच्छी तरह नही आई कि मेरे तुम्हें यह बात बताने पर कि बापू की कीमत बहुत ऊची चली गई है, उन्हें अविश्वासपूर्ण ढग से हंसी क्यो आई। मैं यह स्वीकार करता हू कि रुपये के बाजार मे भाव ऊचे भी चढ जाते है और नीचे भी गिरते हैं, पर मैं एक व्यापारी की हैसियत से तुम्हे यह तो बता ही दू कि भाव उतनी तेजी से नही घटते, जितना तुम समझते हो। यदि आकड़े ठीक-ठीक ढंग से रखे गये तो एकरूपता काफी दिनों तक जारी रहती है। इसलिए मेरा यह कहना कठिन ही था कि हमारा शासन-प्रबध काफी दिनो तक चल सकता है। हा, यदि हम भग करना चाहें तो वह काफी दिनों तक नही चलेगा। परतु चूकि हमारी ऐसी इच्छा नही है, इसलिए मैं तो नही समझता कि किसी प्रकार की अड़चन उपस्थित होगी। *यदि हमारे मंत्री लोग स्थायी रूप से चलते रहें तो न तो* अग्रेजो को ही देवता बनने की जरूरत पड़ेगी और न हमारे मत्रियो को ही उनके आगे मस्तक नवाना पडेगा। सभवतः यही होगा कि दोनो पक्ष अपने रुखों मे फेर-फार कर लेंगे और यह बात समझ लेंगे कि दोनो ओर अच्छाई प्रचुर मात्रा मे मौजूद है, कसर इतनी ही थी कि उसे अभीतक समझा नही गया। अग्रेज लोग बडे चतुर होते हैं और दूर तक की सोचते हैं। मुझे तुमसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सभी प्रान्तों मे गवर्नरो और मत्रियो ने श्रीगणेश अच्छे ढग से किया।

गवर्नरो के सामाजिक निमंत्रण मत्री लोग स्वीकार करें या न करें, इस संबंध मे बापू का निर्णय मेरी धारणा के अनुकूल ही निकला। मैंने सर रोजर के सामने उनका दृष्टिकोण ठीक ढंग से ही रखा। पर यदि मुख्य मत्री सामाजिक सम्पर्क रख पाते तो अच्छा ही होता, क्योकि इससे कोई गलतफहमी नही होती। अब वैसा होने की सम्भावना है। मुख्य मंत्रियो के सम्बन्ध मे इस प्रकार की कडाई न बरती जाती तो अच्छा रहता।

चर्चिल के सम्बन्ध मे तुमने जो कहा सो जाना। परन्तु तुमने मेरे इस प्रश्न का उत्तर नही दिया कि बापू चर्चिल का भारत आना पसन्द करेंगे या नही। चर्चिल जो कहते हैं उसकी ओर कान मत दीजिए। वह तो सोलह आने राजनीतिज्ञ हैं और उनकी एक नीति सार्वजनिक होती है, दूसरी निजी। पर मैं इतना तो कह ही दू कि आदमी की हैसियत से उनमे सहृदयता भरी पडी है। वह मिथ्या गर्व से मुक्त हैं और उनमें बच्चों-जैसी सरलता है। उन्होने मेरे सामने यह स्वीकार करने की ईमानदारी दिखाई कि जब उन्होंने राज्यच्युत राजा (एडवर्ड) के पक्ष का समर्थन किया तो उन्हे यह पता नही था कि जनमत उसके इतना विरुद्ध है। मैंने उनसे इग्लैण्ड मे राजतन्त्र की अवस्था की भी चर्चा की और इस सम्बन्ध मे भी बातचीत की कि वह ब्रिटिश सरकार के मंत्रिमण्डल मे क्यों नहीं हैं। मैंने अनुभव किया कि वह इंग्लैण्ड पर शासन करने वाले आधा दर्जन आदमियो मे से एक हैं। उन्होंने मुझे साफ-साफ बता दिया कि वह भारत के पक्ष मे लेख लिखेंगे। राज-

नीति क्या पदार्थ है, सो मुझे उन्हीं के द्वारा याद आया।

तुम्हारे दिल्ली वाले पत्र से मुझे कोई खास समाचार नहीं मिला। शायद तुम विवेकपूर्ण चुप्पी साधना चाहते थे। तुमने देवदास के पास अपने नाम भेजे पत्र की नकल का जिक्र किया है। मैं हमेशा एक प्रति देवदास को, एक राजाजी को और एक अपने भाई रामेश्वरजी को भेजता हूं, जिससे वह सरदार को दिखा सकें।

मुझे तुम्हारे पत्र से पहली बार मालूम हुआ कि सीमाप्रांत के मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया है। तो अब आप लोगों के सात मंत्रिमण्डल होंगे।

मैंने तुम्हारे पास बापू के स्वास्थ्य के संबंध में जो तार भेजा, उसका कारण यह था कि तुम्हारे पत्र के अलावा मैंने समाचार-पत्रों मे भी पढ़ा था कि जब बापू दिल्ली मे उतरे तो बड़े थके दिखाई पड़ते थे। आशा है, अब उनकी थकावट पूरी तरह दूर हो गई होगी। मैं इस संबंध में बापू को कुछ नहीं लिख रहा हूं, क्योंकि मैं जानता हू कि उनके स्वास्थ्य की देखभाल स्वयं उनसे अधिक अच्छी तरह कोई नही कर सकता है। कसर की बात इतनी ही है कि वह कभी-कभी सामर्थ्य से अधिक काम करने लगते हैं। मैं वापसी पर इस संबंध मे उनसे बात करूंगा।

मैं इस मामले में तुमसे पूरी तौर से सहमत हूं कि सरदार और राजेन्द्रबाबू ने अलग रहकर भारी भूल की। शायद एक वर्ष के अनवरत कार्य के बाद यह गलती दूर कर ली जाय।

मैं मधुमक्खी-पालन और केबिनेट सरकार पर पुस्तकें लेता आऊंगा। तुमने अपने पत्र के साथ जिस सूची के नत्थी करने की चर्चा की है, वह मुझे नही मिली है। परन्तु मैं इस विषय पर कुछ अच्छी पुस्तकें लेता आऊंगा।

तुम्हारा ही सस्नेह
घनश्यामदास

इसके बाद ही गाधीजी को सीमाप्रान्त के गवर्नर सर जार्ज कनिंघम का यह पत्र प्राप्त हुआ :

गवर्नर का शिविर
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त
एबटाबाद
१७ अगस्त, १९३७

प्रिय श्री गाधी,

मुझे अभी-अभी वाइसराय महोदय का एक पत्र मिला है, जिसमें उन्होंने आपके साथ अपनी गत ४ अगस्त की बातचीत का सारांश दिया है। मैं समझता

हू कि हिज एक्सीलेंसी ने आपको बताया है कि यदि आप उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त मे आना चाहें तो उन्हें कोई आपत्ति नही है। मैंने इस विषय की चर्चा अपने मंत्रियो से की है और उनकी सहमति सहित आपको सूचित करता हू कि आपके इस प्रान्त मे आने पर कोई आपत्ति नही है। मुझे मालूम हुआ कि हिज एक्सीलेंसी ने आपसे कह दिया था कि यह जरूरी है कि आप अपने दौरे मे कबीलों के मामले से संबंध रखनेवाली बातो से बिलकुल अलग रहें। मैं समझता हू कि आपने इस संबंध मे हिज ऐक्सीलेंसी के निश्चय को स्वीकार कर लिया था और मैं जानता हू कि आप इस आश्वासन का अक्षरशः पालन करेंगे।

यदि हमारी भेंट का कोई अवसर उपस्थित हुआ तो मुझे उस पुरानी जान-पहचान को, जिसका जन्म उस समय हुआ था जब मैं लार्ड हेलीफैक्स के साथ था, ताजा करके प्रसन्नता होगी।

आपने हिज एक्सीलेंसी से खान अब्दुल गफ्फार खां वाले मामले का भी जिक्र किया था। यह मामला अभी मंत्रिमण्डल मे विचाराधीन है। आशा है, दो-एक दिन मे फैसला हो जायगा।

भवदीय
जी० कनिंघम

मंत्रियो को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनके जन्मदाता गवर्नर लोग नही थे, खुद हमी लोग थे। गवर्नरों ने तो अपने-आपको नई परिस्थितियो के सांचे मे ढालने मे काफी तत्परता का परिचय दिया। हिंसा के दर्शन हुए। साथ ही पदलोलुपो की भीड़ इकट्ठी होने लगी। महादेवभाई के लम्बे पत्र के ये कुछ उद्धरण है, जिनसे कठिनाई के प्रारंभ का पता चलता है :

प्रिय घनश्यामदास जी,

मंत्रिमण्डल ठीक ही चल रहे हैं। अफसरो की ओर से सहयोग का अभाव नही है। मुझे तो शक-सा होता है कि उन्हें ठीक-ठीक आचरण करने का लदन से आदेश मिला है। अहमदाबाद का कमिश्नर गैरेट मंत्री मोरारजी को लेने स्टेशन जाता है और उनके साथ काफी दूर तक तीसरे दर्जे मे सफर करता है। है न अनहोनी-सी बात ? आपको बारडोली और खेडा की नीलाम की हुई जमीनों के झगडे की तो याद होगी ही। ऐसा प्रतीत होता है कि अब गैरेट जमीनें उनके मालिको को दिलाने मे कोई अड़चन नही डालेगा। जिस पुलिस दरोगा के खिलाफ अधिकार का घोर दुरुपयोग करने का आरोप था उसने मंत्री मोरारजी के बारडोली पहुचते ही गोली मारकर आत्म-हत्या कर ली। पर इसका तो मैंने योही जिक्र कर दिया। राजाजी को सिविलियनो का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। बेचारे

उड़ीसा में शायद कुछ अड़चन पैदा हो तो हो, पर वह भी कुछ दिनों के लिए ही होगी।

मुझे भय है कि हमारी कठिनाइया स्वयं हमारे ही द्वारा उत्पन्न की जायंगी। अभी हममें सगठन की वडी कमी है। हमारे मित्र लोग इस नवीन परिस्थिति से लाभ उठाकर चारों ओर हड़ताल कराना चाहेंगे और स्थिति पर काबू पाने मे असमर्थ रहने के लिए मंत्रिमण्डलों की वदनामी देखकर खुश होंगे। राजाजी ने अपने प्रान्त के सभी राजनैतिक वदियो को, जिनमे हिंसावादी और अहिंसावादी दोनो शामिल हैं, रिहा कर दिया है। अतिम मोपला वन्दी को अभी उसी दिन रिहा किया गया है। परन्तु इसका परिणाम क्या हुआ ? मेहरअली को राजाजी के पदग्रहण करने से पहले छः मास का कारावास हुआ था। राजाजी ने उसे, उसकी अपील खारिज होते ही, रिहा कर दिया, यद्यपि उसकी रिहाई के मामले मे उन्हें कुछ ही अड़चनो का सामना करना पड़ा था जैसाकि मैं अपने एक पत्र में कह ही चुका हूं। परन्तु रिहा होने के दो दिन के भीतर ही इस आदमी ने एक स्पीच मे आग उगली और लोगों को हिंसा के लिए उभारा। वेचारे राजाजी क्या करें। वम्बई मे इस ढंग के आधा दर्जन कैदी अभी जेल मे हैं ही। मंत्रियो ने उनकी रिहाई का हठ पकडा, पर वे अपनी चेष्टा में सफल नहीं हुए। पर क्या हम इस प्रश्न को लेकर सवध-विच्छेद कर सकते हैं ? यदि अहिंसा के प्रश्न पर हम लोग एकमत होते तो यह प्रश्न उतना कठिन नही होता, पर अभी तो अहिंसा के अर्थ को लेकर ही जवाहरलाल और वापू मे गहरी खाई मौजूद है। इस समस्या के कारण कार्यकारिणी की हाल की वैठक खास तौर से कठिन प्रमाणित हुई, पर अत में सबकुछ सकुशल समाप्त हो गया।

अन्य जटिल समस्याओं को लेकर भी अधिक कठिनाई नही रहेगी। सबकुछ कह चुकने के वाद स्थिति यही दिखाई पडती है कि जवाहरलाल के संबंध मे जो कठिनाई है वह ऐसी नही है कि उस पर काबू पाया ही न जा सके। वह भड़कते हैं और गुस्से मे लाल-पीले हो जाते हैं, परन्तु अंत मे एक खिलाडी की भांति पुनः पहले जैसे हो जाते हैं, तुरन्त ही खेद प्रकट करते हैं और जवतक उन्हें यह निश्चय नही हो जाता कि कोई खिंचाव वाकी नही रह गया है, दम नही लेते।

यह पत्र लम्बा होता जा रहा है, इसपर भी काम की बात अभी वाकी रही जाती है। आपको याद होगा कि गत फरवरी मास मे आपने दो महिलाओं के लिए, जो यहा भारत के लिए काम कर रही हैं, अपने जहाजों में से एक में नि.शुल्क समुद्र-यात्रा का प्रवन्ध किया था। अब ये लन्दन में आपके एजेन्टों के साथ वातचीत कर रही हैं कि भारत आने वाले आपके एक जहाज मे नि.शुल्क समुद्र-यात्रा का प्रबंध हो सकता है या नही। इसके अलावा एक तीसरी महिला हैं, जो हमारे साथ कार्य करनेवाले एक जर्मन मित्र की भावी पत्नी है। इन्हे

जर्मनी से उनके शान्तिवाद के लिए निकाल दिया गया है। हंसा लाइन के जहाज मे इस महिला की उपस्थिति ठीक नही रहेगी। क्या हंसा लाइन के अलावा कोई कार्गो बोट है, जिसमे ये तीनों महिलाए किसी अंग्रेजी बन्दरगाह से या किसी इटालियन बन्दरगाह से नि.शुल्क यात्रा कर सकें ?

आपने अपने स्वास्थ्य के सबध मे कुछ नही कहा । आपने आपरेशन करा लिया या अवकाश के दिन ज्यूरिच मे यों ही बिता रहे है ? बापू जानने को बहुत उत्सुक हैं। मैंने इस सबध मे रामेश्वरदासजी को भी लिखा है, क्योंकि सभव है, आपने उन्हें विस्तृत रूप मे लिखा हो । आशा है, आपको बापू के सबध मे मेरा तार मिल गया होगा। उनके रक्तचाप मे तो वृद्धि नही हुई थी, पर कार्याधिक्य के कारण वह थकान महसूस कर रहे थे। उन्होने देखा कि यदि अभी सतर्कता से काम नही लिया गया तो आगे खतरा है। उन्होने अपनी दिनचर्या में तुरन्त ही काट-छाट की और आराम लेना शुरू कर दिया। वह प्रतिदिन प्रार्थना के बाद स्वत. ही मौन धारण कर लेते हैं। इससे दूसरे दिन सुबह चार बजे तक उन्हें पूरा विश्राम मिल जाता है। घबराने की कोई बात नही है, खातिर-जमा रखिये।

आपका
महादेव

२६ अगस्त को महादेवभाई ने इसी विषय पर फिर लिखा :

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हू, त्रुटि अपने ही लोगों की है। आपको 'काकोरी डकैती काण्ड' के कैदियों की तो याद होगी ही। उन्हे कुछ वर्ष पहले घोर हिंसात्मक और अक्षम्य अपराधों के लिए दण्ड दिया गया था। पंतजी ने उन सबको रिहा कर दिया है। यह उनके लिए श्रेय की बात तो हुई ही, हेग के लिए भी कुछ कम श्रेय की बात नही हुई, क्योंकि वह यदि चाहते तो उनकी रिहाई के विरुद्ध आपत्ति खडी कर सकते थे। परन्तु उनके रिहा होते ही हमारी मूढ़ काग्रेस कमेटी ने घोषणा की कि उनका जलूस निकाला जायगा। बेचारे पंतजी असमंजस मे थे। उनसे दृढता दिखाने को कहा गया और उन्होने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि इस मामले में हठ किया गया तो भविष्य मे वह ऐसा करने मे असमर्थ रहेंगे। जवाहरलाल ने भी इन जोश-खरोश वाले काग्रेसियों को किसी प्रकार का बढावा नही दिया। इस प्रकार बात वही-की-वही रह गई।

मद्रास मे राजाजी ने परिस्थिति पर अत्यन्त दक्षतापूर्वक काबू कर रखा है। परन्तु उन्हे भी चिन्ता से मुक्त नही कहा जा सकता है। उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ता है। एक मोपला एम० एल० ए० की बड़ी अभिलाषा थी कि मन्त्रि-मण्डल में उसे भी स्थान मिले। उसे नही लिया जा सका। अब उसने राजाजी के

पास इस आशय के पत्रो का ढेर लगा दिया है कि मोपला विद्रोह अनिवार्य है। उन प्रदेशो में एक प्रकार की धारणा बद्धमूल है कि हर बीस साल बाद विस्फोट अवश्यम्भावी है। ईश्वर का आदेश यही है। आखिरी बार विस्फोट १६२१ मे हुआ। अब नये विस्फोट के लिए उपयुक्त समय आ पहुंचा है, या आने ही वाला है। राजाजी ने तो जोरदार शब्दो में कह दिया है, "मैं इन लोगों की खामोशी नही खरीदूगा।" सम्भव है, ये सब बन्दरघुड़कियां-मात्र हों, पर इनका सिलसिला जारी है।

पंतजी को कानपुर मे जैसी कुछ विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा, आपको मालूम ही है। अन्य प्रदेशो मे भी स्थिति चिन्ता से मुक्त नहीं है। खेर ने गुलजारीलाल को अपना सेक्रेटरी नियुक्त करके अक्लमन्दी का काम किया है। वह यत्र, तत्र, सर्वत्र घूमते रहते है और अबतक तो हड़तालों का बड़े सन्तोषजनक ढग से अन्त करने मे सफल हुए हैं; परन्तु उनके सामर्थ्य की भी सीमा तो है ही।

सप्रेम, आपका ही

महादेव

इन दिनो लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरी जो बातचीत हुई, उसके दौरान उन्होंने यह प्रकट किया कि वह व्यक्तिगत रूप से संघ मे विश्वास नही करते। भारतीय शासन-विधान मोटे तौर पर दो भागों में विभक्त था। एक भाग के द्वारा तुरन्त प्रान्तीय स्वायत्त शासन प्रदान किया गया था और मंत्रियों द्वारा शासन की व्यवस्था की गई थी। दूसरे भाग मे सारे भारत के लिए एक सघ की कल्पना की गई थी, पर उसका अस्तित्व मे आना तभी सम्भव था जब राजा लोग, जो मुख्य-रूप से बाधक सिद्ध हो रहे थे, उससे सहमत हो जाते। दुर्भाग्यवश संघ के प्रति लार्ड लिनलिथगो की व्यक्तिगत नापसंदगी ने, जिसका सम्भवत. उनकी कार्य-कारिणी परिषद् के कुछ सदस्य भी स्वागत करते थे, उन्हे ऐसा कोई कदम उठाने से विरत रखा, जिससे राजाओ को संघ का विचार स्वीकार करने में प्रोत्साहन मिलता। यदि उन्होने ऐसा कदम उठाया होता तो उनके पास उसके पक्ष में जबर्दस्त दलील थी, क्योकि उस समय क्षितिज पर युद्ध के बादल उमड रहे थे। पर उस समय ब्रिटेन के प्रधान मंत्री नेविल चेम्बरलेन थे और लार्ड लिनलिथगो और भारत के अधिकाश अंग्रेज व्यवसायी आंख मूंदकर चेम्बरलेन के पद-चिह्नों का अनुसरण कर रहे थे। चेम्बरलेन की भविष्यवाणी थी कि युद्ध नही होगा। इस कारण संघ के पक्ष मे जो सबसे वजनदार दलील थी, उसकी उपेक्षा कर दी गई।

केवल आखिरी क्षणों में वाइसराय को अपने इस कर्तव्य का ध्यान आया कि उन्हें राजाओं से सघ के पक्ष में जोरदार ढंग से कहना चाहिए, पर इतने पर भी उन्होंने अपने कर्त्तव्य को अधूरे दिल से ही पूरा किया। उन्होने रियासतो का दौरा

करने के लिए एक ऐसा प्रतिनिधि नियुक्त किया, जिसे सघ के लिए खुद लार्ड लिनलिथगो की अपेक्षा अधिक उत्साह नहीं था। शायद सर आर्थर लोदियन को अपना यह सही चित्रण स्वीकार होगा। जब युद्ध शुरू हुआ तो वाइसराय ने संघ की योजना को आगे बढाने के बजाय सारी योजना को ही झटपट खत्म कर दिया। यदि उन्होने ऐसा नही किया होता तो भारत का सारा इतिहास ही दूसरा होता और हमे देश का विभाजन न देखना पड़ता।

वाइसराय के साथ मेरी जो मुलाकात हुई, उसका मैंने एक विवरण तैयार किया था और उसे बापू के लिए महादेवभाई के पास भेजा था। यह वह विवरण है .

४ दिसम्बर, १६३७

प्रिय महादेवभाई,

इसके बाद हमने सघ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे बात की। वाम और दक्षिण पथियों, दोनों ही ने व्यवस्था के विरुद्ध आपत्तिया खड़ी की हैं। यदि स्थिति पर सतर्कता और सहानुभूति के साथ विचार नही किया गया तो दुबारा वार्त्ता भग होने की सम्भावना है। उन्होंने कहा कि वह स्वय सघ-व्यवस्था से सतुष्ट नही हैं। वह आलोचकों की आपत्तियों को समझते हैं। पर उनकी इच्छा रहते हुए भी कानून नही बदला जा सकता। हमारे आलोचना-कार्य के सम्बन्ध मे उन्हे एक बात पसन्द नही आई। उनके सामने कोई रचनात्मक सुझाव नही रखा गया। मैंने उन्हें बताया कि ऐसा सुझाव बापू की ओर से आयगा, परन्तु स्वय उन्हें (वाइस-राय को) अभी से यह सोचने मे लग जाना चाहिए कि वह समस्या का क्या हल पेश कर सकते हैं। स्वय मेरे दृष्टिकोण से भी दो बातें आपत्तिजनक हैं। नरेशो के प्रतिनिधि बिना किसी चुनाव के आ धमकेंगे। इसके अलावा स्वय विधान के रचयिताओं को यह प्रमाणित करना है कि विधान मे स्वत विकास के अणु विद्य-मान हैं, जैसा कि अंग्रेज लोग आएदिन दावा करते रहते है। यदि लोकप्रिय मत्रियों के हाथ में सेना और विदेश विभाग नही दिये जायेंगे तो हम औपनिवेशिक स्वराज्य के लक्ष्य तक कैसे पहुचेंगे ? यह काम तो वाइसराय का है कि वह किसी-न-किसी तरह भारत की जनता को इस बात का विश्वास दिलायें कि विधान मे जो कुछ कहा गया है वह कोरा जबानी जमाखर्च नही है। वाइसराय ने उत्तर मे कहा कि विधान के सम्बन्ध में जो दावा किया गया है वह जबानी जमाखर्च-मात्र नही है। वह अपने मत्रिमडल को सेना और विदेश विभाग के मामले मे उत्तर-दायित्व-रहित मानने को तैयार नही हैं। यह माना कि कानूनी तौर से उनके मत्रिमडल का इन विषयों पर कोई अधिकार नही है, पर परिपाटी के द्वारा उनके हाथों में यह अधिकार सौंपा जा सकता है। परन्तु यह उनकी अपनी सम्मति थी।

उन्होने मुझसे अनुरोध किया कि इस मामले को फिलहाल यही छोड दिया जाय, जिससे वह ठीक समय पर इस विषय मे अपना दिमाग काम मे ला सकें। मैंने बताया कि संघ की स्थापना के पहले उनका गांधीजी से बात करना कितना जरूरी है और साथ ही यह भी कहा कि यदि वह जवाहरलालजी के साथ जान-पहचान कर सकें तो इससे गाधीजी के कंधो का भार बहुत-कुछ हलका हो जायगा। उन्होने मुझसे पूछा कि जवाहरलालजी कलकत्ता कब आ रहे हैं और जब मैंने बताया कि सम्भवतः वह ८ तारीख को पहुंच जायगे तो उन्होने कहा, "ओह, इतनी जल्दी !" तुम्हे शायद पता ही होगा कि वाइसराय १३ या १४ को कलकत्ता पहुच रहे हैं।

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

इस पत्र के द्वारा मन्त्रियों की प्रारम्भिक कठिनाइयो पर प्रकाश पड़ता है :

३१ दिसम्बर, १९३७

प्रिय महादेवभाई,

कल मुझसे लेयवेट मिलने आये। उनसे दो घण्टे तक लम्बी-चौडी बातचीत होती रही। नजरबन्द और दण्डित कैदियों और संघ की चर्चा खास तौर से हुई। वह सारी बात वाइसराय को बतायेंगे। इसके बाद यदि जरूरत समझी गई तो मुझसे वाइसराय से मिलने को कहा जायगा। नजरबन्दों और दण्डित बन्दियो के सम्बन्ध मे मैंने उन्हें वही बाते बताई, जो एन्ड्रयूज ने और मैंने गवर्नर से कही थी। बापू के दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे मुझे तुम्हारा पत्र मिल ही गया था। मैंने वह पत्र लेथवेट को पढकर सुनाया और कहा कि बापू यहां आवें, इससे पहले ही कैदियों की रिहाई आरम्भ हो जानी चाहिए और जारी रहनी चाहिए। यदि इस नीति का अवलम्बन नही किया गया तो जनता और कैदियो मे बेचैनी फैल जायगी और यदि कैदियो ने दुबारा भूख-हड़ताल की तो इससे सभी को परेशानी होगी और इसका बापू के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा सो अलग, क्योंकि उनका स्वास्थ्य भी राजनैतिक महत्त्व रखता है। उन्होंने मेरी बात मानते हुए कहा कि बापू का स्वास्थ्य निश्चय ही राजनैतिक महत्त्व रखता है। उन्होने पूछा कि क्या मैं यह चाहता हूं कि कैदियों को थोड़ी-थोड़ी संख्या मे छोड़ना अभी से आरम्भ कर दिया जाय, जिससे जनता को भी आश्वासन हो कि समस्या की अवहेलना नही की जा रही है ? मैंने कहा, हा। इसपर वह बोले कि जहां तक अडमान के कैदियो का सम्बन्ध है, उन्हें भारत वापस लाया जा रहा है। उन्होने वाइसराय के नाम बापू के उस तार का जिक्र किया, जो उन्हे उस समय मिला जब कैदियो के भूख-हड़ताल

करने की खबर मिली थी। उन्होंने बताया कि बापू को कैदियों के भारत ले जाने की खबर कर दी गई थी। उन्होंने कहा कि यह कार्य ४ या ६ सप्ताह के भीतर समाप्त हो जायगा, फिर उनकी रिहाई के प्रश्न पर विचार किया जायगा। मैंने कहा कि नजरबन्दों को तुरन्त ही रिहा किया जा सकता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में वाइसराय से बात करने का वचन दिया। मुझे आशा है कि वाइसराय सहायता करेंगे। वाइसराय से बात करने के बाद मैं गवर्नर से दुबारा मिलूगा।

संघ-व्यवस्था के सम्बन्ध में मैंने उनसे कहा कि यह नितान्त आवश्यक है कि बापू के स्वास्थ्य-लाभ करने के तुरन्त बाद वाइसराय उनसे बातचीत आरम्भ कर दें। यदि संघ-व्यवस्था को मतगणना के अभाव में लादा गया तो उसका बड़ा बुरा परिणाम होगा। मैंने कहा कि मेरी समझ में तो विलम्ब करना ठीक नहीं होगा। इसके विपरीत मुझे आशा है कि बापू समस्या का हल सोच निकालेंगे। वाइसराय तक यह बात भी पहुंचा दी जायगी।

इसके बाद हम लोगों ने युक्तप्रान्त के सम्बन्ध में बातचीत की। मैंने बताया कि जब कांग्रेस कानून और व्यवस्था कायम रखने की भरपूर चेष्टा कर रही है तो गवर्नर का हस्तक्षेप उचित नहीं हुआ। लेथवेट का कहना था कि गवर्नरों ने और कहीं हस्तक्षेप नहीं किया, केवल इसी मामले में हस्तक्षेप हुआ, क्योंकि परमानन्द हिंसा का प्रचार कर रहे थे और देहरादून में सैनिकों पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा था। पंतजी से इसके लिए बारम्बार आग्रह किया गया, पर किसी-न-किसी कारण से पंतजी इस ओर से उदासीन रहे। क्या मंत्रियों को इस हद तक छूट देना अच्छा होगा कि अन्त में स्थिति इतनी शोचनीय हो जाय कि मिलिटरी की सहायता लेने के सिवा और कोई चारा ही न रहे? उन्हें किदवई की वह स्पीच भी अच्छी नहीं लगी, जिसमें उन्होंने कहा था कि यदि जनता अहिंसात्मक वातावरण नहीं बनाये रखेगी तो उन लोगों को इस्तीफा देना पड़ेगा। यदि मंत्रियों का रुख यही है तब तो गवर्नरों को मंत्रियों के अहिंसा बनाये रखने की क्षमता में सदैव सन्देह रहेगा। क्या यह गवर्नर के साथ न्याय होगा कि मंत्री लोग स्थिति को बिगाड़ कर इस्तीफा दें? क्या वैसी अवस्था में गवर्नरों का यह कर्त्तव्य नहीं होगा कि वे सदैव इस ओर से सतर्क रहें कि अवस्था अधिक न बिगड़े? मैंने किदवई की स्पीच का अपेक्षाकृत अधिक उत्तम अर्थ लगाया। मैंने कहा कि मंत्रियों को अधिकार उनके निर्वाचकों से प्राप्त हुए हैं और यदि समूची जनता विद्रोह पर उतारू हो जाय तो मंत्रियों के पास निर्वाचकों से यह कहने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता है कि चूंकि अब हम लोगों पर आपका विश्वास नहीं रहा है, इसलिए हम इस्तीफा दे रहे हैं, कुछ इस कारण नहीं कि हमें गवर्नरों के खिलाफ कोई शिकायत है, बल्कि स्वयं आप लोगों की उच्छृंखलता के कारण। मेरी समझ में किदवई की स्पीच उनकी अवस्था को सही-सही बताने

वाली थी। उसका गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए था। उन्होंने मेरी बात को समझ तो लिया, पर साथ ही उन्होंने यह दलील पेश की कि यदि मंत्री लोग निर्वाचकों के भय से कानून और व्यवस्था कायम रखने के लिए आवश्यक कार्रवाई नहीं करेंगे तो किसी-न-किसी समय गवर्नर को हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा। लेथवेट मेरी इस बात से तो सहमत नहीं हुए कि युक्तप्रान्त के गवर्नर सीमा से बाहर चले गए हैं, पर तो भी उन्होंने यह तो स्वीकार किया ही कि मन्त्रियों को गलतियां करने के मामले में भी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। वह यह जानने को उत्सुक थे कि सारे प्रांतों में से युक्तप्रांत में ही हिंसा-प्रिय वर्ग के साथ ढिलाई क्यों दिखाई गई? अन्य कांग्रेसी प्रांतों की उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

भविष्य का चित्र काफी अच्छा प्रतीत हो रहा था। पर लार्ड लिनलिथगो ने विधान मंडल से परामर्श किए बिना ही भारत को युद्ध में घसीटने की भारी भूल कर डाली। मंत्रियों के लिए इस कड़वी खुराक को निगलना मुश्किल हो गया। उन्होंने समस्या का हल निकालने की कोशिश की भी, पर निष्फल रहे और युद्ध आरम्भ होने के कुछ ही सप्ताह बाद पद-त्याग कर दिया। यदि वाइसराय ने भारत से परामर्श करने की दूरदर्शिता दिखाई होती तो मुझे सन्देह नहीं कि भारत ब्रिटेन का ही समर्थन करता।

१९४१ के दिसम्बर मास में बापू ने मुझे हिटलर के नाम एक खुले पत्र की प्रति भेजी। कहने की आवश्यकता नहीं कि सरकारी सेंसर ने हस्तक्षेप किया और उसे प्रकाशित नहीं होने दिया। शायद यह पत्र हिटलर तक भी कभी नहीं पहुंचा। नीचे उस पत्र की नकल दी जाती है:

वर्धा, २४ दिसम्बर, १९४१

प्रिय मित्र,

मैं आपको एक मित्र के नाते लिख रहा हूं, सो कोरा शिष्टाचार-मात्र नहीं है। मैं किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। पिछले ३३ वर्षों के बीच मेरा यह जीवन-कार्य रहा है कि जाति, रंग और धर्म का भेद किये बिना समूची मानव-जाति के साथ मित्रता का नाता जोड़ूं।

आशा है, आपके पास यह जानने के लिए समय होगा और इच्छा भी होगी कि मानव-जाति का एक बड़ा-सा भाग, जो विश्वव्यापी मैत्री के सिद्धान्त में विश्वास करता है, आपके कार्यों को किस दृष्टि से देखता है। आपकी वीरता और

पितृभूमि के प्रति आपकी निष्ठा के सम्बन्ध में हमें संदेह नही है और आपके विरोधियों ने आपको जो दानव बताया है, सो भी हम लोग मानने को तैयार नहीं हैं। पर आपकी और आपके मित्रों और प्रशंसकों की रचनाओं और घोषणाओं से इस विषय में सन्देह नही रह जाता है कि आपके बहुत सारे काम दानवतापूर्ण हैं और मानवी प्रतिष्ठा की कसौटी पर ठीक नहीं उतरते, विशेष रूप से मेरे जैसे विश्व-व्यापी मित्रता के पुजारियों की दृष्टि में। चेकोस्लोवाकिया को लांछित किया गया, पोलैण्ड के साथ बलात्कार किया गया, डेन्मार्क को हड़प लिया गया—ये सब कार्य इसी कोटि में आते हैं। आपका जीवन-सम्बन्धी जैसा कुछ दृष्टिकोण है, उसके अनुसार ऐसे दस्युतापूर्ण कार्यों की गणना सत्कार्यों में है, सो मैं जानता हूं, पर हम लोगों को तो बचपन से ही ऐसे कृत्यों को मानवता को गिरानेवाला बताया गया है। अतएव हमारे लिए आपकी सशस्त्र विजय की कामना करना सम्भव नही है।

किन्तु हमारी स्थिति अपने ढंग की निराली है। हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नात्सीवाद से कुछ कम प्रतिरोध नहीं करते हैं। यदि अन्तर है तो केवल परिमाण का। मानव-जाति के इस पंचमांश को अंग्रेजों ने अपने शिकंजे में जकड़ने के लिए जिन साधनों का अवलम्बन किया वे औचित्यपूर्ण कदापि नही थे। पर हम अंग्रेजी प्रभुत्व का प्रतिरोध करते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अंग्रेज जाति का अमंगल चाहते हैं। हम उनको युद्धभूमि में हराना नहीं चाहते, उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहते हैं। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमारा विद्रोह शस्त्रविहीन विद्रोह है। हम उनका हृदय-परिवर्तन कर सकें या न कर सकें, हमने उनके शासन को अहिंसात्मक असहयोग द्वारा असंभव बनाने का संकल्प अवश्य कर लिया है। यह कुछ ऐसा तरीका है कि इसमें पराजय के लिए कोई स्थान है ही नही। उसका आधार यह ज्ञान है कि विजेता को अपने शिकार के स्वेच्छापूर्वक या जबरदस्ती दिये गए सहयोग के बिना लक्ष्य सिद्धि नही हो सकती। हमारे शासक हमारी भूमि और हमारे शरीर पर अधिकार कर सकते हैं, हमारी आत्मा पर कदापि नही। भारतवासी मात्र—पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों—का विनाश करके ही वे हमारी जमीन और हमारे शरीर पर कब्जा कर सकते हैं।

यह ठीक है कि ऐसी वीरता का परिचय देना सबके लिए शायद संभव न हो, और संभव है, भय की अधिक मात्रा से विद्रोह की कमर टूट जाय। पर यह तर्क यहां असंगत है, क्योंकि यदि भारत में ऐसे स्त्री-पुरुष काफी संख्या में मिल सकें जो अपहर्ताओं के प्रति बिना किसी प्रकार की दुर्भावना रखे उनके आगे घुटने टेकने के बजाय अपने जीवन का बलिदान करने को तैयार हों तो वे हिंसा की बर्बरता से मुक्ति का मार्ग दिखाने में अवश्य समर्थ होंगे। मेरा अनुरोध है कि आप इस बात पर विश्वास करिये कि आपको इस देश में ऐसे स्त्री-पुरुष आशा से

अधिक सख्या मे मिल जायंगे। पिछले बीस वर्षों से उन्हे इसी की दीक्षा दी जाती रही है।

हम पिछली आधी शताब्दी से ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने की कोशिश कर रहे हैं। स्वतन्त्रता का आंदोलन आज जितना प्रबल है उतना पहले कभी नही था। देश की सबसे अधिक शक्तिशाली राजनैतिक सस्था, अर्थात् कांग्रेस, इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील है। हमने अहिंसात्मक उपायों द्वारा पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। हमे दुनिया की सबसे अधिक संगठित हिंसा का, जिसका ब्रिटिश सत्ता प्रतिनिधित्व करती है, मुकाबला करने के लिए उपयुक्त साधन की तलाश थी। आपने उस सत्ता को चुनौती दी है। अब यही देखना है कि ब्रिटिश सत्ता और जर्मन सत्ता मे कौन अधिक सगठित है। हमारे और दुनिया की अन्य गैर यूरोपीय जातियो के लिए ब्रिटिश प्रभुत्व का क्या अर्थ होता है। सो हम जानते हैं; किन्तु हम ब्रिटिश शासन का अंत जर्मनी की सहायता से कभी नही करना चाहेंगे। हमें अहिंसा के रूप मे जो शक्ति प्राप्त हुई है यदि उसे संगठित रूप दिया जाय तो वह दुनिया की हिंसक-से-हिंसक शक्तियों के संयुक्त बल से मोर्चा ले सकती है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, अहिंसा-प्रणाली मे पराजय के लिए कोई स्थान नही है। उसका मत्र तो 'करो या मरो' है, और वह दूसरो को मारने या चोट पहुचाने में विश्वास नही रखती है। उसके उपयोग मे न धन की दरकार है, न उस विनाश-कारी विकास की जिसके विकास को आपने इतनी चरम सीमा तक पहुंचा दिया है। मुझे तो यही आश्चर्य है कि आप यह क्यो नही समझते कि आपकी प्रणाली पर किसी का इजारा नही है! यदि अंग्रेज न सही तो निश्चय ही कोई और शक्ति आपकी प्रणाली मे सुधार करके आपके ही हथियार से आपको पराजित कर देगी। आप अपनी जाति के लिए कोई ऐसी विरासत नही छोड़ रहे हैं, जिस पर वह गर्व कर सके। निर्दयतापूर्ण कृत्यों का पाठ करने मे उसे गर्व का बोध कदापि नही होगा, उसकी रचना में चाहे कितना ही बुद्धि-कौशल क्यो न खर्च किया गया हो। इसलिए मैं मानवता के नाम पर आपसे युद्ध बन्द कर देने की अपील करता हूं। आप उन समस्त विवादग्रस्त विषयों को, जो आपके और ब्रिटेन के बीच मे हों, दोनों पक्षों की पसन्द के किसी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप देंगे तो आपकी कोई क्षति नहीं होगी। यदि आपको युद्ध मे सफलता मिल गई तो इससे यह सिद्ध नही होगा कि न्याय आपके पक्ष में था। इससे तो केवल यही सिद्ध होगा कि आपकी विनाशकारी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रबल थी। इसके विपरीत, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का फैसला, जहा तक मनुष्य के लिए संभव हो सकता है, यह प्रकट करेगा कि न्याय किस ओर था।

आप जानते ही हैं कि मैंने कुछ ही समय पहले अंग्रेज-जाति मात्र से अहिंसा-त्मक प्रतिरोध की प्रणाली अपनाने की अपील की थी। मैंने यह अपील इसलिए

की थी कि अग्रेज जानते है कि मैं विद्रोही होते हुए भी उनका हितैषी हूं। आप और आपकी जाति के लोग मुझसे परिचित नही हैं। मैंने अग्रेजो से जो अपील की थी, वही अपील आपसे करने का तो साहस मुझे नही होता है, पर वर्तमान सुझाव तो अधिक सरल है, क्योकि वह अधिक व्यावहारिक भी है और सबका जानाबूझा भी है।

इस घड़ी यूरोप के लोगो के हृदय शान्ति के लिए छटपटा रहे है और हमने अपना शान्तिमय संघर्ष भी स्थगित कर दिया है। क्या मेरा आपसे इस घड़ी शान्ति-सम्बन्धी प्रयास करने की अपील करना अनधिकार चेष्टा समझा जायगा ? इस घडी का मूल्य स्वय आपके निकट चाहे कुछ न हो, पर लाखो-करोड़ों यूरोप-वासियों के लिए वह बहुत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है, जिनका शान्ति का चीत्कार मेरे उन कानों मे आ रहा जिन्हें जन-साधारण की मूक वेदना को सुनने का अभ्यास है। मैंने आपके और सिन्योर मुसोलिनी के नाम, जिनसे इग्लैण्ड की गोलमेज परिषद् मे भाग लेकर वापस लौटते समय रोम मे मिलने का मुझे सुअव-सर मिला था, एक सयुक्त अपील भेजने का इरादा किया था। मैं आशा करता हूं कि वह इस अपील को आवश्यक परिवर्तन के वाद अपने को भी सबोधित मान लेंगे।

मैं हूं आपका सच्चा हितैषी
मो० क० गाधी

"मत्रियो की कठिनाइयो से सम्वन्ध रखने वाला अध्याय समाप्त करने के पहले, मैं यह भी लिख दू कि सन् १९३७ के प्रारम्भ मे मैंने श्री चर्चिल को एक पत्र लिखने का दुस्साहस किया था। मैंने लिखा था कि भारत की राजनैतिक स्थिति के वारे मे समाचार-पत्रों मे उनके उद्‌गारो को देखकर मुझे निराशा हुई। मैंने उन्हें अपने इस कथन की याद दिलाई कि काग्रेस और पुरानी सरकार के प्रतिनिधियो के वीच व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव है और पारस्परिक अविश्वास की भावना फैली हुई है। साथ ही मैंने उन्हे यह भी बताया कि कुछ प्रान्तों में चुनावो मे ऊंचे-से-ऊचे अफसरो ने खुले तौर पर काग्रेस-विरोधी पक्ष लिया, यह भी कहा कि काग्रेस ने ऐसे ही वातावरण मे नये विधान का श्रीगणेश किया है। मैंने आगे लिखा :

"यकीन मानिये, गाधीजी और उनके जैसे विचार रखने वाले दूसरे लोग विधान को जनता के कल्याण के लिए ईमानदारी के साथ अमल मे लाना चाहते हैं। मैंने आपके वे उद्‌गार गाधीजी तक पहुंचा दिये थे : 'अपने देशवासियो को अधिक रोटी और मक्खन दीजिए, बस मैं बिल्कुल सतुष्ट हो जाऊंगा। मैं ब्रिटेन

के प्रति अधिक वफादारी नहीं, जनसाधारण के लिए अधिक रोटी-मक्खन चाहता हूं।' कांग्रेस ने जो निर्वाचन-सम्बन्धी घोषणा-पत्र तैयार किया था, सो जनता को अधिक रोटी-मक्खन देने के उद्देश्य से ही किया था। जब कांग्रेस ने आश्वासनों की माग की तो, गलत या सही, उसका यही खयाल था कि गवर्नर लोग उसके कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में हस्तक्षेप करेंगे। आप इस सन्देह की आलोचना कर सकते हैं, अथवा जैसा कि लार्ड लोदियन ने कहा, इसका कारण लोकतंत्रीय अनुभव का अभाव हो सकता है, फिर भी वह मौजूद तो है ही। साथ ही मेरा यह विश्वास है कि राजनीतिज्ञता और सम्पर्क से इस गलतफहमी को दूर किया जा सकता है।

क्या आपका यह ख्याल नही है कि आप जैसा असाधारण राजनेता इस समस्या को हल करने मे बहुत अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है ?"

मैंने यह उद्धरण अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर दिया था, और हो सकता है कि उस समय मैंने श्री चर्चिल की बात को गलत समझा हो और उन्होने 'ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी नहीं' के स्थान पर 'ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी भी' या 'साथही ब्रिटेन के प्रतिअधिक वफादारी' भी कहा हो। जो हो, उन्होने यह मानने से इन्कार कर दिया कि उन्होने कहा था, कि उन्हें भारत से ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादारी की आशा नही है। यह है उनका उत्तर जो उस समय 'व्यक्तिगत' शब्द से चिह्नित था, किन्तु जिसे अब उन्होने प्रकाशित करने की अनुमति दे दी है :

११ मोरपेथ मेन्शास,
व्यक्तिगत वेस्टमिन्स्टर
३० अप्रैल, १६३७

प्रिय श्री बिड़ला,

आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद। आपके वृत्तों में मेरी रुचि बराबर बनी रहेगी। पर आपने जिस वाक्य का उल्लेख किया है, उसमे आपने कथन को ठीक-ठीक उद्धृत नहीं किया है। मैंने उन शब्दों का प्रयोग हर्गिज नही किया था।

आपको दुनिया की वर्तमान अवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। यदि ब्रिटेन को किसी कारण से, चाहे वह कारण भारतीय हो या यूरोपीय, स्वेच्छापूर्वक या जबरदस्ती भारत पर से अपना सरक्षण हटा लेना पड़ा तो भारत फासिस्ट तानाशाह राष्ट्रों—इटली, जर्मनी अथवा जापान—का बराबर शिकार बनता रहेगा, और तब आधुनिक सुविधाओं को देखते हुए, शासन-व्यवस्था मे ऐसी कठोरता आ जायगी कि उसकी मिसाल गुजरे हुए जमाने में भी मुश्किल से मिल सकेगी। भारतीय मतदाताओं और कांग्रेस का तो यही कर्त्तव्य है कि वे

उस महान् दायित्व को सभालें, जो उनके सामने पेश किया गया है, और यह दिखा दें कि वे भारत को एक सुखी देश बना सकते हैं। साथ ही उन्हें ब्रिटेन की साख प्राप्त करने की भरसक कोशिश करनी चाहिए और उसके प्रति आभारी और वफादार होना चाहिए, क्योंकि वही ससदीय शासन-व्यवस्था और भारतीय शान्ति का संरक्षक है।

आपका
विन्सटन चर्चिल

२३. युद्धकालीन घटनाएं

लार्ड लिनलिथगो ने विधान-मंडल अथवा भारतीय लोकमत से परामर्श की रस्म पूरी किये बिना ही भारत को युद्धरत राष्ट्र घोषित करने की जो गम्भीर भूल की, उसका परिमार्जन असम्भव हो गया। कांग्रेसी मन्त्रियो ने युद्ध के पहले पत-झड़ मे ही पद-त्याग कर दिया। यही नही, जहा एक ओर वीर भारतीय सेना, जिस पर आज हम ठीक ही इतना गर्व करते हैं, अपनी विशिष्टता स्थापित कर रही थी और ब्रिटिश सेना से भी अधिक तेजी के साथ विक्टोरिया क्रास और दूसरे सम्मान प्राप्त कर रही थी, वहा दूसरी ओर जनता को इन चीजों में किसी प्रकार के आनन्द का बोध नही हो रहा था, और यदि वह खुले रूप से विरोधी न थी तो उदासीन अवश्य थी। बहुतो के दिलो मे तो नात्सियों के प्रति एक प्रकार की सहानुभूति तक पैदा हो गई थी। जापान के प्रति तो प्राय. सभी हलकों मे सहानुभूति थी। इस पर विचित्र बात यह थी कि उसकी विजय की कामना किसी को नहीं थी।

पर वाइसराय ने फिलहाल गाधीजी के साथ सम्पर्क बनाये रखा और दोनो के बीच काफी पत्र-व्यवहार हुआ। दोनों मे उस समय कैसे विचित्र ढग का सम्बध था, सो मेरे नाम महादेवभाई के इस पत्र से प्रकट होगा :

सेवाग्राम
२५-६-४२

प्रिय घनश्यामदासजी,

गनीमत है कि स्वामीजी (आनंद स्वामी) आपके पास आ रहे हैं। अब मैं आपको सचमुच का पत्र लिख सकूंगा। आप स्वयं सोच सकते हैं कि आजकल

डाक से कोई चीज भेजना कितना असम्भव है।

फिशर की पुस्तक 'मेन एण्ड पॉलिटिक्स' आप पढ़ ही रहे हैं। वह यहां चार-पांच दिन के लिए आया था। यहां से रवाना होने से पहले फिशर ने मुझे अपनी डायरी का वह अंश देखने दिया, जिसमें बापू के सम्बन्ध में उसके और वाइसराय के वार्तालाप का निचोड़ दर्ज था। वार्तालाप रोचक भी था और विचित्र भी। वाइसराय ने फिर से कहा था, "गांधी का रुख इन कई वर्षों के दीर्घकाल में मेरे प्रति बड़ा अच्छा रहा है और यह कहना मामूली बात नहीं है, क्योंकि यदि वह यहां दक्षिण अफ्रीका की भांति सन्त बने रहते तो मानवता का बड़ा कल्याण होता, पर दुर्भाग्यवश वह यहां राजनैतिक पचड़े में पड़ गये, जिससे उनमें मिथ्या गर्व और आत्मश्लाघा उत्पन्न हो गई, परन्तु आप कहते हैं कि कुछ सिविलियनों ने आपको बताया है कि उनका प्रभाव समाप्त हो गया है और उनकी चिन्ता करना अनावश्यक है, सो यह वाहियात-सी बात है। उनका प्रभाव बेहद है और जनता से मनमानी कराने के मामले में वह अपना सानी नहीं रखते हैं। जवाहरलाल की बारी भी उनके बाद ही आती है। कांग्रेस में बाकी जो लोग हैं, उन्हें अपने-अपने काम का शुल्क मिलता है। कांग्रेस व्यापारियों की संस्था है, वे लोग उसका खर्च चलाते हैं और उसे चालू रखते हैं। गांधी इस समय ऐसी चाल चल रहे हैं, जो रहस्य से भरी हुई है। वह खतरनाक भी सिद्ध हो सकती है। मैं पूरे तौर से चौकन्ना हूं। वह युक्तप्रान्त और बंगाल के लोगों को भड़काने की योजना बना रहे हैं। वह किसानों से कहेंगे कि अपने घरों को छोड़कर मत जाओ। मैं जल्दबाजी से काम नहीं लूंगा, पर यदि उनके कार्य-कलाप ने युद्ध-चेष्टा में अड़चन डाली तो मुझे उन्हें नियन्त्रण में रखना ही होगा।" मेरी स्मरण-शक्ति के अनुरूप यह वस्तुस्थिति की अच्छी खासी रिपोर्ट है।

बापू ने जवाहर और मौलाना से विस्तृत रूप से बातचीत की। जवाहर का दिमाग चीन और अमरीका से भरा हुआ है। बापू ने फिशर वाली मुलाकात के दौरान अपने पुराने रवैये में जो परिवर्तन किया था, सो निस्सन्देह जवाहर को ध्यान में रखकर ही किया था और उन्होंने जो-कुछ कहा था वह जवाहर की अभिलाषा के सर्वथा अनुरूप था। जवाहर ने सुझाया कि बापू चांग काई शेक को एक पत्र लिखकर उसे अपनी स्थिति समझावें, उसे स्वतन्त्र भारत के साहाय्य का आश्वासन दें और कहें कि विदेशी सेनाओं के भारत से हटाये जाने का सुझाव एकमात्र चीन की सहायता करने की इच्छा से प्रेरित होकर ही दिया गया था। पता नहीं, चांग ने पत्र के 'हरिजन' में प्रकाशित न किये जाने का तार क्यों भेजा, पर वह पत्र चीन और अमरीका, दोनों को एक साथ ही तार द्वारा भेजा गया, और एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि चर्चिल की भेंट के समय तक वह रूजवेल्ट के हाथों में पहुंच गया।

राजाजी दो दिन के लिए यहा आये थे, पर उनके साथ दो दिनो तक अत्यन्त मित्रतापूर्वक बात करने के बाद बापू ने कहा, "देखता हूं, इनके और मेरे बीच जो मतभेद है वह उतना साधारण नही है, जितना कि मैं समझता था। उन्होने राजाजी को जिन्ना से मिलने का बढ़ावा दिया, यद्यपि उन्हें ऐसे बढावे की कोई खास जरूरत न थी। अब वह उनसे मिलेंगे। परन्तु जबकि वह आदमी 'टाइम्स आफ इण्डिया' को गर्हित ढग की मुलाकात दे चुका है, तो अब वह बापू का डटकर विरोध करने को बाध्य होगा ही और मैं नही समझता कि राजाजी उसके साथ बातचीत मे विशेष सफल होंगे। जो हो, वह उससे मिलेंगे अवश्य। इसके बाद वह वर्धा वापस आकर बतायगे कि मुलाकात का क्या नतीजा निकला। पर मुझे कुछ आशका-सी है कि उनके और जिन्ना के बीच जो कुछ बातचीत होगी, बापू को वह सब-की-सब नही बतायगे। इसका अर्थ यह नही है कि वह जान-बूझकर कोई बात छिपा लेंगे। असली बात यह है कि वह हरएक पदार्थ को अपनी प्रिय योजना की ऐनक से देखते हैं, इसलिए वह ऐसी कोई बात नही बतायगे, जिसके द्वारा उनका हवाई किला ढहने की सम्भावना हो। अस्तु, यह अच्छा ही है कि वह जिन्ना से मिल रहे है।

मुझे विश्वास है कि मैंने बताने लायक सारी बातें बता दी। बापू बुरी तरह थक गये हैं और दिन बीतने पर तो बिलकुल ही बेदम हो जाते हैं। हम लोग उनके कार्य की मात्रा मे भरसक कमी करने की चेष्टा करते हैं, पर नई कार्य-योजना-सम्बन्धी माथापच्ची उन्हे बिलकुल थका डालती है। उनका वजन कम हो गया है, भोजन की मात्रा कम हो गई है, कम टहलते हैं और कामकाज से थक जाते हैं। यह बड़े परिताप की बात है, पर हम उनकी ठोस सहायता करने मे असमर्थ हैं। मैं तो केवल इतना ही कर सकता हू कि 'हरिजन' के लिए वह केवल दो कालम-भर मैटर दे दें और अवशिष्ट स्थान मैं भर दिया करू। ऐसा मैं आसानी से कर भी सकता हूं, क्योकि मैं उनके विचारों को सहज ही पेश कर सकता हू। पर सोचना और कार्यविधि निर्धारित करना अकेले उन्ही का काम है। इस काम मे केवल भगवान् ही उनकी सहायता कर सकते हैं।

होरेस एलेक्जेंडर और सायमन्ड्स यहा आ गये हैं। अन्य सभी क्वेकरो की भाति वे भी भले आदमी हैं। होरेस लन्दन से रवाना होने से पहले एमरी से मिले थे। एमरी ने होरेस से गाधी और अन्य लोगों से मिलने को कहा था, पर इससे कुछ होने-जाने वाला नही है, क्योकि वह क्रिप्स की हिमायत लेकर आये हैं। फिर भी दोनों हैं अच्छे आदमी। मैं उनसे आपके पास ठहरने को कह रहा हू। आशा है, आपको कोई आपत्ति नही होगी। आप होरेस को कुछ दीक्षा भी दे सकते है, क्योकि वह बहुत अनभिज्ञ व्यक्ति हैं। आपको भी उनसे कुछ-न-कुछ मिलेगा ही। वह वहां किसी को नही जानते, इसलिए मैंने सोचा कि दोनो के लिए यही ठीक

रहेगा कि वे आपके पास ठहरें। इससे आपकी योजनाओं में कुछ व्याघात तो अवश्य पड़ेगा, पर मुझे आशा है कि आप उस ओर ध्यान नही देंगे।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

इंग्लैंड में क्वेकरों ने और समझौता समिति के कार्लहीथ जैसे अन्य सदाशयी व्यक्तियों ने कोई रास्ता ढूढ निकालने का व्यर्थ प्रयास किया। उन्होंने परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए एक प्रतिनिधि-मडल भेजा। महादेवभाई ने वर्धा से बापू की ओर से मुझे सबको ठहराने की व्यवस्था करने को लिखा। मैंने प्रसन्नतापूर्वक सारी व्यवस्था कर दी।

२७ जून, १६४२

प्रिय महादेवभाई,

तुम्हारी चिट्ठी ज्ञातव्य बातों से परिपूर्ण थी। मुझे यह दिमागी भोजन भेजा, इसके लिए धन्यवाद।

श्री होरेस और सायमन्ड्स यहा आ पहुचे हैं। मैंने दोनों को एक ही कमरे मे टिका दिया है। अच्छा होता कि दोनों को दो कमरे दे सकता, पर यह सम्भव नहीं था। फिर भी दोनों बड़े खुश हैं। मैं उनके आराम का खयाल रखूगा। उनके दिल्ली-प्रवास के सम्बन्ध मे कोई चिन्ता करने की जरूरत नही है।

बहुत-सी बातें करनी हैं, पर मैं भेंट होने तक रुकूगा। मैं शायद अगस्त के आरम्भ तक वहा आ पहुँचूगा।

शायद तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नही है। स्वयं तुमने 'हरिजन' में यह बात स्वीकार की है। तो फिर दिल्ली क्यों नही आ जाते? अगर आ जाओ तो मैं वादा करता हूं कि तुम्हारा साथ देने के लिए मैं अपना प्रोग्राम बदल डालूगा। या मैं तुम्हे पिलानी ले जाऊंगा, जहा तुम्हारी शान्ति मे विघ्न डालने वाली कोई बात नही होगी। कामकाज की खातिर भी तुम्हें मूर्च्छित होते रहने के बजाय पूरी तौर से आराम करना चाहिए। तुम्हे यह अवश्य ही बुरा लगा होगा कि बापू भयंकर गर्मी मे पैदल चले और तुम ऐसा करने मे असमर्थ रहे। मैं तो समझता हू कि तुम्हें विश्राम की निश्चित रूप से आवश्यकता है। इसलिए तुम्हें विश्राम करना ही चाहिए। देवदास मुझसे सहमत हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

युद्ध ने गांधीजी के लिए और वास्तव में सभी भारतीयों के लिए कठिनाइयां

और उलझनें पैदा कर दीं। पाकिस्तान के लिए जिन्ना की माग अधिकाधिक तीखी होती जा रही थी, जिसके परिणामस्वरूप अतिरिक्त कठिनाइया उत्पन्न हो रही थी। सबके ऊपर आया बगाल का भयकर दुर्भिक्ष। चीन ने जापान के विरुद्ध जो रुख अपनाया, उसे लेकर चीन के प्रति श्री नेहरू की सहानुभूति जाग्रत हो उठी। इससे वह महान् सेनानी चाग काई शेक और उनकी उतनी ही प्रसिद्ध धर्मपत्नी के सम्पर्क मे आये। उन्होने भी भारतीय स्वाधीनता के लिए जवाहरलालजी की आकुलता के प्रति सहानुभूति दिखलाई। वह लार्ड लिनलिथगो से भारत की स्वतन्त्रता की वकालत करने भारत भी आये और उन्ही के अतिथि हुए। बापू चाग-दम्पति से कलकत्ते में मेरे मकान पर मिले और सबकी एक साथ तसवीर ली गई। पर महादेव ने मेरे पास जो चिट्ठी भेजी, उसके द्वारा एक-दूसरे ही ढग की तसवीर देखने को मिली .

सेवाग्राम
१६-७-४२

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं आपके पास एक पत्र मीराबहन के हाथों भेजना चाहता था, पर बहुत थक गया था और सुबह के वक्त सन्तोषजनक पत्र लिखने का समय नही था। इस बार की कार्यकारिणी की बैठक से आखे खुल गई। खान साहब को छोडकर किसी मुसलमान का दिल कांग्रेस के या, यो कहिये कि बापू के प्रोग्राम मे नही है। रहे जवाहरलाल, सो वह चीन और अमरीका के मामले में इतने पैठ चुके हैं कि उनके लिए कोई काम तुरन्त ही हाथ मे ले लेना सभव नही है। मुझे आशका है कि अवस्था इससे भी ज्यादा खराब है। रामेश्वरभाई मुझे 'लाइफ' नियमित रूप से भेजते रहते हैं। इस सप्ताह के अक से वस्तुस्थिति के भयकर रूप में दर्शन होते हैं। बापू महासेनानी चाग काई शेक से कलकत्ते मे आपके घर मिले थे। इस सप्ताह के अक मे उस अवसर पर लिये गए सभी चित्र निकले हैं। चित्रों के नीचे जो विवरण दिया गया है वह या तो स्वय मेडम चाग ने दिया है या उनके अमले के ही किसी आदमी ने, क्योकि इस अवसर पर मेरे या उन लोगो के अलावा और कोई मौजूद नही था, जो ऐसा विवरण देता, और बापू-सम्बन्धी विवरण कितना शरारत से भरा हुआ है! कितना अपमानजनक और कितना कृतघ्नतापूर्ण! मैं तो समझे बैठा था कि कृतज्ञता चीनियो का एक सबसे बड़ा गुण है, पर यह दपत्ति इस गुण से भी सर्वथा शून्य हैं। यदि वे पूजीपतियो से कोई सरोकार न रखने पर इतने उतारू थे तो उन्होंने बेचारे लक्ष्मीनिवास का आतिथ्य क्यों ग्रहण किया? इस सारे व्यापार से जी मिचलाने-सा लगा है। इन लोगो को यहा नही आना चाहिए था। पर यह अच्छा ही हुआ कि उस रहस्यपूर्ण आदमी के साथ (जैसा

कि बापू उसे हमेशा से कहते आये हैं) बापू का साक्षात्कार हो गया। महासेनानी चांग ने बापू के नाम अपने ताजा सदेश में उन्हें उतावली में कुछ न कर डालने की सलाह दी है, क्योकि हेलीफैक्स ने ब्रिटेन के लिए रवाना होने से पहले उसके प्रतिनिधि को न्यूयार्क मे बताया है कि वह इंग्लैंड-स्थित अधिकारियों पर भारत के साथ समझौता करने पर जोर डालेंगे। बापू ने उसे उत्तर में लिखा है कि वह उतावली में तो कोई काम नही करेंगे, पर साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि अगला कदम उठाने मे अधिक विलम्ब नही किया जायगा, क्योंकि विलम्ब करने से वह कदम उठाने का उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस सदेश में कोई सार नही है। या तो हेलीफैक्स चांग को बुद्धू बना रहा है या चाग और हेलीफैक्स दोनों मिलकर हमें बुद्धू बना रहे है।

मूल्य नियत्रण-सम्बन्धी आपके पत्र के बारे में बापू का कहना है कि इस दिशा मे आप ही लोगो को, अर्थात् व्यापारियो को, कदम उठाना चाहिए। यदि नलिनी कोई कदम उठावें और उसमे आपको भी साथ में लें तो इससे अच्छी बात क्या हो सकती है। एक बार मीराबहन से भी बात करिये। उनमें स्फूर्ति कूट-कूटकर भरी है। काश, उनकी जानकारी के विषय में भी यह बात कही जा सकती! पर यदि वह तीन बडों से बात करेंगी तो कोई हानि नही होगी, बशर्ते कि उन्हें मुलाकात करने का अवसर मिले। इस पत्र की प्राप्ति के बाद मुझसे एक बार बात कर लीजिएगा।

आपका ही
महादेव

मैंने बापू और जिन्ना के बीच की खाई को पाटने की चेष्टा मे स्व० लियाकत अली खा से कुछ बातचीत की थी। मैंने इस बातचीत से बापू को पूरी तरह से अनभिज्ञ रखा था और उनकी ओर से किसी तरह का कौल-करार नही किया था। इस बातचीत का कोई नतीजा नही निकला और जिस प्रकार दूध बिखर जाने पर रोना-धोना बेकार होता है, उसी प्रकार उस बातचीत की ऊहापोह करना व्यर्थ है।

लार्ड लिनलिथगो ने जिस स्थिति की कल्पना की थी और जिसके बारे में मुझे फिशर के हवाले से महादेवभाई ने लिखा था, वह सामने आ गई। गांधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उसके बाद सन् ४२ का 'भारत छोडो' आन्दोलन आया। वह स्वयं पूना के आगाखां महल मे नजरबन्द कर दिये गए और एक के बाद एक कांग्रेस के नेता गिरफ्तार होते और जेल जाते रहे।

युद्ध मथर गति से जारी रहा। हम भारतीयो को, जो स्वतन्त्रता की आशा लगाये बैठे थे, कभी-कभी ही कोई समाचार मिल पाता था। गाधीजी ने २१ दिन

का उपवास किया। इस समय उनको रिहा करने के लिए जो भी अनुरोध किये गए उन सबको सरकार ने ठुकरा दिया। गाधीजी ने अपना अनशन सफलतापूर्वक पूरा किया, पर उससे सारा देश हिल उठा।

२४. भारत और युद्ध

बापू ७ अगस्त, १९४२ को गिरफ्तार हुए थे। उनकी गिरफ्तारी के बाद हिंसा का विस्फोट हुआ, जिसके फलस्वरूप युद्ध-चेष्टा को धक्का लगा और लार्ड वेवल को युद्ध का मोर्चा जापान द्वारा अधिकृत बर्मा तक फैलाने के प्रयास मे लज्जाजनक ढग से विफल मनोरथ होना पडा। बापू की गिरफ्तारी और तज्जनित हिंसा के विस्फोट के जो कारण बताये गए हैं, उनके सम्बन्ध मे कुछ ऐसी ज्ञातव्य बातें हैं, जिन्हें भावी इतिहासकार को अच्छी तरह ध्यान मे रखना होगा।

यह तो निश्चित ही है कि युद्धकाल में लार्ड लिनलिथगो ने अपने सैनिक सलाहकारो से परामर्श किये बिना और प्रकटतः अपनी ही जिम्मेदारी पर इतना गम्भीर निर्णय कर डाला कि उसका युद्ध की गति पर प्रभाव पडना अनिवार्य था। प्रधान सेनापति लार्ड वेवल उस समय भारत मे नही थे। बाद मे उन्होने कहा कि वह इस बारे मे कुछ नही जानते। ८ अगस्त रविवार को बड़े सवेरे गिरफ्तारिया हुईं। उसी दिन बम्बई मे दगे भडक उठे। उसी दिन सध्या को राची पूर्वी कमान के सेनापति ने 'स्टेट्समैन' के सम्पादक के साथ कलकत्ते मे भोजन किया। उन्हें गिरफ्तारियों और दगो का कुछ पता न था। कलकत्ते मे प्रेसीडेंसी डिवीजन की कमान के जनरल भी इस अवसर पर मौजूद थे। उन्हें भी इन सारी घटनाओ का पता नही था। उनका परिस्थिति से गहरा सम्बन्ध था। सम्पादक आर्थर मूर ने सार्वजनिक रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि जब इन सैनिक अधिकारियों को उनसे इन घटनाओ का पता चला तो उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरा निर्विवाद तथ्य यह है कि गाधीजी की गिरफ्तारी को यह आरोप लगाकर औचित्यपूर्ण सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वह अथवा काग्रेस हिंसा का आश्रय लेने की योजना बना रहे थे। गाधीजी की नजरबन्दी के दिनो में उनसे जो प्रश्न किये गए उनके उत्तर इस प्रकार दर्ज हैं :

प्रश्न—अहिंसा मे आपकी जो श्रद्धा है, उसका मेल आप उन आरोपो के साथ

कैसे बैठाते हैं, जो आपके और कांग्रेस के विरुद्ध लगाये जाते हैं कि ८ अगस्त के बाद जो भी तोड-फोड और हिंसा के काम हुए, वे सब इसलिए हुए कि आपने या कांग्रेस ने कुछ गुप्त हिदायतें जारी की थी ?

उत्तर—इन आरोपों मे तनिक भी सचाई नही है। मैंने तोड़-फोड़ के लिए या किसी भी प्रकार की हिंसा के लिए कोई गुप्त या अप्रत्यक्ष हिदायत कभी नही दी। अगर कांग्रेस ने ऐसी कोई हिदायत दी होती तो मुझे उसका पता होता। न तो मैंने और न कांग्रेस ने ही ऐसी हिदायतें जारी की।

प्रश्न—तो फिर आप तोड़-फोड़ और हिंसा के इन कामों को नापसन्द करते हैं ?

उत्तर—बिलकुल नापसन्द करता हूं। मेरे अनशन-काल में मुझसे जो भी मित्र मिले हैं, उन सबसे मैंने यही बात कही है। जो लोग हिंसा मे विश्वास करते हैं, मैं उनका निर्णायक नही बनना चाहता। पर मैं उनसे यह जरूर कहूंगा कि वे स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दें कि वे इन हिंसात्मक कार्यों को अपनी ही ओर से कर रहे हैं और इसलिए कर रहे हैं कि उनका हिंसा मे विश्वास है। कांग्रेस के प्रति न्याय करने के लिए इन हिंसा और तोड़-फोड करनेवालों को यह बात बिलकुल स्पष्ट कर देनी चाहिए। वे मेरी सुनें तो मैं तो उन्हें सलाह दूंगा कि उन्हें अपने को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। केवल इसी प्रकार वे लोग देश के हित-साधन मे सहायक हो सकते है। पर यदि कोई व्यक्ति कांग्रेस के ध्येय और मेरे तरीके मे विश्वास नही रखता है तो उसे सभी सबद्ध लोगो के निकट यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए।

प्रश्न—यह कहा गया है कि आपने यह आदोलन इस खयाल से शुरू किया कि मित्र-राष्ट्र हरानेवाले हैं और आपने इस आदोलन के लिए ऐसा समय चुना जब मित्र-राष्ट्र कठिनाई मे पड़े हुए थे और आप उनकी स्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहते थे।

उत्तर—इसमें सत्य का लेश भी नहीं है। आप 'हरिजन' में मेरे लेख पढ़ सकते हैं और मैंने यह जरूरत से ज्यादा स्पष्ट कर दिया है कि मेरा ऐसा इरादा कभी नही था।

प्रश्न—हां, मैंने आपके लेख 'हरिजन' में पढे हैं। मैंने तो यही पाया कि आप जर्मनी या जापान के पक्षपाती तो क्या, उलटे नात्सी-विरोधी और फासिस्ट-विरोधी हैं। यही बात है न ?

उत्तर—बिलकुल। नात्सीवाद और फासिस्टवाद के खिलाफ मुझसे अधिक कठोर शब्दों का व्यवहार और किसी ने नहीं किया है। मैंने तो नात्सियों और फासिस्टों को इस दुनिया की गन्दगी कहा है। जब मई १९४२ में मीरा बहन उड़ीसा मे थी तो मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था। मैं उस पत्र की प्रतिलिपि तो

आपको नही दे सकता, क्योकि मैं जेल में हू, पर मुझे मालूम हुआ है कि मीरा-बहन ने उस पत्र की नकल भारत सरकार को भेजी है। आप सरकार से उसकी प्रतिलिपि माग सकते हैं और अपनी तसल्ली कर सकते हैं। मैंने उस पत्र मे विस्तृत-रूप से हिदायतें दी हैं कि जापानी भारत पर आक्रमण करे तो उनका प्रतिरोध किस प्रकार किया जाय। उस पत्र को पढ लेने के बाद कोई भी व्यक्ति मुझ पर नात्सीवाद या फासिस्टवाद या जापान से सहानुभूति रखने का आरोप नही लगा सकता।

प्रश्न—क्या स्थिति यह नही है कि अगर भारत स्वतत्र हो जाय और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाय तो काग्रेस मित्र-राष्ट्रो के ध्येय की पूर्ति मे सैनिक सहायता देने के लिए वचनबद्ध है ?

उत्तर—आपने जो निष्कर्ष निकाला है, वह बिलकुल ठीक है। इसमें कोई शक नही कि यदि भारत को स्वतन्त्र कर दिया गया तो राष्ट्रीय सरकार अपने समस्त सैनिक साधनो के साथ मित्र-राष्ट्रो के पक्ष मे लडेगी और हर संभव तरीके से मित्र-राष्ट्रों को सहयोग देगी।

प्रश्न—हा, काग्रेस की नीति यही है। परन्तु आप तो शातिवादी हैं। क्या आप मित्र-राष्ट्रो को सैनिक सहायता देने की काग्रेसी योजना मे बाधा नही डालेंगे ?

उत्तर—कदापि नही। मैं शातिवादी हू। किन्तु यदि राष्ट्रीय सरकार बनी और उसने मित्र-राष्ट्रो को सैनिक सहायता देने के आधार पर सत्ता की बागडोर सभाली, तो जाहिर है कि मैं बाधा नही डाल सकता, और न डालूगा ही। मेरे लिए हिंसा के किसी काम मे प्रत्यक्ष भाग लेना समव नही होगा। पर काग्रेस मेरी ही तरह शातिवादिनी नही है और मैं स्वभावतया ही काग्रेस के इरादो की पूर्ति मे बाधा डालने वाला कोई काम नही करूगा।

बापू जब आगाखा महल, पूना मे नजरबन्द थे तो उनके इस निश्चय से, कि यदि वाइसराय और सरकार उन्हे और काग्रेस को उनकी गिरफ्तारी के बाद के विद्रोह और तोड-फोड के कामो की जिम्मेदारी से मुक्त नही करेगी तो वह २१ दिन का अनशन करेंगे, उनके मित्र घबरा गये। अब वह काफी वृद्ध हो गए थे, इसलिए इस सभावना ने कि सरकार उन्हे रिहा नही करेगी और अनशन करने देगी, हम सबको भयभीत कर दिया। श्री कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी ने, जो इस समय उत्तर प्रदेश के गवर्नर है, और मैंने तुरन्त एक प्रतिनिधि सम्मेलन, जो यथासभव अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो, बुलाने का निश्चय किया, जिससे सरकार को बापू को रिहा करने के लिए प्रेरित किया जा सके। तदनुसार हमने श्री राजगोपालाचार्य और सर तेजबहादुर सप्रू को सयुक्त तार भेजकर इनसे सम्मेलन मे उपस्थित होने और आगे बढाने का अनुरोध किया। वे राजी हो गये।

मेरा दिल्लीवाला मकान इतने बडे सम्मेलन के लिए नाकाफी होता, इसलिए हम लोगों ने उसका अधिवेशन भारतीय व्यापारी सघ के अहाते में एक शामियाने में किया। हिन्दू, मुसलमान, सिख—सभी जातियों के प्रतिनिधि काफी संख्या मे मौजूद थे। हम सबने वैधानिक और राजनैतिक सवालो को छुआ तक नही और जो प्रस्ताव अपनाये उनमें अपील का आधार शुद्ध मानवता को ही बनाया। पर सरकार का दिल नहीं पसीजा। सिंहावलोकन करने पर आश्चर्य होता है कि सरकार ने अपने सिर पर कितनी बड़ी जोखिम ले ली थी। गाधीजी की मृत्यु हो गई होती तो सारे देश में आग लग जाती और सरकार युद्ध-चेष्टा मे सहायक होने के बजाय स्वय ही अपने-आपको तोड़-फोड की कार्रवाई का दोषी सिद्ध करती। सरकार के भाग्य अच्छे थे कि गाधीजी जीवित रहे और उनका अनशन निर्विघ्न पूरा हो गया। सरकार की स्थिति सचमुच कठिन थी। उससे यह आशा नही की जा सकती थी कि वह कांग्रेस को निर्दोष घोषित कर देती, जबकि वह वास्तव मे उसे जिम्मेदार समझती थी। पर वह 'साप मरा न लाठी टूटी' की नीति तो अपना सकती थी। वह यह कह देती कि अन्य किसी प्रश्न के सही या गलत होने पर विचार न करते हुए उसने केवल मानवता के आधार पर गाधीजी को रिहा करने का फैसला किया है। हमारी अपील का आधार भी यही था। वह अच्छी तरह जानती थी कि बापू का अपने अपने अनुयायियो का काया-पलट करने का दावा भले ही अतिरंजित हो, स्वय बापू को हिंसा से घोर अरुचि है। ऐसी दशा मे सरकार बापू के सिर पर थोड़ी-सी अप्रत्यक्ष जिम्मेदारी थोप सकती थी, और बस। वह खुले तौर पर पहले ही स्वीकार कर चुकी थी कि गाधीजी ने शातिमय वातावरण बनाये रखने मे भारी सेवा की है।

बापू के विश्वस्त निजी मंत्री महादेवभाई का नजरबन्दी काल मे ही देहावसान हुआ। प्यारेलाल और उनकी बहन डा० सुशीला का गाधीजी के साथ दीर्घकाल से संबध था। अब महादेवभाई का स्थान प्यारेलाल ने लिया।

जब बापू रिहा हुए और मेरे लिए उनके साथ पुन. पत्र-व्यवहार करना सभव हुआ तो मैंने प्यारेलाल के साथ पत्र-व्यवहार करना शुरू किया। इसका कारण यह था कि मैं बापू का समय नही लेना चाहता था, हालांकि मैं उनके स्वास्थ्य के बारे मे चिन्तित था और उनका पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने को उत्सुक था।

दिलकुशा, पचगनी
२१-७-४४

प्रिय घनश्यामदासजी,

बापू ने कुछ विदेशी पत्र-पत्रिकाएं नियमित रूप से मंगवाने का प्रबन्ध करने

को कह दिया है। मैंने श्री शांतिकुमार के पास निम्नलिखित सूची भेजी थी :

१. न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन
२ टाइम्स (अमेरिकन)
३ रीडर्स डाइजेस्ट
४. साप्ताहिक मैन्चेस्टर गार्जियन
५. साप्ताहिक टाइम्स
६. यूनिटी, और ७. एशिया।

उन्होंने लिखा है कि उन्होंने चेष्टा की, पर असफल रहे। क्या आप इन्हें मंगवाने का भार लेंगे ?

आपका
प्यारेलाल

७-८-४४

प्रिय प्यारेलाल,

तुम्हारा ३१ तारीख का पत्र मिला। तुमने जिन पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखा है, उन्हें मगाने मे कोई कठिनाई नही होगी। तुम्हे वे सब सीधे ही मिल जाया करेंगे। मैं आज ही अपने लन्दन और न्यूयार्क के दफ्तरो को आवश्यक कार्रवाई करने के लिए तार भेज रहा हू। जब मिलने लगें तो मुझे सूचित कर देना।

यदि कोई लिखने योग्य बात हो तो मुझे सूचित करते रहा करो, जैसाकि महादेवभाई किया करते थे। जरूरत पडने पर अपनी निजी विचारधारा दे सकते हो।

मैं अभी बम्बई नही आ रहा हू, पर मेहरबानी करके बापू से कह देना कि उन्हे मेरी जब कभी जहा कही, सेवाग्राम मे या और किसी जगह, दरकार हो मैं आ जाऊंगा। मैं उन्हे इसलिए नही लिख रहा हू कि उनके पास वैसे ही बहुत कुछ करने को है। इसलिए मैं उनको डाक का बोझ अनावश्यक रूप से नही बढाना चाहता। आशा है, केंचुए अब बिलकुल नही रहे होंगे।

तुम्हारा
घनश्यामदास बिड़ला

आगाखा महल से रिहा होने के बाद बापू तनिक भी प्रसन्न न थे। उनके सहकर्मी और साथी अभी जेल मे ही थे, तिस पर पहले तो महादेव और बाद मे बा आगाखा महल मे ही उनसे बिछुड़ गये थे। बापू अनुभव करते थे कि या तो उनके साथियो की रिहाई होनी चाहिए या फिर उन्हें ही वापस जेल चले जाना चाहिए। इसी अवसर पर कुछ मित्रो ने, जिन्होंने मेरे परिवार के साथ बापू के सपर्क को सदैव अपनी ईर्ष्या का विषय बनाया था, यह आपत्ति उठाने की कृपा की कि जब कभी बापू दिल्ली या बम्बई जाते हैं तो बिड़ला-भवन मे ही क्यो ठहरते हैं। जब यह बात बापू के कानों मे आई तो उन्होंने बिड़ला-भवन का परित्याग

करने से साफ इन्कार कर दिया। वह अनेक वर्षों से जवतब वही ठहरते आ रहे थे। तब इन मित्र कहानेवाले सज्जनों ने यही दलील देकर बापू को बिड़ला-भवन में ठहरने से विरत करना चाहा कि आप शायद फिर गिरफ्तार हो जायं, इसलिए आपके लिए बिडला-परिवार के साथ अधिक घनिष्ठ संपर्क रखना उचित नही होगा। आप पहले भी बिड़ला-भवन मे ही गिरफ्तार हुए थे, इसलिए बिड़ला-परिवार की सुरक्षा खतरे मे पड़ सकती है।

जब बापू ने इस विषय की पूना में मुझसे चर्चा की तो मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने बापू से साफ-साफ कह दिया कि खतरा चाहे जैसा हो, आपके साथ संपर्क बनाए रखने में कोई जोखिम उठाने का प्रश्न हो तो मैं उससे बचने के लिए अपनी जिम्मेदारी का परित्याग करने की एक क्षण के लिए भी कल्पना नही कर सकता। पर बापू ने आग्रह करके मेरे भाई रामेश्वरदास को बम्बई मे निम्न-लिखित पत्र भेजा। रामेश्वरदास ने भी अपने उत्तर मे वही बात कही जो मैंने कही थी :

सेवाग्राम, वर्धा
१२-८-४४

भाई रामेश्वरदास,

बहुत दिनों से लिखने की इच्छा हो रही थी, लेकिन लिखने का समय ही नही मिला। अब तो लिखना ही चाहिए। जिन्ना साहेब का खत किसी भी वख्त आ सकता है। मैंने तो लिखा है कि ३-४ दिन की मुद्दत मिलनी चाहिए। मुझपर बहुत दबाव डाला जाता है कि मैं बिरला हाउस मे तो हरगिज न रहू। मैंने साफ-साफ कह दिया है कि मैं बिना कारण बिरला हाउस का त्याग नही कर सकता हू। प्रश्न तो इसी कारण खडा होता है कि कोई भी सजोगवशात् मेरा वहा रहना अनुचित माना जाय तो बगैर संकोच के मुझे कह देना। यह प्रश्न पूना में ही उठा था और उस वख्त तय हुआ था कि तुम्हारे तरफ से संकोच की कोई बात हो नही सकती। मुझे याद नही उस वख्त तुम थे या नही। बात घनश्यामदास से हुई थी। लेकिन सावधानी के कारण आज तुमको हर प्रकार से सुरक्षित रखने के कारण जब मुझे मुम्बई जाने का समय नजदीक आ रहा है तो पूछ लेना धर्म हो गया है।

दूसरी बात अधिक अगत्य की है, लेकिन समय की दृष्टि से इतनी अगत्य की नही जितनी मुम्बई निवास की है। अगर मेरी गिरफ्तारी होने वाली ही है तो उसके पहले जो कार्य मुझे करने चाहिए उमे मैं कर सकू तो एक प्रकार का संतोष मिलेगा। तालीमी सघ का कार्य बहुत अच्छा है, ऐसा मेरा विश्वास है। उसके लिए १/२ (आधा) लाख रुपये का प्रबन्ध कर लेना चाहता हूं।

मीराबहन के लिए रुपये दान मे मिले थे वह वापस देना चाहता हूं। वह

उसे वापस देने का धर्म हो गया है। इसका बोझ यो तो सत्याग्रह आश्रम कोश पर पड़ना चाहिये। थोड़े पैसे हैं भी सही। लेकिन नारायणदास ने रचनात्मक कार्य मे रोक लिये हैं। उसमे से निकल तो सकते हैं लेकिन उस कार्य को हानि पहुचा करके ही निकाल सकता हू। हो सके तो उस कार्य मे हानि पहुचाना नही चाहता हू। इसमे शायद आधा लाख तक पहुच जाता हू। ठीक रकम कितनी देनी है वह मुझे पता नही चला है। वर्षों से जो रकम आती रही वह दानो में लिखी है, उसे निकालने मे कुछ देर लगती ही है। आश्रम की सब किताबें इधर-उधर पड़ी हैं। अच्छी तरह रखे हुए चौपड़े मे से भी ऐसी रकमो को चुन लेना घास में गिरी हुई सुई को ढूढ लेना-सा हो जाता है। तब भी मैंने लिख दिया है कि वह सारा हिसाब निकाला जाय।

कुछ फुटकर खर्च पडा है। इसका कुछ करना आवश्यक है। इसमें कुछ १/२ (आधा) लाख चला जायगा। मैंने ठीक-ठीक हिसाब निकाला नही है।

क्या इतनी रकमे आराम से दे सकते हैं? इसका उत्तर नकार मे भी बगैर सकोच दिया जा सकता है। मेरे सब कार्य ईश्वराधीन रहते हैं। ईश्वर अगर वह कार्य रोकना नही चाहता है तो किसी-न-किसी को अपना निमित्त बनाकर मुझको हुण्डी भेज देता है। तो न मिलने से मैं न ईश्वर मे रूठूगा न तुमसे। जिस वृक्ष के नीचे मैं बैठता हूं उसी वृक्ष का छेदन आजतक नही किया, ईश्वर की कृपा होगी तो भविष्य मे भी नही होगा।

तुम सबका स्वास्थ्य अच्छा होगा। यह पत्र चि० जगदीश के मारफत भेजता हू। वह यहा भाई मुनशी का खत लेकर आया है। डाक से क्या भेजा जाय, क्या न भेजा जाय, इसका निर्णय करना मुश्किल हो जाता है।

बापू के आशीर्वाद

जिन्ना अपनी जिद पर अडे हुए थे। उनके साथ बापू की निष्फल मुलाकात के कुछ ही पहले मुझे एक पत्र मिला। जिन्ना के साथ होनेवाली मुलाकात के विरोध मे जिस उग्रता के दर्शन हो रहे थे और स्वय बापू के प्रति विरोध की जो भावना दिखाई दे रही थी, सो सब उनकी उस मृत्यु का पूर्वाभास-मात्र था, जिसका उन्हें अन्त मे धर्मोन्मत्त हिन्दुओ के हाथो शिकार होना पडा था।

बम्बई
६ सितम्बर, १९४४

प्रिय घनश्यामदासजी,

मुझे आपका ३ सितम्बर का वह पत्र मिला जिसमे आपने 'स्पेक्टेटर' के कटिंग भेजे हैं। तदर्थ धन्यवाद। बापू ने तीनो कटिंग देख लिये हैं। मेरे पास होरेस

एलेक्जेण्डर की पुस्तक भी थी। मैं आवश्यक कार्रवाई करूंगा।

आपने समाचार-पत्रो मे सेवाग्राम में धरना देने वालों के कारनामे पढे ही होंगे। वैसे उनके नेता ने पहले ही दिन साफ-साफ कह दिया था कि यह तो पहला कदम है और आगे जरूरत पड़ी तो बापू को कायदे आजम से मिलने जाने से रोकने के लिए बल का भी प्रयोग किया जायगा। पर जहांतक हमारा संबंध है हम इस सारे व्यापार को कौतुक-मात्र समझते आ रहे थे। कल उन्होंने सूचना दी कि वे गाधीजी को अपनी कुटिया छोड़ने से बलात् रोकेंगे। साथ ही उन्होंने कुटिया के तीनो द्वारो पर धरना बैठा दिया।

आज प्रात.काल मुझे पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट का टेलीफोन मिला कि धरना देनेवाले उत्पात पर उतारू हैं, इसलिए पुलिस को कार्रवाई करने को बाध्य होना पड़ेगा। बापू का विचार था कि वह वर्धा की ओर पैदल चल पड़ेंगे और जबतक धरना देनेवाले ही उनसे गाड़ी मे बैठने के लिए न कहेंगे, इसी प्रकार चलते रहेंगे। यात्रा का समय दोपहर के १२ बजे का था। इस समय के कुछ ही देर पहले डिप्टी सुपरिन्टेन्डेंट ने आकर बताया कि पुलिस ने धरना देनेवालो को चेतावनी देने के बाद, यह देखकर कि समझाने-बुझाने से कोई लाभ नही होगा, उन्हें गिरफ्तार कर लिया। आपको शायद यह तो पता होगा ही कि आजकल वर्धा जिले मे किसी प्रकार के जुलूस निकालने या प्रदर्शन करने का निषेध है।

धरना देनेवालो का अगुआ उत्तेजित हो जाने वाला धर्मान्ध व्यक्ति दिखाई पड़ा और उससे कुछ चिन्ता उत्पन्न हो गई। जब गिरफ्तार करने के बाद तलाशी ली गई तो उसके पास से एक लम्बा-सा छुरा मिला।

जिस पुलिस अफसर ने गिरफ्तार किया था उसने व्यंग्यात्मक लहजे मे कहा कि कम-से-कम तुम्हें तो शहीद बनने का सन्तोष रहेगा। फौरन उत्तर मिला कि न, यह तो तभी होगा जब कोई गाधीजी की हत्या करेगा। उक्त पुलिस अफसर ने प्रफुल्लतापूर्वक कहा कि यह मामला नेताओ के हाथों में क्यो नही छोड़ देते, वे ही आपस मे निपट लेंगे। उदाहरण के लिए सावरकर यहा आकर बातचीत कर लें। उत्तर मिला कि गाधीजी इतने बड़े सम्मान के योग्य नही है। इस काम के लिए तो एक जमादार काफी होगा।

बापू आश्रमवासियों के साथ गंभीर विचार-विनिमय कर रहे हैं। उन्होंने सलाह दी है कि यदि आश्रमवासी परीक्षा के अवसर पर आजमाइश में पूरे उतरने लायक संगठन करने मे असमर्थ हों तो आश्रम का अन्त कर देना चाहिए। बापू की राय है कि आश्रम की वर्तमान असफलता का कारण आश्रम में उनकी उपस्थिति है। इसलिए यदि आश्रम का पुनर्गठन करने के पक्ष मे निश्चय किया गया तो वह या तो सेवाग्राम वाले बिड़ला हाउस में चले जायँगे या वर्धा। उन्होंने अखिल भारतीय चरखा संघ में आमूल परिवर्तन करने के संबंध में जो सुझाव दिया

है सो आपने देखा ही होगा। मैंने उसे छपने भेज दिया है। उसे ध्यानपूर्वक पढ़िये। उसके बाद कुछ नई बातें हो गई हैं, इसलिए पहले से यह कहना कठिन है कि ऊंट किस करवट बैठेगा।

भवदीय
प्यारेलाल

इस पत्र से मैं इतना चिन्तित हुआ कि मैंने उत्तर मे एक्सप्रेस तार भेजा :

मेरी सलाह है कि सेवाग्राम मे पिकेटिंग करनेवालों के संबंध में समाचार-पत्रों को सही-सही खबर दी जाय। यह आवश्यक है कि जनता को जानकारी हो।

घनश्यामदास
१३-९-४४

किन्तु बापू ने ऐसा करने की इजाजत नहीं दी।

बिड़ला हाउस
माउण्ट प्लेजेण्ट रोड
बम्बई
१६ सितम्बर, १९४४

प्रिय घनश्यामदासजी,

आपका तार मिल गया था। बापू का कहना है कि इस कांड मे गहरा संबंध रखने वाली बातें अभी प्रकाशित नहीं की जा सकती हैं, क्योंकि अभी मामला कायदे-कानून की दृष्टि से विचाराधीन है।

मैं कायदे-कानून की बात जान-बूझकर कह रहा हूं, क्योंकि पुलिस के डिप्टी सुपरिटेन्डेंट का, जो मुझसे मिला था, विचार है कि धरना देनेवालों को बापू की सेवाग्राम वापसी तक रोक रखा जाय, जिससे उनकी वापसी पर उपद्रव को नये सिरे से शांत न करना पड़े।

बातचीत सहजरूप से चल रही है। शुरू-शुरू मे दिन मे दो बार मुलाकात होती थी, अब केवल एक बार सन्ध्या को होती है, क्योंकि प्रात काल का समय डा० दिनशा के लिए निकाल दिया गया है, जो कायदे आजम का उपचार करते हैं।

आपके दोनो तार मिल गये। मैंने रामेश्वरजी को सारी बातें समझा दी हैं।

वह फोन पर बात कर लेंगे।

भवदीय
प्यारेलाल

पुनश्च.—बापू ने भी आपके दोनों तार देख लिये हैं। उनका उत्तर तार द्वारा आपके पास भेजा जा रहा है, जो इस प्रकार है :

"मेरी एकान्त इच्छा है कि तुम मसूरी जाओ। मुझे तुम्हारी दरकार होगी तो वहां प्रवास की अवधि कम कर देना।"

प्यारेलाल ने ६ दिसम्बर, १६४४ को भविष्यवक्ता के-से लहजे में लिखा :

"बापू इस महीने के अन्त में यथापूर्व कामकाज शुरू कर देने की आशा करते हैं। हमको भी ऐसी ही आशा रखनी चाहिए, पर मेरी राय है कि भविष्य में उनके काम के क्षेत्र और स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन होना चाहिए। उन्हें अब इंजन-चालक के बजाय केवल झंडी दिखाने वाले का ही काम करना चाहिए। वह विचार दें और नैतिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव से मार्ग आलोकित करें। मेरा यह दृढ विश्वास है कि उनके पथप्रदर्शन की किसी भावी अवसर पर इतनी अधिक दरकार होगी कि हम आज उसकी कल्पना तक नहीं कर सकते। उनके हाथों अभी और भी महान कार्य होने वाले हैं। अपनी और दुनिया की खातिर उन्हें अपनी शक्ति को अच्छे-से-अच्छे ढंग से संचित करके रखना चाहिए।

राजाजी आज जा रहे हैं। मैं चाहता हूं कि उनके जैसा कोई आदमी बापू के पास रह सके। बापू अपनी तमाम अनासक्ति के बावजूद अत्यधिक मानव हैं और पुराने नेताओं में से किसी एक की निकट उपस्थिति का महत्त्व कम नहीं आंका जा सकता। बापू को जिस प्रकार के आध्यात्मिक एकान्त में रहना पड़ रहा है, वह भयकारक है। यह ठीक है कि उनके इस एकान्त को उनकी विशालता से अलग नहीं किया जा सकता। पर उसकी कठोरता को कम करने के लिए तो कुछ-न-कुछ किया ही जा सकता है।"

२५. भारत के मित्र

यह पुस्तक भारत के आधुनिक इतिहास-निर्माण-कार्य मे एक तुच्छ-सा योगदान मात्र है। इसके रचना-कार्य के दौरान उन कतिपय विदेशियो का उल्लेख करना, जो भारत की स्वतन्त्रता के लिए सचेष्ट रहे और उसमे योगदान करते रहे, उचित ही होगा। वैसे अमरीका मे और अन्य देशो मे भी सहानुभूति रखनेवालो की कमी नही थी, पर उनकी चेष्टाए उतनी फलदायिनी सिद्ध नही हुई। ब्रिटेन अधिक ठोस काम कर सका, जो कि स्वाभाविक ही था। यदि विश्वलोकमत विशाल रूप धारण कर सके तो उसकी प्रभावोत्पादकता असंदिग्ध है। किन्तु हस्तक्षेप के प्रयत्नों से ब्रिटिश प्रतिरोध की मात्रा मे वृद्धि ही हुई। इसका एक उदाहरण हमारे पक्ष मे अमरीकी राजदूत फिलिप्स का सदाशयतापूर्ण हस्तक्षेप है। प्रेसिडेंट रूजवेल्ट और श्री चर्चिल के बीच घनिष्ठता थी, पर इस हस्तक्षेप का एकमात्र परिणाम यही हुआ कि श्री चर्चिल का रुख और भी कड़ा होता दिखाई दिया।

हमारे अग्रेज मित्र दो श्रेणियो मे बटे हुए थे, एक श्रेणी ब्रिटेन मे थी और दूसरी भारत मे। ब्रिटेन-स्थित मित्रो की भी श्रेणियां थी। कुछ लोग मुख्यतः कर्त्तव्य की सम्मानास्पद भावना से प्रेरित थे और समझते थे कि उन्हे समय के साथ चलना चाहिए। कट्टर विचार वाले व्यक्तियो की बात दूसरी है, पर इसमे कोई सदेह नही कि मैकाले के जमाने से ही ब्रिटिश पार्लमेंट की यह घोषित नीति रही है, और कुल मिलाकर ब्रिटिश जनता का भी यही एकमात्र राष्ट्रीय कार्यक्रम बना रहा है कि भारतीयों को उत्तरोत्तर अपना शासन-कार्य स्वय चलाने की कला सीखनी चाहिए, और सो भी जल्दी-से-जल्दी। लार्ड हेलीफैक्स ने एक बार कहा था कि ब्रिटिश जनता का लक्ष्य इसके अलावा और कोई हो ही नही सकता। सर सेम्युअल होर और उनके अधिकाश अनुदार दलीय साथी इन्ही उद्देश्यों से प्रेरित थे। उन्होंने श्री एटली और विपक्षी दल की मदद से और अपने ही दल के अनेक सदस्यो की इच्छा के विरुद्ध, भारतीय शासन-विधान पार्लमेंट मे पास कराया।

किन्तु शासकवर्ग में ऐसे भी व्यक्ति थे, जो केवल अपने सम्मान और कर्त्तव्य की भावना से ही नही, बल्कि धार्मिक विश्वासो और मानवजाति के प्रति प्रेम की भावना से भी प्रेरित थे। उनकी इन भावनाओ ने उनके मन मे भारत के प्रति गहरी सहानुभूति जाग्रत कर दी थी और वे हर्षपूर्वक हमारी भावी स्वतन्त्रता की बाट जोह रहे थे। इनमे लार्ड हेलीफैक्स का प्रमुख स्थान था। वह अनुदार दलीय वाइसराय थे और बाद मे ब्रिटेन के मत्री रह चुके थे। दूसरे लार्ड लोदियन थे, जो नरम दल के सदस्य थे और मिली-जुली सरकारों में भारत के उपसचिव और

ब्रिटेन के मंत्री रह चुके थे। बापू और इन दोनों के बीच सच्ची मित्रता हो गई थी। वैसे बापू व्यक्तिगत सम्पर्क के लिए उत्सुक रहते थे, पर जब मैंने उन्हें चर्चिल के साथ अपनी मुलाकात का हाल लिखकर भेजा, जिसमें मेरी प्रेरणा पर चर्चिल की भारत-यात्रा सम्बन्धी तत्परता की चर्चा थी, तो बापू को विशेष उत्साह नहीं हुआ। बापू ने मुझे साफ बता दिया कि जहां तक उनका संबंध है, वह श्री चर्चिल को कोई निमन्त्रण या प्रोत्साहन नहीं देंगे। उन्होंने कहा कि लार्ड लोदियन की बात दूसरी है, वह उनके भारत-आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। लार्ड लोदियन का भारत-आगमन बहुत सफल रहा और उससे हम सबको बड़ी खुशी हुई। वह दिल्ली में और अन्यत्र मेरे अतिथि रहे। जब वह वर्धा गये तो उन्होंने बापू के अतिथि के रूप में सेवाग्राम आश्रम के सादे जीवन को अंगीकार किया।

कुछ अन्य मित्र थे, खास तौर पर क्वेकर लोग, जो अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण बापू के अहिंसा-व्रत के प्रति सहानुभूति रखते थे। भारत में उनकी श्रेणी में मिशनरियों को रखा जा सकता था। इन मिशनरियों में से अधिकांश ने, चाहे वे अंग्रेज रहे हों चाहे अमरीकी, हमारे साथ सहानुभूति दिखाई। केथोलिक मिशनरियों को शायद अपवादस्वरूप मानना होगा। वे लोग अधिकतर लैटिन देशों के थे। उनके निजी विचार चाहे जो रहे हों, उन्होंने अपना कोई राजनैतिक मत प्रदर्शित नहीं किया। मजदूर-दल के प्राय सभी संसदीय सदस्यों ने, और सभी श्रमजीवी संस्थाओं ने, सहानुभूति प्रदर्शित की। जब युद्ध समाप्त हो गया तो बहु-आलोचित साइमन-कमीशन के भूतपूर्व सदस्य श्री एटली को ब्रिटेन के वादों को पूरा करने का गौरव प्राप्त हुआ। सर्वसाधारण लोगों में पादरी सोरेनसन और श्री फेनर ब्राकवे के नाम उल्लेख योग्य हैं। उन्होंने कभी-कभी जानकारी के अभाव का परिचय अवश्य दिया, पर उसकी पूर्ति उन्होंने अपनी लगन से की। विरोध उन्हीं लोगों की ओर से होता था, जिनका अंग्रेजी प्रभुत्व में निहित स्वार्थ था। यह स्वाभाविक भी था। इंग्लैंड में बड़ी-बड़ी व्यापारिक संस्थाएं थीं, जिन्होंने औपनिवेशिक व्यापार के द्वारा खूब धन कमाया था। भारत सुई से लगाकर जहाजों तक हर किस्म के तैयार माल के लिए एक विस्तृत बाजार बना हुआ था और कभी-कभी तो इन पदार्थों के लिए कच्चा माल मुख्यतः भारत से ही जाता था। उदाहरण के लिए, रुई ब्रिटिश जहाजों में लदकर लकाशायर जाती थी और उसका ही कपड़ा बनकर भारत आता था, जिसकी खपत का यहां कोई अंत न था। फिर, ब्रिटेन के उच्च और मध्यम वर्ग के ऐसे असख्य परिवार थे, जिनके मुखियों ने भारत में सेना, सिविल सर्विस या और किसी हैसियत से नौकरी की थी। उन्होंने मौज की जिन्दगी गुजारी थी, कुछ रुपया भी बचाया था और अच्छी पेंशन लेकर चेल्टनहम, केम्बरले और बेडफोर्ड में जाकर डेरा जमाया था। ये लोग भारत को अपनी सन्तान के लिए एक मौरूसी जायदाद समझने लगे थे।

भारत में भी उनकी प्रतिमूर्त्तियां मौजूद थी। वैसे भारतीय सिविल सर्विस इग्लैंड से आये हुए आदेशों का वफादारी के साथ पालन करती थी और भारत में ससदीय सस्थाओ के विकास का प्रयत्न ईमानदारी के साथ करती थी, पर उसमें ऐसे लोगो का अभाव नही था, जो उन आदेशों के प्रति अपनी खालिस नापसंदगी को छिपाते नही थे। वे अपने को हमारे लिए आवश्यक फौलादी साचा मानते थे और उन्हें हमारी शासन करने की योग्यता पर विश्वास न था। इसका कारण यह था कि उन्हें हम पर हुकूमत करना अच्छा लगता था। भारतीय सेना और जल-सेना को इसका सम्मानास्पद अपवाद कहा जा सकता है। ये अपने को राजनीति से अलग रखे हुए थी। इन सेनाओं मे अफसरों और सैनिकों के बीच सच्चा भाई-चारा था, क्योंकि युद्ध मे दोनों को समान रूप से जीवन की बाजी लगानी पड़ती थी और वे सभी एक-दूसरे पर निर्भर करते थे।

व्यापारी हलकों मे निहित स्वार्थ भी उसी प्रणाली का अनुसरण करते थे। बैंक, बीमा और जहाजरानी के व्यवसायों पर अग्रेजो का अधिकार समझा जाता था। स्काटलैंड के कुछ खास परिवारो ने पटसन के व्यापार पर एकान्त अधिकार कर रखा था। बगाल के खेतों और हुगली मिल से लगातार डडी पहुंचने तक सारे व्यापार और धधे पर उन्ही का इजारा था। उन्होने बेशुमार धन कमाया था और वे यह आशा करते थे कि उनके बच्चे भी उन्ही के पद-चिह्नो का अनुसरण करेंगे। बडे शहरों में बडी-बडी मैनेजिंग एजेन्सी फर्मों का विकास हुआ और उनका जाल सारे भारत में छा गया। इस वर्ग के प्राय सभी लोग शक्तिशाली विरोधी थे। वे ब्रिटिश प्रभुत्व के पक्के हिमायती प्रतीत होते थे। हां, इतना अवश्य है कि जब ब्रिटिश सरकार ने लार्ड माउन्टबैटन को अपना अन्तिम वाइसराय बनाकर भारत भेजा और अपने भावी इरादो को साफ तौर से जाहिर कर दिया तो उन्होंने अपने विरोध का अन्त यथासम्भव मृदुलता के साथ कर दिया। उन्होंने जल्दी ही दिखा दिया कि वे अपने को नये साचे मे ढाल लेने की क्षमता रखते हैं।

पर इन सुविधा-भोगी क्षेत्रो मे भी सदा उल्लेखनीय अपवाद मौजूद रहे हैं। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड मे लार्ड डरबी को मैंने न्यायप्रिय, पक्षपातशून्य और बिलकुल दम्भरहित व्यक्ति पाया, हालाकि प्रादेशिक आधार पर लकाशायर उनसे अधिक पक्षपात की आशा कर सकता था। हम भारतवासियो को याद है कि काग्रेस की स्थापना अंग्रेजो ने की थी, जिनमें कलकत्ते के स्काट व्यापारी एण्ड्रयू यूल का स्थान प्रमुख था। भारतीय सिविल सर्विस के सर हैनरी काटन उन पुराने दिनो के मित्रो मे से थे। पत्रकार जगत् मे राबर्ट नाइट का नाम आता है, जिन्होंने १९वी शताब्दी में 'टाइम्स आफ इंडिया' की और बाद में 'स्टेट्समैन' की स्थापना की। ये भी भारत के पक्के हिमायती थे। इसमे सन्देह नही कि और भी अनेक ज्ञात और अज्ञात सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति मौजूद थे। जब बापू ने हमे उठाकर

खड़ा किया, हमारे स्वाभिमान मे वृद्धि की और हमे अपने पांवो पर खडे होना सिखाया तो इन मित्रो की सख्या मे खूब वृद्धि हुई। लायड जार्ज ने 'नरम हिन्दू' के विशेषण को जन्म दिया और इस नरमी ने कहावत का रूप धारण कर लिया। किन्तु जब अंग्रेजों ने देखा कि नरमी की भी एक सीमा होती है तो वे लोग हमारा अपेक्षाकृत अधिक सम्मान करने लगे।

२६. गतिरोध

गतिरोध का प्रारम्भ युद्ध के पहले हेमन्त मे कांग्रेसी मंत्रियो के त्यागपत्र से हुआ, पर इससे वाइसराय और राष्ट्र-नेता के सम्बन्ध तुरन्त ही नही टूट गये। दोनों में सद्भावनापूर्ण पत्रव्यवहार का सिलसिला जारी रहा, दोनो हृदय से ही कोई-न-कोई समझौता ढूढ निकालने के लिए सचेष्ट रहे और बीच-बीच में मिलते भी रहे। पर दोनों ओर सदेह की जड मजबूत होती गई। संदेह से सदेह पैदा होता है और किस पक्ष ने सदेह का प्रारम्भ किया, इसका निर्णय करना आसान काम नही है। उस सदेह का जन्म ब्रिटिश पार्लमेंट में अथवा भारत के बाहर के अग्रेजो मे नही, स्वय भारत में ही रहने वाले अग्रेजो मे हुआ और इसका इतिहास पुराना है। वे लोग अपनी सुविधा-भोगी स्थिति की रक्षा करने के लिए हमेशा चौकन्ने रहते थे। वे व्यापारी होने के नाते राजनीति से अपने को अलग रखने का दिखावा करते थे और व्यवस्थापिका सभाओं तक मे महत्त्वपूर्ण विवादग्रस्त विषयो पर कोई खास पक्ष लेने से बचते थे, पर हमारी सख्या का भूत उन्हें बराबर सताता रहता था। उनको कल्पना थी कि वे मुट्ठी-भर होते हुए भी जो इस अभागे जन-समुदाय के बीच चैन की बंसी बजा रहे हैं, सो किसी मोहिनीमंत्र के चमत्कार से ही। पर निर्धन जनता की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही थी, उससे यह साफ जाहिर था कि इन लाखो-करोड़ों का समूह अन्त में अरबों का समूह बन जायेगा। इसमे सदेह नही कि इस जन-समुदाय के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की समस्या को अंग्रेजो ने जन्म नही दिया था। अलबत्ता उन्होने शांति को अवश्य जन्म दिया और न यह समस्या अंग्रेजो के चले जाने से ही हल हो जाती। अवस्था विषम थी। जो गैर-सरकारी अग्रेज आबादी साधारणतया इतनी मस्त दिखाई देती थी (भारतवासी इस मस्ती मे हद दर्जे के छिछोरेपन के दर्शन करते थे, क्योकि अभी भारतीय सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों ने पदार्पण नही किया था), उसी मे १८५७ के बाद से अचानक त्रास की लहर दौड़ जाती थी। जहां कोई अफवाह उड़ी कि

बड़े दिन पर अथवा अमुक दिन गदर होने वाला है कि सबके रोंगटे खड़े हुए और उन्होने इस काल्पनिक भय से सशकित होना शुरू किया कि सबको सोते-सोते मौत के घाट उतार दिया जायगा। वे अपने-आपसे प्रश्न करते कि मोहिनी का चमत्कार कबतक बना रहेगा ?

दूसरी ओर हम भारतवासी, जिनमे बापू भी शामिल थे, आवश्यकता से अधिक शकाशील हो गये थे। अधिकाश भारतवासी अंग्रेजो को उन्ही लोगों द्वारा जानते थे, जिनके सम्पर्क मे आने का या जिनके साथ व्यवहार करने का उन्हें भारत मे अवसर मिलता था। ये लोग अपने देशवासियो के अच्छे-खासे और औसत दर्जे के नमूने होते थे और कुछ तो औसत से भी काफी ऊची कोटि के होते थे, पर होते थे आवश्यकता से अधिक सुविधा-भोगी। फलत उन्हें अपने बचाव की ही चिन्ता रहती थी। दुर्भाग्यवश अंग्रेजों के आने के पहले हमारे देश मे पारस्परिक सदेहो और षड्यत्रो का अभाव था, और देश निरकुश राजाओं द्वारा शासित अनेक टुकडियों मे बटा हुआ था। ऐसी अवस्था मे हममें से अधिकाश के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने नये अंग्रेज प्रभुओं को सदेह की दृष्टि से देखते और उनके इरादों को बुरा समझते। आम जनता उन्हें निरकुश समझती थी। उसने लोकतत्रीय सस्थाओ का नाम तक नही सुना था।

बापू स्वय मूलत इस नियम के आश्चर्यजनक अपवाद थे। बचपन से ही, और युवावस्था मे भी, उन्हें शक्कीपन छू तक नही गया था। वस्तुतः वह जन्म-जात सत्यवादी थे। बचपन के उस लुकाव-छिपाव की जड़ मे भी, जिसका उन्होने अपने आत्म-चरित मे इतनी सचाई के साथ उल्लेख किया है, उनका यह सरल विश्वास काम कर रहा था, कि जो साथी धूम्रपान और मद्यपान करने या नियम तोड़ने की सलाह देते हैं, सच ही कहते होंगे कि इसमे कोई हानि नही है। इन प्रभावो से उनकी रक्षा स्वय उन्ही की स्नेहशील प्रकृति ने की। वह मातृ-भक्त थे और उन्होने महसूस किया कि वह बुरे संसर्ग मे रहेंगे तो उनकी मा का दिल टूट जायगा।

यह युवक कानून का अध्ययन करने इग्लैंड गया, भारत वकालत करने लौटा और वकील की हैसियत मे ही दक्षिण अफ्रीका गया पर बराबर असाधारणतया स्पष्टवादी, निर्दोष और शकारहित बना रहा। वास्तव मे गाधीजी उस समय अंग्रेज-भक्त थे। उन्होने अंग्रेजो को उन्ही के देश मे अच्छी निगाह से देखना सीखा था और उनका विश्वास था कि उनके सम्पर्क से अन्त मे भारत मे भी वैसी ही लोकतन्त्रीय सस्थाओ का विस्तार हो सकेगा। इसलिए जब वह बोअर युद्ध के समय दक्षिण अफ्रीका मे थे तो उनकी सहानुभूति किस पक्ष के साथ है, इस बारे मे कभी कोई शक पैदा नही हुआ और हम यह मानकर चल सकते हैं कि उस दूरवर्तीकाल मे भी उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें बता दिया होगा कि दक्षिण अफ्रीका

मे उनके मुख्य विरोधी अंग्रेज नही, बल्कि 'अफ्रीकान्डर' कहलाने वाले डच प्रवासी सिद्ध होंगे, ठीक जिस प्रकार बाद मे ब्रिटेन में उनका सबसे कड़ा विरोध उपनिवेश प्रवासी अंग्रेजो ने किया। किन्तु समय पर आशा पूरी न होने से दिल टूट जाता है। प्रत्येक अवसर पर अंग्रेज-प्रवासियों ने (कुछ सम्मानास्पद अपवाद तो हमेशा ही रहे) स्वशासन की दिशा मे भारत की प्रगति का विरोध किया और वे सुधार की गति को मंद बनाने मे इतने सफल हुए कि अन्त मे बापू को पूरा संदेह होने लगा। उन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध मे ब्रिटेन का समर्थन करना जारी रखा, पर फिर एक ऐसा मोड़ आया कि उसके बाद से संशयशीलता ने एक टेव का रूप धारण कर लिया। इस कायापलट का श्रेय रौलट कानून को है। यह कायापलट जिस चीज को लेकर हुआ उसे ध्यान मे रखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा मानो बापू ने भारतीय राष्ट्रीयता की दीर्घकालीन वकालत के दौरान मे अंग्रेजो की उन विशेषताओं को भुला दिया था, जिनसे वह काफी परिचित हो चुके थे। सरकार ने रौलट कानून के द्वारा सम्भावित संकटकालीन अवस्था का सामना करने के लिए ही विशेषाधिकार अपने हाथ मे लिये थे। उनका एक बार भी उपयोग नही किया गया और आज स्वतन्त्र भारत की सरकार उन सब अधिकारो को अपने हाथों में रखना आवश्यक समझती है और उसे साम्यवादियो के खिलाफ उनका उपयोग भी करना पड़ा है।

इस समय वाइसराय के साथ अपनी बातचीत के दौरान बापू ने औपनिवेशिक स्वराज्य शब्द पर घोर आपत्ति की। आगे के वर्णन मे उनके विचारों पर प्रकाश पड़ेगा। १२ जनवरी, १९४० को मैंने महादेवभाई को लिखा

"मैं नही जानता कि हम औपनिवेशिक दर्जे (डोमिनियम स्टेट्स) और स्वतन्त्रता मे अनावश्यक भेद क्यों पैदा करना चाहते हैं। हम ब्रिटेन से सम्बन्ध तोड़ना भी चाहेंगे तो वेस्टमिन्स्टर विधान के नमूने का औपनिवेशिक दर्जा प्राप्त करने के बाद भी ऐसा कर सकते हैं। हम ब्रिटेन से क्यो कहें कि वह हमसे नाता तोड़ दे? अगर हम नाता तोड़ना चाहेंगे तो, जब हमें ऐसा करने की आजादी मिल जायगी उस समय, उसकी जिम्मेदारी हम खुद अपने ऊपर ले सकते हैं। यदि हम वैसी अवस्था मे सम्बन्ध तोड़ेंगे तो मतदाताओं की पूर्ण सहमति के साथ ही ऐसा करेंगे। राष्ट्रमंडल से हमें अलग करने के लिए ब्रिटेन से कहने का यह अर्थ होता है कि हम ब्रिटेन से कुछ ऐसा काम करने को कहते हैं जिसे करने का अधिकार हमारे मतदाताओ को होना चाहिए। वास्तव मे ब्रिटेन ठीक ही यह कह सकता है, "हम जिम्मेदारी क्यो लें? जब आपको औपनिवेशिक दर्जा मिल जाय तो आप चाहें तो सम्बन्ध तोड़ सकते हैं।" और मेरी समझ मे उनका ऐसा करना बिलकुल तर्कसंगत होगा।"

और १४ तारीख को बापू ने वाइसराय को लिखा :

"मैंने आपका बम्बई का भाषण एक से अधिक बार पढ़ा। पर यह पत्र मैं आपके सामने अपनी कठिनाइयां रखने के लिए लिख रहा हूं। वेस्टमिन्स्टर विधान के अर्थ में औपनिवेशिक दर्जे और स्वतन्त्रता का पर्यायवाची माना जाता है। यदि यही बात है तो आप ऐसे वाक्य का प्रयोग क्यों न करें, जो भारत की स्थिति के अनुरूप हो ?"

१५ तारीख को महादेवभाई ने मुझे लिखा :

"आपने इंग्लैंड के लिए भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करना सम्भव न होने की जो बात कही है एवं और जो कुछ कहा है, उसे मैं तो समझ गया, पर बापू का विचार भिन्न है। परन्तु यदि सबकुछ ठीक-ठीक रहे और केवल इसी बात पर मामला अटकता हो तो बापू पुनर्विचार करेंगे, हालांकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि वाइसराय उनके दृष्टिकोण को और किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। वास्तव में बापू का कहना तो यह है कि यदि वह (अर्थात् बापू) इंग्लैंड में हों तो वह इंग्लैंड को औपनिवेशिक दर्जे के बजाय स्वतन्त्रता शब्द का प्रयोग करने को आसानी से राजी कर सकेंगे।"

कभी-कभी बापू के बदलते हुए मानस से महादेवभाई के धीरज की कड़ी परीक्षा हो जाती थी। यदाकदा वह अपना धैर्य खो बैठते थे, जैसा कि उनकी इस उक्ति से पता चलता है कि सेवाग्राम तो एक 'पागलखाना' बन गया है।

सेगांव, मध्य प्रदेश
२७-१-४०

प्रिय घनश्यामदासजी,

बापू भी विचित्र हैं। उनका विश्वास है कि दिल्ली उन्हें एक या दो दिन से ज्यादा नहीं ठहरना पड़ेगा—यह हुआ निराशावाद। परन्तु साथ ही वह यह भी कहते हैं कि यदि औरों को भी बुलाया गया तो ज्यादा दिन भी ठहरना हो सकता है, और यह आशावाद है। फिर वह कहते हैं कि यदि १० ता० तक ठहरना पड़ा तो १० ता० को हरिजन सेवक संघ की बैठक बुलाई जा सकती है। ज्यादा अच्छा होता कि बैठक के लिए ७ या ८ ता० की घोषणा कर दी जाती। बापू का मन तो यहां अस्पताल में रमा हुआ है। गुजराती 'हरिजनबन्धु' में बापू का एक लेख छपा है 'गुजरातियों से।' उसे अवश्य पढ़ियेगा। सेगांव का नाम बदल कर सेवा-

ग्राम रखा जा रहा है। सरकारी कागजों में यह नाम दर्ज कराने के लिए अर्जी दे दी गई है। नाम तो बदल ही जायगा, पर अच्छा होता कि उसका नाम 'पागलखाना' रख दिया जाता।

आपका
महादेव

बापू ने उसी दिन मुझे एक तार भेजा, जिससे उनकी अस्थिरता प्रकट होती थी। मैं भी आश्चर्य करता रह गया कि मुझे यहा रहना है, वहां जाना है, या क्या करना है :

"पूर्व घोषणा के अनुसार हरिजन सेवक सघ की बैठक यहा होगी या ६ ता० से वहा होगी। विशिष्ट कार्य पूरा होने के बाद मेरे वहा ठहरने की आशा मत करना। या फिर मलिकन्दा के बाद वर्धा के लिए कोई तारीख निश्चित कर लेना। बापू"

उन दिनों शाति कराने वालो का मार्ग काटो से ढका हुआ था। महादेवभाई के एक और पत्र से पता चलता है कि बापू को अपने कुछ मित्रो का लिहाज न होता तो वह समझौते की दिशा मे ज्यादा आगे बढ पाते :

"आपको यह जानकर दिलचस्पी होगी कि जिस समय आपने फोन पर मुझे जफरुल्ला के साथ हुई अपनी बातचीत का हाल सुनाया था, उसी समय मैंने जिन्ना पर एक लेख पूरा करके बापू के सामने रखा था। मैंने इस लेख का आपसे जिक्र नही किया, क्योंकि मुझे यह भरोसा नही था कि बापू उसे छापने की स्वीकृति देंगे। पर बापू की स्वीकृति मिल गई और वह इस सप्ताह के 'हरिजन' में छपने भी चला गया। एक और लेख है, जिसे आप पसन्द करेंगे। हां, उसका सर्वोत्कृष्ट भाग बापू ने काट दिया कि कही जवाहर को बुरा न लगे। मैंने लेख मे आयरलैंड के इतिहास का एक पन्ना दिया था, और वैधानिक प्रश्न-सम्बन्धी तथ्यो का सार देने के बाद ग्रिफिथ का यह उद्धरण दिया था :

'हमने आयरिश प्रजातन्त्र की स्थापना की शपथ ली है, पर जैसा कि प्रसिडेन्ट डि वेलेरा ने कहा है, इस शपथ का मतलब यह है कि हमने आयरलैंड का यथाशक्ति अधिक-से-अधिक हित करने का बन्धन स्वीकार किया है। हम भी उस शपथ से यही समझते हैं। हमने आयरलैंड का अपनी शक्ति-भर अधिक-से-अधिक हित किया है। यदि आयरलैंड के लोग कहे कि हमे और तो सबकुछ मिल गया, केवल प्रजातन्त्र का नाम नहीं मिला और हम उसके लिए लड़ेंगे, तो मैं उनसे

कहूंगा कि तुम मूर्ख हो।'

"मैंने इस वाक्य को इस टीका के साथ उद्धृत किया था.

'ये शब्द हमारे कुछ अति उत्साही व्यक्तियों के लिए भी थोड़ी चेतावनी देने वाले हैं।' बापू ने इसको काट दिया। मैंने बापू से पूछा, 'क्या आप ग्रिफिथ से सहमत नहीं हैं ?' उन्होंने कहा, 'हां, किन्तु यह कहना उचित नहीं होगा।"

इसदफा वाइसराय के साथ बापू की बातचीत का कोई नतीजा नहीं निकला। सर जगदीशप्रसाद ने मुझे बताया कि लार्ड लिनलियगो ने बापू को अनुकूल नहीं पाया।"

८ फरवरी, १९४०

प्रिय महादेवभाई,

बापू के रवाना होने के बाद मुझे एक विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ कि बापू वाइसराय के मन पर मित्रतापूर्ण असर नहीं छोड़ गये। धारणा थी कि बापू बहुत कड़े समझौते के लिए अनिच्छुक और प्रतिकूल रहे। यह आशा की गई थी कि बापू एक-एक करके ठोस बातों को लेकर समझौते की कोशिश करेंगे। वाइसराय ने सेना और नरेशों की चर्चा चलाने की कोशिश की। वह चाहते थे कि बापू इन लोगों से मिलें और वाइसराय की मदद से समस्याओं को हल करें। वाइसराय ने अनुकूल प्रतिक्रिया की आशा की थी, और उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि बापू ने, जो खाई नजर आती है उसे पाटने की कोशिश नहीं की।

इससे यही स्वाभाविक निष्कर्ष निकाला गया कि बापू वामपंथियों से प्रभावित हैं और 'लड़ाई' के लिए उतारू हैं। वाइसराय ने यह भी आशा की थी कि यदि बापू से अनुरोध किया जायगा तो वह और अधिक मुलाकातों के लिए ठहर जायंगे और बातचीत को खत्म करने के मामले में जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे। चूंकि उन्होंने बेहद जल्दी की, इसलिए सरकारी पक्ष की धारणा है कि बापू शिकायत लेकर लौटे हैं और इसका नतीजा सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही होगा।

बापू की यह धारणा ठीक नहीं थी कि वाइसराय उनकी स्थिति को समझते हैं और दोनों के बीच कोई गलतफहमी नहीं है। वाइसराय को बापू के रवैये से सचमुच निराशा हुई है। देवदास और मैं, दोनों वाइसराय की भावना से सहमत हैं क्योंकि हमारी भी वही धारणा है कि बापू का रुख अनुकूल और सहायतापूर्ण नहीं था।

परन्तु जब मैंने सर जगदीश से यह बात सुनी तो उनसे कहा कि वह वाइस-

राय और लेथवेट के दिल से यह खयाल दूर करने की कोशिश करें कि बापू कोई शिकायत या निराशा लेकर लौटे है और सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होने वाला है। सर जगदीश ने लेथवेट को सूचित किया और लेथवेट ने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की। मैं लेथवेट से आज सुबह मिला और अब स्थिति स्पष्ट हो गई है।

मैंने लेथवेट को आमतौर पर बताया कि बापू के साथ मेरी क्या बात हुई है और कहा कि बापू का लक्ष्य कोई राजनैतिक समझौते का नही है। वह तो नैतिक परिवर्तन चाहते हैं। कोरे राजनैतिक समझौते की वही दुर्गत हो सकती है, जो राजकोट-निर्णय की हुई।

मेरी बातचीत के बाद लेथवेट की प्रसन्नता लौट आई और उन्होने कहा कि जो पृष्ठभूमि मैंने उन्हें बताई, उससे वह सारी स्थिति को समझ गये हैं और उनके दिल मे निराशा का भाव बाकी नही रह गया है। उन्होने मुझसे पूछा कि क्या मेरे पास कोई रचनात्मक सुझाव है। मुझे स्वीकार करना पड़ा कि नही है। शायद तुम मुझे बता सको कि क्या कोई सुझाव दिया जा सकता है। सामान्य विचार तो ठीक हैं, पर तुम्हें उन्हें व्यावहारिक रूप देना है, और मेरी राय मे समय आ गया है, या रामगढ़ कांग्रेस के बाद आ जायगा, जब हमें अपने विचारो को ठोस रूप देने की चेष्टा करनी होगी। यदि हम सचमुच निकट भविष्य मे समझौता चाहते हैं तो हमे प्रश्न के दोनों पहलुओं पर विचार करना होगा। नैतिक परिवर्तन भी तभी संभव होगा, जब हम विपक्षी की कठिनाइयों को समझेंगे और उसका हाथ बंटाने की चेष्टा करेंगे।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

पर बापू की कलम से लिखे गए एक लेख ने मेरी शंकाओं का समाधान कर दिया और मैंने जो कुछ लिखा था, उसे अगले दिन वापस ले लिया :

प्रिय महादेवभाई,

मुझे 'हरिजन सेवक' का वह लेख पहले ही मिल गया, जो तुमने मुझे सीधे भेजा था। बापू एक नाजुक स्थिति को जिस खूबी के साथ सम्भाल लेते हैं, देखकर चकित रह जाना पडता है। लेख सचमुच अद्भुत है। मैंने अपने कल के पत्र में बापू की आलोचना करके गलती की कि उन्होंने विपक्षी की कठिनाई को ध्यान में नही रखा। लेख से जाहिर है कि उन्होंने विपक्षी की कठिनाई का लिहाज किया है। लोग कभी-कभी यह भूल जाते हैं कि बापू किस नैतिक स्तर पर रहते हुए

काम करते हैं। स्वतन्त्रता की लगन और अपनी कमजोरियों के ज्ञान ने हमारी दृष्टि को साधनों की अपेक्षा साध्य पर अधिक केन्द्रित कर रखा है, पर बापू के लिए साधन और साध्य दोनों एक समान हैं। मैं यह बात हृदयंगम करने की चेष्टा करूंगा कि यदि हम साधनों की चिन्ता रखेंगे तो साध्य अपने-आप सिद्ध हो जायगा। मुझे तो व्यावहारिक दृष्टि से भी इस बात में संशय की गुंजाइश नहीं दिखाई देती है कि ब्रिटेन का वास्तविक हृदय परिवर्तन हुए बिना औपनिवेशिक दर्जे वाला नुस्खा ग्वायर-निर्णय जैसा ही सिद्ध हो सकता है। मेरा खयाल है कि परिवर्तन के लिए हृदय प्रस्तुत हो चुका है। परमात्मा करे, भारत और इंग्लैंड सहृदयता और मित्रता के निर्माण-कार्य में एक-दूसरे से होड़ लेने लगें। इसलिए धीरज से काम लेने और प्रतीक्षा करने में ही भलाई है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

७ मार्च को मैंने कलकत्ते से एक पत्र लिखा, जिसमें अपने मन की बात कह डाली :

प्रिय महादेवभाई,

तुमने बापू के लेख की जो अग्रिम प्रति बजरंग को भेजी थी, उसे मैंने पढ़ लिया है। बापू ने इस लेख में अपने विचारों को आवश्यकता से भी अधिक स्पष्टता के साथ खोलकर रख दिया है, अतः उनके मन की गति-विधि को कोई भी बड़े आकार में देख सकता है। मैं इस लेख को इसलिए भी पसन्द करता हूं कि वह सविनय अवज्ञा की संभावना को सर्वथा समाप्त कर देता है। तुम जानते ही हो कि मुझे सविनय अवज्ञा से अरुचि है। उसने अहिंसा के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन दिया है और निर्माण के नाम पर अनेक पदार्थ नष्ट कर डाले हैं। हां, उसके द्वारा देश में आश्चर्यजनक जागृति अवश्य हुई है, पर यदि यह मनोवृत्ति बनी रही तो किसी भी सरकार का, हमारी अपनी सरकार का भी, चलना असंभव हो जायगा। सत्याग्रही रंगरूटों की कमी नहीं है। वे हमारी ही सरकार के खिलाफ उठ खड़े होंगे और आतंकवाद और भ्रष्टाचार के द्वारा सुव्यवस्थित शासन-कार्य असम्भव बना देंगे। मैं मानता हूं कि अवज्ञा आन्दोलन का डंक उसी समय टूट जाता है जब अहिंसा को उसका आधार मान लिया जाता है। पर क्या वास्तव में वह अहिंसात्मक रह पाता है? बापू मन, वचन और कर्म से अहिंसा पर जोर देते हैं। पर मुझे खेद के साथ लिखना पड़ता है कि बापू के निकटतम साथी भी इस भावना को नहीं अपना सके हैं, और कार्य विचार का प्रतिबिम्ब-मात्र है ही। इसीलिए

सविनय अवज्ञा की चर्चा चलते ही मेरा माथा ठनकने लगता है। अशतः इन्ही विचारो के कारण मैंने इस लेख को पसन्द किया। साथ ही, मुझे बापू के लेख का अन्तिम पैरा भाया। मैं मानता हूं कि काग्रेस के साथ बापू की पटरी नही बैठ सकती। उनका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है, क्योंकि लोग जानते हैं कि वही देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सफल नेतृत्व कर सकते हैं। पर एक ओर लोग बापू की मदद चाहते हैं और दूसरी ओर उनके कार्यक्रम को कभी पूरा नही करते। उनमें ऐसा करने की इच्छा तक का अभाव प्रतीत होता है। शायद सच्ची बात तो यह है कि अहिंसा मे किसी की आस्था नही है। राजनैतिक हलको में हर कोई अहिंसात्मक संघर्ष नही, उथल-पुथल चाहता है। मैं अपने बारे में कह सकता हू कि अहिंसा में मेरी बौद्धिक आस्था है। पर इससे तो कुछ अधिक सहायता नही मिली। बापू एक मध्यस्थ की हैसियत से अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है। अपने-आपको काग्रेस के साथ मिलाकर उन्होने अपने और वामपंथियों के बीच का अन्तर मिटा दिया है। अहिंसा और हिंसा एक प्रकार से पर्यायवाची बन गये हैं। मेरे खयाल से यह अत्यन्त विषम स्थिति है और कभी-कभी तो मुझे इस पर बड़ी ऊब पैदा होती है।

चाहो तो मेरा यह पत्र बापू को दिखा सकते हो। यदि बापू अकेले ही रहें तो उनकी अहिंसा की सफलता की संभावना अधिक रहेगी। कैसे मजे की बात है कि काग्रेस अधिकारी न होते हुए भी अहिंसा व्रत का प्रतिनिधित्व करने की चेष्टा करती है!

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

उत्तर में महादेवभाई ने लिखा :

सेगाव, वर्धा
मध्य प्रदेश
११-३-४०

प्रिय घनश्यामदासजी,

आपका लम्बा पत्र मिला। आपने जो कुछ लिखा है, उसको मैं समझता हूं। मैंने आपका पत्र बापू के सामने रखा था। उन्होने पढ़ा, पर मैं उनकी प्रतिक्रिया नही जान सका, क्योंकि उनका मौन था। आप सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में जो कुछ कहते हैं, उसे यदि सच मान लिया जाय—और इस बारे में आपके विचार आर्थर मूर के विचारों से बहुत-कुछ मिलते हैं—तो क्या आप यह कहना चाहते हैं

कि सविनय अवज्ञा से, चाहे वह कितनी ही अपर्याप्त क्यो न हो, हिंसा ज्यादा अच्छी रहेगी ? मेरा विचार भिन्न है। मानव प्रकृति की सारी कमजोरियो के बावजूद, उसके पास कोई ऐसा माध्यम तो होना ही चाहिए, जिसके द्वारा वह अपना विरोध प्रकट कर सके, और यदि आप पद-दलित मानवता को सविनय अवज्ञा के अस्त्र से भी वंचित कर देते है तो आप उसका सर्वस्व छीन लेते है और उसे खालिस कायरता की शरण मे भेज देते हैं। मैं काफी कठोर भाषा का व्यवहार कर रहा हू, पर यही मेरा आन्तरिक विश्वास है। मेरा तो विश्वास है कि हम नेकनीयती के साथ की गई भूल से सत्य की ओर, एव सत्य से सत्य की ओर अग्रसर होगे। मैंने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के काग्रेस अंक के लिए कल एक लम्बा लेख लिखा है। देवदास या आप उसे पसन्द करेंगे या नही, सो तो मैं नहीं जानता, पर यदि देवदास उसे प्रकाशित करें तो मैं चाहता हू कि आप उसे पढ़ें अवश्य।

बापू आपके पत्र के सम्बन्ध मे कुछ कहेंगे तो मैं आपको लिख दूगा। क्या आप बजरंगलालजी को यह बताने की कृपा करेंगे कि एन्ड्रयूज के बारे मे उन्होंने जो विस्तृत पत्र भेजा है, उसके लिए मैं उनका बडा आभारी हू ? मैंने वह पत्र बापू को दिखाया था और इस बारे में बापू के विचार आपको कल लिखूगा।

सप्रेम,

आपका ही
महादेव

कलकत्ता, १५ मार्च, १९४०

प्रिय महादेवभाई,

तुमने मेरे पत्र का यह अर्थ क्यो लगाया कि उसमे सविनय अवज्ञा से, चाहे वह कितनी ही अपर्याप्त क्यो न हो, हिंसा को अच्छा बताया गया है ? मैं तुमसे इस बारे मे सहमत हू कि मानव प्रकृति के पास अपना विरोध प्रकट करने के लिए कोई माध्यम होना चाहिए और इसके लिए सविनय अवज्ञा, चाहे वह थोड़ी अविनयपूर्ण ही हो, तो भी हिंसा से अच्छी है। अपने विशुद्धरूप मे सत्याग्रह निस्सदेह ही सम्मानपूर्ण समझौते के मार्गों की पूरी तरह खोज किये बिना हमारे विरोध की इच्छा को व्यक्त करता है। कभी-कभी मैं अनुभव करता हू कि हम लोग अपने कार्यक्रम के सघर्ष वाले अश पर जरूरत से ज्यादा जोर देते हैं और समझा-बुझाकर समझौते पर पहुचने के मार्ग की उपेक्षा करते हैं। हमने अपनी मांगो को इतना बढ़ा-चढा लिया है कि अग्रेजो के लिए किसी सम्मानपूर्ण समझौते पर पहुच सकना असभव हो गया है। बस, मेरी शिकायत यही है। काग्रेस कार्य-समिति मे भी ऐसे लोग हैं, जो मेरी ही तरह अनुभव करते हैं, बापू की उप-स्थिति में मैं, और शायद और भी कई लोग, एक प्रकार के आशावादी आत्म-

विश्वास की अनुभूति करते हैं। लेकिन मैं अपने सम्बन्ध में कह सकता हू कि जब मैं उनके सामने नहीं होता हू और स्थिति पर ठंडे दिल से विचार करने लगता हूं तो मेरा वह आत्मविश्वास गायब हो जाता है। मैं सोचता हूं कि यह तो हृदय के वशीभूत होना और मस्तिष्क की उपेक्षा करना हुआ, पर यह ईश्वर ही जानता होगा कि दोनो मे से कौन अधिक मूर्ख है : हृदय या मस्तिष्क। पर हमारी वर्तमान नीति के औचित्य के बारे मे शंकाए मेरा पीछा नहीं छोडती। हम एक नाजुक समय मे से गुजर रहे है, इसीलिए मैंने सोचा कि मुझे अपनी शंकाए बापू के सामने रख देनी चाहिए। अतएव मैंने अपने विचारो को लिख डाला और एक प्रति तुम्हारे पास भेज दी—अब उसका जो भी मूल्य हो। जब मैं अपने हृदय से परामर्श करता हूं तो अनुभूति होती है कि अन्त मे बापू की ही जीत होगी, क्योंकि बापू गलतियां करेंगे तो भी उतनी नही, जितनी और लोग। भगवान उनका पथ-प्रदर्शन करे। पर यह तो हुई श्रद्धा की बात। जब मैं अपने मस्तिष्क से परामर्श करता हू और थोडा 'बुद्धि-सगत' विचार करता हूं तो मैं इसके अलावा और किसी निष्कर्ष पर नही पहुंचता कि हमने ताश के पत्ते ठीक तरह से नहीं चले।

किन्तु तुम मुझे लेकर अपना समय व्यर्थ क्यो खोते हो। और यदि ऐसा करना ही हो तो केवल मुझे शिक्षा देने के लिए करो। पर मैं अच्छा-बुरा जो भी लिखू, उसे कम-से-कम बापू को अवश्य दिखा दिया करो। बापू ने मुझसे अनेक बार कहा है, "अपना प्रभाव डालते रहा करो, प्रकट मे सफलता मिलती दिखाई न दे तो भी सम्भव है, अचेतनरूप मे प्रभाव पड जाय।" इसीलिए मैं अपने विचारो को तुम्हारे पास भेजता रहता हूं। इससे मुझे कुछ मानसिक शान्ति मिलती है।

सस्नेह,

तुम्हारा ही
घनश्यामदास

प्रिय घनश्यामदास,

मैंने तुम्हारा पत्र और नोट दोनो पढ लिये। मैं भी तुम्हारी वेदना का भागीदार हू। मेरा यह दृढ विश्वास है कि यही वह समय है जब हम तिल-मात्र से भी कम पर सन्तुष्ट नही हो सकते। मुझे तो अपनी योजना मे कोई दोष दिखाई नही देता है। इसके विपरीत इसमें उनका भी भला है। वे हमारी मांग को स्वीकार नहीं करते, इससे यही जाहिर होता है कि वे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता नहीं चाहते। राजाओं का रुख तो एकदम असहनीय रहा है। तुमसे किसने कहा कि मैं उनसे नहीं मिलना चाहता? उनके सकेत भर की देर है, मैं उनसे अवश्य मिलूगा। असली बात तो यह है कि वे खुद ही मुझसे मिलना नहीं चाहते।

बापू के आशीर्वाद

पुनश्च'—तुम चाहो तो मैं सेवा सदन के लिए कलकत्ता आने को तैयार हूं।

सेगांव, वर्धा
१७-३-४०

प्रिय घनश्यामदासजी,

मैंने आपके सारे पत्र बापू को पढवा दिये। मैंने यह कभी नहीं समझा कि आप केवल विचार-विनिमय की खातिर ही लम्बे पत्र लिखते हैं। मैंने तो हमेशा यही माना है कि मुझे पत्र लिखकर आप अप्रत्यक्ष रूप से कुछ बातें बापू तक पहुंचा सकते हैं। यही कारण है कि मैं आपके सब पत्र बापू के सामने रख देता हू।

मैंने यह कभी नही समझा कि आप अधूरे असहयोग से हिंसा को अच्छा समझते हैं। मैंने तो यह लिखा था कि आपकी स्थिति मूर के दृष्टिकोण से बहुत कुछ मेल खाती है और जहां तक मूर का सम्बन्ध है, वह हिंसा को पसन्द करते हैं। असल में पीडित मानवता को एक आदर्श माध्यम की आवश्यकता है। बापू ने इस माध्यम को पसन्द किया है, और वह उसे सहज अवस्थाओ के द्वारा पूर्ण बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। या तो वह इस प्रयास मे समाप्त हो जायेंगे या यह माध्यम पूर्ण बनकर ही रहेगा।

बापू ने अपने जीवन मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम उठाने का निश्चय किया है। यह पत्र मिलने के पहले ही शायद आपको उसका पता चल जायगा। आप बापू को कलकत्ता नही बुला रहे हों तो मैं आपको विस्तृत विवरण देने एक दिन के लिए कलकत्ता आ सकता हूं।

आपका
महादेव

२७. राजकोट-प्रकरण

राजकोट वाला प्रकरण भारत के लिए इतना सुपरिचित है कि उसका वर्णन करने की चेष्टा करना अनावश्यक होगा। बापू का इतिहास-प्रसिद्ध अनशन, लार्ड लिनलिथगो का सहानुभूति पूर्ण रुख, उनके द्वारा इस मामले का निर्णय भारत के प्रधान न्यायाधीश सर मारिस ग्वायर के सुपुर्द किया जाना, और प्रधान न्यायाधीश के द्वारा बापू के पक्ष मे निर्णय किया जाना—ये सब बातें भूली नही हैं। न ऐसी कहानी सुनने मे आनन्द ही आयगा, जिसमे सरदार पटेल, बापू,

वास्तव में हम सभी राजकोट के ठाकुर साहब-जैसे कमजोर और अज्ञानी नरेश और उनके वीरावाला जैसे कौशलप्रिय, षड्यन्त्री दीवान का पक्ष लेने और ठाकुर की मंत्रणा परिषद् के प्रधान सर पैट्रिक-जैसे निर्दोष व्यक्ति को तथा वहां के पोलिटिकल एजेन्ट श्री गिब्सन को शरारत के पुतले समझने के चकमे मे आ गए थे। यह भूल साधारण नही थी। इसका पता सरदार पटेल को तब लगा जब वीरावाला को दुरंगी चाल चलते पकड़ा गया। बापू ने इसकी चर्चा 'हरिजन' मे भी की थी। इस भूल का बापू के परिवार के इतिहास के साथ बिलकुल सम्बन्ध ही न हो, शायद ऐसी बात न थी। उनके पुरखे पीढियों से काठियावाड़ (अब सौराष्ट्र) की रियासतों के दीवान होते आए थे और उनके प्रति उन्हें ममता-सी थी। वास्तव मे बापू तो साधारणतया वहा के नरेशों के प्रति बडा आदर-भाव दिखाते थे।

किन्तु एक आनन्ददायक पहलू भी था और मैं उसी का जिक्र करना चाहता हूं। जब बापू और गिब्सन के बीच संपर्क स्थापित हुआ तो बापू को यह देखकर शायद आश्चर्य हुआ होगा कि पोलिटिकल एजेन्ट कोई सींग, खुर और पूछवाला जीव न होकर एक मौजी भावना वाला साधारण मनुष्य है।

एक समय वातावरण में कितनी उष्णता आ गई थी, यह मेरे मकान पर वाइसराय के सेक्रेटरी श्री लेथवेट के साथ हुई मुलाकात के महादेवभाई द्वारा प्रस्तुत विवरण से प्रकट होगा .

५ फरवरी, १९३९

श्री लेथवेट ५ बजे शाम चाय पर आए। करीब दो घटे ठहरे। चर्चा चाय, फूलों, गायों और पशु-प्रदर्शनियों से आरम्भ हुई (बीच मे हमारे वाइसराय भवन जाने का भी जिक्र आया और श्री लेथवेट ने बापू के खिल-खिलाकर हंसने का खास तौर से जिक्र किया) और बा की गिरफ्तारी के प्रसंग पर आ गई।

'वे सब तो बडे आराम से होंगी ?'' श्री लेथवेट ने कहा। "हा", मैंने कहा, "पर उन्हे-यह सोचकर बड़ी परेशानी हो रही होगी कि उन दूसरो की क्या अवस्था होगी, जिनके साथ दूसरे ढंग का व्यवहार किया जा रहा है ?" और मैंने एक परेशान करने वाली खबर सुनाई, जो मुझे आज सुबह ही मिली थी। आठ स्वयंसेवकों को राज्य के भीतरी भाग मे ले जाया गया, मारा-पीटा गया और उनसे माफीनामे पर हस्ताक्षर करने को कहा गया। जब उन्होंने ऐसा करने से इन्कार किया तो उन पर और मार पड़ी और उनमें से एक को कमरे में बद कर दिया गया, जहा उसे थोड़ी-थोड़ी देर के बाद बिजली छुआकर कई घंटों तक सताया गया। मैंने कहा, "मैं मानता हूं कि सारी बातं पर विश्वास करना कठिन है, इसमे कुछ अतिरंजन भी हो सकता है, पर सारा-का-सारा किस्सा ही कैसे गढ़ा

जा सकता है ?" मैंने बात नाप-तोलकर कही, सो श्री लेथवेट ने सराहा। उन्होने मारपीट के सम्बन्ध मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। मैंने यह भी कहा कि पिछला आन्दोलन तीन महीने चला, पर उसके दौरान मे ऐसी बातें सुनने मे नही आई। इस पर तारीफ की बात यह है कि जहा एक ओर ये सब काण्ड हो रहे हैं, वहां दूसरी ओर जनता पूर्ण अहिंसा का आचरण कर रही है, उसकी ओर से अंगुली तक नही उठाई गई है।

इस पर श्री लेथवेट ने विस्तार के साथ बताया कि किस प्रकार अलग-अलग रियासतो की परिस्थितिया अलग-अलग हैं, किस प्रकार उनमे युगो से व्यक्तिगत शासन की परम्पराए चली आ रही हैं और किस प्रकार वहा लोकतन्त्रीय शासन-प्रणली का विकास होने मे देर लगना अनिवार्य है। मैंने बटलर कमेटी की रिपोर्ट का उल्लेख किया, जिसमे कहा गया था कि जहा उत्तरदायी शासन की मांग व्यापक हो, वहा सार्वभौम सत्ता को उस माग को सतुष्ट करने के लिए सुझाव पेश करने में मदद देनी होगी, बशर्ते कि उस माग मे राजा को हटाने की बात का समावेश न हो। "यह तो दस वर्ष पुरानी बात है", श्री लेथवेट ने कहा, "और मुझे यकीन है कि यदि वह रिपोर्ट आज लिखी जाती तो कमेटी को अपनी भाषा बदलनी पडती और उसे उत्तरदायी शासन की भी व्याख्या करनी पड़ती।" "यह परिवर्तन तो हमारे ही हित मे होता," मैंने कहा और हम सब हस पडे।

इस अवसर पर घनश्यामदासजी ने राजकोट का प्रश्न छेड़ा और कहा कि क्या इस दुःखद काण्ड का तुरन्त अन्त नही किया जा सकता है ? श्री लेथवेट ने राजकोट पर 'हरिजन' के लेख और बापू की अति उग्र भाषा का जिक्र किया। मैं बोला, "इस बारे मे दो-तीन बातो को ध्यान मे रखना होगा। आपको यह याद रखना चाहिए कि उनके पास नित्य ही राजकोट की घटनाओ के समाचार पहुंचते रहते हैं। ये समाचार कैसे होते हैं, इसका एक उदाहरण मैं दे ही चुका हूं। बापू इन समाचारों को कुछ घटाकर ही ग्रहण करते हैं, पर वह यह नही मान सकते कि जो कुछ कहा जा रहा है, उसका कोई आधार ही नहीं है। और यदि इन कहानियो में सचाई का पुट काफी हो तो मैं नही जानता कि और कैसी भाषा का व्यवहार किया जा सकता था। फिर, यह भी नही भुलाया जाना चाहिए कि इन लेखों मे भी, चाहे उनकी भाषा कितनी ही कडी क्यो न रही हो, अन्त मे वाइसराय के नाम अपील ही रहती है। गाधीजी दो वर्ष पहले ऐसा करने के अभ्यस्त नहीं थे।"

घनश्यामदासजी ने लेख के उस वाक्य का खासतौर से हवाला दिया, जिसमे कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार का मित्र बताया गया था और जिसके द्वारा बापू की ब्रिटिश सरकार का सहयोग प्राप्त करने की उत्सुकता प्रकट होती थी। "किन्तु बापू को इसका उलटा ही मिल रहा है और इससे उनका खीझना स्वभाविक ही है।"

मैंने एक तीसरी बात बताई। मैंने कहा, "वह लेख एक सप्ताह पहले लिखा

गया था। इस बीच आपकी ओर से यह विज्ञप्ति प्रकाशित हुई, जिसमें सरकार और ठाकुरसाहब की स्थिति का स्पष्टीकरण करने की चेष्टा की गई है। उसके उत्तर में गांधीजी ऐसा वक्तव्य देते हैं जिसे मैं शान्ति का संकेत कह सकता हूं। उसमें उन्होंने यह निश्चित रूप से कहा है कि यदि प्रश्न केवल व्यक्तियों का हो तो वह सरदार को ठाकुरसाहब के साथ मिल बैठने को राजी कर सकते हैं।"

पर श्री लेथवेट ने कहा, "जनता के सामने तो घटनाओं का यह टाइम टेबल है नहीं। जनता शनिवार को गांधीजी का वक्तव्य पढ़ती है और रविवार को उनका लेख। 'स्टेट्समैन' का लेख देखिए न, उसके कथन में बहुत-कुछ तथ्य है और वाइसराय को इस पर सचमुच आश्चर्य होता है कि एक ओर तो गांधीजी के पत्रों की भाषा अत्यन्त मैत्रीपूर्ण होती है और दूसरी ओर उनके लेख ऐसी भाषा में लिखे गए होते हैं जिसका लहजा सर्वथा विपरीत होता है।"

मैंने कहा, "इसका कारण यह है कि पत्र वाइसराय के नाम लिखे जाते हैं और लेख जनता को संबोधित करके लिखे जाते हैं। यदि वाइसराय ही कोई आन्दोलन चलाते होते तो उनके निजी पत्र-व्यवहार की भाषा उनके लेखों की भाषा से सर्वथा भिन्न होती।"

श्री लेथवेट बोले, "पर आपको यह तो मानना ही होगा, और मैं जानता ही हूं कि श्री बिड़ला भी मानते हैं, कि इससे वाइसराय की स्थिति बड़ी कठिन हो जाती है। ये लेख भारत तक ही सीमित नहीं रहते हैं, रायटर द्वारा इंग्लैंड को तार से भेज दिए जाते हैं। और आपको जातीय विद्वेष के बारे में 'स्टेट्समैन' की टीका याद ही होगी। आप सोच सकते हैं कि ब्रिटिश जनता पर इसका क्या असर पड़ेगा। मैं तो कहूंगा कि गांधीजी वाइसराय को भले ही इच्छानुसार कड़े-से-कड़ा पत्र लिखते, *समाचार-पत्रों के लिए लिखते समय उन्हें यथासाध्य नरम-से-नरम* भाषा का प्रयोग करना चाहिए था।" मैं बोला, "यह 'स्टेट्समैन' वाली बात वाहियात-सी है। इसका जातीय प्रश्न के साथ क्या सम्बन्ध है? और 'स्टेट्समैन' को गांधीजी के लेख में जातीय विद्वेष कहां दिखाई दिया?"

"ब्रिटिश रेजिडेन्ट को जिस प्रकार आए दिन शरारत का पुतला कहा जाता है और गुंडेपन के कामों के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है सो आप देख ही रहे हैं। आप एक बार श्री गिब्सन से मिलकर देखें। तब आपको पता चलेगा कि यह सब कुछ उनके द्वारा सम्भव नहीं है। वह इतने नरम आदमी हैं कि उनके बारे में कोई यह खयाल तक नहीं कर सकता कि नृशंसता के ऐसे काम उनके द्वारा संभव हैं।"

"गुंडेपन के इन कामों के लिए श्री गिब्सन व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार हैं, ऐसा आरोप न गांधीजी ने लगाया है, न किसी और ने ही। कम-से-कम गांधीजी ने नहीं लगाया। वह यह नहीं कह सकते कि गिब्सन इन मारपीटों को खुद देखते हैं। पर साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस एजेन्सी पुलिस और इन

मातहतो का यह विश्वास है कि वे जो कुछ कर रहे हैं, ठीक ही कर रहे हैं।"

श्री लेथवेट ने पूछा, "क्या आपको पता है कि राजकोट मे एजेंसी पुलिस की सख्या कितनी है ?" मैंने कहा, "सो तो मैं नही जानता, पर राजकोट रियासत की पुलिस की सख्या अधिक नही होगी; अधिकाश मे एजेन्सी पुलिस होनी चाहिए। पर मैं निश्चित रूप से नही कह सकता। हां, पता लगा सकता हूं। क्या श्री गिब्सन के साथ आपका व्यक्तिगत सम्पर्क है ?"

"नही, इस समय नही। मैं आखिरी बार उनसे नवम्बर मे मिला था। पर मैं इतना तो कह ही दू कि गांधीजी के लेखों का हम तीनों पर, और वाइसराय पर भी, जो प्रभाव पडा, साधारण पाठक पर उससे भिन्न प्रभाव पडा होगा। औसत दर्जे का पाठक यह सोचे बिना नही रह सकता कि यदि ये बातें सच्ची हैं तो उनके लिए श्री गिब्सन को व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। और यदि जातीय विद्वेष अभीप्ट नही है तो क्या गाधीजी को यह स्पप्ट नही कर देना चाहिए ?"

मैंने कहा, "निश्चय ही। गाधीजी ऐसा सबसे पहले करेंगे, क्योकि उनके दिमाग मे इस चीज का लेश तक नही है। ऐसा उनके स्वभाव मे ही नही है। उग्र सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने मे भी यह अभियोग गम्भीरतापूर्वक नही लगाया गया। गाधीजी यह भी कह देंगे कि श्री गिब्सन इस नृशंसता के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नही हैं। पर वह श्री गिब्सन को इस आरोप से मुक्त नही करेंगे कि उन्होंने ही यह वचन भंग कराया है, क्योकि उनके पास आरोप की पुष्टि में वजनदार प्रमाण मौजूद हैं। आप उन प्रमाणों का मूल्य कम भले ही आकें, पर जो कागजात उन्हे विश्वस्त सूत्रो से मिले हैं, उनकी प्रामाणिकता मे वह सदेह नही कर सकते।"

बातचीत मे गर्मी आने लगी थी। घनश्यामदासजी बीच ही मे बोल उठे, "सार की बात यही है कि सधि-चर्चा फिर शुरू करने के लिए उचित वातावरण की आवश्यकता है। है न यही बात ?"

"हा, वातावरण बहुत खराब है। गाधीजी का लेख प्रकाशित होने के बाद से वह काफी बिगड गया है। वाइसराय के नाम आप जो पत्र लाये, उसे पाकर उन्हे खुशी हुई। पर आज उन्होने 'हरिजन' का लेख देखा तो कहने लगे, "इस मित्रतापूर्ण पत्र का क्या उपयोग है ?"

मैंने कहा, "यदि आपका अभिप्राय उन दो आरोपों से है, जो 'स्टेट्समैन' ने लगाये हैं तो गाधीजी से वातावरण की सफाई कराने मे बिलकुल कठिनाई नही होगी।"

"पर, जब श्री गिब्सन को अनैतिक वचन-भंग के लिए जिम्मेदार ठहराया जा रहा है और उनकी खिल्ली उड़ाई जा रही है तो उनसे आप कोई काम कैसे

करा सकते हैं ?"

मैंने कहा, "मेरे पास कुछ कागजात है और मैं यह दिखा सकता हूं कि हम लोग उन्हें दोषी कैसे मानते हैं। सर पैट्रिक कैडेल यहां होते तो बडी बात होती।"

"आप यह कहना चाहते हैं कि उन्हें इस समझौते की सारी बातों का पता है ? आप यह भी कहना चाहते हैं कि उन्होंने श्री गिब्सन को बता दिया था ?"

"सर पैट्रिक ने समझौते को खुद देखा, इसकी शपथ लेने को मैं तैयार नही हूं। पर जब ठाकुरसाहब ने यह पत्र लिखा था तो वह महल मे मौजूद थे। मुझे नही मालूम कि सर पैट्रिक ने श्री गिब्सन से उसके बारे मे कहा या नही, पर बात जो भी हो, दुनिया में कौन विश्वास करेगा कि सरदार एक ऐसे समझौते को स्वीकार करने को तैयार हो गए, जिसकी व्याख्या ठाकुरसाहब इस ढग से कर रहे हैं, जैसा कि आपने बताया ? उस दशा मे समझौते पर ठाकुरसाहब को नही, सरदार को हस्ताक्षर करने चाहिए थे।"

"मैंने यह अनोखा तर्क 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के लेख में पढा है। पर उस पत्र को प्रकाशित क्यों नही किया गया और उसे समझौते का अंग क्यों नही बनाया गया ?"

"आप समझे नही। सरदार को ठाकुरसाहब का लिहाज था। पर मैं आपको बता दूं कि यदि सरदार उसी समय नाम देने को तैयार हो जाते तो उस पत्र मे नामो का भी समावेश हो गया होता। बात यह थी कि सरदार को अपने सह-कर्मियों में परामर्श करना था।"

"पर क्या आपका यह खयाल नही है कि श्री माणेकलाल के नाम सरदार पटेल के पत्र से यह जाहिर होता है कि व्यक्तियों की नामावली आपस मे तय होनी थी और सरदार को नामो का प्रस्ताव मात्र करना था।"

"नही, आपने बात को समझा नही। ठाकुरसाहब की सहमति केवल इस बात तक सीमित थी कि जिन व्यक्तियों के नाम सुझाए गए हैं, वे बाहर के नही, बल्कि रियासत के ही रहनेवाले हैं। मैं आपके आगे यह साबित कर सकता हूं कि सधि-चर्चा मे विवाद का विषय केवल यही था कि सदस्य रियासत के प्रजाजन हो या रियासत के बाहर के भी हो सकते हैं।" यहा मैंने श्री लेथवेट को वह मसविदा दिखाया, जिसे लेकर श्री पट्टनी सर पैट्रिक से मिले थे। उसमें की जिन चार बातो के बारे मे सर पैट्रिक ने स्पष्टीकरण चाहा था उनमे से एक यह थी कि सदस्य राज्य के प्रजाजन ही होंगे। मैंने उनका ध्यान मसविदे की उन पंक्तियो की ओर दिलाया, जिनमे कहा गया था कि सरदार सात नाम पसन्द करेंगे और नियुक्ति ठाकुरसाहब द्वारा होगी। सर पैट्रिक ने मसविदे की भाषा पर कोई आपत्ति नही की थी।

मैंने कहा, "पर सर पैट्रिक अपने वचन से फिर गये, क्योकि एक दिन पहले वह श्री गिब्सन से मिल चुके थे और श्री गिब्सन ने उस सारे व्यापार को ही नापसन्द किया था।"

घनश्यामदासजी ने कहा, "मैं गलती नही करता हूं तो सर पैट्रिक ने खुद सरदार या पट्टनी से कहा था कि श्री गिब्सन ने उसे नापसन्द किया है।"

मैंने कहा, "और आप वचन-भग के अन्य गभीर अश को क्यो भूलते हैं ? समझौता टूटने के वाद की विज्ञप्ति उस विज्ञप्ति से बिलकुल भिन्न है, जो समझौते की घोषणा करते समय प्रकाशित की गई थी।"

"हा, श्री बिड़ला ने इसकी चर्चा की है, पर मैं जानना चाहता हू कि अन्तर कहा है।"

मैंने वह अश पढ़कर सुनाया, जिसमे 'व्यापकतम अधिकारो' की बात कही गई थी, और नई विज्ञप्ति का वह अश भी सुनाया, जिसमे 'शासन-कार्य मे जनता के हाथ बटाने' का जिक्र था। मैंने इस बात का भी जिक्र किया कि किस प्रकार आपसी बातचीत के दौरान श्री गिब्सन ने व्यापकतम अधिकारो की बात पर आपत्ति की थी और किस प्रकार वह उसे निकलवाने में सफल हुए थे। मैंने यह भी कहा कि ठाकुरसाहब ने अपनी विज्ञप्ति मे ऐसे शब्दो का व्यवहार किया है, जिनका उन्होने समझौते के समय कभी उपयोग नही किया होता। वे शब्द ये थे कि उन लोगो को बाहर वालो के उकसाने पर ऐसी वस्तु प्राप्त करने की कल्पना नही करनी चाहिए, जिसे वे पचा न सकें। इस सबमे श्री गिब्सन का हाथ है, यह सोचे बिना हम नही रह सकते।"

घनश्यामदासजी ने पुन समझौते की चर्चा शुरू करने का सवाल उठाया और श्रीलेथवेट ने बातचीत के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने का राग अलापा। घनश्यामदासजी ने पूछा, "आपका वातावरण सुधारने की बात से ठीक-ठीक अभिप्राय क्या है ? कृपया मुझे निश्चितरूप से बता दीजिए कि वातावरण को सुधारने के लिए आप गाधीजी से क्या कराना चाहते हैं ?"

लेथवेट ने उत्तर दिया, "बात यह है कि व्यक्तिगत आक्रमण किये गए हैं, जिनसे जातीय विद्वेष की गध आती है। मेरी राय मे यह सबकुछ बिलकुल बन्द हो जाना चाहिए। आप लोग वाइसराय की कठिनाइयो को नही समझते हैं। वह कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हो, जबतक वातावरण नही सुधरता है, तबतक वह मदद नही कर सकते।"

"मैं स्वीकार करता हू कि व्यक्तिगत कटुता नही रहनी चाहिए, क्योंकि मेरा अपना विश्वास है कि यदि समझौते की बात शुरू हुई तो श्री गिब्सन से बेहद सहायता मिल सकती है। इसलिए उन्हें व्यर्थ ही खिझाना ठीक नही है।"

"इतने आक्रमणो के बाद गिब्सन कहातक सहायक सिद्ध होगे, यही देखना

है। मेरा विश्वास है कि वह इन आक्रमणों के पात्र नहीं थे।"

"मैं तो नही समझता कि गिब्सन के रुख के बारे मे निराश होना ठीक रहेगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब लार्ड अरविन ने बापू से इमर्सन का परिचय कराया तो उसके बाद से उनका (इमर्सन का) रुख खासतौर से सहायतापूर्ण हो गया था। फिर तो जो कुछ हुआ सबमें उनकी सहायता मिली। किसी मंजिल पर पहुंचकर सरदार और गिब्सन मे समझौते के लिए बातचीत फिर शुरू न हो, इसका मैं तो कोई कारण नही देखता। गिब्सन ठाकुरसाहब पर कोई दबाव डालें, सो मैं नही चाहता। पर वह मित्रतापूर्ण सलाह तो दे ही सकते हैं, और सार्वभौम सत्ता के प्रतिनिधि की मित्रतापूर्ण सलाह का क्या महत्त्व है, सो मै जानता हूं। मैं तो इतना ही चाहता हू कि यदि वातावरण मे सुधार हो जाय और बातचीत शुरू हो जाय तो वाइसराय निजी तौर पर गिब्सन को निर्देश दे सकते हैं कि उन्हें पूर्व समझौते का पुनरुद्धार करने के लिए सभी तरह की मित्रतापूर्ण सहायता देनी चाहिए।"

"हां, मैं सहमत हू। मैं यह नही कहना चाहता कि वाइसराय क्या करेंगे, पर मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि यदि वातावरण में सुधार हुआ तो उससे सन्तोषजनक हल ढूंढ़ने मे अवश्य सहायता मिलेगी।"

यहां मैंने सुझाया कि घनश्यामदासजी वर्धा जा सकते हैं। लेथवेट ने कोई टिप्पणी नही की, चुपचाप सुनते रहे।

मैंने कहा, "वातावरण को स्वच्छ किया जा सकता है, पर श्री लेथवेट को यह समझ लेना चाहिए कि मेरे खयाल से नृशसतापूर्ण कार्यों के लिए व्यक्तिगत-रूप से जिम्मेदार होने के आरोप की अपेक्षा वचन-भग की जिम्मेदारी का आरोप अधिक गभीर है। एक आरोप वापस लिया जा सकता है, क्योंकि वास्तव मे वह कभी लगाया ही नही गया था, पर दूसरा आरोप मौजूद है और रहेगा। किन्तु बापू को इस आरोप की सफाई पर बार-बार जोर देने की जरूरत नही है। उसे सब जानते हैं। अब दूसरे आरोप की सफाई हो जाय।" घनश्यामदासजी ने कहा, "तुम बापू के पास जाओ और यह करा डालो। मुझे यकीन है कि सरदार बापू के इस वक्तव्य को दोहराकर बातचीत शुरू कर सकते है कि इस सवाल पर कि कौन-कौन से व्यक्ति लिये जायं। वह ठाकुरसाहब का लिहाज करने को तैयार हैं अर्थात् एक मुसलमान और एक भायात को भी शामिल किया जा सकता है, बशर्ते कि उन्हें दो नाम अपनी ओर से और जोड़ने की स्वतंत्रता रहे।"

"क्या समझौते में यह बात भी शामिल थी कि कमेटी में सरदार का पांच का बहुमत रहना चाहिए?"

मैं बोला, "संख्या ७ और २ के उल्लेख का तो यही अर्थ निकलता है। किंतु हम यहां संधि की चर्चा करने नही बैठे है। इसका निर्णय तो सरदार और ठाकुर-

साहब ही करें, पर समझौते की मूल शर्तों को तो पुनर्जीवन देना ही होगा।"

श्री लेथवेट ने कहा, "आपके बताए ढंग का वक्तव्य सरदार दे देंगे तो उससे सहायता मिलेगी।"

महादेवभाई का विवरण सरदार के पास गया और अपने उत्तर मे सरदार ने श्री गिब्सन के बारे मे बहुत ही निराशाजनक विचार प्रकट किया :

८ फरवरी, १६३६

प्रिय महादेव,

मुझे तुम्हारा पत्र और उसके साथ श्री लेथवेट के साथ हुई तुम्हारी बातचीत का विवरण मिला। मुझे भय है कि उनके रवैये के बारे मे तुम्हारे अन्दाज से मैं सहमत नही हो सकता। वह रवैया कूटनीतिक है, पर मुझे डर है कि वह ईमानदारी से भरा हुआ नही है। 'स्टेट्समैन' ने पिछला लेख ज्यादा सफाई के साथ लिखा है, पर यदि हम किसी गिब्सन या ब्यूचैम्प के बारे मे लिखते हैं तो वे हमारी नीयत पर सदेह करने लगते हैं। इसमे कोई जातीय प्रश्न शामिल नही है। यह तो उनके सुरक्षित किले पर रक्षात्मक आक्रमण है और इसपर वे क्रुद्ध हो उठे हैं। अपने अपराध का पूरा पता होने पर भी वे अपनी अनभिज्ञता जाहिर करते हैं। जो हो, मुझे तो आगे कड़ा सघर्ष नजर आता है। मुझे तनिक भी सदेह नही है कि श्री गिब्सन ने तमाम काठियावाड की रियासतो मे गुडेपन की शक्तियो को सगठित किया है। लीमडी मे उनकी नीति पहली बार खुलकर खेली। कैसे, सो जानकर तुम्हे अफसोस होगा। तीन बड़े डाके पड़े हैं, जिनमे गांवों के अनेक आदमियो को लूटा और घायल किया गया है। सशस्त्र डाकुओं को देहातो की निर्दोष जनता पर आक्रमण करने के लिए पूरी छूट दे दी गई है, ताकि जो लोग रियासत के अत्याचार का विरोध कर रहे हैं, उन्हें भयभीत किया जा सके। गत दो-तीन दिनो से लोग महल के इर्द-गिर्द बैठे हैं और जाच की माग कर रहे हैं, पर रियासत कोई सुनवाई नही कर रही है। बा (कस्तूर बा) भी परेशान हैं। यह सब केवल गिब्सन की मिली भगत से ही नही हो रहा है, बल्कि इसमे प्रेरणा भी उसी से मिली होगी।

तुम्हारा
वल्लभभाई

इसके बाद ठाकुरसाहब के प्रति गांधीजी की निराशा, उनका उपवास, वाइसराय का महानुभूतिपूर्ण रुख और मोरिस ग्वायर का गांधीजी के हक मे फैसला, सारी घटनाएं एक के बाद एक घटित हुईं। तनाव अप्रैल के मध्य तक कम

नही हुआ था। महादेव ने मुझे लिखा :

"सुशीला राजकोट से आज ही पहुची। वह गुजरात के कुजा नामक स्थान को जा रही है, जहा उसके भाई का विवाह है। उसने बताया कि एक दिन बापू और वल्लभभाई मे झड़प हो गई। बापू ने तीन पत्र लिखे थे, जिनमे उन्होंने मुसलमानों और भायातो को सबकुछ समर्पण कर दिया था। वल्लभभाई बिगड़ गये। बापू ने कहा, "मै जानता हू, मेरी मूर्खताओ का फल तुम्हे भोगना पडता है।" इसपर वल्लभभाई ने कहा, "अभीतक तो मूर्खता का कोई काम नहीं हुआ है, पर ये तीन पत्र, जिन्हें आप भेजने का विचार कर रहे हैं, मूर्खतापूर्ण अवश्य हैं।" बापू हस पड़े, पर बाद को गंभीरतापूर्वक बोले, "इसलिए मुझे क्रियात्मक नेतृत्व से हटकर भगवान् के भजन मे दिन बिताने चाहिए।" पता नही, इसके बाद बातचीत का क्या रुख रहा, पर परिणाम यह हुआ कि पत्र फाड़ डाले गये। सुशीला ने यह भी बताया कि बापू ने देख लिया है कि मनुष्य की कुत्सित प्रवृत्तियो का वल्लभभाई को उनकी अपेक्षा अधिक ज्ञान है—ज्ञान क्या आत्मप्रेरणा-सी है। बापू ने एक बार कहा भी, "यह कदम आत्महत्या के समान है।" उनका मतलब यदि मुसलमान अपने वचन का पालन न करें तो अनशन करने के विचार से था। इस प्रकार उस दिन प्रात.काल के समय हमारा लम्बा तार भेजना बिलकुल ठीक सिद्ध हुआ।

पर इस सारे व्यापार ने मुझे विचार-निमग्न कर दिया। आपको याद ही होगा, उस दिन हमने अहिंसा की भावनाओ और गूढ तत्वो के सबध मे बहुत देर तक बातचीत की थी, और मुझे सुशीला से जो कुछ मालूम हुआ, उससे मैं इसी विचार मे पड गया कि अहिंसा इहलौकिक अधिकारों के प्रतिपादन के लिए उपयुक्त अस्त्र है या नही। श्री आर्थर मूर ने भी इस प्रसिद्ध वाद-विवाद के दौरान इसी तरह की बात कही थी। अब जब हम बापू से मिलें और उन्हें कुछ खाली पावें तो अहिंसा के इस पहलू पर खूब अच्छी तरह बातें करें। इस समय तो मैं नही कह सकता कि भविष्य मे हमारे भाग्य मे क्या बदा है। हम एक रहस्यमयी और वर्णनातीत होनी की ओर बलात् खिचे चले जा रहे हैं।"

मैं महादेवभाई की शंकाओ के साथ अपनी सहमति प्रकट किये बिना नही रह सका :

"सच्ची बात तो यह है कि मैं तुम्हारे इस कथन से तो सहमत हूं ही कि इहलौकिक लक्ष्यो की सिद्धि मे अहिंसा के उपयोग का औचित्य संदिग्ध है, साथ ही मुझे इसमे भी सन्देह है कि राजकोट मे आरम्भ से अबतक जो-कुछ हुआ है उसे

अहिंसा कहा जा सकता है या नही। मैंने तो तुमसे उस दिन कहा भी था कि मैं अभीतक इस बात मे विश्वास नही करता हूं कि अनशन दूसरे की इच्छा के विरुद्ध कार्य कराने का एक ढंग-मात्र नही है। मेरी तो समझ मे नही आता कि अपने विपक्षी का हृदय चुनौतियो से कैसे बदला जा सकता है। सरदार की स्थिति को समझा जा सकता है, क्योकि उन्होने कभी कोई गूढ दार्शनिक तत्त्व का निदर्शन करने का दावा नही किया। राजकोट मे उनका सघर्ष एक प्रकार का निःशस्त्र विद्रोह था और वह पूर्णतया अहिंसात्मक ही रहा हो, ऐसी बात भी नही थी। इसलिए यदि वीरावाला और ठाकुर ने हमारे ही ढग से उसका मुकाबला किया तो इसमें शिकायत का मौका ही क्या है ? गिब्सन भी हमारी मदद क्यों करता, क्योकि हमने भी गिब्सन को कभी नही बख्शा। वाइसराय का उत्तरदायित्व तो है ही, पर उनकी भी अपनी कठिनाइया होंगी। उतावली से काम नही चलेगा। यदि वस्तुस्थिति को बापू के दार्शनिक दृष्टिकोण की कसौटी पर कसा जाय तो कहा जा सकता है कि हम बिलकुल दूध के धोये हो, ऐसी बात नहीं है। मेरी तो दृढ़ धारणा है कि अब उपवास का प्रसग समाप्त कर देना चाहिए। जब हम कलकत्ते मे बापू से मिलेंगे, तो आशा है, बापू हमारी बात मान लेंगे। यदि निर्विघ्न वार्तालाप किया जाय तो उसमे बापू के, तुम्हारे, और मेरे सिवा और कोई न रहे। सरदार मौजूद रहेगे तो मुझे बात करने का साहस नही होगा।

बापू और सरदार की बातचीत के सबध मे तुमने जो-कुछ लिखा, उसे पढ़ाने मे बड़ा आनन्द आया। सरदार बहुत कम बोलते हैं और जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है मानो उन्होने धैर्य खो दिया हो, पर उनकी आत्मप्रेरणा गलत नही होती। पर इतने पर भी वह वीरावाला से पार नही पा सके।"

किन्तु अबकी बार चित्र एकदम बदल रहा था। महादेवभाई और गिब्सन की मुलाकात हुई। १९ मई को महादेवभाई ने लिखा

"पता नही, आप बापू के ताजा वक्तव्य के सबध मे क्या कहेगे। हमारे दुर्भाग्य से पहले तो बापू अपनी कार्रवाई पर हमारी प्रतिक्रिया से रुष्ट होते है, पर बाद को वह भी उसी निष्कर्ष पर पहुचते हैं, जिनपर हम पहुंचे थे, और उसे इतनी ओजस्विता से प्रकट करते हैं कि हम सकोच मे पड जाते हैं। बहुधा हम उनकी उतावली का उनसे जिक्र करते हैं तो वह कहते हैं कि यह उतावली नही है, और यदि है, तो भी क्या ! अब वह कहते हैं कि उनकी उतावली हिंसा का लक्षण थी, और उन्होंने सर्वोपरि सत्ता से जो अपील की, ठाकुर को निकम्मा और वीरावाला को चालबाज और रियासत के लिए अभिशाप बताया, सो उतावली का कार्य था, इसलिए वह हिंसा थी। वक्तव्य के ऊपर उनसे मेरी काफी बहस रही। मैंने कहा, "क्या आपका यह विचार नही है कि आपका ठाकुरसाहब तक सीमित

रहने के बजाय सर्वोपरि सत्ता से अपील करना, और उसके प्रधान न्यायाधीश द्वारा निर्णय किये जाने के सुझाव को स्वीकार करना, नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से अच्छा नहीं रहा, क्योंकि एक दास के विरुद्ध सत्याग्रह करना (और रियासती नरेश दास ही हैं) न्यायोचित नहीं है।" इसके उत्तर में उन्होंने कहा, "तुम केवल परिणाम देखकर ही यह बात कह रहे हो, और तुम्हारा यह कहना कि ठाकुर सर्वोपरि सत्ता का दास-मात्र है, केवल अर्द्ध-सत्य है, और यदि वह दास हो तो भी यदि मेरा सत्याग्रह परमोत्कृष्ट प्रकार का हुआ तो वह उसे अपनी दासता का अन्त करने में सहायता देगा। जो हो, मैंने जो निर्णय को त्यागने का निश्चय किया है सो आत्म-निरीक्षण का फल है। मैं हरदम इसी व्यथा से व्यथित रहता था और मुझे एकमात्र यही चिन्ता थी कि इस यन्त्रणा से कैसे त्राण पाया जाय।"

गिब्सन से कोई डेढ घण्टे तक बातें होती रहीं। वह बडी शिष्टता, सरलता और आदर-भाव से पेश आया। वह पुरानी चोटें भूला नहीं है। उसे गुण्डेपन का दोषी ठहराया गया था और वार्त्तालाप का उसकी समझ से असत्य विवरण छापा गया था, आदि। पर मैं इतना अवश्य कहूंगा कि वह मुझे अच्छा लगा, और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मैं उससे मिला।

मैं इन लोगों से जितना मिलता हूं उतना ही विश्वास होता जाता है कि हमारा सारा आदोलन उतावली का व्यक्त रूप मात्र था। थोड़े धैर्य से बहुत कुछ काम बन जाता। खैर, शिक्षा देर से मिली, मिली तो। देर आयद दुरुस्त आयद।"

मैंने अपने उत्तर मे श्री गिब्सन के बारे में महादेवभाई के विचारों की पुष्टि की :

"मेरी ग्वालियर-मिल के मैनेजर और सेक्रेटरी ने श्री गिब्सन की मानव की हैसियत से सदा तारीफ की है। कहा जाता है कि वह सबके साथ, विशेषकर बच्चो के साथ, बहुत खुला और उत्तम व्यवहार करते थे। वह मिल में आ जाते थे और बच्चो के साथ खेला करते। आपसी व्यवहार मे कुशल, बहुत भले, और राजनैतिक व्यवहार मे बहुत बुरे, वह एक साथ ही दोनों नही हो सकते थे, और बापू की ओर से उन्हें काफी खरी-खोटी सुननी पड़ी है। क्या बापू को उनके बारे में अपनी राय नही बदलनी चाहिए ? मैं अलबत्ता यह मानता तो हूं कि श्री गिब्सन वचन-भग के लिए अंशत. जिम्मेदार हैं, पर वह जितने के पात्र थे उन्हें उससे अधिक सुननी पड़ी। मेरे आदमी यह स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं कि श्री गिब्सन के लिए गुंडो-जैसा आचरण करना सम्भव है।"

लोदियन ने इस प्रकार लिखा :

ऐसा प्रतीत होता है, मानो महात्माजी धीरे-धीरे काग्रेस को वही नीति अपनाने को प्रेरित कर रहे हैं, जिसका उन्होंने मेरे सामने रेखाचित्र खीचा था। तब मैं सेगाव मे उनके पास ठहरा हुआ था। पर मेरा खयाल है कि रियासतो मे पूर्ण उत्तरदायी शासन के विकास की रफ्तार को सीमित करना होगा। लोगों को अभी प्रतिनिधि सस्थाओ का अनुभव नही है, और यदि काग्रेस उन्हें बहुत दूर धकेलेगी तो वह मुसलमानों को तो, सम्भव है, हिन्दुस्तान से बिलकुल ही बाहर-धकेल दे। मेरा यह विश्वास पहले से भी दृढ हो गया है कि सघ के बुनियादी सिद्धान्तो पर ही हिन्दुस्तान आगे बढ सकता है और सकट से भी बच सकता है। आप महात्मा जी से मिलें तो कृपया उन्हे मेरा हार्दिक अभिनन्दन पहुचा दीजिए।

क्या आप मेरा यह पत्र बापू के सामने रखने का कष्ट करेंगे ?"

बापू ने अब मेल की दिशा मे पहल की और गिब्सन ने उन्हे यह पत्र लिखा :

रेजिडेंसी, राजकोट
बालाचडी
२७-५-३६

प्रिय श्री गाधी,

आपने जो लिखा सो लिखकर बडा सुन्दर काम किया। अनेक धन्यवाद। आप जिन दिनो की बात कहते हैं उन दिनो बडा काम था, पर यदि करने योग्य काम हो तो मुझे कार्यभार की चिन्ता कोई नही रहती। आजकल जो काम करना पडता है, उसका काफी बडा हिस्सा वैसा काम नही है। उस समय जिन लोगो को सचमुच अत्यधिक काम करना पडा वे थे तार और टेलीफोन आपरेटर।

मैं राजकोट ३१ मई को रात को पहुचने की आशा करता हूं। मैंने महादेव देसाई को लिखा है और बातचीत के लिए दूसरे दिन सुबह का समय सुझाया है और आपके विदा होने से पहले मैं आपसे भी एक बार फिर बातचीत करना चाहूगा, पर उस दिन सुबह को शायद आप बड़े व्यस्त होगे, इसलिए मैं प्रस्ताव नही कर रहा हू। पर यदि आप कुछ समय निकाल सकें तो जो समय सुविधाजनक हो उसी समय आ जाइए।

आपका
ई० सी० गिब्सन

महादेवभाई के एक और पत्र का अश :

"श्री गिब्सन कल आ रहे हैं। बापू और मैं दोनो उनसे मिलेंगे। आपको शायद

मालूम नही है कि जब मैं उनसे एक सप्ताह पहले मिला था तो मुलाकात का श्रीगणेश किस प्रकार हुआ था। मैंने उन्हें बताया था कि मुझे उनके सम्बन्ध मे जो कुछ जानकारी हासिल हुई है ग्वालियर मिल के मैनेजर द्वारा, जिसने मुझे बताया कि श्री गिब्सन बालको को कितना प्यार करते थे, और किस प्रकार उनके साथ खेलने के लिए आने को तैयार रहते थे। बस, इतना कहना था कि उनका दिल पसीज गया। इसके बाद, जैसा कि मैं लिख ही चुका हू, ६० मिनट तक दिल खोलकर बातचीत होती रही।

मैं यह लिखना भूल गया कि गिब्सन की प्रवृत्ति आनन्ददायी, पर शुष्क-विनोद की है। इस पत्र के साथ मैं उनका बापू के उस पत्र का उत्तर भेजता हू जिसमे उन्होने उपवास के दिनो मे उसे इतना परेशान करने के लिए दु:ख प्रकट किया था, यद्यपि वह उपवास अकारथ गया।

२८. कुछ पहेलियां और उनके हल

उन दिनो बापू के विचारो और वक्तव्यो मे जो विरोधाभास दिखाई देता था उससे हम सब उलझन मे पड जाते थे। उस समय का सिंहावलोकन करने पर प्रतीत होता है कि उन्होंने हमारे राष्ट्रनायक के रूप में जो कुछ किया, उसमें वह मूलत: सही रास्ते पर थे। हम यह भी देख सकते है कि उनके बिना हम शायद अभी तक स्वतंत्र न हुए होते। पर यह स्पष्ट है कि उन दिनो भी उन्हे इसमे शक होने लगा था कि आम जनता मे उनके अहिंसा के सिद्धान्त को पचाने या अहिंसा-व्रत का पालन करते रहने की सामर्थ्य भी है या नही। विभाजन के दु:खात नाटक का और तत्सम्बन्धी और बाद की दुर्घटनाओं का उन्हे पूर्वाभास-सा होने लगा था। उन्होने यह बात बड़े दु:ख के साथ स्वीकार की कि जिस चीज को वह खालिस अहिंसा समझे बैठे थे, वह निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप मे उसकी घटिया नकल-मात्र निकली। पर हम सब तो साधारण कोटि के मनुष्य हैं। हमारे लिए तो इतना समझना ही काफी है कि यदि कोई जाति या राष्ट्र निष्क्रिय प्रतिरोध का आश्रय ले तो वह बडा ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हो सकता है और जिनके पास बन्दूकें या संगीनें न हों वे कभी-कभी उनके बगैर ही सफल मनोरथ हो सकते हैं।

२ अप्रैल, १९४० को लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसका जो विवरण मैंने बापू के लिए तैयार किया, उसमें मैंने लिखा :

"उन्होंने (वाइसराय ने) इस बात की शिकायत की कि जब कभी गाधीजी उनके साथ बात करते हैं तो हमेशा यह कह देते हैं कि वह काग्रेस के विचारों का प्रतिनिधित्व नही करते। इससे उन्हे (वाइसराय को) बडी असुविधा की स्थिति मे पड जाना पडता है। वह गाधीजी के पीछे चलने की कोशिश करते हैं तो उन्हे पता चलता है कि उन्हें त्रिशकु की भाति बीच मे ही छोड दिया गया है। अगली बार जब वाइसराय गांधीजी से मिलेंगे तो उनसे काग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से मिलेंगे। मुझे लगा कि वाइसराय बहुत थक गये है और बहुत निराश हैं। उन्हें गाधीजी के विरुद्ध यह वास्तविक शिकायत है कि उन्होने सहायक सिद्ध होने की अपनी ओर से शक्ति-भर कोशिश की, पर दूसरी ओर से उन्हे अनुकूल प्रत्युत्तर नही मिला। उनकी यह मांग नही है कि मुसलमानो के साथ पूरा समझौता हो जाय। वह तो सिर्फ यही चाहते हैं कि गाधीजी को संतोष हो जाय कि जो भी योजना रखी जायगी, उसपर अमल किया जा सकेगा।"

इसी समय के आसपास, ४ अप्रैल को, बापू ने वाइसराय को इस प्रकार लिखा :

"अगर मैंने आपके दिमाग पर यह असर छोडा हो कि काग्रेस वेस्टमिन्स्टर के ढग का औपनिवेशिक दरजा स्वीकार कर लेगी तो मुझे यह जानकर सचमुच ही बडा अफसोस होगा। जब मैं आपको यह पत्र लिख ही रहा हू तो अपने मन की एक बात और बता दू। मैं आपको बता ही चुका हूं कि मेरा पुत्र देवदास आपका जोशीला समर्थक है। वह मुझे लम्बी-लम्बी चिट्ठिया लिखकर यह समझाने की कोशिश कर रहा है कि मैंने आपके साथ अपनी पिछली बातचीत को हठात् खत्म करके आपके प्रति बड़ा अन्याय किया है। वह मेरे इस आश्वासन को नही मानता है कि बातचीत इसलिए समाप्त हुई कि आप और मैं दोनो इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारे बीच की खाई इतनी चौडी है कि उसे अभी बातचीत को जारी रखकर ही नही पाटा जा सकता। वास्तव मे यह तो आप ही का उद्गार था कि हम लोगो के लिए यह ज्यादा मर्दानिगी का काम होगा कि हम अपनी बातचीत को शुरू के दिन ही समाप्त कर दें और जनता को वस्तुस्थिति से अवगत कर दें। आपके कथन की यथार्थता को मैंने तुरन्त स्वीकार कर लिया। देवदास का कहना है कि आपके कथन के पीछे ब्रिटिश अभिमान नही, *शिष्टाचार-मात्र था*। वह कहता है कि वास्तव में आप वार्तालाप जारी रखना चाहते थे। इसलिए देवदास बहुत दु खी है और उसका खयाल है कि मैंने आपके रुख को गलत समझा। अब आप ही इस कौटुम्बिक विवाद का निपटारा करने मे मेरी सहायता कर सकते हैं।"

"महादेव भी दु.खी थे। १२ तारीख को उन्होने मुझे लिखा .

"बापू के साथ देवदास का मतभेद बना हुआ है। देवदास का कहना है : यदि आपने वाइसराय से कहा होता, 'खुद हमें किसी तरह का औपनिवेशिक दर्जा नही चाहिए, पर यह तो आप ही बतायेंगे कि आप हमें किस ढग का दर्जा देना चाहते हैं' तो वाइसराय ने जवाब दिया होता, 'अच्छा हो कि हम इस प्रश्न की चर्चा किसी अगली तारीख के लिए स्थगित कर दें, उसके बारे में अभी बातचीत करने से कोई लाभ नही होगा।' देवदास की तर्कधारा काफी ठोस है, किन्तु हम कर ही क्या सकते हैं ? कभी-कभी बापू ऐसी गलतफहमिया पैदा कर देते हैं कि वह स्वयं उनका निराकरण नही कर पाते। ऐसा वह जान-बूझकर नही करते, पर उनके मन मे इतनी बातें रहती हैं कि विरोधी पक्ष एक बात समझता है, और बापू के मन मे दूसरी ही बात होती है।

जब मैंने बापू को आपके प्रश्न की याद दिलाई तो उन्होने कहा, 'उसके बारे में वाइसराय से क्या पूछना है ? पीछे देखा जायगा।' यही कारण है कि उन्होने अपने उत्तर में उसका कोई उल्लेख नही किया है।"

एक और पहेली ने मुझे १७ तारीख को महादेवभाई को यह पत्र लिखने को बाध्य किया :

"तुमने बापू का ध्यान लियाकतअली खां के प्रत्युत्तर की ओर दिलाया होगा। मुझे भय है कि लियाकतअली की आलोचना मे कुछ तथ्य है। बापू के लेखों को शब्दश. लिया जाय तो उनमे विरोधाभास की झलक मिलती है। हमे मालूम है कि बापू को उनकी ठीक व्याख्या करने में कोई कठिनाई नही होगी, पर वस्तु-स्थिति यह है कि बहुत बार बापू के विरोधी उन्हें गलत समझ लेते है और कभी-कभी तो उनके निकट के आदमियों के लिए भी उनके मन की बात का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।

जब मैं वर्धा मे था तो राजाजी विभाजन का प्रतिपादन कर रहे थे और बापू उनके तर्क के विरोध मे बोल रहे थे। अब बापू कहते है कि वह विभाजन का मुकाबला करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे। हा, प्रतिरोध अहिंसापूर्ण होगा। इस प्रकार की गलतफहमी केवल वाइसराय और लियाकतअली को ही नही, बल्कि और कइयों को भी हुई है। मैंने परसों मूर के मकान पर दोपहर का खाना खाया था। वह भी हैरान थे। उनका कहना है कि 'हरिजन' मे वह इतनी परस्पर-विरोधी सामग्री पढते हैं कि चक्कर मे पड़ जाते हैं। कभी-कभी उनकी इच्छा होती है कि बापू का समर्थन करें, पर उनको खुद पता नही चलता कि बापू निश्चित रूप

मे किस दिशा में जा रहे हैं। उनका खयाल है कि बापू के दिमाग मे उलझन है। हम सब जानते हैं कि उनका यह खयाल ठीक नही है कि बापू के लेखों मे उलझन होती है, पर साथ ही हमे इस बात की भी खबर रखनी चाहिए कि बापू के लेखों के बारे में लोग क्या अनुभव करते हैं और क्या सोचते हैं।"

हिटलर ने यूरोप पर जो दबदबा बैठा रखा था, उसका बापू पर कोई असर नहीं पडा। १६ मई को महादेव ने मुझे लिखा :

"देवदास का टेलीफोन आया था। हॉलैंड ने आत्म-समर्पण कर दिया है। बेल्जियम का भी यही हाल होना है। अब बापू को ब्रिटिश मत्रिमंडल के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और वाइसराय की मार्फत मत्रिमंडल को एक लम्बा तार भेजना चाहिए। उसका कुछ नतीजा निकल सकता है। बापू ने कहा कि खबरों मे कुछ नही रखा है। बापू की निगाह में हिटलर ऊचा चढता जा रहा है। मैंने कहा, 'जबतक आप सार्वजनिक रूप से इस बारे मे कुछ नही कहते, तभी तक खैर है।"

२१ तारीख को बापू ने मुझे स्वय लिखा :

"यूरोप इस समय ऐसे लोगो का सगम-स्थल बना हुआ है, जो यादवो की भाति एक-दूसरे का विनाश करने पर तुले हुए हैं। जो हो, मेरा दिल कठोर हो गया है।

बापू के आशीर्वाद"

दुर्भाग्यवश बापू यह मान बैठे थे कि युद्ध मे ब्रिटेन की हार हुई है और उन्होने लार्ड लिनलिथगो को एक पत्र मे अपना यह विचार लिख भी डाला। महादेवभाई को शायद यह बात पसन्द नही आई और उन्होंने मुझे ६ जून को लिखा :

"उस पत्र का उत्तर आ गया है। बापू ने अपने पत्र मे लिखा था

'यह नर-सहार बन्द होना चाहिए। आप हार रहे हैं। आप युद्ध जारी रखेंगे तो उसका एकमात्र परिणाम और अधिक रक्तपात होगा। हिटलर बुरा आदमी नही है। आप आज लडाई बद कर दें तो वह भी ऐसा ही करेगा। आप मुझे जर्मनी या और कही भेजना चाहें तो मैं हाजिर हूं। आप इसकी सूचना ब्रिटिश मत्रिमडल को भी दे सकते हैं।" मेरा यह दृढ विचार था कि वे इसे धृष्टता समझेंगे।

जो उत्तर आया है, वह बढ़िया है 'हम संघर्ष में जुटे हुए हैं, जबतक हम अपना लक्ष्य हासिल नहीं कर लेंगे, अपनी जगह से नहीं हटेंगे। मैं जानता हूं कि आप हमारे लिए चिन्तित हैं, पर सबकुछ ठीक ही होगा। आपने हमारे दो पुत्रों के लिए जो चिन्ता व्यक्त की है, उसका हमारे दिलों पर बड़ा असर पड़ा है।' बस, इतना ही।"

इस बीच बापू उपवास की धमकी दे रहे थे, किसी बड़े राष्ट्रीय प्रश्न को लेकर नहीं, बल्कि इसलिए कि आश्रम में कोई मामूली-सी चोरी हो गई थी। इसपर सेवाग्राम में बड़ी खलबली मची हुई थी। महादेवभाई ने ३ जून को लिखा :

"यहां तो हमेशा इस या उस तरह की कोई-न-कोई उत्तेजना बनी ही रहती है। एक लड़की ने बापू को एक पत्र लिखा था। पत्र के पास ही एक कलम पड़ी थी। किसीने दोनों को चु रा लिया। बाद में कलम वहां मिल गई, जहां उसे किसी ने फेंक दिया था। पत्र के फटे हुए टुकड़े भी मिले। इससे बापू को इतना आघात पहुंचा कि उन्होंने घोषणा कर दी, 'यह काम नौकरों का नहीं हो सकता। अपराधी हमारे भीतर छिपा है। यदि शुक्रवार तक अपना अपराध स्वीकार करने के लिए कोई आगे नहीं आता है तो शनिवार से मैं उपवास शुरू कर दूंगा।' हम अपनी शक्ति-भर अपराधी का पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं और हरेक को समझा-बुझा रहे हैं, किन्तु अभी तक कोई सफलता नहीं मिली है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक कार्यों में हमारा बहुत-सा समय चला जाता है।"

६ तारीख को महादेवभाई ने पुनः लिखा :

"चोरी के प्रकरण ने भद्दा रूप धारण कर लिया है। कल बापू ने अकस्मात् 'अ' से कहा, 'मेरा सन्देह तुम्हारे ऊपर है। अपराध स्वीकार क्यों नहीं कर लेती हो?' मैं भी स्तंभित रह गया। 'अ' ने जवाब दिया, 'मैंने नहीं लिया। मैं बेकसूर हूं। अल्लाह मेरा गवाह है।' उसने आज से अनशन शुरू कर दिया है। मैंने बापू से कहा, "आपने उसपर इस तरह आरोप लगाकर उतनी ही जल्दबाजी से काम लिया है, जितनी आपने उपवास की घोषणा करने में दिखाई थी।' बापू को जब यह महसूस होगा कि उन्होंने लड़की के प्रति अन्याय किया है तो वह उसके प्रति सौ बार न्याय करके इसका परिमार्जन करने की चेष्टा करेंगे और यह भी एक अन्याय का काम होगा। और भी कई मामलों में बापू ने ऐसा ही किया है। मैंने बापू से यह सब कहा, पर उनपर कोई असर नहीं हुआ। अभी तक तो उनका उपवास करने

का निश्चय कायम है। आप कल फोन करेंगे तो अधिक जानकारी हो सकेगी।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि मैंने महादेवभाई के सुझाव के अनुसार फोन किया और बापू से उपवास न करने का अनुरोध भी किया। महादेवभाई ने उत्तर में लिखा :

प्रिय घनश्यामदासजी,

टेलीफोन पर आपका सदेश मिला। मैं बापू के साथ काफी दलील कर चुका हू। मैंने कहा, "आपको यह पता हो कि किसने अपराध किया है तब तो आपका प्रायश्चित्तस्वरूप उपवास करना समझ मे आ भी सकता है, पर अपराधी का पता लगाने के लिए उपवास करना कुछ ठीक नही रहेगा। यदि हम सब कुछ जानने का दावा करें या जानने की कोशिश करें तो यह ईश्वर के गुणो को धारण करने जैसा होगा और हमारे अभिमान का परिचायक होगा। इसलिए आप उपवास करने का विचार छोड़ दीजिए। इसमे अनेक अनिश्चित तथ्य हैं।"

बापू ने लिखा '

"तुम्हारा दृष्टिकोण मेरे सामने है ही।"

इससे मुझे आशा होती है कि अन्त मे शायद बापू उपवास शुरू न भी करें। मैं यह मानने को तैयार नही हू कि यहा के किसी आदमी ने पत्र या कलम चुराया है। हम सब अति लघु हो सकते हैं, पर मैं इस बात की तो कल्पना भी नही कर सकता कि एक साधारण चोरी का अपराध स्वीकार करने के पूर्व हम बापू के उपवास करने की नौबत आने देंगे।

१० तारीख को महादेव भाई ने अच्छी सुनाई

"बापू ने उपवास का विचार स्थगित कर दिया और इसका मुख्य श्रेय मेरी बड़ी कोशिशो और मेरे कडे विरोध को है। मैंने इससे पहले बापू के किसी भी काम का इससे अधिक कडा विरोध नही किया। बापू ने उपवास शुरू कर दिया, उसके बाद भी मैंने बापू को एक लम्बा पत्र लिखा जिसमे मैंने कहा, "आपका यह उपवास धार्मिक उपवास नही है और जबतक उसका अन्त नही कर दिया जायगा मैं बराबर विरोध करता रहूंगा।' दो घटे बाद बापू ने उपवास त्यागने का निश्चय कर लिया।"

पर इधर राजाजी, मैं और अन्य लोग, ब्रिटेन के साथ किसी-न-किसी प्रकार

के समझौते के लिए प्रयत्नशील थे। कांग्रेस ने अपेक्षाकृत बड़े प्रश्नों की उपेक्षा नहीं की। कांग्रेस ने ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के लिए एक तर्कसंगत प्रस्ताव किया, जो युद्ध को उसके सफल अन्त तक चलाने में मदद देती रहती। किन्तु तबतक उन अंग्रेजों का अविश्वास बहुत गहरा हो गया था, जो किसी समय हिटलर को संतुष्ट करने और प्रोत्साहन देने में सबसे आगे थे। कांग्रेस के प्रस्तावों को ठुकरा दिया गया। यहां यह कहना उचित होगा कि कांग्रेस को ब्रिटेन के कतिपय अंग्रेजों का और भारत में रहने वाले कुछ अंग्रेजों का समर्थन अवश्य मिला।

४८, बजलुल्ला रोड
त्यागरायनगर, मद्रास
१६ अगस्त, १९४०

प्रिय घनश्यामदासजी,

स्थानीय समाचार-पत्रों ने श्री आर्थर मूर के लेख का मुख्य अंश प्रकाशित किया है, जिसमें उन्होंने श्री एमरी के वक्तव्य की आलोचना की है और अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम करने की कांग्रेस की मांग का समर्थन किया है। कृपया मेरा यह विचार उनतक पहुंचा दीजिए कि उन्होंने मामले को जिस लाजवाब तरीके से पेश किया है, मैं उसकी सराहना करता हूं। मैं आशा करता हूं कि उनका यह लेख पूरा-का-पूरा इंग्लैंड गया है।

आपका
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

२९. एक व्यक्तिगत स्पष्टीकरण

यह अध्याय 'व्यक्तिगत स्पष्टीकरण के लिए है', जैसाकि पुरानी व्यवस्थापिका के सदस्य कहा करते थे।

१९४० के अन्त में लार्ड लिनलिथगो के साथ मेरा खासा झगड़ा हो गया। मैं इस प्रसंग का केवल इसीलिए जिक्र कर रहा हूं कि उस समय के मेरे अपने कार्यकलाप के बारे में प्रचलित धारणा से उसका घनिष्ठ संबंध है। सीधी-सादी भाषा में लोगों की धारणा थी कि मैं अपने-आपको कांग्रेसवादी तो नहीं कहता

हू, पर उसे गुप्तरूप से खूब पैसे दे देता हूं, और इस प्रकार दो किश्तियों पर सवार हूं।

कह नही सकता कि कुछ लोग मुझे शका का लाभ देते थे या नही और यह मानते थे या नही कि मैं काग्रेस का समर्थन देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर ही करता हू। जब मै मर गिलबर्ट लेथवेट के साथ अपनी अन्तिम मुलाकात का अपना विवरण फिर से पढ़ता हू तो यह सोचने को मन कहता है कि वह और वाइसराय दोनो ही मेरे इस कार्य को देशभक्ति से प्रेरित मानते थे और उनमें कोई बुराई नही देखते थे। उनका केवल यही कहना था कि काग्रेस इस समय युद्ध-चेष्टा मे सहायता नही दे रही है, वल्कि बाधा डाल रही है और चूकि उनका विश्वास था कि मैं काग्रेस की आर्थिक सहायता कर रहा हूं, इसलिए वाइसराय सार्वजनिक रूप से मेरे साथ घनिष्ठ संबंध रखने मे कठिनाई का अनुभव करते थे, क्योकि उधर वह काग्रेसवादियो को जेल भेज रहे थे। इसका यह लाजमी मतलब नही कि उन्हें मेरा या उन लोगो का, जिन्हे वह जेल भेजने को बाध्य होते थे और जिनके साथ सघर्ष समाप्त हो जाने के बाद सामान्य मधुर सवध कायम करने को वह तैयार हो जाते, कम लिहाज था। पर मैं भडक उठा और मुझे बड़ा ही क्रोध आया, क्योकि मुझे लगा कि कम-से-कम उन्हें यह तो पता होना चाहिए था कि मैं कांग्रेस के सविनय अवज्ञा-आदोलन को आर्थिक सहायता नही दे रहा हू। मेरी भक्ति बापू के प्रति थी और मैं उन्हे किसी भी चीज के लिए इकार नही कर सकता था। वह अपनी सभी योजनाओ में मुझसे सहायता मांगा करते थे, पर बापू यह अच्छी तरह जानते थे कि मैं काग्रेसवादी नही हू, और उन्होंने मुझे सविनय अवज्ञा-आंदोलन के लिए रुपया देने को कभी कहा भी नही। उन्हें मुझसे जो रुपया मिला उसे उन्होने किसी ऐसे काम मे लगाया भी नही। उन्होने खुद काग्रेस के लिए रुपया नही जुटाया और न वह साधारणतया काग्रेस के लिए रुपये की अपील ही किया करते थे। जनता पर उनका इतना भारी प्रभाव था कि वह बहुत बडे धन-सग्राहक बन गये थे, पर उनकी अपीलें हरिजनो, गृह-उद्योगो, बुनियादी तालीम और विविध रचनात्मक कामो के लिए ही होती थी।

मैंने महादेवभाई को जो पत्र लिखा था, वह यह है :

२६ दिसम्बर, १९४०

मैंने यहा आने के तुरन्त बाद लेथवेट को लिखा कि मेरी वाइसराय के साथ मुलाकात तय करा दें और यह भी लिखा कि वाइसराय से मिल लेने के बाद मैं उनसे भी मिलना चाहूंगा। लेथवेट का जवाब मिला कि उन्हें भय है कि वाइसराय से तो मिलना नही हो सकेगा, पर वह स्वयं मुझसे मिलकर प्रसन्न होगे। मुझे शक हुआ कि पुरानी नीति मे परिवर्तन हुआ है, पर लेथवेट से मिलने के

पहले मैंने कोई खयाल बनाने से इन्कार कर दिया।

अगले दिन एम० सी० मित्रा वाइसराय से मिलने जा रहे थे। वाइसराय ने एक सप्ताह पहले ही उनसे कहा था कि वह मेरे द्वारा गांधीजी के साथ संपर्क बनाये हुए हैं। उन्होंने मेरे लिए 'मेरे मित्र श्री बिड़ला' शब्दों का प्रयोग किया था। स्वभावतया ही मित्रा ने यह जानना चाहा कि क्या वह वाइसराय के सामने कोई प्रस्ताव रख सकते हैं। मैंने उन्हें बताया कि तुमने लेथवेट को जो सुझाव दिया है, मित्रा को वाइसराय से मिलते समय उसी पर जोर देना चाहिए। मित्रा वाइसराय से मिलते समय उस प्रस्ताव के बारे में कुछ भी याद नहीं रख पाये। किन्तु जब मित्रा ने वाइसराय से कहा कि सम्भव है, मेरे साथ उस सुझाव के बारे में फिर चर्चा हो, तो वाइसराय ने कहा, "श्री बिड़ला मेरे मित्र हैं, पर इन दिनों वह आंदोलन को पैसा दे रहे हैं। उन्हें ऐसा करने का पूरा अधिकार है, क्योंकि उनका पैसा है। पर चूंकि वह आंदोलन को आर्थिक सहायता दे रहे हैं, इसलिए अभी मैं उनसे मिलने में रुकावट महसूस करता हूं।" जब मैंने यह सुना तो मेरे सन्देह की पुष्टि हो गई। नीति में परिवर्तन हो गया था। फिर भी लेथवेट से मिलने गया।

लेथवेट से मिलने पर मैंने उनसे कहा, वैसे तो मैं वर्तमान गतिरोध के बारे में कुछ रचनात्मक चर्चा करने आया हू, पर मैं समझता हूं कि पहले यह बता देना अच्छा रहेगा कि वाइसराय ने मेरे बारे में मित्रा से जो कुछ कहा, उसे सुनकर मुझे बड़ा धक्का लगा है। लेथवेट ने जवाब दिया, "पर क्या यही बात सबकी जबान पर नहीं है ?" मैंने कहा, "सबकी जबान पर क्या बात है इससे तो मुझे कोई सरोकार नहीं है। प्रश्न तो यह है कि क्या आपका भी यही विश्वास है ?"

उन्होंने कहा, "नहीं।"

मैंने कहा, "नहीं, है।" और मैंने यह भी कहा कि चूंकि मुझे यह पता चल गया है कि वाइसराय को मुझपर भरोसा नहीं है, इसलिए मैं इस बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहता। लेथवेट ने कहा, "पर क्या आप कांग्रेसवादी नहीं हैं ?" मैंने उत्तर दिया, "मैं कांग्रेसवादी नहीं हूं। हां, गांधीवादी अवश्य हूं। गांधीजी मेरे लिए पिता के समान हैं। मैं उनके सारे लोकोपकारी और रचनात्मक कार्यों में गहरी दिलचस्पी रखता हू। गांधीजी ने मुझसे राजनैतिक लड़ाई में भाग लेने को कभी नहीं कहा। वाइसराय को अबतक यह जान लेना चाहिए था कि समूचे भारत में उनकी सहायता करने की जितनी चेष्टा मैंने की और उनका साथ देने के मामले में जितनी वफादारी मैंने दिखाई उतनी और किसी ने नहीं दिखाई होगी, और वाइसराय ने मुझे यह पुरस्कार दिया है! यदि वाइसराय की धारणा यह है कि एक ओर तो मैं उनके पास एक मित्र की हैसियत से आता हूं और दूसरी ओर गुप्तरूप से उनके खिलाफ काम कर रहा हूं, तो फिर उनका समय और अधिक बर्बाद करने की मेरी इच्छा नहीं है। वाइसराय ने मेरी

ईमानदारी पर शक करके मेरे प्रति अन्याय किया है, और मैं और अधिक लांछित होना नही चाहता।"

लेथवेट कुछ कट-से गये। "पर अपनी पसन्द के राजनैतिक सपर्क रखने मे क्या बुराई है ?" मैंने कहा, "कोई बुराई नही है, पर बुराई इसमे है कि आदमी हो कुछ और बने कुछ। मैंने वाइसराय को और आपको (अर्थात् लेथवेट को) अपने बारे मे जानकारी कराने की पूरी-पूरी कोशिश की है। पर पाच साल के बाद भी मेरे साथ मानवी सम्बन्ध कायम नही हो सका। अब मेरी ईमानदारी पर ही शक किया जा रहा है। इसलिए इस ढग का नाता बनाए रखने की मेरी इच्छा नही है।"

लेथवेट ने मुझे शात करने की चेष्टा की और जानना चाहा कि वह रचनात्मक सुझाव क्या है, जो मैं उन्हें देना चाहता था। पर मैंने कहा, "किसी रचनात्मक प्रस्ताव पर चर्चा करने योग्य आत्मविश्वास अब मुझमे नही रहा है।" उन्होंने कहा, "इसमे क्या फर्क पडता है कि आप एक मित्र की हैसियत से आते हैं या विपक्षी की हैसियत से ?" मैंने कहा, "फर्क जरूर पडता है। मैं विपक्षी की हैसियत से आऊगा तो मेरी बात का आप पर अधिक प्रभाव नही पडेगा। मैं मित्र की हैसियत से ही तो कुछ असर डाल सकता हू। और अब चूकि मुझे मित्र नही समझा जा रहा है, इसलिए आगे बात चलाने की मेरी इच्छा नही है।" जब उन्होंने ज्यादा दबाव डाला तो मैंने उन्हें अन्यमनस्क भाव से बताया कि मैं उनसे किस विषय पर बात करना चाहता था। उन्होने मुझे फिर ठंडा करने की कोशिश की।

वह मुझे विदा करने के लिए अपने दफ्तर के बाहरी अहाते तक आये। हर तरह का शिष्टाचार दिखाया, पर मैं शान्त होने की वृत्ति में न था। बस, मामला यही खत्म हो गया। उन्होंने कहा, "हम चाहे जब मिल सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं।" पर मैंने कह दिया कि वाइसराय की ओर से यह प्रसाद पाने के बाद वाइसराय भवन मे फिर पाव रखने की मेरी इच्छा नही है और उनके साथ मेरी बातचीत का यह बिलकुल अन्तिम अध्याय है।

मैंने बापू के आगे वाइसराय की कितनी कुछ वकालत की है और ऐसा व्यवहार किया है मानो मैं वाइसराय का ही प्रतिनिधि होऊ, सो तुम्हें बताना न होगा। और इस सबका वाइसराय ने यह बदला दिया है। यह ओछापन नही तो और क्या है ? पर बापू को वाइसराय को गलत नही समझना चाहिए। कौन जाने, वह स्वयं परिस्थितियों के शिकार न बन गए हों।

जो हो, इसके साथ वाइसराय के साथ मेरे सम्बन्धो का अन्त होता है। कितने जड़ मालगधाने हैं ये लोग !

३०. बापू पत्र-लेखक के रूप में

पाठकों ने देखा होगा कि मैंने बापू के पत्रों की अपेक्षा उनके निजी मंत्रियों के पत्रों से अधिक खुलकर उद्धरण दिए हैं। मैं उनके मंत्रियों को अधिक लिखा करता था, इसका कारण यह था कि मैं बापू पर उत्तर देने का बोझ नहीं डालना चाहता था। बापू स्वभाव से इतने मृदुल थे कि वह मेरे पत्रों का उत्तर निश्चय ही देते। मैं यह तो जानता ही था कि मैं बापू के मंत्रियों को जो पत्र लिखता हूं वे बापू के सामने रख दिये जाते हैं। दुर्भाग्यवश बापू के सैकड़ों मदाशयी प्रशंसक, जिनमें से अधिकांश उनसे व्यक्तिगत रूप में परिचित नहीं होते थे, बराबर सीधे बापू को ही लिखा करते थे और उन्हें बापू खुद ही जवाब देते थे। इससे उनके समय और स्वास्थ्य दोनों पर बोझ पड़ता था, और चूंकि बापू के पत्र-लेखक बापू के पत्रों पर गर्व का अनुभव करते थे और उन्हें प्रायः बहुमूल्य वस्तुओं के रूप में अपने पास रखते थे, इसलिए बहुत कम ऐसे सार्वजनिक व्यक्ति हुए हैं, जो इतना पत्र-व्यवहार अपने पीछे छोड़ गये हों, जितना बापू छोड़ गये हैं।

तो भी बापू समय-समय पर मुझे पत्र लिखते रहते थे। मजे की बात यह है कि जहां एक ओर मुझे उनके स्वास्थ्य के बारे में गहरी दिलचस्पी रहती थी और जब वह दिल्ली में नहीं होते थे तो मैं बराबर यह जानने के लिए आश्रम तार भेजता रहता था कि उनका रक्तचाप बढ़ा तो नहीं या वजन कम तो नहीं हो गया, वहां दूसरी ओर बापू भी अपने पत्रों में बहुधा बिलकुल अनावश्यक रूप में मुख्यतः मेरे स्वास्थ्य के बारे में ही लिखा करते थे। मैं यह पहले ही लिख चुका हूं कि कई वर्षों पहले जब मैं युवक था और पहली बार इंग्लैण्ड गया था तो बापू ने किस प्रकार मुझे बड़ी सावधानी के साथ हिदायतें लिख भेजी थीं। उनकी यह रुचि बराबर बनी रही और उनके कुछ पत्र विस्तार के कारण और कुछ डाक्टरी सलाह लिये हुए होने के कारण प्रकाशन-योग्य शायद ही सिद्ध हों। फिर भी उदाहरण के तौर पर कुछ ऐसे पत्र दे रहा हूं जो उन्होंने मुझे अपने जीवनकाल के अन्तिम चरण में लिखे थे।

सेगांव
२०-३-४५

चि० घनश्यामदास,

तुमको तार एक्सप्रेस भेजा है। नकल साथ भी है। क्या, कितना कब खाते हैं? भाजी में क्या? कच्ची कि उबाली हुई? पानी फेंका तो नहीं जाता? टोस्ट से बेहतर खाकरा नहीं होगा? आटा के साथ चोकर है? दूध लेते हैं तो कितना?

कुछ भी हो आधा आउन्स मक्खन टोस्ट खाकरा पर लगाकर सेलाड के साथ लेना। बदहजमी हो तो दूसरा खाना कम करो लेकिन मक्खन रखो। गहरा श्वास अत्यावश्यक है। एक नाक बन्द करके दूसरे नाक से स्वास खीचो। आस्ते-आस्ते बढाकर आध घटे तक जा सकते हैं। प्रत्येक श्वास के साथ राम-नाम मिलाओ। श्वास लेने के समय चोमेर से हवा होनी चाहिये। खुले में हो तो अच्छा ही है। प्रात.काल में लेना ही है, बाकी खाना हजम होने के बाद। कम-से-कम चार बार लेना। श्वास लेना है, निकालना है। यह क्रिया आराम से करनी चाहिये। पाखाना बराबर आता है ? नीद आती है ? यह सब समझपूर्वक होगा तो खासी शीघ्र ही चली जायगी।

बापू के आशीर्वाद

६-४-४५

चि० घनश्यामदास,

मेरे अक्षर पढ सकते हैं क्या ? मुश्किल लगे तो मैं लिखवाकर भविष्य मे पहुचा भेजू।

दिन तो चले जाते है। समय पेटभर बातें करने का रहता नही इसलिये मुझे कहना है सो तो लिखू क्योंकि मेरी बात तो मैं लिखकर खतम कर सकूगा। उत्तर तो दो-चार शब्दो मे दे सकते है। इसका मतलब यह नही कि मैंने कहा है सो खीच लेता हू। मै तुमको वक्त न दू तबतक यहा से नहीं हटूगा। मेरी बात के लिये ठहरना नही चाहता।

१ मेरा काम बढ गया है। अब तो कोशिश कर रहा हूं कि मेरे पास पैसे की कोई आशा न करे और मैंने बनाई हैं वे सब सस्था स्वाश्रयी बन जायं। ऐसा होने मे कुछ समय तो जायगा और दरम्यान मुझे पैसा निकालना होगा। सस्थायें तो (१) चर्खा संघ (२) ग्राम उद्योग सघ (३) नई तालिम (४) हिन्दुस्तानी प्रचार और (५) आश्रम हैं। २, ३, ४, ५ की हाजत आज है। पाचवी संस्था आश्रम तो कभी स्वाश्रयी नही बनेगी। कोशिश तो करता हूं। आश्रम मे अस्पताल आता है। अस्पताल का खर्च अलग रहता है। उसके पैसे इधर-उधर से आया करें, ऐसी चेष्टा चल रही है तो भी आश्रम का खर्च प्रतिवर्ष एक लाख के नजदीक जाता है। मैं स्मरण से लिख रहा हूं। आश्रम को आज हाजत नही। रामेश्वरदास पैसे भेजते हैं। रहे २, ३, ४, उनके लिए पैसे चाहिये। रामेश्वरदास ने कुछ भेज दिये हैं ऐसा ख्याल है। हिं० प्रचार और नयी तालिम के लिए चाहिये। शायद मुझको दो लाख की आवश्यकता रहे। यह खर्च उठाओगे क्या ? सफरर्स फड का रामेश्वरदास के खत मे है ही। मेरा खयाल भी मैंने बताया है।

२ अब रही बात साथियो के साथ के सबध की और मेरे प्रयोग की। प्रयोग

तो अब साथियो के खातिर बन्द है। मुझको उसमे कुछ अनुचित नही लगता है। मैं वही ब्रह्मचारी हूं जो १९०६ की साल मे प्रतिज्ञा से रहा और १९०१ से ब्रह्मचारी की स्थिति मे रहा। आज मैं १९०१ से बहुतर ब्रह्मचारी हूं। मेरे प्रयोग ने अगर कुछ किया है तो यह कि मैं था इससे ज्यादा पक्का हुआ। प्रयोग पूर्ण ब्रह्मचारी बनने के लिये था और यदि ईश्वरेच्छा होगी तो सपूर्ण बनने के कारण होगा। अब इस बारे में तुम बातें करना और प्रश्न पूछना चाहते थे। दोनो चीज कर सकते हैं। सकोच की कोई बात है नही। जिसके साथ इतना घनिष्ट सबध है और जिसके धन का मैं इतना उपयोग करता हू उसके मन मे कुछ सकोच रहे सो मेरे असह्य होगा। अच्छा है कि दोनों भाई मौजूद हैं। यह पत्र दोनो के लिये तो है ही, लेकिन सब भाइयो के लिये और परिवार के लिये ऐसा समझो।

पत्र छोटा लिखना था लेकिन कुछ लम्बा तो हुआ ही। बात तो तीन है।

बापू के आशीर्वाद

एक बात रह गई। आश्रम की जमीन वि० गौशाला को दी गई इसके तुमने ५०,०००) दिये हैं। अब बात ऐसी है कि जब चिमनलाल ने फेरिस्त भेजी तो उसमे आश्रम का खेत और जिसमे कुआ है उसका कुछ जिकर है। अगर है तो सब मकान भी गये। ऐसे तो हो नही सकता। यह तो कुछ चूक ही थी। लेकिन खत तो जानकीदेवी आदि ने लिखे। कुछ निकाल नही आया। अब प्रश्न यह है कि अगर तुमने ऐसा माना है कि सब जमीन और कुआ गोशाला को दे दिया था तो तुम्हारे ५०,०००) मे से कुछ काटना होगा। तुम्हारे जैसा करना है ऐसा किया जाय।

—बापू

किन्तु इसके बाद के दिनो मे बापू मुझे और जल्दी-जल्दी पत्र लिखने लगे थे।

यह बात उल्लेखयोग्य है कि जो काल राजनैतिक उत्तेजना से परिपूर्ण था और जिस समय बापू के सिर पर भारी जिम्मेदारियां थी, उसमे भी वह अपने को धूम-धड़ाके से अलग कर लेते थे और अपनी लोकहितकारी योजनाओं की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों के बारे मे लिख सकते थे। उन्होंने १६ अक्तूबर को मुझे एक लंबा-सा पत्र लिखा, जिसका पहला भाग नासिक की स्कूल की इमारतो और सेनेटोरियम के बारे मे था। उन्होने आगे लिखा था :

"सरदार का अभिप्राय मैं लिख दू। वे मानते है कि इस काम में मुझे यहां तक रस नही लेना चाहिये। आर्थिक मदद देना है तो वह दिलवाकर शात रहना चाहिये। सरदार मनुष्य स्वभाव को जाननेवाले हैं और मेरे प्रति उनका अतिशय

भाव रहा है इसलिये उनकी वृत्ति को भी तुम्हारे सामने रखना मुझे अच्छा लगता है जिससे तुम तटस्थ भाव से इस चीज का निर्णय कर सको।"

इसके बाद नासिक और प्राकृतिक चिकित्सा के संबंध मे कुछ और बातें हैं। फिर निम्नलिखित रोचक पैरा आता है :

"इस काम मे मेरा बहुत रस होते हुये भी तटस्थ रूप से ही कार्य देख रहा हूं और कर रहा हू ऐसा समझो। अगर मुझे १२५ वर्ष तक जिन्दा रहना है तो उसकी यह भी शर्त है कि मेरी तटस्थता यानी अनासक्ति की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़नी चाहिए और मनुष्य के लिए शक्य है वहां तक संपूर्णता को पहुचनी चाहिए। यह कैसे हो सकता है, होगा या नहीं यह नही जानता हू। जानने की इच्छा भी क्यों करू ? उस आदर्श को दृष्टि मे रखते हुए मैं जिसे कर्तव्य समझू वही करना है। मैं इतना समझता हू कि इस आदर्श को पहुचना कठिन है, लेकिन कठिन कार्य करते हुये ही जीवन गुजरा है।

बापू के आशीर्वाद"

बापू अपने विविध लोकोपकारी कार्यों की खातिर एक बहुत ही कुशल व्यापारी भी थे, इसका पता इस पत्र से चलता है.

पूना
ता० १२-७-४६

भाई घनश्यामदास,

यह तो आपको पता है कि आप लोगो की मन्जूरी से कस्तूरबा ट्रस्ट का करीब १०, १२ लाख रुपया सेन्ट्रल और यूनाइटेड कमर्शियल बैंकों मे फिक्स डिपाजिट के रूप मे लगा हुआ है। सेन्ट्रल बैंक १२ महीने की मियाद पर १॥। सैकड़ा ब्याज देता है और यूनाइटेड कमर्शियल बैंक २। सैकड़ा। ट्रस्ट चूकि परमार्थिक कार्य के लिये है इसलिये मेरी तो यह इच्छा है कि बैंको को जो कुछ ब्याज सरकारी लोन से या अन्य साधनो से मिलता है वह ट्रस्ट को दे। इसका अर्थ यह है कि ट्रस्ट को ३ सैकड़ा टका ब्याज तो मिलना ही चाहिये। मैं सेन्ट्रल बैंक से ब्याज के सम्बन्ध मे सर होमी मोदी को लिख रहा हू और यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के सम्बन्ध मे आपको लिख रहा हूं। आप उसके अध्यक्ष की हैसियत से ३ तीन सैकड़ा ब्याज दें तो अच्छा होगा।

मैं कल पचगनी जा रहा हू। उत्तर वही भेजना।

बापू के आशीर्वाद

बापू ने मुझे पंचगनी बुलाया और मैं वहा गया। उनके पास प्राकृतिक चिकित्सा की बहुत बड़ी योजनाएं थी, जिनके बारे मे उन्होने चर्चा की, किन्तु बाद में उन्हें छोड़ दिया।

३१. स्वतंत्रता का आगमन

यह बात सभी जानते हैं कि युद्ध का अत होने पर १९४५ के पूर्वार्द्ध मे हमे अशात समय मे से होकर गुजरना पडा था, किन्तु अगस्त मे जब इग्लैंड मे मजदूर दलीय सरकार सत्तारूढ़ हुई तो दृश्य इतना बदल गया कि उन दिनो के घटना-चक्र—वेवल-योजना, शिमला-सम्मेलन और अन्य उत्तेजनाओ का जिक्र करना बेसूद-सा होगा। श्री जिन्ना के बारे मे बहुत-से लोगो ने यह समझने की भूल की कि वह झासा-पट्टी देनेवाले व्यक्ति हैं। पर वह अखिल भारतीय एकता के मार्ग मे एक दुर्लंघ्य दीवार और निष्ठुर इरादों को पूरा करने के मामले मे अडिग व्यक्ति सिद्ध हुए। ब्रिटेन मे सरकार का जो परिवर्तन हुआ उसमे भी यह रुकावट दूर नही हुई और शुरू-शुरू मे ब्रिटेन में हुए परिवर्तन के महत्त्व को भारत मे पूरी तरह से नही समझा गया। सन्देह की जड़ का उखाड़ना कितना कठिन कार्य है :

सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने मुझे लिखा :

"आशा करता हूं कि आपके कांग्रेसी मित्र सर्वथा नकारात्मक दृष्टिकोण न अपनाकर हमारी कुछ सहायता करेंगे।

कांग्रेस की ओर से जो वक्तव्य दिये जा रहे है वे उन लोगों के लिए अधिक सहायक सिद्ध नही हो रहे हैं, जो इस मामले का निपटारा करने की चेष्टा मे लगे हुए हैं। इन वक्तव्यों से तो विरोधियों की दलीलें ही वजनदार होती जा रही हैं।

आपने मार्ग को निष्कंटक बनाने के लिए जो कुछ किया है, और जो कुछ कर रहे हैं, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। ब्रिटिश सरकार का निश्चय ही इस मामले मे आगे बढने का इरादा है, पर भारत की मदद के बिना हम सफल नही हो सकते।"

उत्तर में मैंने लिखा :

"चुनाव के समय आपको कुछ असंयत भाषण सुनने को मिलेंगे, पर उन्हें महत्त्व नही देना चाहिए। आखिर चुनाव तो चुनाव ही है। ब्रिटिश चुनाव हमारे चुनाव से कुछ कम कटुतापूर्ण नही था। इसके अलावा अतीत की पृष्ठभूमि मौजूद है ही। साथ ही इग्लैड के अग्रेजो की मनोदशा और यहा के अंग्रेजो की मनोदशा के अतर को बात भी नही भूलनी चाहिए। इसके ऊपर इधर इण्डोनेशिया के उपद्रव को लेकर जनता का मन काफी उद्वेलित हो रहा है, सो भी दुर्भाग्य की ही बात है। मैं आशा करता हू कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न को हल करने मे भी सहायक कदम उठाएगी। लोकतत्र और स्वशासन इडोनेशिया के लोगों के लिए अन्य राष्ट्रो की अपेक्षा कम जरूरी नही है। मैं यह कहने का साहस करता हू कि इस आकाक्षा के प्रति आपकी पूरी सहानुभूति है। इन सम्बन्धित प्रश्नो के हल का तमाम एशियाई राष्ट्रों पर गहरा प्रभाव पडेगा।

मुझे भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल और मित्रतापूर्ण नजर आता है। बहुत कुछ इसपर निर्भर करेगा कि दोनो पक्ष कैसा आचरण करते है, और यह भी सही दृष्टिकोण और व्यक्तिगत सम्पर्क पर ही निर्भर है।

इस समय व्यक्तिगत सम्पर्कों मे वृद्धि हो तो बडी बात हो, क्योकि आगामी छह महीने दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धो के लिए बडे ही महत्त्व के महीने सिद्ध होगे। मै यहा अपने कुछ मित्रो को यह सुझाव दे चुका हू। पर वे सब इस समय चुनावो मे बेतरह व्यस्त दिखाई देते हैं। यदि आपके पक्ष के कुछ लोग व्यक्तिगत हैसियत से भारत की यात्रा करें तो कितनी अच्छी बात हो।

जो हो, स्थिति को सरल बनाने की दोनो ओर से भरसक कोशिश होनी चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि भगवान् के आशीर्वाद से दोनो देशों के बीच स्थायी मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे। इससे सारी दुनिया का भी मगल होगा।"

इस समय श्री आर्थर हेण्डर्सन के साथ मेरा काफी पत्र-व्यवहार हुआ। यथा-समय मत्रिमडल मिशन, जिसमे लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री एलेक्जेंडर थे, यहा आ पहुचा। सर स्टेफर्ड क्रिप्स और पैथिक लारेंस भारत के जाने-बूझे मित्र थे और औसत दर्जे के समझदार आदमी ने यह जरूर समझ लिया होगा कि ब्रिटिश सरकार ने युद्धकाल मे लडाई बन्द होते ही और शांति-सधि पर हस्ताक्षर होने की प्रतीक्षा किए बिना ही भारत को स्वतत्रता प्रदान करने का जो वादा किया था उसे पूरा करने का उसका पूरा-पूरा इरादा है। पर विधि का विधान किसी तरह की दया-ममता दिखाए बिना हमे विभाजन की ओर खीचे लिए जा रहा था। काग्रेस यह मानने के लिए तैयार न थी कि मत्रिमडल मिशन की योजना का एकमात्र उद्देश्य देश को विभाजन से बचाना है। उसने तो इस

योजना को फूट डालकर शासन करने की नीति का सबसे ताजा प्रदर्शन समझा। उसका लालन-पालन ही इस धारणा के वातावरण मे हुआ था। इसमे सदेह नही कि कभी भारत-स्थित अंग्रेजो ने इस नीति का अनुसरण किया था, पर यह नीति वेस्टमिन्स्टर को कभी नही रुची। जो हो, मत्रिमडल मिशन की योजना को रद्द कर दिया गया। कांग्रेस का कहना यह था कि वह इस योजना को उसी दशा में स्वीकार कर सकती है, जब उसे उसकी अपनी ही व्याख्या करने की छूट रहे। यह व्याख्या ऐसी थी कि ब्रिटिश प्रधान मत्री श्री एटली ने साफ-साफ कह दिया था कि वह सही नही है, क्योंकि योजना के प्रस्तावको की व्याख्या वैसी नही है और उसके बारे में वही ज्यादा जान सकते हैं। राजाजी ने सदा की भाति इस अवसर पर भी अपने दिमाग को ठण्डा रखा। उन्होने मुझे लिखा:

२०-५-४६

"प्रिय घनश्यामदासजी,

मैंने कार्य-समिति का प्रस्ताव आज प्रात.काल पत्रों मे पढा। मुझे जिसकी आशंका थी वही हुआ। यह रुपये में सोलह आने की मांग है और पुरानी कहानी की पुनरावृत्ति-मात्र है।

आप कोई खुशखबरी दे सकें तो बात दूसरी है।"

पर मेरी यह बद्धमूल धारणा थी कि विभाजन होकर रहेगा। साथ ही मैं यह भी समझता था कि हमारी कठिनाइयों से निस्तार पाने का यह एक अच्छा-खासा तरीका है।

मैं सर स्टेफर्ड के स्वास्थ्य के बारे मे खासतौर पर चिन्तित था, क्योंकि ये दिन बेहद गर्मियों के थे और उन्हें ऐसी आबहवा में रहने का अभ्यास नही था। वह इतने श्रान्त दिखाई देते थे कि जब मैंने इसका जिक्र गाधीजी से किया तो वह बोले, "सर स्टेफर्ड से कहो कि मैं बिना फीस उनकी डाक्टरी कर सकता हूं।" बापू को दूसरो की चिकित्सा करने मे बडा आनन्द आता था और उन्होंने अपने लिए भी खान-पान के सम्बन्ध मे कड़े नियम बना रखे थे। अतएव मैंने सर स्टेफर्ड को खाने-पीने की सूचनाओ से भरा एक पत्र भेजा और साथ ही कुछ फल और सब्जिया भी। मेरे पत्र के उत्तर मे सर स्टेफर्ड ने लिखा:

६ अप्रैल, १९४६

"गाधीजी ने मेरी चिकित्सा का भार लेने की जो बात कही उसका मेरे दिल पर खासतौर से असर हुआ। मैं उनके प्रस्ताव को गम्भीर भाव से ग्रहण करता हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि उनके विचार उस महिला (बीट्रिस ब्रेट) के विचारों-

जैसे हैं जो इंग्लैंड में मेरे स्वास्थ्य की देखभाल करती हैं। यदि मुझे किसी चिकित्सक की दरकार हुई तो उनसे अवश्य अनुरोध करूगा।

आपने प्रोटीनो की जो चर्चा की है सो आपके कहने के बाद से ही मैंने छाछ की व्यवस्था कर ली है। मैंने पहले इस ओर ध्यान नही दिया था, पर मुझे इस रूप में दूध सचमुच अच्छा लगता है, और यह मेरे स्वास्थ्य के लिए भी हितकर है। इस प्रकार आपकी सलाह मेरे लिए बडी ही लाभदायक सिद्ध हुई है।"

मन्त्रिमडल मिशन इंग्लैंड लौट गया। उसे अधिक सफलता नही मिली। जिसे दीर्घकालीन योजना कहा जाता है उसे काग्रेस ने स्वीकार कर लिया था, इसलिए उसे सरकार बनाने को कहा गया। इसपर श्री जिन्ना बिगड गए। ऐसा लगने लगा कि उन्होने अपनी पार्टी की ओर से योजना के दोनो अगो को—अर्थात् अल्पकालीन और दीर्घकालीन अगो को—अगीकार करके काग्रेस को मात दे दी है। उन्होने लार्ड वेवल को धिक्कारा और उनपर विश्वासघात का आरोप लगाया। प्रारम्भ मे तो वह अन्तरिम सरकार की रचना मे किसी प्रकार का सहयोग देने से बराबर इन्कार करते रहे, पर अन्त में उन्होने स्वय अलग रहते हुए अपनी पार्टी के प्रतिनिधियों को उसमे भाग लेने की अनुमति दे दी। यह जाहिर था कि उन्होने अतरिम सरकार मे अपने प्रतिनिधियो को मेल-जोल की भावना से नही, बल्कि इस उद्देश्य से भेजा था कि वे चौकसी रखें और यह देखें कि उनके दावे अनसुने खारिज न हो जाय। इस कारण आरम्भ से ही अतरिम मन्त्रिमडल एक सुखी परिवार सिद्ध नही हुआ। वह तो दो झगडने वाले तत्त्वों का अखाडा बन गया। तेल और पानी की तरह उनके भी मिलने की सभावना नही थी। इसके बाद कलकत्ते मे जो भयकर नर-संहार हुआ, वह अन्यत्र की निष्ठुरता का प्रतिबिम्ब मात्र था। राजनीतिज्ञो की योजनाओ मे हजारो निर्दोष नर-नारियो के जीवन का मानो कोई मूल्य ही न हो। मैंने अक्तूबर मे सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा·

"लीग अन्तरिम सरकार मे विरोधी मानस के साथ शामिल हो रही है। जिन्ना ने जवाहरलालजी की शर्तों को तो अस्वीकार कर दिया, पर जब वही शर्ते उनके सामने वाइसराय ने रखी तो उन्हें झट स्वीकार कर लिया। यह भावी मेल-मिलाप के लिए शुभ चिह्न नही है।

पर हमारी सरकार को तो राजनीति की अपेक्षा जनता की गरीबी की ओर अधिक गभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। किन्तु सरकार आर्थिक मामलो को हाथ मे नही ले पा रही है। वह तो राजनीति मे व्यस्त है और आज की राजनीति का एकमात्र अर्थ है जिन्ना।"

उन आड़े दिनों मे बापू और श्री नेहरू ने बंगाल और बिहार मे बड़े शौर्य का परिचय दिया। वहां दोनों जातियां एक-दूसरे से बदला लेने मे लगी हुई थीं। सर स्टेफर्ड ने १८ नवम्बर, १९४६ को मुझे लिखा :

"मेरे खयाल मे शांति-स्थापन के कार्य मे गांधीजी का योग बहुत ही उल्लेख-योग्य रहा है और उन्होंने जो कुछ किया है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।"

मेरे नाम बापू का यह लम्बा पत्र अपनी कहानी स्वयं कहेगा

२६-११-४६

चि० घनश्यामदास,

तुम्हें पता है कि मैं श्रीरामपुर मे एकाकी रहता हूं। साथ में प्रो० निर्मल चंद और परसराम हैं। यहां के घरवाले सज्जन हैं। एक ही हिन्दू कुटम्ब इस देहात मे है, बाकी सब मुसलमान है। सब दूर-दूर रहते हैं। यहां सैंकडो देहात ऐसे है जो पानी सूखने के बाद एक-दूसरे से वाहन सम्बन्ध कम रखते हैं। नतीजा यह है कि पैदल काम हो सकता है इसलिए यों भी बदमाश लोग या शरीर से सशक्त साधु लोग ही एक दूसरो के साथ व्यवहार कर सकते हैं। ऐसी एक देहात में मैं पडा हूं और यहां से जो ऐसी देहात मे दिन व्यतीत करूंगा। जबतक यहां के हिन्दू-मुसलमान हार्दिक मैत्री से नही रहते तबतक तो यही रहने का इरादा है। भगवान ही मन स्थिर रख सकता है। आज तो दिल्ली छूटा, सेवाग्राम छूटा, उरूली, पंचगनी छूटा। इच्छा यहां मरना या करना है। इसमे मेरी अहिंसा की परीक्षा है। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिए आया हूं। मुझे मिलना चाहिए तो यहां आ सकते हैं तो आना होगा। मैं आवश्यकता महसूस नहीं करता हूं। किसी को पूछने के लिए भेजना है या हाथ से डाक भेजना है तो भेजो।

कन्स्टीट्यूयेंट असेम्बली मे मैं नहीं जाऊंगा। आवश्यकता भी कम है। जवाहर-लाल, सरदार, राजेन्द्रबाबू, राजाजी, मौलाना सब जा सकते हैं, या पांचों या कृपलानी। उन सबको पैगाम भेजो। यदि मिलिटरी की मदद से ही क० असेम्बली बैठ सकती है तो नही बैठाना अच्छा होगा। शान्ति से बैठ सके तो जितने सूबे शरीक होवें उनके ही लिए कानून बन सकते हैं। मिलिटरी पुलिस का भविष्य मे क्या होगा सो देखना होगा। मुसलिम सूबे क्या करेंगे ? जिन सूबो में मुसलिम संख्या कम है वहा क्या करना सो भी देखना होगा। अंग्रेजी सरकार क्या करेगी, राजा लोग क्या करेंगे यह सब देखना होगा। मेरा ख्याल है कि तब १६ अप्रैल का स्टेट पेपर बदलना होगा। काम मेरी निगाह मे पेचीदा है अगर हम सब काम

स्वतन्त्र रूप से करना चाहे तो। मैंने तो मेरे ख्यालो का दिग्दर्शन करवाया है।

यह भी मित्रवर्ग समझ लें कि यहां जो मैं कर रहा हूं वह, कांग्रेस के नाम से मन में भी नही है, निजी अहिंसा दृष्टि से है। मेरे कार्य का विरोध हर कोई आदमी जाहिर मे भी कर सकता है। उनका अधिकार है। धर्म भी हो सकता है। इसलिए जो कुछ किसी को कहना करना है निडर रूप से कहा जाय, किया जाय। मुझे किसी बात मे सावधान करना है तो किया जाय।

इसकी नकल सरदार को भेजो और उपरोक्त और अन्य मित्रो को बतावे या इतनी करवा कर उन उन मित्रो को भेजो।

तुम्हारे कहना है सो कहो।

मुझको लिखना पडे सो सीधा लिखो। प्या०, सुशीला, ब०, सब अलग देहातो मे है। प्या० कल से बीमार है। कुशल होगे।

बापू के आशीर्वाद

इस दु खद काल मे मैंने एक बहुत लम्बा पत्र सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा— इतना लम्बा कि उसे पूरा उद्धृत करना सम्भव नही है। मैंने स्थिति का बहुत ही विषादपूर्ण चित्र खींचा :

"कांग्रेस के अन्तरिम सरकार में जाने के बाद, वाइसराय ने, जिनके सलाहकार श्री एवेल हैं, लीग के साथ किसी समझौते पर पहुंचने के लिए हमको एक क्षण का भी अवकाश नही दिया। अपनी चालो से वह मुस्लिम लीग की जिद का पोषण करते रहे। जिन्ना एक सिरे से सबको गालियां देते रहे। *'डान'* अखबार उग्र लेख लिखता रहा और वाइसराय जिन्ना के आगे सिर झुकाते रहे।

इसके बाद लीग अन्तरिम सरकार मे शामिल हुई। हमने संतोष की सास ली और समझा कि अब संविधान सभा मे लीग का सहयोग मिल जायेगा। हमे बताया गया कि जिन्ना से ऐसा आश्वासन ले लिया गया है। पर वास्तव मे ऐसा कुछ नहीं किया गया था। ठीक मौके पर लीग ने अपना पंजा दिखाया और संविधान सभा मे आने से इन्कार कर दिया। वाइसराय ने इस स्थिति को चुपचाप स्वीकार कर लिया।

लीग के सरकार मे शामिल होने के तुरन्त बाद स्थिति कुछ जमती हुई नजर आई। दंगों ने शायद सभी को यह सबक सिखाया कि हिंसा मे कुछ मिलने वाला नही। जैसा कि आपको मालूम ही है, दगो की शुरुआत कलकत्ते मे हुई। मुसलमानों ने 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' के दिन आक्रमण किया और हिन्दुओं ने जवाब दिया। मुसलमानों को हिन्दुओं से अधिक क्षति उठानी पड़ी। वे तड़प गये और उन्होने

कलकत्ते का बदला निकालने की योजना बनाई। अब नोआखाली-काण्ड हुआ। लोगों को भारी संख्या में धर्मच्युत किया गया। स्त्रियां भगाई गईं और उन्हें निकाह करने को मजबूर किया गया। हिन्दू भड़क उठे। इस तरह विहार और बिहार के बाद मेरठ के उपद्रव हुए।

जिन्ना ने आबादी की अदला-बदली का सुझाव रखा, जो कि मूर्खतापूर्ण सुझाव था। एक भी प्रमुख मुसलमान ने उनका समर्थन नहीं किया। पर उत्तर-प्रदेश बिहार और अन्य स्थानों के लोगों को, जो लीग के सबसे बड़े स्तम्भ थे, यह दिखाई देने लगा कि पाकिस्तान कायम हो जाने के बाद भी हिन्दू क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों को वहीं-के वहीं रहना होगा और पाकिस्तान की स्थापना से उन्हें कोई मदद नहीं मिलेगी। उत्तर प्रदेश के लीगी समझौता करना चाहते थे और वहां मिला-जुला मंत्रिमंडल बनाने के इशारे भी किये गए। यदि सफल होते तो अन्य स्थानों में भी समझौते हो गये होते।

परन्तु ठीक इसी मनोवैज्ञानिक अवसर पर मानो सारी योजना को उलट देने के लिए ही वाइसराय ने लंदन-यात्रा की यह योजना बनाई। जवाहरलालजी और प्रधान मंत्री के बीच तारों का जो आदान-प्रदान हुआ उससे हमारी धारणा हुई थी कि १६ मई के दस्तावेज पर पुनर्विचार का कोई सवाल नहीं उठता है, पर अब मेरी राय में, अप्रत्यक्ष रूप से सारी बात पर पुनर्विचार होगा। बहुत सारी बातों को अस्पष्ट छोड़ दिया गया है। मैंने ऊपर जो सवाल उठाये हैं उनके बारे में जिन्ना और ब्रिटिश सरकार की वास्तविक स्थिति क्या है, सो हमें आज तक मालूम नहीं हुआ है।

मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कांग्रेस अधिक-से-अधिक सदिच्छा से काम कर रही है। श्रीमती क्रिप्स की भांति आप भी सरदार पटेल के भाषणों की आलोचना कर सकते हैं, पर यदि वह चुप रह जाते तो स्थिति को बहुत गलत समझा जाता और मैं आपसे सच कहता हूं कि उन भाषणों का मुसलमानों पर बुरा असर नहीं पड़ा। उन्होंने विरोध अवश्य किया है, पर स्थिति को समझ लिया है।

पर यदि हर मौके पर, जब कभी हम ठोस काम में जुटेंगे और वाइसराय अमले के प्रतिगामी तत्वों की सलाह पर, और ब्रिटिश सरकार वाइसराय की सलाह पर, सावधान सभी की प्रगति की राह में रोड़े अटकाने लगेगी तो लीग हताश हो जायंगे और सारा ढांचा गिर पड़ेगा और इतने परिश्रम के साथ स्थापित किया गया विश्वास नष्ट हो जायगा। तब तो स्थिति पहले से भी अधिक गम्भीर हो जायगी।

श्रीमती क्रिप्स ने मुझसे पूछा कि स्थिति को सुधारने के लिए आखिर क्या किया जाय ? मैंने उन्हें बताया कि निम्नलिखित बातें नितान्त आवश्यक हैं :

१. अन्तरिम सरकार एक टोली के रूप में काम करे। मुस्लिम लीग या तो

सविधान सभा मे भाग ले या अन्तरिम सरकार से अलग हो जाय। उससे यह बात साफ-साफ और दृढतापूर्वक कह देनी चाहिए।

२. यद्यपि मैं आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर आपत्ति नही करता और यह स्वीकार करता हू कि देश के किसी अनिच्छुक भाग पर कोई संविधान न लादा जाय, तथापि यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए, जैसा कि आपने १६ मई को राजकीय दस्तावेज मे किया है, कि यदि मुसलमान शरीक नही होते हैं तो अन्तिम उपाय यही है कि वे उन्ही स्थानो मे अपनी पसन्द का सविधान लागू कर सकेंगे जिनमे उनका बहुमत होगा—अर्थात् सारे पजाब और सारे बंगाल मे नही। हमारी प्रभुत्व करने की कोई इच्छा नहीं है, पर साथ ही हम यह भी हर्गिज मंजूर नही करेंगे कि हमारे ऊपर उनका प्रभुत्व लादा जाय।

३ वाइसराय और अमले को अपना काम ठीक तरह से करना चाहिए। लार्ड वेवल राजनीतिज्ञ नही हैं और उनके सलाहकार लीग का पक्षपात करते हैं और भारत को स्वतन्त्र नही देखना चाहते। इस विषय मे मुझे तनिक भी संदेह नही है।

४ हर हालत मे अमुक तारीख को सत्ता भारतीय हाथो में सौंप दी जायगी, इसकी घोषणा होना बहुत जरूरी है। जबतक यह अनिश्चय की स्थिति बनी रहेगी, कोई समझौता सम्भव नही होगा।

मैं ब्रिटिश सरकार की कठिनाइया समझता हू। मुझे इस विषय मे कोई संदेह नही है कि आप भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु आपको हमारी कठिनाइयो को भी तो समझना चाहिए। सदिच्छाओ के बावजूद अबतक जो कुछ होता रहा है उससे खाई पटी नही है, उलटे और चौडी हो गई है।"

मेरा यह सोचना दुस्साहस होगा कि स्वतन्त्रता की निश्चित तारीख या अवधि नियत करने के सम्बन्ध मे मेरे सुझाव मे प्रेरित होकर ही मजदूर सरकार ने वैसा करने का फैसला किया तथा लार्ड वेवल को वापस बुलाकर उनकी जगह लार्ड माउन्टबेटन को भेजा; पर मेरी धारणा है कि मेरे सुझाव का भी कुछ-न-कुछ असर पड़ा ही होगा :

तीन दिन बाद मैंने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को फिर लिखा :

१५ दिसम्बर, १६४६

"प्रिय सर स्टेफर्ड,

१२ तारीख को आपको पत्र लिखने के बाद, आपका पूरा भाषण भारत में प्रकाशित हुआ। उसमें घटनाओ का ठीक-ठीक निचोड दिया गया है। कुल मिलाकर ब्रिटिश लोक सभा की बहस को सन्तोषजनक कहा जा सकता है। जब मैं

देखता हूं कि चर्चिल और जिन्ना तो आपको कोसते ही हैं, इधर हम भी आपकी आलोचना करते हैं तो आपके साथ मुझे बड़ी सहानुभूति होती है।

देखता हूं कि मैंने अपने पिछले पत्र मे जो मुद्दे उठाये थे, उनमे मे एक का आपने अपने भाषण में उत्तर दिया है। ६ दिसम्बर के वक्तव्य के अन्तिम वाक्य का जिक्र करते हुए आपने कहा है कि मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में कोई सविधान नही लादा जायगा। इस बारे मे मेरा कोई झगड़ा नही है। यह कोई नहीं चाहता कि मुसलमानो के सहयोग के बिना निर्मित सविधान पूर्वी बगाल या पश्चिमी पजाब या अन्य मुस्लिम क्षेत्रो पर लादा जाय। पर क्या सचमुच आपका यह विश्वास है कि जिन्ना सहयोग करेंगे ?

मुझे तो पूरा सदेह है कि जिन्ना अन्त मे सविधान सभा मे भाग लेने आ जायंगे और वह ऐसा करेंगे भी तो सिर्फ पाकिस्तान की लड़ाई लडने के लिए। इसलिए मुझे तो उनके और हमारे बीच कोई समान आधार दिखाई नही देता है। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि काग्रेस युक्तिसंगत रुख अख्तियार करेगी और उनके सहयोग का स्वागत करेगी।

मेरा अपना विचार तो यह है कि लीग के अन्य सदस्य उतनी कठिनाई पैदा नही करते है। बात उन्ही तक सीमित हो तो वे युक्तिसगत रुख अपना सकते हैं; पर जिन्ना कभी सहयोग करेंगे, ऐसी मेरी धारणा नही है। यथार्थवादियो को इस स्थिति का सामना करना ही होगा।"

इधर बापू और सब समस्याओं को एक ओर रखकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए साहसपूर्वक सचेष्ट थे, पर उन्हें सफलता यदा-कदा ही मिल जाती थी। वह तब भी पूर्वी बंगाल के दलदल मे फसे पड़े थे। सरदार पटेल समेत उनके सभी मित्र पूर्वी बंगाल में उनके लम्बे समय तक फंसे रहने की बुद्धिमत्ता को भारी सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे। बापू के इस प्रवास के फलस्वरूप उनके एकनिष्ठ सहकारियो पर भी असाधारण बोझ पड रहा था। उन्हे बड़ी तकलीफ मे दिन गुजारने पड़ते थे। बापू के एक साथी ने उन स्थानों की तुलना चूहो के बिलो से की थी।

इन दिनो बापू और उनकी कुछ महिला सहकारियों के पारस्परिक सम्पर्क को लेकर कुछ विवाद-सा उठ खड़ा हुआ। वैसे इसमे कोई बुराई की बात नही थी, पर दोष निकालने वालों का भी अभाव न था। ये लोग तो बापू पर हर तरह का लाछन लगाते ही रहते थे। बापू ने एक सार्वजनिक वक्तव्य देना चाहा, पर सरदार ने वैसा करना उचित नही समझा। सरदार का और दूसरो का विचार था कि ऐसी बातों के संबंध में जनता को अपना दृष्टिकोण बताने के बजाय पूर्णतया निर्दोष होते हुए भी बापू को दुनिया की इच्छा के अनुरूप आचरण करना

चाहिए। बापू को यह बात पसन्द नहीं आई। उनकी वेदना मेरे नाम लिखे एक लम्बे पत्र में प्रकट हुई:

रामपुर
१४-२-४७

चि० घनश्यामदास,

तुमको एक खत लिखकर सुशील के मार्फत भेज दिया। लेकिन सरदार के खत से मैं कुछ अस्वस्थ हुआ हूं। देवदास का खत तो मेरे कानों में गूंज रहा है। तुमको जो मैंने लिखा है वो याद तो नहीं है उसकी नकल नहीं रखी। आज तो इतना ही लिखना चाहता हूं कि तुम्हारी तटस्थता छोड़नी चाहिये। सरदार के मन मे स्पष्ट है कि अधर्म को मैं धर्म मानकर बैठा हू। देवदास तो ऐसा लिखता है ही। सरदार की बुद्धि पर मुझे बहुत विश्वास है। देवदास की बुद्धि पर भी है लेकिन मेरे नजदीक देवदास बड़ा होते हुये भी बालक है। सरदार के लिये ऐसा नहीं कहा जाता। किशोरीलाल और नरहरि भी बालक नहीं हैं, लेकिन उनका विरोध समझने में मुझको दिक्कत नही है। मेरा जीवन शुद्ध है, पवित्र है, धर्म पालने के लिये ही चलता है, ऐसी मान्यता ही तुम्हारे और मेरे बीच मे गाठ है। अगर ये नही है तो कुछ नही है, इसलिये चाहता हू कि इस काम मे पूरा हिस्सा लो भले अदृश्य रूप से ही क्योकि तुम्हारे व्यापार में खलल पहुचे ऐसा मैं नही चाहता। लेकिन मैं अधर्म का आचरण करता हू तो मेरा सख्त विरोध करने का सब मित्रो का धर्म हो जाता है। सत्याग्रही अन्त मे दुराग्रही भी बन सकता है। भेद तो इतना ही रहता है कि असत्य को सच मानकर बैठ जाय तो दुराग्रही बन गया। मैं ऐसा नही हू, ऐसे मानता हू, लेकिन उससे क्या हुआ। परमेश्वर तो हूं नही। गलती कर सकता हू। गलतियां की हैं। अन्तिम समय पर बड़ी भारी गलती हो सकती है। अगर हुई है तो जितने हितेच्छु हैं वे मेरा विरोध करके मेरी आखें खोल सकते हैं। न करें तो मुझको ऐसे ही जाना तो है तो मैं चला जाऊगा। जो कुछ भी मैं यहा करता हू वह सब मेरे यज्ञ का हिस्सा है। जान-बूझकर ऐसा कुछ नही करता हू कि जो इस यज्ञ मे समाविष्ट न हो सके। आराम लेता हू वो भी यज्ञ के ही लिये।

आख और पेट पर मिट्टी है और इसे लिखवाता हू। थोड़े समय मे शाम की प्रार्थना मे जाना है। म० प्रकरण मेरा काफी समय लेता है। उसमे मुझको आपत्ति नही है क्योकि उसको भी यज्ञ के कारण रखा है। इसकी परीक्षा भी यज्ञ का हिस्सा है। यह सब मैं समझा न सकू वह दूसरी बात है। मित्रों को समझाना तो इतना ही है कि मैं म० को मेरी गोद मे लेता हू तो एक पवित्र पिता की हैसियत से कि धर्मभ्रष्ट पिता की हैसियत से। जो मैं करता हू वह मेरे लिये नई बात नही

है। विचार सृष्टि में शायद ५० साल से, आचार में भी बरसों थोड़ा या बहुत किया ही है। मेरे साथ का सब सम्बन्ध तोड़ोगे तो भी मुझको दु ख नही होगा। जैसे मैं अपने धर्म पर कायम रहना चाहता हूं ठीक इसी तरह से तुम्हारे को रहना है।

अभी दूसरे विषय पर आता हू। यहा के हिन्दू जुलाहा है उनको ताती कहते हैं। वे लोग बेकार हो गये हैं। उनके घर के चरखा काफी जलाये गये हैं। मकान भी जलाये गये हैं। सूत न मिले तो बेकार बैठना है। या तो कुदारी लेकर मजदूरी करना है। तो यहां के आफीसर ने मुझको कहा सूत गवर्नमेंट को मिल नही सकता। सेन्ट्रल गवर्नमेंट दे तो ही सकता है। तो मैंने कहा अगर आप दाम दें तो मैं शायद सूत पैदा कर लूगा। तो वह राजी हुआ। क्या आप लोग सूत दे सकते है? अगर दे सकते हैं तो कितना? और क्या दाम से? और कब दे सकेंगे? क्या वह सूत देने मे मध्यवर्ती गवर्नमेंट की इजाजत लेनी पड़ती है? यह सब लिखो।

बापू के आशीर्वाद

यह कहने की जरूरत नही कि बापू के कथन की सराहना करते हुए भी मैंने उनकी दलीलो का प्रबल विरोध किया और अन्त मे उन्होने हम लोगों की सलाह मान ली, यद्यपि उनको उसका औचित्य जचा नही। उनके शत्रु उस समय इसको कुचर्चा का रूप देने की चेष्टा कर रहे थे। हमने सोचा कि बापू का सार्वजनिक वक्तव्य सही और सीधा कदम होते हुए भी समयानुकूल नही होगा। हम सब दुनियादारो की तरह आचरण करते हैं। हम चाहते थे कि वह भी ऐसा ही करें। सौभाग्यवश वह हमारे दृष्टिकोण से सहमत हो गये और हमारी एक भारी चिन्ता दूर हुई।

बापू का उपर्युक्त पत्र अन्तिम महत्त्वपूर्ण पत्र था, जो मुझे प्राप्त हुआ; क्योंकि वह कुछ महीने बाद दिल्ली लौट आये थे और लगातार पांच महीने से कुछ अधिक मेरे मकान में मेरे साथ रहे थे और वहीं उनकी इहलीला समाप्त हुई थी।

उनके जीवन की अन्तिम घड़ियो से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन करने के बजाय मैं अपने रेडियो के एक भाषण का एक अंश उद्धृत करता हूं जो मैंने उनकी मृत्यु के कुछ ही बाद दिया था :

"इस बार गांधीजी ने दिल्ली मे करीब पाच महीने मेरे साथ रहने का मुझे सौभाग्य प्रदान किया और उनके साथ काफी बड़ी संख्या मे स्त्री-पुरुष मेरे अतिथि हुए। साफ कहूं तो, उनके कुछ अतिथियों को मैं पसन्द नही करता था और न बापू के साथी ही उन्हें पसन्द करते थे, पर मेरा मकान उन सबके लिए खुला था

जो गाधीजी के पास आते थे। सवेरे से लगातार बहुत रात तक मिलने आने वालों का अटूट ताता बंधा रहता था और गाधीजी इस बात की परवा किये बिना कि उन पर कितना बोझ पड रहा है, हरएक से कुछ-न-कुछ कहते-सुनते रहते थे, चाहे वह उनके दर्शन के लिए आया हो या उनकी सलाह लेने।

बिड़ला भवन की बम-विस्फोट की घटना के बाद गाधीजी के निकटतम साथियो ने उनसे भीड को दूर रखने का अनुरोध किया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने प्रार्थना-सभा की देखभाल और रक्षा के लिए करीब ३० फौजी और करीब २० पुलिस अधिकारी तैनात किये। उनके जिम्मे चौकसी करने और प्रार्थना-सभा पर निगाह रखने का काम था। पुलिस के अधिकारी प्रार्थना-सभा मे आने वालो की तलाशी भी लेना चाहते थे, पर गाधीजी ने इसकी इजाजत नही दी। मुझे आभास-सा हो रहा था कि ईश्वर की दूसरी ही इच्छा है तो सुरक्षा-सम्बन्धी उपायों से विशेष प्रयोजन सिद्ध नही होगा। जब कभी उनकी रक्षा के बारे में चिन्ता प्रकट की जाती तो उनका एकमात्र उत्तर यही होता . 'मेरा रक्षक तो बस एक राम है।'

इधर कुछ दिनो से राम-नाम की अचूक औषध मे उन्हें बहुत अधिक आस्था हो गई थी। वह तो अपने धुर्मधी चिकित्सको की सलाह की ओर भी कान नहीं देते थे। पिछले उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड गया था। मैंने उन्हें एक सीधी-सादी घरेलू दवा सुझाई। काफी समझाने-बुझाने के बाद उन्होंने उसे लेना स्वीकार किया। शोक, उनके महान् चिकित्सक राम ने उन्हें शीघ्र ही अपने पास बुला लिया।

अन्तिम उपवास के कारण उनके प्रिय शिष्यों को गहरी चिन्ता हुई। इस उपवास की उपयोगिता अथवा औचित्य के विरुद्ध मैंने भी उनके साथ तर्क करने की चेष्टा की, पर गाधीजी अचल रहे। यह बात नहीं कि गाधीजी हठी थे। वह सदा विचार-परिवर्तन के लिए तैयार रहते थे। जो लोग उनके साथ विचार-विमर्श करने आते थे, उनके विचारों को उद्दीप्त और जिज्ञासा को जाग्रत करने का उनका तरीका था। वह रचनात्मक आलोचना को कितने धैर्य के साथ सुनते थे। उनके उपवास के दिनों मे ही मुझे जरूरी काम से बम्बई जाना था, पर उन्हें उपवास करते छोडकर मैं कैसे जाता?

मैं उनकी अनुमति लेने गया। मैंने पूछा, "क्या आप मुझसे सहमत नही हैं कि यह उपवास जल्दी ही समाप्त होना चाहिए? मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि देश ने आपकी अभिलाषा का बड़ा ही अनुकूल उत्तर दिया है।" गाधीजी मुस्कराये, बोले, "तुम अपना काम देखो। मेरी अनुमति क्या लेते हो?" मैंने उनसे फिर पूछा, "आपके इस उपवास के जल्दी ही समाप्त होने के बारे में आपकी क्या धारणा है?" बापू मुस्कराते रहे। वह मेरे जाल मे फसने वाले नहीं थे। मैंने उन्हें

नचिकेता और यम की कथा सुनाई और कहा, "जब नचिकेता ने यम के द्वार पर उपवास किया था तो यम भी घबरा गये थे। मैं चिन्ता और प्रताड़ना की अनुभूति कैसे न करूं जब एक महात्मा मेरे घर मे उपवास कर रहा है।" मेरे सारे प्रश्नों का उनके पास एक ही उत्तर था, "मेरा जीवन राम के हाथ मे है।"

विधि द्वारा नियत शुक्रवार की उस संध्या को करीब सवा पाच बजे गाधीजी पर गोली दागी गई और शीघ्र ही उन्होंने प्राण त्याग दिये। उस समय मैं पिलानी मे था। करीब छः बजे शाम को कालेज के लडके मेरे पास दौडे आये और मुझे रेडियो पर सुनी वह दु खदायी खबर सुनाई। जी मे आया कि मोटर से दिल्ली दौड़ पड़ू, पर मेरे मित्रो ने सलाह दी कि दूसरे दिन तडके ही वायुयान से जाना ठीक रहेगा। मैंने वह रात पिलानी में कितनी बेचैनी से बिताई! मैं सोया या नही, और सोया तो कब सोया, अथवा मैं स्वप्नावस्था में था या मेरी आत्मा उड़कर गांधीजी के पास पहुच गई थी, सो मुझे कुछ मालूम नही हुआ। मानो मैं मूर्च्छित अवस्था में होऊ और अचानक गाधीजी के पास पहुंच गया होऊ।

मैंने देखा कि उनका शरीर ठीक वही पडा है जहां वह सोया करते थे। मैंने प्यारेलाल और सुशीला को उनके पास बैठे देखा। मुझे देखते ही गांधीजी उठ बैठे, मानो नीद से जागे हो और प्यार से मुझे थपथपाते हुए बोले, "तुम आ गये, अच्छा हुआ। मेरे लिए चिन्ता मत करो, मैं षड्यंत्र का शिकार हुआ हू, तो क्या हुआ ? मैं तो खुशी के मारे नाचूगा, क्योकि मेरा मिशन अब पूरा हो गया है।" तब उन्होने अपनी घड़ी निकाली और कहा, "अब तो ११ बज रहे हैं, और तुमको मुझे जमना-घाट ले जाना है। इसलिए अब मुझे लेट जाना चाहिए।"

अचानक मैं जग पड़ा और आश्चर्य करने लगा कि यह स्वप्न था अथवा पारलौकिक यथार्थता।

अगले दिन मैंने प्यारे बापू को चिर निद्रा मे निद्रित पाया मानो उन्हें कुछ हुआ ही नही है। उनका मुख-मण्डल उसी सरल आकर्षण, प्रेम और पावनता की ज्योति से आलोकित हो रहा है। मुझे उनकी मुद्रा मे करुणा और क्षमा की भी एक क्षीण-सी रेखा के दर्शन हुए। शोक, हमें मानवता और दयार्द्रता से दिपदिपाता हुआ वह चेहरा अब देखने को नही मिलेगा।

वास्तव में एक महान् ज्योति विलीन हो गई, एक महारथी खेत रहा, एक महान् आत्मा मौन हो गई।

इस प्रकार बापू के साथ मेरे ३२ वर्ष के अटूट सम्बन्ध का अन्त हुआ।

३२. स्वतंत्रता के बाद

जब स्वतन्त्रता का आगमन हुआ तो दो बातो का सबसे अधिक महत्त्व दिखाई दिया। उनमे से एक थी उत्पादन-कार्य मे वेगशील वृद्धि। वर्षा के मनमौजीपन के फलस्वरूप फसलो के नष्ट हो जाने से और कुछ अन्य कारणो से भी, हमारे लिए भूखो मरने का खतरा पैदा हो गया था और बगाल के दुर्भिक्ष की बड़े पैमाने पर पुनरावृत्ति होने की सम्भावना दिखाई देने लगी थी। हम विदेशों से बडी मात्रा मे खाद्यान्न का आयात कर रहे थे, पर उसका मूल्य चुकाने के लिए न तो हम निर्यात की सामग्री ही पर्याप्त मात्रा मे तैयार कर रहे थे और न हमे ऐसे बाजार ही सुलभ थे, जिनमे हम अपने देश मे तैयार की गई निर्यात की सामग्री को बेच पाते। फलस्वरूप हमे अपने आयात की कीमत चुकाने के लिए पौंड-पावने की अपनी सचित निधि को बडी तेजी के साथ खर्च करना पड़ रहा था।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि हमको पूजी की आवश्यकता थी। देश मे पर्याप्त पूजी होने के साधन उपलब्ध नही थे और यह स्पष्ट ही था कि पूजी बाहर से मगानी होगी। मत्रियो ने शुरू-शुरू के उत्साह मे आकर अदूरदर्शितापूर्ण भाषण दिये, जिनसे देशी और विदेशी पूजी, दोनों ही सशकित हो गईं। मत्रीगण अनेक दिशाओ मे ब्रिटेन की मजदूर सरकार का अनुकरण करना चाहते थे। पर बाद मे जो स्थिति सामने आई, उससे पता चला कि उन्होंने उस सरकार की आर्थिक सफलताओं का मूल्य बहुत अधिक आका था और जो कीमत उसे चुकानी पड़ी उसे बहुत कम करके माना था। इस अवस्था मे सुधार करने के उद्देश्य से मैंने उत्पादन बढाने के साधन तलाश करने के लिए और भारत की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए भी, जिसे उस समय काफी गलत समझा जा रहा था, ब्रिटेन और अमरीका की यात्रा की। यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि ब्रिटेन मे हमारी स्थिति को ज्यादा गलत समझा जा रहा था। अमरीका मे न तो हमारी स्थिति को ठीक-ठीक समझा जा रहा था, न गलत ही। कुछ इने-गिने राजनेताओ को छोडकर बाकी अमरीकियों को हमारी स्थिति की ओर से उदासीनता-मात्र थी। इन राजनेताओ को हमारी स्थिति मे भौगोलिक और नैतिक दृष्टि से केवल इतना ही अनुराग था कि हम साम्यवाद से मोर्चा लें।

सौभाग्य से इंग्लैंड मे मुझे श्री चर्चिल के साथ लम्बी बातचीत करने का अवसर मिला, पर मैंने देखा कि उन्हे भारत के बारे मे जितनी गलत जानकारी पहले थी, उतनी ही अब भी है। मैंने अपनी इस मुलाकात का विवरण सरदार पटेल को लिख भेजा था। मेरे पत्र-व्यवहार मे बापू का जो स्थान था, वह अब सरदार पटेल

ने ले लिया था। उस पत्र का एक उद्धरण यहां देता हू :

"वह (चर्चिल) अकस्मात् उबल पड़े—"आप लोगो ने हैदराबाद में जो कुछ किया सो मुझे पसन्द नही आया। आपको जनमत-सग्रह करना चाहिए था।" मैंने उन्हें बताया कि अब भारत मे शांति विराज रही है और जो अग्रेज हाल मे वहा गये है, उनका कहना है कि दुनिया का कोई भी मुल्क आज भारत जितना शान्त नही है। पंडित नेहरू और सरदार बहुत अच्छी तरह काम चला रहे हैं। हम साम्यवाद की बाढ को रोक रहे हैं, पर हमे लोगों की हालत को सुधारना है। हमे दो चीजों की दरकार है : पहली सशक्त रक्षा-व्यवस्था और दूसरी वेगशील औद्योगीकरण। ये दोनों बातें तुरन्त होनी चाहिए। हमारे नेता अब काफी बूढे हो चले हैं। आज तो उनका शब्द ही कानून है। पर यदि वे अगले दस वर्षों मे भारत का निर्माण न कर सके तो उसके बाद क्या होगा, सो मैं नही जानता।"

उन्होंने कहा, "मुझे दस वर्ष आगे की बात नही सोचनी चाहिए। सोचने के लिए एक साल बहुत काफी है।"

तब मैंने उन्हें मित्रता के उस सदेश की याद दिलाई, जो सन् १६३५ मे उन्होंने मेरे द्वारा गाधीजी को भेजा था। "हम अब स्वतत्र हो चुके है। हम मित्र हैं और आगे भी मित्र रहना चाहेंगे। फिर आप इतनी गैरियत के साथ क्यो बातें करते हैं?" उन्होने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं गैरियत नही बरत रहा हू। आप इग्लैंड के साथ अच्छा वर्ताव करेंगे तो मैं निश्चित रूप से अनुकूल प्रत्युत्तर दूगा। शायद हम सरकार में लौट आयंगे। समाजवादी जनता मे अप्रिय होते जा रहे हैं, इसलिए मैं कोई ऐसा काम नही करना चाहता, जिसे भारत मे अमैत्रीपूर्ण समझा जाय। पिछली बातो को सोचना मेरी आदत मे दाखिल नही है। मुझे आगे की ओर देखना सिखाया गया है। भूतकाल भुला दिया है। अब यदि आप सहयोग करेंगे तो मैं भी सहयोग करने को तैयार हू।" मैंने उन्हे बताया कि पडित नेहरू ने किस प्रकार अपनी तमाम पिछली कटुता के बावजूद राष्ट्रमडल मे रहने का फैसला किया है। उन्होंने हृदय के पूरे योग के साथ उत्तर दिया, "मैं उनकी उदारता की बहुत सराहना करता हू।" तब अकस्मात् उन्होंने प्रश्न किया, "क्या आपके यहा अपना राष्ट्रीय गान है? क्या उसकी ध्वनि अच्छी है?" मैंने कहा, "बहुत अच्छी तो नही है।" "आप अपने राष्ट्रीय गान के साथ 'ईश्वर राजा की रक्षा करें' क्यों नही बजाते? ये छोटी-छोटी बातें काफी सहायक होती हैं। कनाडा का अपना गान है, पर उसके साथ वे लोग हमारे गान की ध्वनि भी बजाते हैं। इससे मित्रता की भावना पैदा होती है।" मैंने कठिनाई बताई, पर साथ ही कहा, "यह तो इंग्लैंड पर ही निर्भर है। आप मित्र रहेंगे तो शायद इसकी भी नौबत आ जाय।" उन्होंने

कहा, "मेरी धारणा है कि समय आने पर ऐसा भी होगा।" मैंने उनसे कहा कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी हमारी दरिद्रता है, जिसे हम थोड़े समय में दूर करना चाहते हैं और यदि हम अपने लोगों का स्तर ऊचा न उठा पाये तो साम्यवाद की बाढ़ किसी के रोके न रुकेगी। इग्लैंड को इस काम मे हमारे साथ सहयोग करना चाहिए। उन्होंने कहा, "बढ़ती हुई जनसख्या के साथ आपकी गरीबी एक कठिन समस्या अवश्य है।"

मैंने उनसे पूछा कि श्री ईडन भारत के क्या सस्मरण लाये हैं ? उन्होंने कहा, "उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने आपके साथ हुई बातचीत का मुझसे जिक्र किया था।" तब उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या नेहरू राष्ट्रमडल के विचार को मनवा सकेंगे ? मैंने कहा, "मुझे इसमे कोई शक नहीं है। समाजवादी बहुत शक्तिशाली नही हैं। साम्यवादी छिपे हुए हैं।" मैंने उनसे कहा कि ब्रिटेन को और किसी देश की अपेक्षा हमारी सहायता अधिक करनी चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया, पुनः अपनी मैत्री की आकाक्षा की पुष्टि की, पर साथ ही कहा कि पाकिस्तान के पास जल और खाद्य के साधन प्रचुर मात्रा मे हैं।

यहा हर कोई यह सोचता प्रतीत होता है कि समाजवादियों का प्रभाव कम होता जा रहा है। अतएव यदि अगले चुनाव में मजदूर दल के बहुमत मे काफी कमी हो जाय तो मुझे आश्चर्य नही होगा।

कल मैं श्री एलेक्जेन्डर से मिल रहा हू।

९ मई, १९४९

कल मैं श्री ऐंथनी ईडन से आधे घटे के लिए मिला। उन्होंने मुझे बताया कि जब दिल्ली मे वह चाय पर आपके यहा थे तो आपने उनसे कहा था कि अपने सविधान की वर्तमान स्थिति को कायम रखते हुए आप राष्ट्रमडल में बने रहने को तैयार होंगे। यह बात श्री ईडन ने एटली और चर्चिल से भी कह दी है और चर्चिल से सहायता की जोरदार सिफारिश की है। उन्हें परिणाम में भारी संतोष है।

मैंने उनसे इस विषय की भी चर्चा की कि भारत को सैनिक और औद्योगिक दृष्टि से मजबूत बनाने की जरूरत है और कहा कि ब्रिटेन को इस दिशा में हमें सहयोग देना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह सैनिक सामग्री के बारे मे लार्ड एलेक्जेन्डर से बात करेंगे और उद्योग के बारे में ब्रिटिश पूजीपतियों से। उन्होंने कहा कि अब भारत राष्ट्रमडल मे है तो वे सभी तरह का सहयोग देंगे। वह अच्छे और सहृदय प्रतीत हुए।"

अमरीका से लन्दन वापस लौटने पर, मैंने जुलाई में सरदार को लिखा :

११ जुलाई, १६४६

"अबतक मैं यहां प्रधानमन्त्री, श्री एलेक्जेन्डर, श्री बेविन, श्री नोएल बेकर, सर जान एण्डर्सन और श्री चर्चिल से मिल चुका हू। इनमे से कुछ से दुबारा और दूसरो से आगामी सप्ताह में मिलने की आशा है। क्रिप्स से एक-दो दिन मे मिलने वाला हूं।

मूडी के त्यागपत्र और लियाकत की संभावित मास्को-यात्रा को यहा विशेष महत्त्व नही दिया जा रहा है। उन्हें यह सबकुछ पसन्द नही है, पर वे इसे ब्रिटेन से रिआयतें ऐंठने के लिए एक झासा-मात्र समझते हैं। पाकिस्तान को ध्यान मे रखा जाय तो इन तौर-तरीको का असर यहा कुल मिलाकर बुरा नही रहा। पाकिस्तान को अब भी निम्नकोटि का ही समझा जाता है। हम लोग भले, विवेकशील और आदरणीय व्यक्ति समझे जाते हैं, साथ ही हमें सदा यही परामर्श दिया जाता है कि हमें पाकिस्तानियों को बहलाते रहना चाहिए। 'वे गिर पड़ें तो यह आपके ही हित में बुरा होगा', हमे ऐसी सलाह दी जाती है।

कश्मीर को लेकर ये सब बहुत चिन्तित हैं। यहा के लोग जम्मू और बौद्धो के क्षेत्र की स्थिति को तो समझते हैं, पर इनकी समझ मे यह बात नही आती कि हम मुस्लिम-बहुल कश्मीर घाटी को भारत में शामिल करने का आग्रह क्यो कर रहे हैं।

यहां हैदराबाद को लेकर किसी को परेशानी नही है। उसे तो भुला ही दिया गया है। मुख्य प्रश्न कश्मीर का है और प्रायः हर कोई किसी-न-किसी प्रकार के विभाजन का पक्ष लेता दिखाई देता है।

यहा की आर्थिक अवस्था बहुत खराब है, पर जो बात सबसे अधिक उल्लेख-योग्य है वह यह है कि ये लोग इस अवस्था का मुकाबला लौह सकल्प के साथ और अत्यन्त वैज्ञानिक तरीको से कर रहे हैं। संभव है, लोग वर्तमान जीवन-स्तर कायम न रख सकें, पर उसे कायम रखने के लिए कड़ा सघर्ष किये बिना ये उसे गिरने नही देंगे।

इंग्लैंड की पूजी भारत मे लगने के बारे मे अमरीका की अपेक्षा यहां की स्थिति अधिक अनुकूल है। मैंने यहा कुछ व्यवसायियों से बात की है और उनका रुख निराशाजनक नही था। कुछ कठिनाइयां है, जिन्हे हल करना ही होगा, किन्तु इस बारे मे भी मेरा खयाल है कि मेरे लिए कुछ कर सकना सभव होगा।

१४ जुलाई, १६४६

आपको पिछला पत्र लिखने के बाद मैं लार्ड हेलीफैक्स और लन्दन के 'इकोनामिस्ट' के संपादक श्री क्रोथर से मिला। आज मैंने लेडी माउन्टबेटन के साथ दोपहर का भोजन किया। लेडी क्रिप्स और कुमारी पामेला माउन्टबेटन भी

उपस्थित थी। दोपहर को मैं लार्ड केमरोज और उनके सम्पादक अर्थात् 'डेली टेलीग्राफ' के सम्पादक से मिला।

लेडी माउन्टबेटन हमारे सामान्य शासन-कार्य से पूरे तौर से सन्तुष्ट नही थी। उनका खयाल था कि हम आवश्यकता मे अधिक केन्द्रीकरण कर रहे हैं और मत्रियो पर काम का बोझ ज्यादा है। उनकी वार्ता मे आलोचना का पुट था, पर वह आलोचना मैत्री की भावना से ओतप्रोत थी। उन्होंने मुझसे कहा, "आप मेरा सप्रेम अभिवादन सरदार को पहुचा दीजिए।" रक्षा मत्री श्री एलेक्जेन्डर और लेडी क्रिप्स ने भी ऐसा ही कहा है।

भोजन के करीब दस मिनट तक लेडी माउन्टबेटन, उनकी पुत्री और लेडी क्रिप्स मणिबहन की तारीफ करने मे एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धा करती रही। अगर मणिबहन मौजूद होती तो सकुचा जाती और घबरा उठती।

'डेली टेलीग्राफ' का और कभी-कभी 'डेली एक्सप्रेस' का भी रुख हमारे खिलाफ ही रहता है। कल भारत से प्राप्त एक शरारत-भरा सवाद प्रकाशित हुआ, जिसमें अंग्रेजो और पाकिस्तानियो के बिगडते जा रहे सम्बन्धो की चर्चा थी और इसका दोप संवाददाता ने भारत के मत्थे मढा था। इस बारे में केमरोज और उनके सम्पादक के साथ लम्बी बातचीत हुई।

नोएल बेकर कश्मीर को लेकर चिन्तित थे। वह जनमत-सग्रह मे विश्वास रखते हैं, किन्तु मेरा ख्याल है कि उनका विश्वास क्षेत्रीय जनमत-सग्रह मे है, सारी रियासत के लिए एक जनमत-सग्रह में नही।

बस, मेरी कहानी पूरी हुई।

परिशिष्ट

'भारतीय वाणिज्य उद्योग संघ' का प्रस्ताव[1]

१. संघ की यह दृढ सम्मति है कि सरकार की वर्तमान दमन-नीति से देश की वर्तमान दु:खद स्थिति नही सुधर सकती है और वह सरकार से उसके बजाय समझौते की नीति अपनाने का अनुरोध करता है, ताकि ऐसा सविधान बनाने और उस संविधान पर अमल करने के लिए उपयुक्त वातावरण पैदा हो सके, जो जनता को स्वीकार हो।

---

१. चौथे अध्याय में जिस प्रस्ताव का उल्लेख है, वह यह था।

२. संघ की कार्य-समिति के २२ जनवरी, १६३२ के प्रस्ताव का जो अर्थ निकाला गया है, उस पर संघ खेद प्रकट करता है, क्योकि प्रस्ताव के प्रारम्भ मे ही यह स्पष्ट मन्तव्य मौजूद है कि सघ की कार्य-समिति भारत के लिए उपयुक्त संविधान की रचना मे भाग लेना अपना कर्त्तव्य समझती है।

३. संघ की धारणा है कि दमन-नीति को और गोलमेज परिषद् के गत अधिवेशन मे अपने प्रतिनिधि मडल के अनुभव को, ध्यान में रखते हुए परामर्श-दायिनी समिति के काम मे उसके प्रतिनिधियो के भाग लेने से उस समय तक कोई लाभ नही होगा, जबतक कि

(क) सरकार सच्चे दिल से उस नीति मे परिवर्तन करने और वित्तीय स्वशासन संरक्षण और व्यापारिक अधिकार-सम्बन्धी प्रश्नो की चर्चा करने और उनके बारे मे देश के प्रगतिशील लोकमत के साथ समझौता करने को तैयार न हो,

(ख) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, परामर्शदायिनी समिति को यह अधिकार न रहे कि वह वित्त-सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नो के बारे मे खुली और पूरी चर्चा कर सकेगी तथा व्यापारिक अधिकारो, वित्तीय सरक्षणो आदि से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों को ऐसी समिति के सुपुर्द न किया जाय, जिसमें अंग्रेज और भारतीय विशेषज्ञों की संख्या एकसमान हो और भारतीय विशेषज्ञ ऐसे हो, जिन्हे सघ का विश्वास प्राप्त हो।

पैरा ३ जैसा कि वह उपर्युक्त प्रस्ताव के प्रारम्भिक रूप मे था।

३. इस समिति ने गोलमेज परिषद् के अपने प्रतिनिधि की रिपोर्ट सुनी और उसे यह जानकर खेद हुआ कि आरक्षणो, वित्तीय संरक्षणो और व्यापारिक अधिकारो से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो की जाच-पड़ताल करने और उनपर पूरी चर्चा करने के लिए पर्याप्त अवसर नही दिया गया। इस समिति का निश्चय है कि उसकी राय मे वित्तीय सरक्षणो और व्यापारिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो की पड़ताल व्यवसायियो की ऐसी समिति द्वारा की जाय, जिसके भारतीय सदस्यो की संख्या आधी से कम न हो और वे सदस्य ऐसे हो जिन्हें संघ का समर्थन प्राप्त हो, ताकि इन समस्याओ का सर्वसम्मत हल खोजा जा सके।

मेरे
जीवन में
गांधीजी

मेरे जीवन में गांधीजी

गांधीजी के साथ मेरा पहला संपर्क १९१५ में हुआ, जबकि दक्षिण अफ्रीका से लौटने के थोड़े ही दिनों बाद वह कलकत्ता आये थे। पूरे ३२ वर्ष, अर्थात दिल्ली-स्थित मेरे मकान में उनके स्वर्गवास तक, यह संपर्क बना रहा। मैं उनके संपर्क में आया कैसे? भाग्य के अदृश्य हाथ बड़े रहस्यमय ढंग से सूत्र-संचालन किया करते हैं। मेरे जीवन के इस सौभाग्यशाली मोड़ का सारा श्रेय भी इन्हीं अदृश्य हाथों को है। मेरे पीछे कोई राजनैतिक पृष्ठभूमि नहीं थी। इसलिए किसी विश्व-विख्यात व्यक्तित्व का कृपाभाजन बनने की योग्यता मुझमें नहीं के ही बराबर थी। मेरा जन्म सन् १८९४ में एक ऐसे गांव में हुआ था, जिसकी आबादी मुश्किल से तीन हजार थी। गांव भी ऐसा, जहां बाकी दुनिया से संपर्क के लिए कोई भी आधुनिक यातायात का साधन नहीं था। न रेल, न पक्की सड़क, न डाकघर—दुनिया की राजनैतिक हलचलों से एकदम असम्बद्ध। आवागमन के साधन या तो ऊंट अथवा घोड़े थे, या रथ-बहली, जो खासकर अमीर लोग ही रखते थे और जिनका इस्तेमाल ज्यादातर औरतों या अशक्त लोगों के लिए होता था। घोड़े, इक्के-दुक्के ही थे और ज्यादातर जागीरदारों की सवारी के ही काम आते थे। ऊंट ही यहां यात्रा के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी पशु रहा है। हमारे परिवार में दो बहुत बढ़िया ऊंट थे और बाद में हम लोगों के यहां एक रथ भी था। किन्तु लोग दूर का सफर ऊंट पर करना ही पसन्द करते थे। मुझे तो उसकी सहनशीलता, धीरज और मूकता ने हमेशा अपनी ओर आकर्षित किया है। उन दिनों की याद मुझे आज भी झकझोर जाती है, जब एक बार लगातार छः दिन तक ऊंट पर सफर करना पड़ा था।

चार साल की उम्र में मुझे पढ़ाने के लिए अध्यापक रखे गए, जो पढ़ने-लिखने

की अपेक्षा गणित ज्यादा जानते थे। इस तरह मेरी शिक्षा का श्रीगणेश अक-ज्ञान, जोड़-बाकी, गुणा-भाग से हुआ। नौ वर्ष की उम्र में मैंने अग्रेजी की थोड़ी-सी जानकारी के साथ कुछ पढना-लिखना सीख लिया और फिर सिर्फ ग्यारह साल की उम्र मे प्यारेचरण सरकार की 'फर्स्ट बुक ऑव रीडिंग' के साथ मेरी शिक्षा समाप्त भी हो गई।

मेरे प्रपितामह एक व्यापारी पेढ़ी पर सिर्फ सात रुपये माहवार पर 'मैनेजर' थे। उनके देहान्त के बाद मेरे पितामह ने अठारह साल की अवस्था में अपना स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू करने का निश्चय किया और वह समृद्धि की खोज मे बबई पहुचे। बाद में मेरे पिताजी ने व्यापार को बढाया और मेरे जन्म के समय तक हमारी गणना काफी सम्पन्न परिवारो मे होने लगी थी। करीब पैंतीस वर्ष से हमारा व्यापार उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ चलता आ रहा था। अत जब मेरी उपर्युक्त शिक्षा समाप्त हुई तो मुझे भी अपने वशगत व्यापार मे जोत दिया गया। लेकिन मुझे पढने का शौक था। स्कूल छोडने के बाद भी अपने ही ढग से मैंने पढ़ना चालू रखा। अध्यापक से पढना मुझे पसन्द नही था। इसलिए स्कूल छोडने पर किताबें, अखबार और शब्द-कोश ही मेरे मुख्य शिक्षक रहे।

इस भाति मैंने अंग्रेजी, सस्कृत तथा एक या दो अन्य भारतीय भाषाएं, इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़े। मैंने काफी सख्या में जीवन-चरित तथा यात्रा-विवरण भी पढ़े, जिनका मुझे अभी भी शौक है।

हो न हो, मेरे अध्ययन ने ही मुझे देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील बनने तथा तत्कालीन राजनैतिक नेताओ के साथ सपर्क कायम करने की प्रेरणा दी थी। रूस और जापान के युद्ध ने एशियाई राष्ट्रो मे उत्साह की लहरें पैदा कर दी थी और भारत भी अपने को इससे अलग नही रख सका। मेरे बाल-हृदय की सहानुभूति निश्चय ही जापान के साथ थी और भारत को फिर से स्वाधीन देखने की आकांक्षा मेरे भीतर हिलोरें मारने लगी। लेकिन जिस परिवार, गाव या जाति में मेरा जन्म हुआ था, उसको राजनीति के प्रति मेरी दिलचस्पी उतनी भली नही लगती थी।

मेरे ये मनोभाव गाधीजी के प्रति मुझे आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त नही थे। मेरी यही धारणा है कि भाग्य की दया ने ही मुझे उनके पास तक पहुचाया।

जब मैं सोलह वर्ष का हुआ, मैंने दलाली का अपना स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू किया। यहीं से अग्रेजों के साथ मेरे सपर्क का प्रारम्भ हुआ। उनमे मेरे साहूकार और ग्राहक दोनो थे। इसी प्रसग मे मुझे उनकी समुन्नत व्यापारी-प्रणालिया, सगठन-शक्ति और अन्य अनेक विशेषताए देखने का अवसर मिला। साथ ही, इनका जातिगत अभिमान भी मुझसे छिपा नहीं रह सका। मैं इनके यहां जाने के लिए न तो उनके लिफ्ट का ही व्यवहार कर सकता था और न इनसे मिलने की

प्रतीक्षा करते समय इनकी बेंचों पर ही बैठ सकता था। इस प्रकार के अपमान-जनक व्यवहार से मैं तिलमिलाकर रह जाता था। इसी ठेस ने मेरे भीतर राज-नैतिक दिलचस्पी पैदा की, जिसे मैं सन् १९१२ से आजतक निभाता चला आ रहा हूं। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक तथा श्रीगोखले को छोड़कर और कोई राज-नैतिक नेता नहीं, जिसके सपर्क में मैं नहीं आया। देश का कोई ऐसा राजनैतिक आदोलन नही रहा, जिसमे मैंने दिलचस्पी न रखी हो अथवा अपने ढंग से उसे मदद न दी हो।

इन दिनों एक बार आतंकवादियो से सम्बद्ध हो जाने के कारण मुझे काफी परेशानी उठानी पड़ी और लगभग तीन महीने गुप्तवास मे रहना पड़ा। कुछ सहृदय मित्रो के हस्तक्षेप से ही मैं जेल जाने से बच सका। वास्तव मे, आतंकवाद के प्रति मेरा विशेष अनुराग कभी नही रहा और गांधीजी के संपर्क मे आने के बाद तो उसका रहा-सहा अस्तित्व भी खत्म हो गया।

इस पृष्ठभूमि के साथ यह स्वाभाविक ही था कि मैं गाधीजी की ओर आकृष्ट होने का तकाजा महसूस करता। एक आलोचक के रूप मे मैं उनके निकट आया और अन्त में उनका अनन्य भक्त बन गया। फिर भी यह कहना बिलकुल असत्य होगा कि गाधीजी के साथ सब विषयो पर मेरा मेल खाता था। वस्तुत: अधिकाश समस्याओ पर मेरा अपना निजी मत था। रहन-सहन के बारे मे हम दोनों मे कोई साम्य नही था। गाधीजी एक सन्त पुरुष थे, जिन्होने जीवन के सारे सुख-भोगों का त्याग कर दिया था। धर्म ही उनका मुख्य विषय था, जिसने मुझे इतने आग्रह के साथ उनकी ओर खीचा। अर्थशास्त्र के बारे मे भी उनका दृष्टिकोण मुझसे भिन्न था। वे छोटे पैमानेवाले उद्योग-धन्धों—चर्खे, करघे, धानी आदि—मे विश्वास रखते थे। इसके विपरीत, मैं काफी सुख-सुविधा की जिन्दगी बिताता और बड़े-बड़े उद्योग-धन्धो के माध्यम से देश के औद्योगीकरण मे विश्वास करता था। इतने पर भी हम दोनो के बीच इतना घनिष्ठ सबध कैसे बना रहा? मैं क्यों उनके विश्वास और स्नेह को प्राप्त करता रहा? इसके लिए मैं तो मुख्यत: उनकी महानता और उदारता का ही आभार मानता हूं। मुझे ऐसे लोग कम ही मिले हैं, जिनमें गाधीजी का-सा आकर्षण हो और जो अपने मित्रों के लिए इतना स्नेह और अनुराग रखते हो। संसार के लिए सन्त उत्पन्न करना बहुत कठिन नही है, राजनैतिक नेता भी दुनिया मे काफी पैदा होते रहते हैं, मगर सच्चे मानव इस दुनिया में कम ही मिलते हैं। गाधीजी मानवों मे एक महामानव थे। ऐसी विरल विभूतियां धरती प्रत्येक सदी मे पैदा नही करती और अभीतक लोगों ने गांधीजी के मानव-रूप के बारे में जाना ही कितना थोड़ा है!

मैंने कहा, बहुत-सी समस्याओ पर गांधीजी के साथ मेरा मेल नहीं खाता था, फिर भी उनका कोई आदेश मानने से मैंने कभी इन्कार नही किया। दूसरी

ओर, उन्होंने भी मेरे विचार स्वातन्त्र्य को सहन-भर ही नहीं किया, बल्कि इसके लिए वह मुझे उतना ही ज्यादा प्यार भी करते रहे, जितना कोई पिता अपने बच्चे को करता है। इसीलिए हमारा संबंध एक तरह से पिता-पुत्र के पारिवारिक लगाव जैसा हो गया था, जो उनके जीवन-काल तक बराबर अक्षुण्ण बना रहा।

अन्तिम बार उनके जो दर्शन मैंने किये, वे उनके भौतिक अवशेष-मात्र के थे। यह भाग्य की क्रूरता थी कि जब उन्होंने अन्तिम सास ली तो मैं उनके पास नहीं था। उनके निधन के केवल दस घण्टे पूर्व ही मैं उनसे अलग हुआ था। मुझे अपने गाव, जो दिल्ली से १२० मील दूर है, जाना पड़ा था। वहा मैं एक प्रमुख मंत्री को अपनी शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण कराने के लिए ले गया था। मैंने सात बजे सुबह अपना घर छोड़ा था। प्रस्थान से पूर्व मैं गाधीजी के कमरे में उनसे विदा लेने गया था। लेकिन वह विश्राम की गहरी नींद में सो रहे थे, इसीलिए मैंने उन्हें जगाया नहीं। इसके दस घण्टे बाद पिलानी में मेरा पुत्र मेरे पास दौड़ा हुआ आया और उसने मुझे बताया कि रेडियो ने घोषित किया है—"हत्यारे ने गाधी-जी को गोली मार दी।" मैं विश्वास न कर सका, लेकिन कबतक अविश्वास करता !

तत्काल दिल्ली लौट जाना सभव नहीं था। हमारा गाव न तो रेल से संबद्ध था, न सड़क से। मुझे रात वहीं बितानी पड़ी। नींद बीच-बीच में उचट जाती थी। मैंने सपना देखा कि मैं दिल्ली के अपने घर में वापस चला गया हू, जहा गाधीजी रहते थे और जहा उनका देहान्त हुआ था। मैं उस कमरे में गया, जहां उनका शव रखा हुआ था। मेरे कमरे में प्रवेश करते ही वे उठ बैठे और बोले, 'मुझे खुशी है कि तुम वापस आ गए। यह गोली-काड कोई निरुद्देश्य घटना नहीं थी, वरन् एक गहरा षड्यन्त्र था। लेकिन मैं खुश हू कि उन्होंने मेरा अन्त कर दिया। मैं अपना काम कर चुका हू और इस प्रस्थान का मुझे जरा भी दुःख नहीं है।' कुछ देर तक हम लोग बातें करते रहे। उसके बाद उन्होंने अपनी घड़ी निकाली और कहा, 'अब शव-यात्रा का समय हो गया है। लोग मुझे ले जाने आयेंगे, इसलिए मैं लेट जाता हू।' वे पुन. लेट गए और नि स्पन्द हो गए। कैसा अद्भुत स्वप्न ! शायद यह मेरे अपने हृदय की ही प्रतिध्वनि थी।

दूसरे सुबह मैं दिल्ली लौटा और उस कमरे में गया, जिसमें उनका मृत शरीर रखा हुआ था। लाखो की जन-मेदिनी से बिड़ला-भवन घिरा था। गाधीजी का शरीर पड़ा था शात, अविचल। ऐसा नहीं प्रतीत होता था कि वे मर गए हैं। यही था उनका अन्तिम दर्शन, जो मैंने किया। १६ जून, १६४० के एक पत्र में महादेव भाई ने मुझे लिखा था—"लार्ड लिनलिथगो के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र आया है, जिसमें उन्होंने लिखा है—'जर्मन वायरलैस ने यह खबर प्रचारित की है कि ब्रिटेन के गुप्त एजेंट गाधीजी की हत्या करने की योजना बना रहे हैं।' इच्छा

विचार की जननी है और इसीलिए आशंका है, कदाचित् जर्मनी के एजेंट ब्रिटेन के विरुद्ध प्रचार करने के उद्देश्य से इस तरह की कुछ योजना बनायें। पहले से ही सतर्क रहना हममें से प्रत्येक के लिए हितकर होगा। अतः गांधीजी स्वीकार करें और उनके काम मे विघ्न पड़े तो रक्षा के लिए पुलिस की पूरी व्यवस्था करने में हिज एक्सेलेंसी को बड़ी खुशी होगी।"

महादेवभाई ने इसका उत्तर दिया था—"गांधीजी ऐसा कोई प्रबन्ध नही चाहते। जीवन-भर की हत्या की धमकी से घिरे रहकर, अनुभव के आधार पर उन्होंने यह धारणा दृढ बना ली है कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता तक हिल नही सकता। न कोई हत्यारा किसी के जीवन की अवधि कम कर सकता है और न कोई मित्र ही किसी को मृत्यु से बचा सकता है।" मुझे लिखे पत्र मे महादेवभाई ने लिखा था कि वह उत्तर बापू की ही भाषा मे लिखा गया था।

उनके अन्त के आठ साल पहले से ही घटनाएं कितनी खूबी से अपनी छाया फैला रही थी, लेकिन इस नियति का निमित्त न तो कोई जर्मन बना और न कोई अंग्रेज ही। वह हत्यारा तो था एक भारतीय, एक कट्टर हिन्दू !

गांधीजी को बम द्वारा मारने के निष्फल प्रयत्न के बाद सरकार द्वारा उनकी सुरक्षा की बडी सुदृढ़ व्यवस्था की गई थी, यहा तक कि मेरे घर के कोने-कोने में सन्तरी तथा सादी पोशाकवाली हथियारबंद पुलिस चक्कर काटती दीख पडती थी। इतनी ज्यादा सतर्कता मुझे अच्छी नही लगी।

सन् १६१३ मे तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंज बनारस हिन्दू-विश्व-विद्यालय का शिलान्यास करने गये हुए थे। इसके पूर्व जब वे नई राजधानी मे समारोहपूर्वक प्रवेश कर रहे थे, तो उन पर एक बम फेंका गया था। इसलिए बनारस में उनकी हिफाजत के लिए काफी बड़ी व्यवस्था की गई थी। तालाबों तक मे बन्दूकों और रिवाल्वरो से लैस पुलिस तैनात की गई थी। गांधीजी को यह सब आडम्बर नापसंद आया और उन्होंने सरेआम इसकी आलोचना करते हुए कहा था कि इस तरह तो वाइसराय लार्ड हार्डिंज जिन्दगी मे ही मौत के दिन बिता रहे हैं।

मैंने गांधीजी के सामने इस अभिमत को दुहराया और कहा, "क्या यह अनुचित नही लगता कि हम प्रार्थना भी बंदूकों की छाया मे करें ? आपका जीवन अत्यंत मूल्यवान् है, लेकिन उससे भी ज्यादा मूल्यवान् है आपकी कीर्ति। अतः क्यों आप इस भांति पुलिस का अतिशय प्रबंध पसंद करते हैं, जबकि आपने आजीवन इससे घृणा की है ?"

गांधीजी ने मेरे साथ सहमत होते हुए कहा, "इस संबंध में वल्लभभाई से बातें करो, जो इस सारे प्रबंध का जिम्मेदार है। मैं इस प्रकार के प्रबंधों से नफरत करता हूं। लेकिन मुझे यह सब अपनी रक्षा के लिए नहीं, बल्कि सरकार की

कीर्ति-रक्षा के लिए सहन करना पड़ता है।" मैंने सरदार से भी बाद मे इस प्रसंग में बातें की और जैसी कि उनकी आदत थी, उन्होंने थोड़े मे ही जवाब दिया, "तुम इसके लिए क्यो चिंता कर रहे हो ? यह तुम्हारा काम नही है, यह जिम्मेदारी मेरी है। अगर मेरा वश चलता तो बिड़ला-भवन मे प्रवेश करनेवाले हर आदमी की मैं तलाशी लेता। लेकिन बापू मुझे ऐसा नही करने देते।" आखिर दुर्भाग्य की क्रूर इच्छा पूर्ण हुई। जैसा कि गाधीजी की ही भाषा मे महादेव ने लिखा था, कोई मित्र उन्हें नही बचा सका। मैं स्वय अपनी बैल्ट मे पिस्तौल छिपाये हुए प्रार्थना मे शामिल होता था और उनकी ओर आनेवाले हर आदमी पर नजर रखता था। लेकिन यह सब हमारा वृथाभिमान था। एक पत्ता भी ईश्वर की इच्छा के बिना नही हिलता।

इस घटना के लगभग दो बरस बाद ही दूसरे महान् पुरुष चल बसे, जिनके साथ भी मेरा ऐसा ही प्रगाढ सम्बन्ध था। यह थे सरदार पटेल। सरदार हर प्रसंग मे महात्मा गाँधी के दृढतम अनुयायी थे। आत्म-सयम के विषय मे तो और भी अधिक। वह लौह-पुरुष कहलाते थे, लेकिन उनकी इस ऊपर से ओढी हुई कठोरता के नीचे कोमलता और उदारता की अपरिमित राशि छिपी रहती थी। वे भी स्वतत्र विचार के व्यक्ति थे, तो भी हर मामले मे, चाहे वह राजनैतिक हो या सामाजिक, वह अपने गुरु के चरण चिह्नों पर ही चलते थे। व्यक्तिगत तौर पर, अकेले मे, वह उनसे झगड़ लेते थे, किंतु बाहर सदैव उनका अनुकरण ही करते थे। यह कितने अचरज की बात है कि भारत मे बहुत-से बड़े-बडे लोग गाधीजी के विचारो से असहमत होते हुए भी सदैव उनके अविचल अनुयायी बने रहे! नि सदेह, मित्रो के प्रति उनके प्रगाढ अनुराग और आत्मीय भाव ने ही इस विरोधाभासी चमत्कार को सभव कर दिखाया था। इसीलिए सरदार यद्यपि कुछ प्रसगो पर उनसे सह-मत नही होते थे, फिर भी बिना आना-कानी के प्रत्येक अवसर पर वह गाधीजी की इच्छानुसार ही चलते थे। गाधीजी की मृत्यु के बाद सरदार हृदय-रोग से पीड़ित हो गए। गाँधीजी की मृत्यु से उनके हृदय को बड़ा तीव्र आघात लगा था। कोई साधारण मनुष्य होता तो शोक के इस आवेग को रोकर हलका कर लेता, किन्तु सरदार ने शोक को प्रकट नही होने दिया। फलत, यह उनके हृदय मे समा-कर रह गया। मैं उनके सपर्क मे उनकी मृत्यु के लगभग अट्ठाईस वर्ष पूर्व आया था। तबसे अंत तक हम दोनो का स्नेह-सपर्क अक्षुण्ण बना रहा।

सरदार भी मेरे ही घर मे मरे और भाग्य का यह दूसरा व्यंग्य था कि उनके अतिम क्षणो में भी मैं उनके साथ नही था। अपनी मृत्यु के चार दिन पूर्व वह दिल्ली से बंबई चले आये थे। मत्रिगण तथा बहुत बड़ी सख्या मे उनके मित्र हवाई अड्डे पर उनको विदा देने आये थे। हवाई जहाज के दरवाजे पर एक कुर्सी

पर बैठे हुए उदासी-भरी मुस्कान से उन्होंने प्रत्येक का अभिवादन किया। वह जानते थे कि उनका प्रयाण-काल सन्निकट है। मैं भी जानता था कि वह शीघ्र ही अनत यात्रा को प्रस्थान करने वाले हैं, लेकिन मैंने अपने को बरबस यह विश्वास दिलाया कि नही, अत अभी इतना निकट नही है। इसके चार रोज बाद तो उन्होने हमेशा के लिए ही विदा ले ली। अत मे सरदार का भी मृत शरीर ही मुझे देखने को मिला।

महादेव देसाई का सन् १९४२ मे आगाखां-महल में देहान्त हो चुका था। यह महल उस समय कारागार मे परिवर्तित कर दिया गया था। वह मेरे अभिन्न मित्र थे। अपने प्राण उन्होने अपने गुरु की गोद मे छोडे। उस समय उनका कोई मित्र उनके निकट नही था। सहृदयता की तो मानो वह मूर्ति थे। महादेव का निर्माण महात्माजी के द्वारा हुआ था, किंतु यह कहना भी गलत नही होगा कि कुछ अंशो तक महादेव ने भी महात्माजी को अपने साचे मे ढाला था। महादेव देसाई का व्यक्तित्व भी बडा आकर्षक और स्नेहशील था। वह बडे विद्वान् एवं हृदय-ग्राही थे। जब कभी बापू किसी बात की जिद पकड़ लेते तो सिर्फ सरदार और महादेव ही उन्हें अपने पथ से विचलित कर सकते थे। कभी बापू क्रोधावेश मे झुकते और कभी मुक्त कहकहे के बाद।

कल्पना कीजिए, यदि ये तीनो आज कुछ वर्षों का और आयुर्बल लेकर पूर्ण स्वस्थ जीवित रहते तो कैसा होता भारत का इतिहास! किंतु यह तो निरुद्देश्य कल्पना है। मेरा विश्वास है कि कोई भी मनुष्य अपना काम पूरा करके ही इहलोक से प्रस्थान करता है। इसलिए इन मृतात्माओ के प्रति शोक करना निष्प्रयोजन है। अब तो उत्तरदायित्व का भार आज की और भविष्य की पीढ़ी पर है।

१८ जुलाई, सन् १९३५ को मैं श्री बाल्डविन से लंदन में मिला था। वार्तालाप के सिलसिले मे उन्होंने निम्नलिखित अभिमत प्रकट किया था—"लोकतन्त्र की अपनी खाम खामियां होती हैं। लेकिन अबतक की शासन-पद्धतियों मे यह सर्वोत्तम सिद्ध हुई है। ईश्वर को धन्यवाद है कि इस देश मे अधिनायक-तन्त्र (तानाशाही) नही है। श्रेमोन्मुख अधिनायक-तन्त्र अपने तरीके पर अच्छी चीज है, लेकिन तब तो ऐसे अधिनायक-तन्त्र मे आपको निष्क्रिय बैठे रहने के सिवा और कुछ नही करना रहता। आज यह नहीं हो सकता। लोकतंत्र मे आप सबको काम करना पड़ता है, और यही है लोकतंत्र की सबसे अच्छी खूबी। यदि हर व्यक्ति काम करेगा तो भारत में यह प्रयोग अवश्य कृतकार्य होगा। यदि प्रत्येक आदमी काम नही करेगा तो लोकतंत्र का यह प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकेगा। लोकतंत्र

मे एक वर्ग ही दूषित हो सकता है। इंग्लैंड या भारत मे ऐसे वर्ग मौजूद हैं, जो दूषित होगे ही, किंतु हमे इन वर्गों के आधार पर सारी जनता का मूल्यांकन नही करना चाहिए, और काग्रेस का जहा तक सवाल है, उसे तो यह बात महसूस कर ही लेनी चाहिए कि देशहित का अभी बहुत बड़ा क्षेत्र उसके सामने पड़ा है।"

लोकतंत्रात्मक सरकार की स्थापना का दायित्व ग्रहण करने के बाद बापू ने १८ जुलाई, १९३७ को मुझे लिखा था: "हमारी वास्तविक कठिनाई तो अब शुरू होती है। हमारा भविष्य हमारी दृढ़ता, सत्य-निष्ठा, साहस, सकल्प, उद्यम और अनुशासन पर निर्भर करता है। जो तुम करते आ रहे हो, वह अच्छा है।··· आखिर जो कुछ किया गया है, वह ईश्वर के नाम पर और ईश्वर मे आस्था के साथ किया है। तुम श्रेष्ठ बने रहो। आशीर्वाद !"

श्री बाल्डविन ने कहा था : "लोकतत्र मे सबको काम करना पड़ता है।" बापू ने जोर दिया कि हमारा भविष्य हमारी दृढ़ता, सत्य-निष्ठा, साहस, संकल्प, उद्यम और अनुशासन पर निर्भर करेगा। दोनो ने एक ही बात दो ढग से कही। ये दोनों उपदेश हमारे पथ के दीपस्तम्भ बनें।

४. गांधीजी के साथ १५ दिन

जगल की ओर से एक बैलगाड़ी को तेजी से दौड़ाते हुए तीन वृद्ध किसान आ रहे थे। गाधीजी को देखकर सहसा उन्होंने गाड़ी रोकी। बड़ी फुर्ती के साथ अटपटे-से एक के बाद एक ने उतरकर गाधीजी के चरणो मे अपना सिर टेका और चुपचाप जैसे आये, वैसे ही गाड़ी मे बैठकर आगे चल दिये। न कुशल पूछी, न क्षेम। न अपना दुखड़ा रोया, न आंसू बहाये। वे खूब जानते हैं कि गाधीजी की हरएक सास तो गरीब के लिए ही निकलती है, इसलिए उन्हें कहें तो क्या, और पूछें तो क्या ? उनके लिए तो मौन होकर सिर झुकाना ही काफी था। कोई पढ़ा-लिखा होता तो बीसियों बातें पूछता, उलहना देता, आलोचना करता; किंतु गरीब मे इतनी कृतघ्नता कहां है ! वह तो दूर से ही दर्शन करके सन्तुष्ट होता है। यह तो अनेक घटनाओं में से छोटी-सी एक साधारण घटना है; किंतु गरीबो के हृदयों में गांधीजी का क्या स्थान है, कैसा सिक्का है, यह जानना हो तो ऐसे ही उदाहरण उपयुक्त हैं। बछड़े की मृत्यु के बाद किसी ने कहा था, "आज से महात्मा नही, मिस्टर गाधी कहो। अब तो गांधी का कोई दाम भी नही पूछेगा।" किंतु गरीब इस झमेले मे क्यों पड़े ? अहिंसा किसे कहते हैं और हिंसा किसे कहना चाहिए,

यह तात्त्विक विवाद तो उन्हीं को शोभा दे सकता है, जिन्हें बहस में अधिक रस है और काम में कम। फुरसती आदमियों के लिए वेदान्त का यह तात्त्विक विवेचन जी बहलाने का एक अच्छा साधन साबित हो सकता है। किन्तु ऊँट को पापड़ से क्या काम? आए-साल अकाल और महामारी; न खाने को पूरा अन्न, न शरीर ढकने को पूरा वस्त्र, जमींदार की ज्यादती, साहूकार की ज्यादती और ऊपर से उपदेशकों की हिमाकत। उन्हें क्या पता कि गरीब को रोग रोटी का है, न कि धर्म का। सुदामा की तरह गरीब को ज्ञान नहीं चाहिए, रोटी चाहिए। गांधी गरीबों को उपदेश देने नहीं आता, गांधी उनके हृदय में प्रवेश करके उनके दुःख से दुःखी होता है—गरीब बनकर रहता है और गरीबों के लिए जीता है। यही कारण है कि गरीबों के हृदय पर गांधी का एकछत्र अधिकार है। भारत के किसी छोटे-से-छोटे गांव में जाइए और पूछिए, गांधी कौन है? तुरत उत्तर मिलेगा कि गरीबों का भला चाहनेवाला। गांधी क्या पढ़े हैं, क्या लिखे हैं, क्या कहते हैं, यह उनके लिए व्यर्थ की चिंता है। गांधी बाबा अनाथों के, गरीबों के हितचिंतक हैं, इसीमें उनके लिए गांधीजी की सारी जीवनी आ जाती है। चाहे यह जीवनी सूत्ररूप से हो, किंतु संसार का अच्छे-से-अच्छा ग्रन्थकार इससे अधिक संक्षेप में और क्या कह सकता है! थोड़े-से लोग चाहे गांधीजी को 'गो-हत्यारा' कहकर सन्तोष कर लें, किंतु 'गांधीजी की जय' आज भी आकाश को कंपा देती है।

आजकल गांधीजी वर्धा आए हुये हैं। वर्धा में जमनालालजी की प्रेरणा से श्रीविनोबा ने एक सत्याग्रह-आश्रम खोल रखा है और गांधीजी वहीं ठहरे हुए हैं। गांधीजी क्या आये, मानो घर में कोई बड़े-बूढ़े दादा आ गए हों। आश्रमवासी तो गांधीजी को 'बापू' के नाम से पुकारते हैं, किन्तु बापू होने पर भी बच्चों के साथ गांधीजी बच्चों ही की तरह रहते हैं। खाना-पीना, काम-काज भी आश्रम के नियमों के मुताबिक। आश्रमवासी शुद्ध घृत के अभाव में आजकल अलसी का तेल व्यवहार करते हैं। गांधीजी ने भी बकरी के दूध की जगह अलसी का तेल खाना शुरू कर दिया है। जमनालालजी को इस फेरफार की खबर मिलते ही चिन्ता शुरू हो गई। गांधीजी इस तरह के प्रयोग कर-करके कहीं अपना स्वास्थ्य न खो बैठें, इस आशंका से जमनालालजी ने गांधीजी को समझाना शुरू किया। बहस हुई, झगड़ा हुआ, अन्त में जमनालालजी ने बल-प्रयोग किया—"बापू, आप यहां मेरी देख-रेख में हैं। जैसा मैं कहूं, वैसा कीजिए। इन प्रयोगों के कारण आप यहां से बीमार होकर जायं, यह मैं नहीं बर्दाश्त करने का।" "तो दे डालो नोटिस मुझे, यहां से चला जाऊंगा।" गांधीजी ने खिलखिलाकर कहा। जमनालालजी अब क्या कहते! चुप रहे। गांधीजी का हठ कायम रहा।

अग्रवाल-पंचायत ने जमनालालजी को जाति-बहिष्कृत कर रखा है। उनको सबसे बड़ा गुनाह यह बताया गया कि उन्होंने अस्पृश्यों के हाथ का खाया।

जमनालालजी के कारण वर्धा में भी अग्रवालों में दो दल हैं। एक दल तो कट्टर पुराने विचार के लोगों का है, दूसरा दल भी यद्यपि पुराने विचारों का ही अनुयायी है, तो भी जमनालालजी को छोड़ना नहीं चाहता। जमनालालजी ने उन्हें समझाया कि मुझे निबाहना कठिन काम है, इसलिए आप सामाजिक मामले में मुझसे मोह तोड़ लें। किन्तु जिनका प्रेम है, वे जमनालालजी को कैसे त्याग दें? एक दिन कुछ वृद्ध सज्जनों को अगुआ करके दूसरे दल की मंडली जमनालालजी के पास पहुंची। "जमनालालजी विधवा-विवाह में शरीक हों, अस्पृश्यों से छुआछूत न मानें, उनके लिए मन्दिर खोलें, इसमें तो हम शामिल हैं, किन्तु अस्पृश्यों के हाथ का खान-पान हमें नहीं रुचता। चाहे हमारे सन्तोष के लिए ही सही, क्या जमनालालजी हमें इतना विश्वास नहीं दिला सकते कि भविष्य में वह अछूतों के हाथ का पकाया नहीं खायेंगे? जब हम लोग इतना आगे बढ़ने को तैयार हैं, तो जमनालालजी हमारे सन्तोष के लिए थोड़ा-सा पीछे क्यों न हटें?" यह संक्षेप में उनकी दलील थी। जमनालालजी कहने लगे, "आश्रम में तो सभी जाति के लोग रहते हैं। क्या मैं आश्रम में खाने से इन्कार करूं?" "आश्रम की कौन कहता है? यह तो पुण्य-भूमि है! तीर्थस्थान के लिए कोई रुकावट नहीं। अन्य स्थानों पर आप ऐसा न करें, यही हमारी मांग है।" इस तरह बहस होती रही। अन्त में तय हुआ कि गांधीजी के सामने मामला पेश किया जाय। दूसरे दिन वृद्ध लोगों का एक शिष्टमण्डल गांधीजी के पास पहुंचा। गांधीजी ने चर्चा चलाते हुए समाज के अगुओं से बातें प्रारम्भ कीं। गांधीजी ने पूछा, "जमनालालजी अस्पृश्यों के हाथ का खाते हैं, इसमें आपको किसका डर है? समाज का या धर्म का?" एक वृद्ध ने कहा, "धर्म तो हम क्या समझें! समाज की रूढ़ि है कि ऐसा नहीं करना चाहिए। हम जमनालालजी की सब बातें मानते हैं, तो फिर हमारी इतनी बात जमनालालजी क्यों नहीं मानते?" गांधीजी ने कहा, "क्यों न मानें; किन्तु यदि रूढ़ि का जुल्म हो तो उस रूढ़ि का नाश कर देना चाहिए। प्राचीन काल में ऐसी रूढ़ि का बन्धन था, यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूं कि जो स्वच्छ है, शराबी नहीं है, व्यभिचारी नहीं है, उसके द्वारा स्वच्छता से पकाया हुआ खाने-योग्य पदार्थ हमारे लिए अवश्य भोज्य है। उनको यदि हम कहें कि तुम्हारे हाथ का हम नहीं खायेंगे तो क्या हमारे साथ वे रहेंगे? वे अवश्य हमारा त्याग कर देंगे। मैं तो केवल उनकी धमकी से भी नहीं डरता; किन्तु यदि हमारे दोष के कारण वे हमारा त्याग कर दें तो मैं उसे कैसे बर्दाश्त कर सकता हूं? जो अपवित्र रहते हैं, मुर्दे का मांस खाते हैं, शराबी हैं, उनके हाथ का खाने को तो मैं नहीं कहता। उनमें तो मैं कह सकता हूं कि पहले तुम अपनी बुराइयां दूर करो तो मैं तुम्हारे हाथ का खाऊं। किन्तु जो स्वच्छ हैं, उनके हाथ का तो न खाने से धर्म का नाश हो जायगा। आपमें यदि साहस न हो तो आप चाहे ऐसा न करें।

जमनालालजी को आशीर्वाद तो दें, क्योंकि वह तो धर्म ही के लिए ऐसा करते हैं। आप इनको क्यो पीछे हटाना चाहते हैं ? चाहो तो जमनालालजी से प्रतिज्ञा करा लो कि जो शौचादि को न माने, ब्राह्मण या अब्राह्मण किसी के भी हाथ का वह न खायं। किन्तु इससे थोड़े ही आपका काम बनेगा ! आप तो पचों के त्रास से भयभीत हैं और इसलिए जमनालालजी से आग्रह करते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि समाज को तो मैं भी मान लेता हूं, हमें हर बात मे समाज से नही लड़ना चाहिए। किन्तु आपका समाज कैसा समाज है ? यदि गगोत्री मैली हो जाय तो क्या फिर गंगा का पानी स्वच्छ रह सकता है ? आज के पंच पच कहां रह गए ? पंच तो गंगोत्री है, और जैसे गंगोत्री का पवित्र प्रवाह गगा मे बहता है, वैसे ही पंच समाज को पवित्र प्रेरणा और न्यायबुद्धि देते है। किन्तु वर्तमान के पंच तो राक्षसी प्रथा के पुजारी हैं। आज के पच पाखड से, स्वार्थ से, क्रोध से और द्वेप से भरे हुए हैं। मेरी तो यह भविष्यवाणी है, आप इसे मानिए कि आज के पचो का अन्याय हम नही मेट सके तो इस समाज का नाश हो जायगा। पंच न्याय कहां करते हैं ? धर्म की वडी-वडी वातें बनाने से न्याय नही हो सकता। वर्तमान के पाखण्डी पंचो से तो डरना भी अन्याय है। उनके जुल्म का सामना करके मरना ही अच्छा है। पंच-गंगोत्री मैली हो गई है। इसे शुद्ध करने के लिए हरएक को मर-मिटना चाहिए। यह धर्म के नाम पर पाप फैलाया जाता है। उसीका जमनालालजी सामना कर रहे हैं। उन्हें आप आशीर्वाद दें। आगे की पीढी तो कहेगी कि जमनालालजी ने धर्म को बचा लिया। लाखों अछूतो को हिन्दू-समाज मे रख लिया। रावण के दस सिर क्या थे, यह तो उनकी दस तरह की दुप्ट बुद्धि थी। उसी दुष्ट बुद्धि का सामना विभीषण ने किया।

"आप यदि सामना कर नही सकते, इतना साहस नही है, तो जमनालालजी आपको नहीं कहते कि आप भी उनके साथ चलें। जमनालालजी तो कहते हैं कि आप उनके साथ न चल सकें तो उन्हें छोड दें, किन्तु आप उनका मोह क्यों करते हैं ? उन्हें भी अग्रवाल-समाज के सुधार का मोह छोड़ देना चाहिए। जो सन्यासी हो गया, उसे कौन वांधता है ! वह तो अब व्यापक समाज की सेवा ही कर सकते हैं। उसीमे अग्रवाल-समाज की भी सेवा आ जाती है। आप जमनालालजी को छोड दें, किन्तु उनके लिए प्रेम कायम रखें और पचायत के जो लोग विरोधी हैं, उनके प्रति भी विरोध न करें। हम क्रोध को अक्रोध से और अशान्ति को शान्ति से ही जीत सकते है। पंचायत के लोग क्रोध के पात्र नही है, दया के पात्र हैं। वे तो अवश्य ही समझते हैं कि हम समाज का भला कर रहे हैं। उन्हें क्या पता कि वे धर्म के नाम पर जुल्म करना चाहते हैं ! इसलिए आप तो उनसे भी प्रेम करो और जमनालालजी को आशीर्वाद दो कि वह धर्म की रक्षा और अन्याय का सामना करने मे कृतकार्य हों।"

गांधीजी का वक्तव्य समाप्त होने पर सब लोग चुप हो गए। सन्नाटा-सा छा गया, किसीसे उत्तर देते नही बना। एक वृद्ध सज्जन ने चुपके से पगडी उतारकर गांधीजी के पैरो में रख दी और कहने लगे, "महाराज, आपने जो कहा, उसे सुनकर तो मैं गद्गद हो गया।" उस वृद्ध से अधिक कहते न बन पडा, किन्तु पचो के त्रास से वह भी भयभीत था।

गांधीजी जब चर्खा चलाने बैठते हैं तो कातने की धुन में इतने मस्त रहते है, मानो त्रिलोक का राज्य मिल गया हो, और किसी भी गहन-से-गहन विषय पर उनसे बातें कीजिए, उनके कातने में कोई विघ्न नही पडता। असल मे तो एक ओर सूत का अपने-आप उनके हाथ की पूनी में से निकलते जाना, दूसरी ओर उनकी अबाधित वचन-धारा का प्रवाह और साथ में चर्खे का सगीत, यह हर भावुक का मन मोहने को पर्याप्त है। मैं तो हर रोज उनके कातने के समय अपनी चक्की चलाने जा बैठता हू। एक दिन वही बछड़े की कथा छिडी। मैंने कहा, "महात्माजी, श्रीकृष्ण ने भी बछड़ा मारा था, किन्तु वह तो आलंकारिक जमाना था, इसलिए बछड़े का वत्सासुर हो गया। किन्तु इस बीसवी शताब्दी में तो लोग सीधी-सादी भाषा मे ही बोलते हैं, इसलिए आपके इस काम ने काफी हलचल पैदा कर दी। आपने बहुत-से साहस किये, किन्तु इसमें तो हद हो गई। मुझे तो मालूम होता है, आपने इससे अधिक साहस का कोई और काम अपने जीवन मे नही किया होगा।"

गाधीजी ने कहा, "ऐसी तो क्या बात है, मैंने तो सबकुछ सहज भाव से ही किया है।"

"तो आपने ऐसा कौन-सा काम किया है, जिसे साहस की दृष्टि से आप अपने जीवन में ऊंचे-से-ऊंचा स्थान दे सकें ?" मैंने पूछा।

"इस दृष्टि से तो मैंने कभी नहीं विचारा।" गाधीजी ने कहा, "... समझता हूं कि बारडोली-सत्याग्रह स्थगित करके मैंने बहुत बड़े ... दिया। चौबीस घण्टे पहले सरकार को चुनौती देकर ललकारा ... नक सत्याग्रह को स्थगित करना, यह अपने-आपको बेहद ह... किन्तु मैं तनिक भी नही झिझका। जो सत्य था, वही मेरा ... इसीलिए मेरी अपनी हंसी होगी, इस विचार ने मुझे कभी ... मेरे जीवन के बड़े साहसिक कामों में यह एक था, ऐसा मैं मान ..."

"सविनय आज्ञा-भंग अचानक बन्द करना पड़ा, इससे ... हुआ ?"

"किंचित् भी नहीं।" गांधीजी ने दृढ़ता से कहा।

जिस सीता के लिए लाखों बन्दरों और राक्षसों के ...

देने में राम को कुछ हिचकिचाहट न हुई। और जिस सविनय आज्ञा-भंग के लिए हजारो लोगो को जेल-यातनाएं मिली, उसे ढाह देने में गांधीजी को कोई संकोच नही हुआ। त्रेता मे लोगों ने राम को बुरा-भला कहा होगा, कलि में गाधीजी को लोगो ने खरी-खोटी सुनाई; किन्तु कौन कह सकता है कि गांधीजी ने जो किया वह ठीक न था! असल में तो बड़े लोगों को समझने के लिए कुछ प्रयास की जरूरत पड़ती ही है। गांधीजी लगोटी मारकर रहते हैं, सस्ते-से-सस्ता खाना खाकर निर्वाह करते हैं, तो भी उस सबके नीचे छिपी हुई चमक 'कभी-कभी' लाखों में चकाचौंध मचा ही देती है। गाधीजी लंगोटी मारकर गरीबो की तरह रहते हैं, इससे उनकी बुद्धि गरीब नही हो गई है। वस्तुस्थिति तो यह है कि बाज-बाज मौकों पर गाधीजी के वचन और कर्म को ठीक-ठीक समझने के लिए मनुष्य को विशेष प्रयास की जरूरत पड़ती है। हम रोजमर्रा देखते हैं कि अखबारवाले गांधी-जी से वार्तालाप करके कुछ छाप देते हैं और पीछे गांधीजी को उसका खंडन करना पड़ता है। कारण यह है कि गाधीजी को लोग ठीक-ठीक नही समझ सकते। गांधी-जी 'अहिंसा-अहिंसा' पुकारते न कभी थके, न अब थकते हैं। अहिंसा के तो मानो वह अवतार बन गए हैं। फिर भी बछड़े की प्रख्यात हिंसा करते न केवल उन्हें हिचकिचाहट नहीं हुई, उलटा उन्होने उसे धर्म माना। साधारण लोग सुनते ही हक्के-बक्के रह गए। किसी ने आंसू बहाए, किसी ने गालियां दी, किन्तु साबरमती के महात्मा पर उसका क्या असर हो सकता था! उन्हे तो लेना-देना है बस एक ही से। चर्खा चलाते हैं तो उसमे ईश्वरीय सगीत सुनते हैं। अलसी के तेल से मिली रोटी खाते हैं तो उसमे ईश्वरीय स्वाद का अनुभव करते हैं। दु ख मे, सुख मे, हसने मे, रोने मे, जागने मे, सोने मे, फिरने में अविच्छिन्न रूप से जो मनुष्य ईश्वर का अनुभव करता है, उसे जगत् की क्या परवा!

संतन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई,
अब तो बात फैल गई जाने सब कोई।

यह गाधीजी का हाल है। जगत् से न उनको शर्म है, न जगत् का भय है।

एक दिन मैंने पूछा, "महात्माजी, आपकी उत्तरोत्तर आत्मोन्नति हो रही है, ऐसा कुछ आपको अनुभव होता है?" शील-संकोच से गांधीजी ने कहा, "मेरा तो ऐसा खयाल है।" मैंने कहा, "महात्माजी, आपके इर्द-गिर्द की मण्डली क्या समझती है, मैं नही जानता, किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि असहयोग-आन्दोलन के बाद आपकी आत्मा मे बहुत चमक आ गई है।" महात्माजी मौन रहे। शायद सोचा होगा, मेरा ऐसा कहना भी तो अनधिकार था। किसी की आत्मा उठ रही है या गिर रही है, उसे पहचानने की भी तो लियाकत अधिकारी में ही हो सकती है। एक बार लार्ड रीडिंग से गांधीजी की चर्चा चली थी, उसका मुझे स्मरण हो आया। गांधीजी उन दिनो जेल में थे। देश के नेताओं का जिक्र छिड़ने पर मैंने

कहा, "मेरी राय मे गाधीजी ससार में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है।" वाइसराय ने कहा, "हा, यह ठीक हो सकता था, यदि उनके सगी-साथी सब-के-सब ईमानदार होते।" मैं वाइसराय का मतलब समझ गया। यह कोई नही कह सकता कि असहयोग के दिनो में गांधीजी की सारी-की-सारी मण्डली भली थी। किन्तु गाधीजी को इससे क्या ! मैंने उन दिनो एक बार कहा था, "महात्माजी, आपके इर्द-गिर्द के लोगो मे कितने बुरे आदमी भी आ गए हैं।" गांधीजी ने कहा, "मुझे क्या डर है ? मुझे कोई धोखा नही दे सकता। जो मुझे धोखा देने में अपने को दक्ष समझते हैं, वे स्वय अपने-आपको धोखा देते हैं। मैं तो शैतान के पास भी रहने को तैयार हू, किन्तु शैतान मेरे पास कैसे रहेगा ? जो बुरे हैं, वे स्वय मुझे त्याग देंगे।" हुआ भी ऐसा ही। आज महात्माजी की मण्डली में इने-गिने लोग बचे हैं। शुरू से आजतक के उनके जीवन पर दृष्टिपात करें तो सारा चित्र आखों के सामने नाचने लगता है। राजा ने छोड़ा, रौलट-एक्ट के जन्म के समय; प्रजा ने छोडा, बारडोली के निश्चय के समय। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, आर्यसमाजी, सनातनी, जात-पांत, मित्र-स्नेही, सबने—किसी ने कभी, किसी ने कभी—महात्माजी को समय-समय पर छोड़ दिया। युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुचे तो केवल एक कुत्ता साथ में निभा। महात्माजी के स्वर्गारोहण तक कौन उनके साथ टिक सकेगा, यह भविष्य के गर्भ में है। पर एक बात है, सबने एक-एक करके समय-समय पर गाधीजी को छोड़ दिया, पर फिर-फिरकर वही लोग गाधीजी से चिपटे ही रहते हैं। मैंने एक दिन कहा, "महात्माजी, आप इतनी तेजी से दौड लगा रहे हैं, मैं नही समझता कि अन्त तक बहुत व्यक्ति आपके साथ रह सकते हैं।" गांधीजी ने कहा, "यह तो मैंने बीस साल पहले ही सोच लिया था और मुझे तो इसी मे सुख है।" मैंने कहा, "यदि प्राचीन समय होता और भारत-वर्ष के बाहर आप पैदा हुए होते, तो इतनी तेजी की चाल लोग बर्दाश्त न करते। या तो ईसा की तरह आपको सूली पर चढना होता, अथवा सुकरात की तरह जहर का प्याला पिलाया जाता। किन्तु यह तो ऋषियों का देश है और बीसवीं शताब्दी है, इसलिए लोगो ने आपकी महात्मापन की उपाधि छीनकर ही सन्तोष कर लिया है।"

गाधीजी ने हंसकर धीरे से कहा, "तो चढ़ा दें लोग मुझे भी सूली पर। मैं भी तैयार हूं और प्रसन्नता के साथ तैयार हूं।" पास बैठे लोगो ने लम्बी सांस ली। मेरे तो मन में आया कि इस मिश्रित धर्म से तो कही अन्धकार ही अच्छा है, जो अवतार को निकट ला देता है। आज न तो अधर्म का ह्रास ही होता है और न अवतार ही आता है। यह दशा तो असहनीय है, किन्तु कोई क्या करे !

गाधीजी के यहा त्याग का गुणगान रात-दिन रहता है। कम-से-कम कितने

रुपयों मे निर्वाह हो सकता है, इसी का प्रयोग होता रहता है। गांधीजी भी अलसी के तेल का प्रयोग इसलिए करते हैं कि जिसमे जीवन-निर्वाह का खर्च कम-से-कम हो। उनके इस आचरण के कारण वातावरण ही ऐसा बन गया है कि उनकी मण्डली मे जीवन-निर्वाह की आवश्यक-से-आवश्यक सामग्रियों का उपयोग करना भी गुनाह-सा हो गया है। सेठ जमनालालजी का चौका भी सेठाई से शून्य है। बेमसाले की स्वादहीन एक तरकारी, मोटे टिक्कड़, दूध-दही तो औषध के रूप मे—यह रोजमर्रा की रसद है। किसी मोटे मरीज के लिए तो आश्रम का भोजन या जमनालालजी का चौका रामबाण औषध है। क्योंकि हरिभाऊ उपाध्याय-जैसे अधमरे ब्राह्मण के लिए भी वहा वजन बढाने की कोई गुंजाइश नही। किसी आश्रमवासी बालक या बालिका के चेहरे पर मैंने शारीरिक ओज के चिह्न नही पाये। संन्यासाश्रम का आदर्श भी यही था कि कम-से-कम खाओ, अधिक-से-अधिक उपजाओ; अर्थात् अल्प-मात्रा से जीवन-निर्वाह कर अधिक-से-अधिक संसार की सेवा करो। यह स्वेच्छा का त्याग था। आश्रमवासियों की भी यह स्वय-निर्मित कैद है। किन्तु भारत के जनसाधारण को आश्रमवासियो से अधिक कहा मिलता है ? भारतवर्ष के प्रत्येक मनुष्य की आय का औसत गोखले ने दो रुपये माहवार निश्चित किया था। किसी-किसी ने इससे ज्यादा का अन्दाजा किया। किन्तु भारत वर्ष को सब्जबाग दिखानेवाले अग्रेज भी ४॥ रु० माहवार से अधिक की आय नही साबित कर सके। भारतवासी की आय ४॥ रु० और अंग्रेज की ५० रु० प्रतिमास !

आश्रमवासी वेचारे कम-से-कम खर्च करके भी १५ रु० माहवार से कम मे गुजर नही कर सकते और भारत के दरिद्रनारायण ४॥ रु० माहवार मे किसी तरह कीड़े-मकोड़े का जीवन व्यतीत करते हैं। आश्रमवासियों ने तो अपने-आप अपने ऊपर कैद लगाई है, सुख को तिलांजलि दी है, देश के लिए फकीरी ली है, इसलिए हरिभाऊजी के अधमुए शरीर को देखकर तरस खाना बेकार है। किन्तु देश के जनसमुदाय ने कब संन्यास-दीक्षा ली थी, जो उनकी गरीबी को हम सन्तोष समझ बैठे हैं ? उनका सन्तोष क्या है, बुढिया का ब्रह्मचर्य है। उन्हे सन्तोष सिखाना उनकी गरीबी की निर्दय हंसी उड़ाना है। मैंने गांधीजी से कहा, "महात्माजी, त्याग तो आपको और आपके चेले-चाटियो को ही शोभा दे सकता है; किन्तु देश के असंख्य दरिद्रो को त्याग की कौन-कौन-सी गुंजाइश है ? वे तो पहले से ही आधा पेट भोजन करते हैं और फिर वे लोग समझ बैठें कि ४॥ रु० माहवार या इससे भी कम में निर्वाह करना ही हमारा कर्त्तव्य है, तो फिर स्वराज्य-की भावना को प्रोत्साहन देना फिजूल है। स्वराज्य की भावना दो ही कारणों से देश मे पैदा हो सकती है—या तो धार्मिक असन्तोष के कारण, या आर्थिक वेदना के कारण। यूरोपीय देशो मे पेट की चिन्ता ने स्वराज्य की भावना को जाग्रत

रखा। यहा धार्मिक असन्तोष ने समय-समय पर सुधर्मियों के राज्य की भावना को प्रोत्साहन दिया। किन्तु अंग्रेजों ने न हमारे मन्दिर गिराये, न मुसलमानों की मस्जिदें तोड़ी। इसलिए स्वराज्य की भावना तो तभी पैदा हो सकती है, जब हम यह महसूस करें कि हमारी आर्थिक हीनावस्था बिना स्वराज्य के नही सुधर सकती। किन्तु यदि इस दारिद्र्य को ही आदर्श मानें तब तो फिर स्वराज्य के लिए कोई क्यों लड़े ! इसलिए मेरी बुद्धि मे तो वहां यह अपने-आप धारण की हुई गरीबी आश्रम-वासियों एव अन्य कार्यकर्ताओ के लिए भूषण है; जनता की बेबस गरीबी, गरीबों का और देश का दूषण है। उन्हे तो हम यह कहें कि तुम्हारे पास जीवन-निर्वाह की सामग्री स्वल्प है, उसको मर्यादा के भीतर बढाने का उद्योग करना तुम्हारा धर्म है।"

महात्माजी ने कहा, "मैं गरीबों से जीवन की आवश्यक सामग्री घटाने को कहा कहता हूं ? आज गरीब जितने में निर्वाह करता है, वह तो हमारे लिए शरमाने की बात है। वर्तमान गरीबों का जीवन तो पशुओ का जीवन है। उनके सामने त्याग की बातें करना तो निर्दयता है। जिसके पास काफी सामग्री है, या जो सेवा करना चाहते है, मैं तो उन्हे ही गरीब बनने का उपदेश करता हूं।"

मैंने कहा, "आपका साहित्य पढने से तो कुछ भ्रम पैदा हो सकता है। आप अलसी के तेल पर निर्वाह करें और आपकी मण्डली आपका अनुकरण करे, तो फिर लोग शायद यह भी समझ सकते हैं कि देश का हर मनुष्य कम-से-कम खाकर जीये ?'

गाधीजी ने कहा, "लेकिन मेरा यह साहित्य गरीबो के लिए थोडे ही है। जब गरीब लोग पढे-लिखे होने लगेंगे और मेरा साहित्य पढने लगेंगे, तो शायद मुझे कुछ थोडा-सा फेरफार करना पड़े। किन्तु आज तो मैं त्याग का गुणगान धनी या मध्यम वर्ग के लोगों के लिए ही करता हूं। गरीबों को त्याग क्या सुझाऊ, वे तो परवशात् त्यागी बन बैठे हैं। उन्हें तो इसमे अधिक की आवश्यकता है।"

मैंने पूछा, "आपकी राय मे हर मनुष्य को खाने, पहनने और सुख से रहने के लिए कितने व्यय में निर्वाह करना चाहिए ?"

गांधीजी ने कहा, "जितने मे सुखपूर्वक स्वस्थ रहते हुए निर्वाह कर सके।"

"यानी रोटी, दाल, भात, तरकारी, फल, घी, दूध, सूती-ऊनी कपड़े, जूते ?"

गाधीजी ने कहा, "जूते की आवश्यकता मैं इस देश में नही समझता, शायद खड़ाऊं की आवश्यकता हो। घी तो ज्यादा नही चाहिए।"

मैंने पूछा, "दन्तमंजन, साबुन, ब्रश इत्यादि ?"

गाधीजी ने कहा, "अरे, इसकी कही आवश्यकता हो सकती है ?"

मैंने पूछा, "घोड़ा ?"

सब लोग हंसने लगे।

मैंने फिर पूछा "खैर, आपकी राय मे गरीब आदमी का बजट कितने रुपये

का होना चाहिए ?" सौ रुपये माहवार से कम में कैसे कोई सुखपूर्वक गुजर कर सकता है, यह तो मेरे जैसे मनुष्य की बुद्धि के बाहर की बात थी। इसीलिए मैंने सौ रुपये का तखमीना रखा। हरिभाऊजी ने कहा, "मैंने साधारण आदमी का बजट गढकर देखा था, पचास रुपये प्रतिमास काफी है।" महात्माजी को तो पचास रुपये भी ज्यादा जचे। "पच्चीस रुपये माहवार तो काफी हैं।"--यह उन्होने अनुमान लगाया। मैंने कहा, "यह तो असम्भव है।"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, जो स्वास्थ्य के लिए चाहिए उतनी सामग्री का तखमीना कर लो। यदि पच्चीस रुपये से ज्यादा आता है तो भी मुझे क्या उज्र है ! किन्तु मैं जानता हूं कि पच्चीस रुपये माहवार हर मनुष्य को खाने को मिले तो यहां रामराज्य आ जाय।"

"और यदि किसी-किसी को पचास रुपये से ज्यादा मिल जाय तो ?" मैंने पूछा।

"ज्यादा मिल जाय तो उसका उपभोग करे," गाधीजी ने उत्तर दिया। "किंतु वह तो फिजूलखर्ची है। ऐसे मनुष्यों को तो मैं त्याग का ही उपदेश करूंगा।"

मैंने पूछा, "महात्माजी, यदि प्रत्येक मनुष्य की आय दो सौ रुपये औसत या इससे भी अधिक प्रतिमास हो जाय तो आपको क्या उज्र हो सकता है ?"

महात्माजी ने आवेश के साथ कहा, "उज्र नही हो सकता है ! उज्र तो हो ही सकता है। संसार में प्रकृति जितना पैदा करती है, वह तो इतना ही है कि हर मनुष्य को आवश्यक वस्त्र और जीवन-निर्वाह की अन्य आवश्यक सामग्री सुखपूर्वक मिल जाय; किन्तु प्रकृति मनुष्य के अपव्यय के लिए हर्गिज पैदा नही करती। इसके माने तो यह है कि यदि एक मनुष्य आवश्यकता से अधिक उपभोग कर लेता है तो दूसरे मनुष्य को भूखा रहना पड़ता है और इसलिए जो अधिक उपभोग करता है उसे मैं लुटेरे की उपमा देता हूं। इस हिसाब से पचास रुपये से अधिक जो अपने लिए खर्च करते हैं, वे लुटेरे हैं। इंग्लैंड एक छोटा-सा देश है। वहा के साढ़े तीन करोड़ आदमियो के भोग-विलास के लिए आज सारा एशिया उजाडा जा रहा है। किन्तु भारत के बत्तीस करोड़ मनुष्य यदि दो सौ माहवार या अधिक खा जाने का प्रयत्न करें, तो संसार तबाह हो जाय। भगवान् वह दिन लाये कि भारत के लोग अंग्रेजों की तरह उपभोग करना सीखें। किन्तु यदि ऐसा हुआ तो ईश्वर ही रक्षा करेगा। साढे तीन करोड की भोग-पिपासा मिटाने मे तो यह देश मरा जा रहा है, बत्तीस करोड आदमियों के भोग की भूख मिटाने मे तो संसार को मरना होगा।"

मैंने कहा, "महात्माजी, यदि पांच सौ या सौ रुपये से अधिक खानेवालों को लुटेरे समझें तब तो मारवाड़ी, गुजराती, पारसी, चेट्टी इत्यादि सब लुटेरे हैं।"

महात्माजी ने गम्भीरता से कहा, "इसमें क्या शक है ! वैश्यो के हितार्थ प्रायश्चित्त करने के लिए ही तो मैंने वैश्यपन छोड़ा है।"

५. उत्कल में पांच दिन

जब गांधीजी ने उत्कल में पैदल पर्यटन शुरू किया तो सुना कि वे सबेरे-शाम छांह में चलते हैं, आम्र-कुंजों में टिकते हैं, तारों-जड़े आसमान के नीचे सोते हैं। खाने को खेतों से ताजा तरकारी मिलती है, आम तो ऊपर ही लटकते रहते हैं, तोड़ लिये और खा लिये। दूध सामने दुहा और पी लिया। गांधीजी के साथ कुछ दिन रहने का आनन्द और उसीके साथ ऊपर-नीचे, दायें-बायें, प्रकृति के सुहावने दृश्यों का यह मनमोहक विवरण किसके लिए लुभावना न होगा! आखिर मैं भी पहुंच गया। पहुंचते ही देखता हूं कि गांधीजी पांच फुट लम्बी-चौड़ी एक तंग कोठरी में बैठे लिख रहे हैं। एक लड़का पंखा झल रहा है। बाहर छाया में लोग दरियों पर इधर-उधर पड़े हैं, कोई खा रहा है, कोई सो रहा है।

गांधीजी ने कहा, "अच्छे समय पर पहुंचे। कल रात तो वर्षा के मारे परेशानी रही। रात-भर कोई सोया नहीं। एक तंग कोठरी में पच्चीस जनों ने बैठकर रात बिताई।" सुनते ही मेरा माथा ठनका। गांधीजी ने मेरी ओर इशारा करके एक भाई से कहा, "अच्छा, इनके खाने का क्या प्रबन्ध है?"

मैंने कहा, "जी, दूध लिया करता हूं।"

किसी ने आहिस्ते से कहा, "दूध तो नहीं है।"

अपनी परेशानी छिपाने के लिए मैंने कहा, "कोई चिन्ता नहीं, आमों से काम चल जायगा।"

श्री मलकानीजी मेरे अज्ञान पर मुस्कराते हुए कहने लगे, "यहां आम कहां?"

मैंने साहस करते हुए कहा, "देख लेंगे!"

"खा लेंगे, ऐसा तो नहीं।" गांधीजी ने कहा, "अच्छा नहा तो लो!"

कुएं पर गया। अन्दर झांका तो पानी में कीचड़ भरा था। ऐसा पानी पीने की तो कौन कहे, पांव धोने में भी घृणा आती थी। किसी तरह साफ-सूफ करके पोखर की पाल पर दरी डालकर सो रहा। सोचा, खाने-पीने को नहीं मिलता तो न सही, सो तो लें। दो घण्टे बाद एक स्वयंसेवक दो गांवों में 'हांड' कर पांच बकरियां दुहाकर आध सेर दूध लाया। उसे हसरत-भरी निगाह से देखकर मैं पी गया। पीने के बाद ही ध्यान आया कि न मालूम ये पांच बकरियां कितने बच्चों का मन भरती। पेट तो आधा सेर दूध से कितनों का क्या भरता! फिर लम्बी सांस लेकर लेट रहा। बंकिमबाबू ने भारतवर्ष की वन्दना में इसे 'सुजलां सुफलां शस्यश्यामला' कहा है। उत्कल में भी जल की कमी नहीं। सुफला भी है। भूमि उपजाऊ भी है, पर न 'सुखदा' है, न 'वरदा'। यहां बाढ़ खूब आती है। शान्तनु

जैसे पुत्र पैदा करता था और गंगा उन्हें बहा ले जाती थी, वैसे ही उड़िया बोता है और बाढ सब-कुछ बहाकर ले जाती है। जहा हम लोग बैठे थे, वहां बाढ आने पर पुरसों पानी चढ़ जायगा। खेती नष्ट हो जायगी। पशु मर जायंगे। घर से निकलना मुश्किल हो जायगा। बीमारी फैल जायगी। लोग बेमौत मरेंगे। बाढ के उत्तर जाने पर लोग थके-मादे फिर खेती करेंगे। फिर झोपड़ियों की मरम्मत करेंगे और फिर बाढ़ से लडने की तैयारी मे लगेंगे।

शायद बाढ़ की मार से उड़िया इतना शिथिल हो गया है कि अब उसमें उत्साह नहीं। शायद दुःख को भूलने के लिए ही उसने अफीम की लत भी लगा ली है। उसकी आंखों में न तेज है, न हृदय में उत्साह। बाढ निवारण के लिए सरकार ने एक कमेटी बैठाई। उसने कुछ अच्छी-अच्छी सिफारिशें भी की, पचासों लाख का खर्च बताते हैं। यदि इन सिफारिशों पर चला जाय तो उड़िये के जीवन मे एक नई स्फूर्ति आ जाय, एक नई आशा पैदा हो जाय। पर फुर्सत किसे है? बाढ़-निवारण कमेटी की जाच-रिपोर्ट आज सरकारी अलमारियो की शोभा बढ़ा रही है। सुना, सिफारिशो को अमल में लाने से कुछ जमीदारों की भी क्षति है, इसलिए भी आगे बढने मे रुकावट है। मध्यप्रान्त से पानी चलता है, जो उत्कल में आकर बाढ उत्पन्न करता है। रेल न थी, तब पानी सीधा समुद्र में जा गिरता था। अब रेल और नहरो के बनने के बाद उसकी पाज के कारण पानी की रुकावट मिल गई है, ऐसा इस विषय के विशेषज्ञ लोग कहते है। दुःखी, दरिद्र, दीन उत्कल की यह करुण कहानी किसका दिल नही दहला देगी! यमलोक मे पहुंचने के लिए वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है। उत्कल में भी वैतरणी नदी है, मानो यह नाम उत्कल और यमलोक का सादृश्य दिखाने के लिए ही किसी ने रखा हो। फर्क इतना ही है कि यमलोक मे भूख नही लगती, उत्कल मे लगती है।

ऐसे प्रदेश मे गांधीजी क्या आये, मानों भगवान् ही आ गए। उत्कल में गोपबाबू का, मेहताबबाबू का, जीवरामभाई का अलग-अलग आश्रम है। गाधी-सेवाश्रम नाम का एक और आश्रम है। ये सभी आश्रम उड़ीसा की सेवा में रत हैं। जैसे हाथी की खोज में सभी खोज समा जाती है, वैसे ही बाढों मे जितनी संस्थाएं सेवा के लिए उत्कल में पहुचती हैं, उनके बारे मे उड़िया यही समझता है कि ये गाधीजी के ही आदमी हैं। अब तो गाधीजी स्वयं आ गए, इसलिए उड़िये के हर्ष का क्या ठिकाना! *उड़िया समझता है, अब दु:ख दूर होगा।* इसलिए गाधीजी के सामने कीर्तन करता है, नाचता है, स्त्रियां उल्लूध्वनि करती हैं। दो-दो हजार आदमी साथ मे चलते हैं, प्रार्थना मे हजारो मनुष्य आते हैं और बड़े जतन से तांबे के टुकड़े, पैसे-अधेले-पाई लाते है, जो गांधीजी के चरणो मे रख जाते हैं। 'भोजने यत्र सन्देहो धनाशा तत्र कीदृशी।' पर उड़िया भूखा है तो भी गाधीजी को देता है। बीस-बीस कोस से चलकर आनेवाले नरकंकाल का धोती की सात

गाठों में से सावधानीपूर्वक एक पैसा निकालकर गाधीजी के चरणो मे रख देने का दृश्य सचमुच रुलानेवाला होता है।

वर्षा आरम्भ होते ही पैदल यात्रा मे रुकावटें आने लगी। गावो में झोपड़ियों की तो वैसे ही कमी रहती है और गाधीजी का दल ठहरा सौ-डेढ सौ आदमियो का। जबतक वर्षा न थी, तबतक तो आकाश के नीचे सो लेते थे। अब झोंपड़ियों की जरूरत पड़ने लगी और रात को कष्ट होने लगा। कीड़े-मकोडे, कनखजूरे बुरी तरह लोगों के बिस्तरों पर चक्कर काटने लगे। एक दिन डेरे के पास ही बड़े-बड़े चार साप भी देखने में आये। रात को ओस के मारे सबके कपडे भीग जाते थे। लोगो के बीमार होनेकी आशका होने लगी, किन्तु गाधीजी के वातावरण मे किसी को फिक्र न थी। मुझे लगा, मैं गांधीजी से कहूं कि यदि वर्षा मे यह दौरा जारी रहा तो मण्डली मे बीमारी फैल जाने की आशका है।

भद्रक से जब हम लोग बारह मील की दूरी पर एक गांव में पडाव डाले पड़े थे, मैंने इसकी चर्चा छेड़ी। गाधीजी को बात जची। कहने लगे, "अच्छा, तो कल एक ही मजिल मे हम भद्रक पहुच जायगे।"

मेरे लिए तो एक मजिल में बारह मील तय करना कठिन काम था। इसी-लिए मैंने मोटर से जाना निश्चित किया। गाधीजी अपने दल के साथ मुझसे अढाई घण्टा पूर्व चले और यद्यपि मैं मोटर से चला तो भी गाधीजी मुझसे आध घण्टे पहले ही भद्रक-आश्रम मे पहुच गए। रास्ते मे लोगों से पूछने पर पता चला कि गाधीजी बडी तेजी से चलते जा रहे थे और उनको पकडने के लिए उनके साथवालों को उनके पीछे-पीछे दौडना पढ रहा था। पैंसठ वर्ष की अवस्था मे गाधीजी की यह शारीरिक शक्ति अवश्य चित्त प्रसन्न करती है। इसका रहस्य उनका संयमी जीवन है। दिन-भर मे करीब एक सेर दूध और दो छटांक शहद, उबली हुई तरकारी और कुछ आम—यह उनका सारा भोजन है। रात को आमतौर से वह दो-तीन बजे नीद से उठ जाते हैं और जब संसार सोता है तब वह जागते हुए काम करते रहते हैं। इतना शारीरिक परिश्रम इस उम्र मे अवश्य ही अद्भुत चीज है। जब इतनी फुरती के साथ गाधीजी को बारह मील की मजिल तय करते देखा, तो मैंने मन-ही-मन मिन्नत की कि भगवान् हमारे भले के लिए उन्हे लम्बी उम्र दे। जो लोग गाधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे कुछ जानना चाहते हो, वे जान लें कि इन वर्षों मे गाधीजी को मैंने इतना स्वस्थ कभी नही देखा। देश के लिए यह सौभाग्य की बात है।

उत्कल के सेवको के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। इनमे गोपबन्धु चौधरी और श्री जीवरामभाई, दो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनो मानों सेवा के साक्षात् अवतार हैं। गोपबन्धु तो असल वैष्णव हैं। 'परदु खे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे।' वह अपने जमाने मे डिप्टी कलेक्टरी कर चुके,

किन्तु सेवा के लिए सबकुछ छोड दिया। अभिमान तो मानो इनको छू नही गया। जीवरामभाई का यह हाल है कि लाखो रुपये छोडकर सेवक बने। हम लोग जब सो जाते थे, तब यह रात को अकेले डेढ सौ आदमियो का पाखाना साफ करते थे।

इस यात्रा में हास्य-रस की भी कमी नही थी। मि० ब्यूटो एक जर्मन युवक हैं, जो यात्रा मे गांधीजी के साथ घूमते थे। गाव मे खाने की योही कमी थी। मि० ब्यूटो हट्टे-कट्टे जवान और बचपन से मास पर पले हुए। इसीलिए अधभूखे रहते थे, पर अत्यन्त प्रसन्न। एक तहमद पहनकर फिरते थे। जवान तो है ही, मूछें अभी आई नही। गाववाले पड़ाव के चारो तरफ सैंकड़ो की सख्या मे सुबह से शाम तक झांकते रहते थे कि उन्हें गाधीजी का दर्शन हो जाय। इस बीच तरह-तरह की चर्चा करते थे। एक ने ब्यूटो की तरफ अगुली उठाकर कहा कि मीरा बहन यही हैं। सबको हंसी आ गई। कोई कहता, जवाहरलाल भी साथ आया है। गाधीजी कौन-से हैं, यह भी दर्शकों के लिए पहेली थी। एक ने मीरा बहन को देखकर कहा—यही गाधीजी हैं। दूसरे ने किसी अन्य की ओर इशारा करके कहा—नही, गांधीजी यह हैं। तीसरे ने कहा—नही, गाधीजी तो महात्मा हैं। वह सबको दिखाई नही देते !

गांधीजी के दल के लिए ऐसी-ऐसी बातें रसायन का-सा काम देती रहती थी। किसी ने बताया कि मीराबहन एक मर्तबा जनाने डिब्बे मे यात्रा कर रही थी। इतने मे टिकट-कलक्टर टिकट देखने आया। मीराबहन का सिर तो मुडा हुआ है ही। टिकट-कलक्टर आया, उस समय ओढनी सिर पर से उतर गई थी। टिकट-कलक्टर ने समझा कि यह पुरुष है और कहने लगा—"आपको पता है, यह जनाना डिब्बा है ? मीराबहन ने तुरन्त ओढ़नी सिर पर खीची। टिकट-कलक्टर बेचारा झेंपकर चलता बना। हम लोगों ने यह कहानी सुनी तो हसते-हसते आखो मे आसू आ गए।

उत्कल की यह यात्रा हसी और रुलाई का एक अद्‌भुत सम्मिश्रण थी।

२२ जून, १९३८

६. गांधीजी मानव के रूप में

गाधीजी का और मेरा प्रथम सम्पर्क १९१५ के जाड़ों मे हुआ। वे दक्षिण अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगों ने उनका एक वृहत् स्वागत करने का

आयोजन किया था। मैं उस समय केवल बाईस साल का था। गाधीजी की उस समय की शक्ल यह थी · सिर पर काठियावाडी साफा, एक लम्बा अंगरखा, गुजराती ढंग की धोती और पाव बिलकुल नगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आखों के सामने ज्यो-की-त्यों नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके बोलने का ढग, भाषा और भाव बिलकुल ही अनोखे मालूम दिये। न बोलने में जोश, न कोई अतिशयोक्ति, न कोई नमक-मिर्च; सीधी-सादी भाषा!

१९१५ मे जो सम्पर्क बना, वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह बत्तीस साल का गाधीजी के साथ का यह अमूल्य सम्पर्क मुझ पर एक पवित्र छाप छोड़ गया है, जो मुझे सदा स्मरण रहेगा। उनका सत्य, उनका सीधापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहार-कुशलता, इन सब चीजों का मुझ पर दिन-प्रतिदिन असर पडता गया और धीरे-धीरे मैं उनका भक्त बन गया। जब समालोचक था तब भी मेरी उनमे श्रद्धा थी, जब भक्त बना तो श्रद्धा और भी बढ गई। ईश्वर की दया है कि बत्तीस साल का मेरा और एक महान् आत्मा का सम्पर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्भाग्य है।

गाधीजी को मैंने सन्त के रूप मे देखा, राजनैतिक नेता के रूप मे देखा और मनुष्य के रूप मे भी देखा। मेरा यह भी खयाल है कि अधिक लोग उन्हे सन्त या नेता के रूप मे ही पहचानते हैं। लेकिन जिस रूप ने मुझे मोहित किया, वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था—न नेता का, न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगों ने उनकी दु ख-गाथाए गाई हैं और उनके अद्भुत गुणो का वर्णन किया है। मैं उनके क्या गुण गाऊं! पर वह किस तरह के मनुष्य थे, यह मैं बता सकता हू।

मनुष्य क्या थे, वे कमाल के आदमी थे। राजनैतिक नेता की हैसियत से वह अत्यन्त व्यवहार-कुशल तो थे ही। किसी से मैत्री बना लेना, यह उनके लिए चन्द मिनटों का काम था। द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस मे जब वे इग्लैंड गये थे तब उनके कट्टर दुश्मन सैम्युअल होर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनो मित्र रहे। लिनलिथगो से उनकी न निभी, पर इसमे सारा दोष लिनलिथगो का ही था; गांधीजी ने मैत्री रखने मे कोई कसर न रखी थी। जिनसे गाधीजी मैत्री रखते, छोटी चीजों मे वह उनके गुलाम बन जाते थे। पर जहा सिद्धात की बात आती, वहा डटकर लड़ाई होती थी। लेकिन उसमे भी वह कटुता नही लाते थे। लन्दन मे जितने रोज रहे, बिना सैम्युअल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होने स्वीकार नही किया। लिनलिथगो से भी कई बातों मे ऐसा ही सम्बन्ध था।

निर्णय करने मे वह न केवल दक्ष थे, वरन् साहसी भी थे। चौरीचौरा के काड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमालय-जितनी अपनी बड़ी भूल

मान लेना, इसमें काफी साहस की जरूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वह लोगों के रोष के शिकार बने, गालियां खाई, मित्रों को काफी निराश किया, पर अपना दृढ निश्चय उन्होंने नहीं छोड़ा। १६३७ में कांग्रेस ने जब गवर्नमेंट बनाना स्वीकार किया तब गांधीजी के निर्णय से ही प्रभावित होकर कांग्रेस ने ऐसा किया। गांधीजी ने जहां कदम बढ़ाया, सब पीछे चल पड़े। कांग्रेस-नायक मे उस समय झिझक थी, वे शंकाशील थे। १६४२ मे, जब क्रिप्स आये, तब हाल इसके विपरीत था। कांग्रेस के कुछ नेता चाहते थे कि क्रिप्स की सलाह मान ली जाय और क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार किया जाय, पर गांधीजी टस-से-मस न हुए, बल्कि उन्होंने 'हिन्दुस्तान छोड़ो' की धुन छेड़ी और लड पड़े। इस समय भी उन्होंने निर्णय करने मे काफी साहस का परिचय दिया।

मुझे याद आता है कि राजनीति में उस समय करीब-करीब सन्नाटा था। लोगों में एक तरह की थकान थी; नेताओं में प्राय एकमत था कि जनता लड़ने के लिए उत्सुक नहीं।

बिहार से एक नेता आये। गांधीजी ने उनसे पूछा, "जनता में क्या हाल है? क्या जनता लड़ने को तैयार है?" बिहारी नेता ने कहा, "जनता मे कोई तैयारी नहीं है, कोई उत्साह नहीं है।" पीछे रुककर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तबा नारद विष्णु के पास गये। विष्णु ने नारद से पूछा, "नारद, ज्योतिष के अनुसार वर्षा का कोई ढंग दीखता है?" नारद ने पचांग देखकर कहा कि वर्षा होने की कोई सम्भावना नहीं है। नारद ने इतना कहा तो सही, पर विष्णु के घर से बाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ़ ली। विष्णु ने पूछा, "नारद, कम्बल क्यों ओढ़ते हो?" नारद ने कहा, "मैंने ज्योतिष की बात बताई है, पर आपकी इच्छा क्या है, यह तो मैं नहीं जानता। अन्त में जो आप चाहेंगे, वही होने वाला है।" इतना कहकर उन बिहारी नेता ने कहा, "बापू, जनता में तो कोई जान नहीं है, पर आप चाहेंगे तो जान भी आ ही जायगी।" यह बिहारी नेता थे सत्यनारायणबाबू। जो उन्होंने सोचा था, वही हुआ। जनता में लड़ने की कोई उत्सुकता न थी, पर बिगुल बजते ही लड़ाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयकर।

पर यह तो मैंने उनकी नेतागिरी और राजकौशल की बात बताई। इतने महान् होते हुए भी किस तरह छोटों की भी उन्हें चिन्ता थी, यह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यही चीज उनके पास एक ऐसे रूप में थी कि जिसके कारण लोग उनके बेदाम के गुलाम बन जाते थे। उनके पास रहनेवाले को यह डर रहता था कि बापू किसी भी कारण अप्रसन्न न हों; और यह भय इसलिए नहीं था कि वे महान् व्यक्ति थे, वरन् इसलिए कि मनुष्य मे जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिए, वह उनमें कूट-कूटकर भरी थी।

बहुत वर्षों की बात है। करीब बाईस साल हो गए। जाड़े का मौसम था। कड़ाके का जाडा पड़ रहा था। गांधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाडी सुबह चार बजे स्टेशन पर पहुची। मैं उन्हें लेने गया। पता चला कि एक घटे बाद ही जाने वाली गाडी से वह अहमदाबाद जा रहे है। उनके गाड़ी से उतरते ही मैंने पूछा, "एक दिन ठहरकर नही जा सकते ?" उन्होने फिर पूछा, "क्यो ? मुझे जाना आवश्यक है।" मैं निराश हो गया। उन्होने कहा, "क्यो ?" मैने कहा, "घर मे कोई बीमार है। मृत्यु-शय्या पर है। आपके दर्शन करना चाहती है।" गाधीजी ने कहा, "मैं अभी चलूगा।" मैंने कहा, "मैं इस जाड़े मे ले जाकर आपको कष्ट नही दे सकता।" उन दिनो मोटरें भी खुली होती थी। जाड़ा और ऊपर से जोर की हवा, पर उनके आग्रह के बाद मैं लाचार हो गया। मैं उन्हे ले गया, दिल्ली से कोई पन्द्रह मील की दूरी पर। वहा उन्होने रोगी से बात कर उसे सान्त्वना दे दिल्ली-कैंटूनमेंट पर अपनी गाड़ी पकड़ ली। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना बडा व्यक्ति मेरी जरा-सी प्रार्थना पर सुबह के कड़ाके के जाडे में इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है! पर यह उनकी आत्मीयता थी, जो लोगो को पानी-पानी कर देती थी। मृत्यु-शय्या पर सोनेवाली यह मेरी धर्म-पत्नी थी।

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हे कुष्ठ था। उनको गाधीजी ने अपने आश्रम मे रखा सो तो रखा, पर रोजमर्रा उनकी तेल की मालिश भी स्वय अपने हाथो करते थे। लोगो को डर था कि कही कुष्ठ गाधीजी को न लग जाय। पर गाधीजी को इसका कोई भय न था। उनको ऐसी चीजो से अत्यन्त सुख मिलता था।

'४२ के शुरू मे मैं वर्धा गया। कुछ दिन बाद उन्होंने मुझसे कहा, "तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम होता है। इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहा कुछ दिन रहो। मैं तुम्हारा उपचार करना चाहता हू।" मैंने कहा, "वर्धा ठीक है। सेवाग्राम मे क्यो आपको कष्ट दू ?" मुझे सकोच तो यह था कि सेवाग्राम में पाखाना साफ करने के लिए कोई मेहतर नही होता। वहा पर टट्टी की सफाई आश्रम के लोग करते हैं। जहा मुझे ठहराना निश्चित किया गया था, वहा की टट्टी महादेवभाई साफ किया करते थे। मैंने उन्हें अपना संकोच बताया कि क्यो मैं सेवाग्राम नही आना चाहता था। मैं स्वयं अपनी टट्टी साफ नही कर सकता और यह बर्दाश्त नही कर सकता कि महादेवभाई-जैसा विद्वान् और तपस्वी ब्राह्मण उस काम को करे। गाधीजी को मेरा सकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है ? महादेवभाई ने भी मजाक किया, परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रखना स्वीकार कर लिया गया। आगाखा महल में जब उनका उपवास चलता था तो मैं गया। बड़े बेचैन थे। बोलने की शक्ति करीब-करीब

नही के बराबर थी। मैंने सोचा कि कुछ राजनैतिक बातें करूंगा, पर आश्चर्य हुआ। पहुंचते ही हम सबकी कुशल-मंगल, छोटे-मोटे बच्चो के बारे में सवाल और घर-गृहस्थी की बातें। इसीमें काफी समय लगा दिया। मैं उनको रोकता जाता था कि आपमें शक्ति नहीं है, मत बोलिये; पर उनको इसकी कोई परवा नही थी।

इस तरह की उनकी आत्मीयता थी, जिसने हजारो को उनका दास बनाया। नेता बहुत देखे, सन्त भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे, पर एक ही मनुष्य मे सन्त, नेता और मनुष्य के ऊंचे दर्जे की आत्मीयता मैंने और कही नही देखी। मैं अगर गांधीजी का कायल हुआ तो उनकी आत्मीयता से। यह सबक है, जो हर मनुष्य के सीखने के लायक है। यह एक मिठास है, जो कम लोगों मे पाई जाती है।

गांधीजी करीब पौने पाच महीने इस मर्तबा हमारे घर मे रहे। जैसा कि उनका नियम था, उनके साथ एक बड़ी बारात आती थी। नये-नये लोग आते थे और पुराने जाते थे। भीड बनी रहती थी। घर तो उनके ही सुपुर्द था। कितने मेहमान उनके ऐसे भी आते थे, जो मुझे पसन्द नही थे, जो उनके पासवालो को भी पसन्द नही थे। बम गिरने के बाद बहुतों ने उन्हें बेरोक-टोक भीड़ में घुस जाने से मना किया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने उनके लिए करीब तीस मिलिटरी पुलिस और पन्द्रह-बीस खुफिया बिड़ला-भवन मे तैनात कर रखे थे, जो भीड़ मे इधर-उधर फिरते रहते थे; पर मैं जानता था, इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नहीं सकती। जो लोग आते थे, उनकी झडती लेने का विचार पुलिस ने किया, मगर गांधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाब उनके पास था—"मेरा रक्षक तो राम है।"

उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड़ा। मैंने कहा, "कुछ दवा लीजिये।" फिर वही उत्तर—"मेरा वैद्य राम है। मेरी दवा राम है।" कुछ अदरक, नीबू, घृतकुमारी का रस, नमक और हींग साथ मिलाकर उनको देना निश्चय किया। आग्रह के बाद साधारण खान-पान की चीज समझकर उन्होंने इसे लेना स्वीकार किया। पर वह भी कितने दिन! अन्त में तो राम ही उन्हें अपने मन्दिर में ले गए।

उनके अन्तिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगों मे काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैंने काफी बहस की। मैंने कहा, "मेरा आपका बत्तीस साल का सम्पर्क है। आपके अनेक उपवासों में मैं आपके पास रहा हूं। मुझे लगता है कि आपका यह उपवास सही नहीं है।" पर गांधीजी अटल थे। यह कहना भी गलत है कि गांधीजी आसपास के लोगों से प्रभावित नहीं होते थे। बुद्धि का द्वार उनका सदा खुला रहता था। बहस करनेवाले को प्रोत्साहन देते थे, और उसमें जो सार होता, उसे ले लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यो न मिलता हो। बार-

बार बहस करते-करते मुझे लगा कि उनके उपवास के टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है। मुझे बम्बई जाना था। जरूरी काम था। मैंने उनसे कहा, "मैं बम्बई जाना चाहता हूं। मुझे लगता है कि अब आपका उपवास टूटेगा; न टूटने-वाला हो हो तो न जाऊ।" मैंने यह प्रश्न जान-बूझकर टटोलने के लिए किया। उन्होंने मजाक शुरू किया। कहा, "जब तुम्हे लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने मे क्या रुकावट है ? अवश्य जाओ, मुझसे क्या पूछना है ?" मैंने कहा, "मुझे तो उपवास का अन्त आया लगता है, पर आपको लगता है या नही, यह कहिये।" उन्होंने मजाक जारी रखा और साफ उत्तर न देकर फदे मे फसने से इन्कार किया। मैंने कहा, "नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ; क्योकि ब्राह्मण घर मे भूखा रहे तो पाप लगता है। आप यहा उपवास करते हैं तो मुझपर पाप चढता है। इसलिए अब इसका अन्त होना चाहिए।" गांधीजी ने कहा, "मैं कहा ब्राह्मण हू !" "पर आप तो महाब्राह्मण हैं।" इसपर बड़ा मजाक रहा मैंने कहा, "अच्छा; आप यह आशीर्वाद दीजिये कि मैं शीघ्र-से-शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बम्बई मे सुनू।" फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा। मैंने कहा, "अच्छा, यह बताइये कि आप जिन्दा रहना चाहते हैं या नही ?" उन्होंने कहा, "हां, यह कह सकता हूं कि मैं जिन्दा रहना चाहता हूं। बाकी तो मैं राम के हाथ मे हूं।" उपवास तो समाप्त हुआ, लेकिन राम ने उन्हे छोडा नही।

एक दीपक बुझ गया, पर हमारे लिए रोशनी छोड गया।